गरुड़-पुराण

(प्रथम खण्ड)

सम्पादक—
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट् दर्शन
, २० स्मृतियाँ और अठारह पुराणों के,
प्रसिद्ध भाष्यकार।

❀

प्रकाशक—
संस्कृति-संस्थान,
ख्वाजाकुतुब (वेदनगर) बरेली
(उत्तर-प्रदेश)

प्रथम संस्करण) १९६८ (मूल्य ७ रु०

प्रकाशक
संस्कृति संस्थान,
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली। (उ० प्र०)

※

सम्पादक
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

※

※

प्रथम संस्करण
१९६८

※

मुद्रक
वृन्दावन शर्मा
जन जागरण प्रेस,
मथुरा।

※

मूल्य
७ रु०

भूमिका

धार्मिक और विवेकवान् व्यक्तियों के सम्मुख मानव-जीवन की जो समस्याएँ प्राय. उपस्थित हुआ करती हैं उनमे मरणोत्तर-जीवन की समस्या बहुत महत्त्वपूर्ण है। ससार का कोई देश या जाति ऐसी नही, जहाँ इस सम्बन्ध मे विचार न किया गया हो। जङ्गली कहलाने वाली जातियों मे भी इस सम्बन्ध में कुछ धारणायें पाई जाती हैं, चाहे वे कैसी ही विचित्र अथवा असङ्गत क्यो न हो। इसके विपरीत ज्ञानी और अध्यात्म-क्षेत्र के ज्ञाताओं की धारणायें बहुत कुछ बुद्धि और तर्क सङ्गत होती हैं। कुछ भी हो, मरने के बाद हमारी स्थिति क्या होगी, यह प्रश्न प्रत्येक मानव-मस्तिष्क मे कभी न कभी उत्पन्न होता ही है, और प्रत्येक व्यक्ति अपनी विद्या बुद्धि अथवा जानकारी के अनुसार उसका समाधान भी किया करता है।

यद्यपि ससार के अन्य धर्मों—जैसे पारसी, यहूदी, ईसाई, इस्लाम मे भी मरणोत्तर-जीवन का उल्लेख पाया जाता है, पर वह इतना सक्षिप्त और गौण रूप वर्णित है कि उससे उनके अनुयाइयो के आचार-विचारो तथा मनोभावो पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पडता। इसके विपरीत हिन्दू-धर्म मे, विशेषत उसके पौराणिक-साहित्य मे इसका इतना अधिक विवेचन और विस्तार किया गया है कि भारतवासियो के प्रत्येक कार्य मे इसका प्रभाव देखने मे आता है। यहाँ करोडो अनपढ और अशिक्षित व्यक्ति ऐसे हैं जो मृत्यु के उपरान्त पुनर्जन्म के होने और इस जन्म के प्रत्येक कार्य का फल पाने मे अटल विश्वास रखते हैं। ऐसे लोग अपने सुख-दुख, हानि-लाभ, सफलता-असफलता, भलाई-बुराई आदि सब बातो का कारण पूर्व-जन्म के कर्मों को ही मानते हैं। इसके सिवाय धार्मिक ग्रन्थो के ऐसे वर्णनो के परिणाम स्वरूप जन-साधारण मे स्वर्ग और नर्क सम्बन्धी विश्वास भी इतना अधिक पाया जाता है कि वे हर समय उसका जिक्र करते रहते हैं और उनके दान, पुण्य, परोपकार, कर्मकाण्ड आदि का आधार इन्हीं विचारों पर रहता है।

मरणोत्तर-जीवन की इस विचार धारा का सबसे अधिक विस्तार 'गरुड़-पुराण' में किया गया है। यद्यपि इसमें और भी अनेक जीवनोपयोगी विषयों का वर्णन पाया जाता है पर यमलोक तथा नरकों का वर्णन और मृत्यु के उपरान्त किये जाने वाले कर्मकाण्डों का विधि-विधान ही इसकी सबसे बड़ी विशेषता मानी गई है। इस कारण अनेक हिन्दू घरों में किसी व्यक्ति का देहान्त होने के अवसर पर इस पुराण का पारायण किया जाता है और इसके अनुसार न्यूनाधिक मात्रा में दान-दक्षिणा भी किसी पुरोहित या महाब्राह्मण आदि को दी जाती है। इसमें यमपुर के मार्ग तथा नरकों के कष्टों का वर्णन ऐसे भयङ्कर और वीभत्स रूप में किया गया है कि सुनने वाले का हृदय काँपने लगता है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि सब लोगों पर इसका प्रभाव स्थायी होता है पर भारतीय समाज में नरक का जिक्र होना एक सामान्य बात है और किसी के दुष्कर्म करने पर उसके नरक-वास की सम्भावना भी प्रकट कर दी जाती है। यह बात दूसरी है कि कहने और सुनने वालों को इस पर कितना विश्वास होता है।

'गरुड़ पुराण' की शिक्षायें—

गरुड़-पुराण के प्रेत खण्ड में ३५ अध्याय हैं। इनमें दान का फल बतला कर उसके द्वारा मृतात्मा की सद्गति का वर्णन किया गया है। यमलोक के भयंकर कष्टों का वर्णन करके यह बतलाया गया है कि सम्बन्धियों के दान आदि के द्वारा परलोक में मृतात्मा के कष्टों में किस प्रकार कमी हो सकती है। इसके लिये वृषोत्सर्ग (बिजार या सांड छोड़ना) का बड़ा महत्त्व दर्शाया है। यमराज के न्यायालय और उसके कार्याध्यक्ष चित्रगुप्त के स्थानों का वर्णन भी कई जगह विस्तार पूर्वक किया गया है। इसका उद्देश्य यही हो सकता है कि जन साधारण उन पाप कर्मों से यथासम्भव बच कर रहे जिनसे यमलोक में कष्ट पाने की सम्भावना हो। आगे चलकर अपमृत्यु मरने वाले व्यक्तियों के प्रेत होने का वर्णन और प्रेतयोनि में जीव की घोर दुर्दशा वर्णन किया गया है। क्योंकि इस बात का कोई निश्चय नहीं होता है कि कौन व्यक्ति प्रेतयोनि को प्राप्त हुआ है और वह कब तक उसमें पड़ा रहेगा इसलिए प्रत्येक जीवित व्यक्ति का यह

बतलाया गया है कि अपने किसी सम्बन्धी की मृत्यु हो जाने पर किसी कर्म-काण्ड के ज्ञाता द्वारा उन क्रियाओं को करावे जिनसे मनुष्य प्रेतयोनि से छुटकारा पा सकता है।

प्रेत होने के कारण बतलाते हुए पुराणकार ने अकालमृत्यु के अतिरिक्त उन अनैतिक और चरित्र-हीनता की बातों का ही वर्णन किया है, जिनसे व्यक्ति और समाज का अनिष्ट और पतन होता है। उदाहरण के लिये 'संतमक' नामक तपस्वी ब्राह्मण से अपनी दुर्दशा बतलाते हुये प्रेतों ने कहा कि "दूसरों की धरोहर का अपहरण करने वाला, अपने मित्रों से द्रोह करने वाला, विश्वास घात करने वाला और कूट पुरुष प्रेतत्व को प्राप्त होता है। इसी प्रकार ब्राह्मण, देव-मन्दिर और गुरु की सम्पत्ति हरण करने वाला, कन्या विक्रय करने वाला, अपनी माता, भगिनी, भार्या, पुत्र-वधू तथा पुत्री को कोई दोष न होने पर त्याग देने वाला भी प्रेत हो जाता है। जो सदा मिथ्या कर्म और भाषण में रुचि रखता है और दूसरों की भूमि तथा स्वर्ण का अपहरण करता है वह अवश्य ही प्रेत होता है।" इससे प्रकट होता है कि जो व्यक्ति ऊपर से धर्म-कर्म का ढोंग करते हुये भी वास्तविक धर्म का पालन नहीं करते, जो स्वार्थ-साधन के लिये दूसरों को हानि पहुंचाने में संकोच नहीं करते, जो सत्य, न्याय, प्रतिज्ञापालन, आपत्तिग्रस्तों की सहायता आदि जैसे सत्कर्मों से विमुख रहते हैं वे मरणोपरान्त दुर्दशा को प्राप्त होते हैं और निकृष्ट प्रेत-योनि को प्राप्त होकर तरह-तरह के कष्ट सहन करते हैं।

इसी प्रकार राजा बभ्रुवाहन की कथा में बतलाया गया है कि "जो लोग देवोत्तर सम्पत्ति (सार्वजनिक हित के कार्यों का धन), स्त्रियों का धन, बालकों का धन हरण किया करते हैं वे प्रेत योनि को प्राप्त होते हैं। जो किसी तापसी नारी, सगोत्र स्त्री, गमन करने के अयोग्य नारी के साथ दुराचार करते हैं वे महाप्रेत हो जाते हैं। जो किये हुए उपकार के प्रति कृतघ्न हों, ईश्वर की सत्ता को स्वीकार न करें, रौद्र, दुस्साहसी, शठतापूर्ण स्वभाव के हों वे भी प्रेत बना करते हैं।" निस्सन्देह अनुचित लालच के वशीभूत होकर किसी असहाय अथवा निर्बल का सम्बल छल-बल से हड़प कर जाना संसार में बहुत बड़ा पाप है। यद्यपि इस समय धन की लालसा ने लोगों को इस

प्रकार वशीभूत कर लिया है कि प्रसिद्ध और प्रभावशाली माने जाने वाले व्यक्ति भी दूसरों के स्वत्व को बेईमानी और धोखे से अपहरण कर लेने में लोक और परलोक का डर नहीं करते, पर यह निश्चय है कि इस प्रकार के आचरण का परिणाम कभी शुभ नहीं हो सकता। ऐसे अर्थ-पिशाच इस जीवन में ही भीतर ही भीतर धन की लालसा से व्याकुल हुआ करते हैं और जितना अधिक धन पाते जाते हैं उतना ही तृष्णा के जाल में फँस कर अधःपतन की ओर अग्रसर होते जाते हैं। जो लोग इस संसार में जीवित अवस्था में ही धन की तृष्णा में दग्ध हुआ करते हैं वे यदि मरने के पश्चात् भी अशान्ति और अभाव का अनुभव करते रहे तो इसमें क्या आश्चर्य है?

अकाल मृत्यु का कारण—

इसमें एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठाया गया है कि जब भगवान् ने मनुष्य की स्वाभाविक आयु सौ वर्ष की नियत कर दी है तब वह अकाल मृत्यु का ग्रास बन कर प्रेत योनि को क्यों प्राप्त होता है? इसके उत्तर में भगवान् कृष्ण ने यह स्वीकार किया कि वास्तव में संसार में जन्म लेने वाले सभी मनुष्यों की उम्र सौ वर्ष की नियत होती है, पर मनुष्य अपने दुष्कर्मों दुराचरणों अथवा पूर्व जन्म के पापों से स्वयं ही अपनी आयु को क्षीण करने का कारण बनता है और समय से पूर्व ही इस लोक को छोड़ कर परलोक को प्रयाण करता है। इस प्रसङ्ग से इस बात का स्पष्ट रूप से खंडन हो जाता है कि 'ब्रह्मा ने मनुष्य की जो आयु नियत कर दी है उसमें एक क्षण का भी अन्तर नहीं हो सकता।' जो लोग भाग्यवाद के सिद्धान्त का वास्तविक तात्पर्य न समझ कर "राई घटे न तिल बढ़े रहु रे जीव निशङ्क" की उक्ति को प्रमाण माना करते हैं वे विचार-शक्ति से शून्य ही होते हैं। गरुड की शङ्का का समाधान करते हुए कृष्ण भगवान् कहते हैं—

'हे पक्षीन्द्र! मनुष्य वास्तव में सौ वर्ष जीवित रहने वाला प्राणी है, जैसा कि वेद-भगवान् ने 'जीवेम शरदःशतम्' आदि वाक्यों से सुस्पष्ट कर दिया है। पर अपने ही अपकर्मों के प्रभाव से वह शीघ्र नष्ट हो जाता है। यह मनुष्य वेदों का अभ्यास नहीं करता और वंश परम्परा से चले आये धर्मानुकूल कर्तव्यों

का भी पालन नहीं करता। इसमें बहुत अधिक आलस्य भर गया है जिससे यह श्रेष्ठ कर्मों से विमुख होकर नीच मार्ग में प्रवृत्त हो जाता है। यह जहाँ-तहाँ खा लेता है और चाहे जहाँ रति करने लगता है। इस प्रकार भोजन और भोग में स्वच्छन्द हो जाने और इसी प्रकार के अन्य खोटे कर्मों से यह अपनी आयु का क्षय करता रहता है।"

"जो ब्राह्मण श्रद्धा न रखने वाला, अपवित्र रहने वाला, जप-तप से पराङ्मुख, मंगल कार्यों को त्याग देने वाला मदिरापान आदि दुष्कर्मों में आसक्त होगा वह शीघ्र ही यमराज द्वारा क्यों न दण्डित किया जायगा? इसी प्रकार जो क्षत्रिय राजा प्रजा की रक्षा न करके उसका उत्पीड़न करता है और अपना सब समय तथा राज्य-कोष दुर्व्यसनों में खर्च करता रहता है अथवा जो पापों के भय से युद्ध में कायरता दिखाता है, उसे यमराज की अदालत में क्यों न दोषी बनना पड़ेगा? वैश्य वर्ण का जो व्यक्ति समाजोपयोगी कार्यों को त्याग कर झूँठे व्यवहार से केवल मनुष्यों को ठगने और धन बटोरने में लगा रहेगा उसे भी दण्ड स्वरूप यम-यातना सहन करनी ही पड़ेगी। समाज-सेवा के कार्यों से विमुख होकर हानिकारक मार्ग पर चलने वाला शूद्र भी यमराज द्वारा दण्डनीय होता है। सब बातों का सार यही है कि जो मनुष्य नित्यप्रति स्नान, ध्यान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, ईश्वरोपासना आदि धर्मविहित कर्मों को त्याग कर आलस्य और प्रमाद में पड़ा रहता है उसका वह दिन व्यर्थ ही जाता है। इस प्रकार जो व्यक्ति अपने जीवन के उपयोगी दिनों को नष्ट करता रहता है उसकी आयु भी शीघ्र नष्ट हो जाती है, क्योंकि यह मानव-देह अध्रुव (अनिश्चित) है। जीव को यह देह इसलिये दी जाती है कि वह कर्म-बन्धनों को काट कर ऊँची गति को प्राप्त करे। पर जो इसके विपरीत इसको निकृष्ट भोग-विलास में ही लगा देता है तो दण्ड स्वरूप उसे शीघ्र ही इस ईश्वरीय अनुग्रह से वञ्चित कर दिया जाता है।"

मानव-जीवन की श्रेष्ठता—

वास्तव में मानव-जीवन और मानव-देह का प्राप्त होना सृष्टि का सबसे बड़ा अनुदान है। चाहे हम धर्म की दृष्टि से देखें और चाहे विज्ञान की

दृष्टि से,संसार में जितने भी चराचर प्राणी पाये जाते हैं मनुष्य उनमें सर्वोच्च है। उसे जो विवेक बुद्धि, सूक्ष्म विषयों को समझ सकने योग्य मस्तिष्क और आश्चर्य-जनक क्षमता युक्त कर्मेन्द्रियाँ तथा ज्ञानेन्द्रियाँ प्रदान की गई हैं, उनकी तुलना और कहीं दिखाई नहीं पड़ती। मनुष्य को संसार में जो अपार सुविधायें और उपयोगी कर्म करने के अवसर प्राप्त हुए हैं वे ऐसे महान् और अलभ्य हैं कि 'देवगण' भी सदैव उनकी अभिलाषा किया करते हैं। इसी तथ्य को समझ कर 'विष्णु-पुराण' में कहा गया है—

गायन्ति देवा किलगीतिकानि धन्यास्तु ये भारतभूमि भागे।
स्वर्गापवर्गस्य फलार्जनाय भवन्ति भूय पुरुषः सुरत्वात्॥

अर्थात् यह कर्मभूमि भारतवर्ष अत्यन्त धन्य है, जिसकी महिमा देवगण भी गाते रहते हैं। क्योंकि स्वर्ग और मोक्ष जैसी सर्वोच्च गतियों को यहीं पर सत्कर्म करके ही प्राप्त किया जा सकता है। स्वर्ग कहे जाने वाले लोक में चाहे भोगों की कितनी भी अधिकता क्यों न हो, चाहे वहाँ के प्राणी बिना परिश्रम किये अपनी सब मनोभिलाषाओं की पूर्ति क्यों न कर लेते हों, पर उनको इस बात का अवसर कभी नहीं मिलता कि त्याग, तपस्या परोपकार के मार्ग पर चलकर दूषित कर्म-बन्धनों को काट सकें और आत्म-शक्ति की वृद्धि करते हुए स्वावलम्बन पूर्वक 'ब्रह्म-निर्वाण' की ओर अग्रसर हो सकें।

इस प्रकार 'गरुड-पुराण' का मुख्य उद्देश्य मृतक कर्म-काण्ड के रूप में दान-दक्षिणा का विधि-विधान बतलाना होने पर भी उसमें स्थान-स्थान पर यही कहा गया है कि परलोक में सद्गति प्राप्त करने के लिये मनुष्य को शुभकर्म करना अनिवार्य है। शास्त्रकारों ने जो 'कर्म' को प्रधानता दी है उसका आशय यही है कि मनुष्य जैसा कर्म करता है उसका परिणाम अवश्य मिलता है, चाहे वह उसे समझे या न समझ पाये। बुरे काम करके सुफल की आशा करना बिल्कुल मूर्खता है। आम का बीज बोने से मीठे फल मिलना और बबूल का बोने से तीक्ष्ण काँटों का सहन करना एक ऐसा प्राकृतिक सिद्धान्त है, जो पलट नहीं सकता। 'गरुड पुराण' में भी विभिन्न अध्यायों में सामान्य तथा विशेष नैतिक तथा धार्मिक नियमों के पालन करने के रूप में यही उपदेश दिया गया है—

"किसी भी श्रेष्ठ उद्देश्य की पूर्ति के लिये सदा सत्पुरुषों का सग करना चाहिये। असत्पुरुषों की सगति से इस लोक और परलोक में कहीं भी हित नहीं हो सकता। पराया व्यक्ति भी हित–समादर करने वाला होता है और अपना बन्धु भी परम शत्रु बन सकता है। इसलिये जो अपना सच्चा हित करे उसी को बन्धु समझना चाहिये। उसी मनुष्य को वास्तव में जीवित मानना चाहिये जिसमें अच्छे गुण और विचार पाये जायें और जो धर्म की भावना रखता है। गुण और धर्म रहित व्यक्ति का ससार में जन्म लेना निष्फल ही है। दुष्ट चरित्र वाले घर में रहने से तो नरक में निवास करना भी अच्छा है। क्योंकि नरक में रहने से तो क्रमश पापों का क्षय होता है पर दुष्ट-गृह में रहने से पाप उल्टा बढता जाता है। जिसका धन नष्ट हो जाता है वह घर–बार त्याग कर तीर्थ–सेवन के लिये चला जाता है, पर जो सत्य से भ्रष्ट हो जाता है उसे तो रौरव नरक में ही जाना पड़ता है। जो किसी को वचन देकर उसका पालन नहीं करते, जो चुगली किया करते हैं, झूठी गवाही देते हैं मद्य-पान करते हैं वे सब नरक की घोर कष्टदायक वैतरणी नदी में निवास करते हैं। किसी घर में अग्नि लगाने वाला, विष देने वाला, स्वय दान करके फिर उसका अपहरण करने वाला, खेत, पुल आदि सार्वजनिक स्थानों को नष्ट करने वाला, पराई स्त्री से दुराचार करने वाला आदि व्यक्ति भी वैतरणी में महाकष्ट पाते हैं। जो कृपण हैं, नास्तिक हैं, क्षुद्र स्वभाव वाले हैं, सदा क्रोध करते रहते हैं, स्वय अपनी ही बात को प्रमाण बतलाने वाले हैं, अत्यन्त अहङ्कारी हैं कृतघ्नी, विश्वासघाती हैं वे सब वैतरणी नदी में दीर्घकाल तक नारकीय स्थिति में पड़े रहते हैं।"

जो लोग केवल शारीरिक या अर्थ सम्बन्धी दुष्कर्मों को ही नरकवास का कारण समझते हैं, वे वास्तविकता से परे ही समझे जायेंगे। मानसिक दुर्बोध और अहङ्कार जनित दोष प्रत्यक्ष पापों से भी बढ़कर नरक वास के कारण होते हैं, क्योंकि भावना रूप पाप ही आगे चल कर स्थूल पापों के रूप में प्रकट होते हैं। जिस व्यक्ति की मनोभूमि शुद्ध है और विचार-धारा पवित्रता की ओर प्रेरित रहती है, उसकी अभिरुचि पापकर्मों की तरफ होगी ही नहीं। इस लिये यदि 'गरुड पुराण' के कर्ता ने अहङ्कार, नास्तिकता,

क्षुद्रता, कृपणता, क्रोध आदि को नरक का कारण लिखा है तो उसमें कोई भूल की बात नहीं है।

प्रेतों का स्वरूप और कार्य—

यद्यपि इस पुराण में मृत्यु के उपरान्त प्रेत बनने वालों और यमपुर की यात्रा करने वालों का जो वर्णन किया गया है उसके पढ़ने से यही प्रतीत होता है कि मरणोपरान्त मनुष्य का सूक्ष्म शरीर निस्सन्देह किसी दैवी प्रदेश की यात्रा करता है और वहाँ चित्रगुप्त नगर, यमपुरी आदि में उसका विचार उसी प्रकार किया जाता है जैसा कि हम लौकिक न्यायालयों में होता देखते हैं। पर कई स्थानों पर प्रेतों के स्वरूप और कार्यों का जो वर्णन पाया जाता है उससे यह भी प्रकट होता है कि नरकों और यमपुरी का जो वर्णन किया गया है वह बहुत अंशों में अलङ्कारिक है और पाठकों के चित्त पर अनुकूल प्रभाव डालने के उद्देश्य से किया गया है। ऐसा न होता तो स्वयं पुराण-कार यह न लिखता कि प्रेतत्व को प्राप्त होना और प्रेतों द्वारा संसार के मनुष्यों को पीड़ा पहुँचाया जाना कलियुग में ही होता है सत्युग, त्रेता, द्वापर आदि में ऐसा नहीं होता था। वे लिखते हैं—

> कलौ प्रेतत्वमाप्नोति तार्क्ष्याशुद्ध क्रिया पर ।
> कृतादौ द्वापरं यावन्न प्रेतो नैव पीडनम् ॥
>
> (प्रेतकल्प १०—१७)

अर्थात् कलियुग में मनुष्यों के रहन-सहन के अशुद्ध हो जाने से वे प्रेतत्व को प्राप्त होते हैं। सतयुग, द्वापर आदि में न कोई प्रेत बनता था न किसी को प्रेत सम्बन्धी पीड़ा होती थी।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि यमराज, उनकी यमपुरी, नरक आदि तो अनादि काल से हैं, तब क्या वे सब द्वापर तक निकम्मे बैठे रहते थे? फिर मार्कण्डेय पुराण आदि विभिन्न ग्रन्थों में मृतात्माओं के आवागमन की जो कथायें दी गई हैं उनमें नरकों का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है। धर्मराज युधिष्ठिर जब एक असत्य-भाषण के लिये थोड़ी देर के लिये नरक में ले जाये गये तो उन्होंने देखा कि नरक पापियों से भरे हुये हैं। इससे हम

इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि प्रेतत्व और नरकों का जो वर्णन पुराणों में लिखा गया है उसे अक्षरशः ज्यों का त्यों मानने के बजाय उसका अर्थ रूपक अलङ्कार की दृष्टि से ही समझना उचित है। उपनिषदों में महर्षियों ने इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक जो विवेचन किया है उससे भी पुनर्जन्म और नरकों का ऐसा ही स्वरूप सिद्ध होता है। 'कठोपनिषद' में जब नचिकेता ने यमराज से यह प्रश्न किया कि मरने के बाद मनुष्य की क्या गति होती है तो उसने यही उत्तर दिया—

न प्राणेन न. पानेन मर्त्यो जीवति कश्चन।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेता वुपाश्रतौ॥

"कोई भी प्राणी प्राण अथवा अपान वायु के आधार पर ही जीवित नहीं रह सकता, वरन् प्राण और अपान जिस शक्ति के आश्रित हैं प्रत्येक प्राणी उसी के आधार पर जीवित रहता है।" मृतात्मा देहान्त के पश्चात् कैसे रहता है उसके सम्बन्ध में कहा गया है—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिन।
स्थाणुमन्ये ऽनुसयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥

"जिसने श्रवण-मनन द्वारा जैसा मनोभाव प्राप्त किया है उसी के आधार पर अपने-अपने कर्मों के अनुसार कितने ही जीवात्मा देह धारणार्थ विभिन्न योनियों को प्राप्त होते हैं और अनेकों जीवात्मा अपने कर्मानुसार वृक्षलता, पर्वत आदि स्थानों पर पदार्थों के रूप को ग्रहण कर लेते हैं।"

इससे विदित होता है कि दुष्कर्मों के फल से मनुष्य जो पशु-पक्षियों, कीड़े-मकोड़ों की योनियों में जाते हैं अथवा वृक्ष, लता आदि स्थावर पदार्थों के रूप को प्राप्त हो जाते हैं वही उनके लिये एक तरह का नरकवास माना गया है। मनुष्य के मुकाबले में इन जीवों को अनेक प्रकार की असुविधायें और कष्ट सहन करने पड़ते हैं। 'गरुड पुराण' में नरकों की संख्या ८४ लाख बतलाई गई है। अन्य स्थानों में योनियों की संख्या भी ८४ लाख मानी गई है। इससे यह अनुमान लगाना अनुचित न होगा कि संभवतः 'गरुड पुराण' ने ८४ लाख योनियों में जीव के भ्रमण करने का ही ८४ लाख नरकों के रूप में वर्णन किया है।

गीता मे 'नरक' का स्वरूप—

'भगवद्गीता में दुष्कर्मो से जीव की अधोगति और शुभ कर्मों से उच्च गति पाने का वर्णन किया गया है, पर उसमे 'गरुड पुराण' की तरह किसी रहस्यपूर्ण यमराजपुरी और उसके महाभयङ्कर कारागारो का वर्णन नही है। उसमे यही बताया गया है कि जो लोग पाखण्ड, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोर वाणी, अज्ञान आदि आसुरी लक्षणो से युक्त होते हैं वे मृत्यु के बाद अवाञ्छनीय गति को प्राप्त होते हैं। 'गीता' मे 'नरक' का शब्द भी आया है पर उसका आशय जीव की नीच और कष्ट पूर्ण स्थिति से ही जान पड़ता है। इस सम्बन्ध मे १६ वे अध्याय मे कहा गया है—

> तानह द्विषत. क्रूरान्ससारेषु नराधमान् ।
> क्षिपाम्यजस्रम शुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥१६॥
> आसुरी योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
> माम प्राप्यैव कौन्तेय ततोयान्त्य धमा गतिम् ॥२०॥
> त्रिविध नरकस्येद द्वार नाशनमात्मन ।
> काम क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रय त्यजेत् ॥२१॥

अर्थात्—'इस प्रकार के इन द्वेष बुद्धि रखने वाले दुष्टों मे लिप्त और निर्दय स्वभाव के नीच व्यक्तियो को मैं ससार म बारम्बार आसुरी योनियो में ही गिराया करता हू ॥१६॥ हे अर्जुन ! वे मूढ पुरुष जन्म-जन्म मे आसुरी योनियो को प्राप्त होकर मुझको (परमात्मा स) दूर होते जाते हैं और पहले की अपेक्षा भी नीच गति को प्राप्त होते है ॥२०॥ काम, क्रोध, तथा लोभ—ये तीन प्रकार के नरक के द्वार आत्मा का नाश करने वाले है, आत्म-कल्याण के इच्छुक को इन्हें त्याग देना चाहिए।"

गीताकार ने कुछ योनियां मनुष्य से नीची और कुछ ऊँची बतलाई है और स्पष्ट कह दिया है कि आसुरी प्रकृति वाले लोग अधोगति को तथा दैवी प्रकृति वाले उच्च गति को प्राप्त होते हैं। यदि मनुष्य मृत्यु के उपरान्त नीच योनियो मे जाकर कष्ट पाता है तो उसका कारण अहङ्कार,पाखड क्रोध,पर-पीडन आदि ही है। आसुरी अथवा निन्दनीय प्रवृत्तियाँ होती हैं। जब तक मनुष्य

इनको त्याग कर अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, दया, अद्रोह, क्षमा आदि दैवी अथवा सत् प्रवृत्तियों को नहीं अपनाता तब तक उसका आत्म-कल्याण के लक्ष्य को प्राप्त हो सकना असम्भव होता है। 'गीता' में यह नहीं कहा है कि मरते समय 'गोदान' करने से मनुष्य नरक-प्रदेश की वैतरणी नदी से पार हो जायगा अथवा पुत्र या सम्बन्धियों द्वारा मासिक पिण्डदान करने से यमलोक के मार्ग में उसकी भूख शान्त होती रहेगी। वरन् महाभारत का ही यह आदेश है—

ज्ञानिनस्तु सदा मुक्ता स्वरूपानुभवेन हि।
अतस्ते पुत्र दत्ताना पिण्डाना नैव काङ्क्षिणः॥

अर्थात् 'ज्ञानी मनुष्य तो अपने सच्चे स्वरूप को समझ कर और तद्नुसार आचरण करके सदा ही मुक्त होते हैं। उनको पुत्रो द्वारा दिये गये पिण्डों की आकांक्षा कभी नहीं होती।"

'बृहदारण्यक उपनिषद्' की सम्मति से भी यही सिद्ध होता है कि आत्मा स्वभाव से ऊर्ध्व पथगामी है और जब तक मनुष्य आध्यात्मिक मार्ग पर चलता हुआ सत्कर्मों में संलग्न रहता है। तब तक वह उच्च गति को ही प्राप्त होता है—उसके चौथे ब्राह्मण में कहा गया है—

तद्यथा पेशस्कारी पेशसो मात्रा मादायन्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं तनुते एवमेवायमात्मेदं शरीरं निहत्य विद्यागमयित्वा अन्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं कुरुते पित्र्यं वा गन्धर्वं वा देवं वा प्राजापत्यं वा ब्राह्मं वा अन्येषां वा भूतानाम्।

अर्थात् 'जैसे कोई स्वर्णकार (सुनार) थोड़े से पुराने सोने को लेकर उससे नया और सुन्दर आभूषण बना देता है उसी प्रकार आत्मा इस जीर्ण शरीर को नष्ट करके और अज्ञान से पार होकर दूसरे नये और कल्याणकारी (श्रेष्ठ) रूप को धारण करती है। वह रूप चाहे पितृलोक में हो, चाहे गन्धर्व लोक या देवलोक में, चाहे प्रजापति लोक अथवा ब्रह्मलोक में या किसी अन्य भौतिक लोक में।"

'ईशावास्योपनिषद्' में बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि जो लोग इस संसार में कुमार्ग पर चलते हैं और आत्मा को नीचे गिराने वाले काम करते हैं वे ही घोर दुर्गति को प्राप्त होते हैं—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृता ।
ताऽस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जना. ।।

अर्थात्—"असुरों के जो लोक हैं वे अज्ञान और अन्धकार से ढके हुए है। जो मनुष्य आत्मा-हत्या करते है अथवा जो आत्मा के पतन कराने वाले कर्म किया करते हैं वे उन्ही कष्टपूर्ण लोको को प्राप्त होते हैं।"

ज्ञान का महत्व सर्वोपरि है—

'गरुड-पुराण' मे भी सिद्धान्त रूप से यही कहा गया है कि जो मनुष्य ज्ञानी और सदाचारी होता है उसकी सदैव सद्गति होती है और वह मरने के उपरान्त स्वय ही उत्तम लोको मे जाता है। सासारिक माया, मोह और स्वार्थ मे फँसे हुए व्यक्तियो की दुर्दशा का वर्णन करने के साथ ही उसमे यह भी कहा गया है—

आहारो मैथुन निद्रा भय क्रोधस्तथैव च ।
सर्वेपामेव जन्तूना विवेको दुर्लभ पर ।।
भूताना प्राणिन श्रेष्ठा प्राणिना मति जीवन ।
बुद्धिमत्सु नरा श्रेष्ठा नरेपु ब्राह्मणा स्मृता ।।
ब्राह्मणपु च विद्वासो विद्वत्सु कृतबुद्धय. ।
कृतबुद्धिपु कर्तार कर्तृपु ब्रह्मवादिन ।।

अर्थात्— 'आहार करना, मैथुन, निद्रा, भय, क्रोध आदि प्रवृत्तियाँ तो सभी प्राणियो मे पाई जाती हैं, पर विवेक (ज्ञान) का होना बडा दुर्लभ है। भौतिक जगत मे प्राणी श्रेष्ठ माने गये हैं, प्राणियो मे बुद्धियुक्त श्रेष्ठ होते हैं, बुद्धियुक्तो मे मनुष्य को सबसे बडा कहा गया है, मनुष्यो मे ब्राह्मण उत्तम होता है। ब्राह्मणो मे भी विद्वान् प्रशसा के योग्य होना है। विद्वानो मे कृत-बुद्धि (व्यवहारिक बुद्धि वाला) और कृत बुद्धियो मैं भी तदनुसार आचरण करने वाला और उनमें भी ब्रह्मवादी श्रेष्ठ होते है।"

इस प्रकार के ज्ञानी और श्रेष्ठ पुरुषो की गति सदा उत्तम होती है यह पहले ही कह दिया गया है—

नाभेस्तु मूर्द्धपर्य्यन्तमूर्द्ध च्छिद्राणि चाष्ट वै ।
सन्ता: सुकृतिनो मर्त्या ऊर्ध्वच्छिद्रेण यान्ति ते ।
अधश्छिद्रेण ये यन्ति ते यान्ति विगतिं नरा: ।।

अर्थात्—"मानव देह में नाभि से ऊपर मस्तिष्क तक जो आठ छिद्र हैं, सन्त और पुण्यात्मा लोगों की आत्मा इन्हीं मार्गों से निकल कर ऊर्द्ध गति को प्राप्त करती है। पर जो लोग इसके विपरीत होते हैं उनके प्राण नाभि के नीचे के छिद्रों से निकला करते हैं और उनको निकृष्ट गति प्राप्त होती है।"

पर उपनिषदों तथा गीता आदि में जहाँ केवल ज्ञान-मार्ग की श्रेष्ठता का निरूपण करके मनुष्यों को कर्म करने के लिये स्वतन्त्र छोड़ दिया गया है वहाँ 'गरुड़-पुराण' में लौकिक व्यवहार का भी विस्तार के साथ वर्णन किया गया है और लोग उन कर्मों के करने में लापरवाही न करें, इसलिये उनको यमपुरी तथा नरकों के कष्टों का हर तरह से भय दिखाया गया है। इसका निश्चय कर सकना कि नरक और स्वर्ग इस संसार में ही हैं या इसके बाहर किसी अन्य स्थान में है बड़ा कठिन और सन्देहास्पद है। वेद और उपनिषदों आदि में मरणोपरान्त 'पितृयान' और देवयान' दो विभिन्न मार्गों की चर्चा की गई है और अध्यात्मवादियों ने भी मरने के बाद जीवात्मा के कुछ समय तक चन्द्रमा अथवा किसी सूक्ष्मलोक (ऐस्ट्रल वर्ल्ड) में रहने की सम्भावना को स्वीकार किया है। इसलिये हम गरुड़-पुराण' के नरकों के वर्णन को सर्वथा अग्राह्य नहीं कह सकते।

कर्मकाण्ड का अत्यधिक विस्तार—

जीवात्मा के पुनर्जन्म और कर्मानुसार विभिन्न योनियों को प्राप्त कर सुख-दुःख भोगने के सिद्धान्त को स्वीकार करने पर भी अनेक विद्वान् 'गरुड़-पुराण' में वर्णित पिण्डदान तथा मृतक सम्बन्धी अन्य कर्मकाण्डों के अति विस्तार को व्यक्ति तथा समाज के लिए उपयोगी नहीं मानते। उनके कथनानुसार जन-साधारण में इस प्रकार की कथाओं ने अनेक प्रकार के अन्ध-विश्वासों का रूप धारण कर लिया है और उनके कारण वे तरह-तरह के कष्ट उठाया करते हैं। उदाहरण के लिए वे कहते हैं कि यहाँ की अशिक्षित जनता

जो विभिन्न रोगों का कारण भूत-प्रेतों का प्रभाव मानती है उसके फलस्वरूप वे अपना उचित इलाज करने के बजाय टोना-टोटका और स्याने (ओझा) लोगों के चक्कर में फँस जाते हैं। इससे उनका पैसा व्यर्थ में बर्बाद होता है और वे शारीरिक कष्ट भी उठाते हैं। इस धारणा का मूल 'गरुड़-पुराण' में पाया जाता है। उसके दसवें अध्याय में 'प्रेत-पीड़ा' का वर्णन करते हुए कहा है—

'ये पराये धन, परायी पत्नी और अपने ही सम्बन्धियों को कष्ट देने वाले महा पापिष्ठ प्रेतगण नरकवास के पश्चात् बिना शरीर के भूख-प्यास से पीड़ित होकर सर्वत्र विचरण किया करते हैं। वे अपने ही सहोदर को मार देते हैं और इस प्रकार पितृगण के मार्ग का रोध करने वाले बन जाते हैं। वे पितरों के भाग को मार्ग के तस्करों की भाँति अपहरण कर लेते हैं। अपने घर में फिर आकर वे सूक्ष्म रूप में प्रवेश कर जाते हैं और वहीं स्थित होकर स्वजनों का रोग-शोक दिया करते हैं। वे ज्वर और इकतरा के रूप में लोगों को कष्ट देते हैं। वे जीवित अवस्था में अपने कुल के जिन लोगों से स्नेह करते हैं प्रेत बनने पर उन्हीं को पीड़ा देने लगते हैं। जिसको प्रेत-पीड़ा होती है वह नित्य-कर्म, मन्त्र जप, होम सब छोड़ देता है तीर्थों में जाकर भी परम आसक्त हो जाता है। प्रेत के प्रभाव से मनुष्य का ऐसा नाश होता है कि सुभिक्ष में भी कृषि का नाश हो जाता है और जितना भी सद्व्यवहार होता है वह सब विनष्ट हो जाता है। उसका दूसरों से कलह होने लगता है। अनेक बार मार्ग में गमन करते हुए ही पीड़ा उत्पन्न हो जाती है। प्रेत के प्रभाव से मनुष्य हीन कर्म करने लगता है और उसका सम्पर्क हीन श्रेणी के व्यक्तियों से ही होने लगता है।

प्रेत के प्रभाव से ऐसे बहुत से व्यसन लग जाते हैं जिनमें अपनी समस्त सम्पत्ति स्वाहा हो जाती है। चोर, अग्नि, राजा द्वारा हानि होती है। किसी महान् रोग की उत्पत्ति अपने शरीर में पीड़ा होना, अपनी स्त्री का सताया जाना—ये सभी बातें प्रेत पीड़ा के कारण होती हैं। स्त्रियों के गर्भ का विनाश हो जाता है उनका रजोदर्शन नहीं होता, बच्चे पैदा होकर मर जाते हैं—

ये सब उपद्रव प्रेत-पीडा के कारण होते हैं। जिसके यहाँ प्रेत पीडा देता है वहाँ रात-दिन कलह रहता है, अथवा पुत्र ही शत्रु के समान घात करने वाला हो जाता है। जिस घर में दाँता-किटकिट हो, भोजन के समय कोप का अंदेशा होता हो, सदा दूसरों के साथ द्रोह करने की बुद्धि रहे—तो ये सभी दुष्परिणाम प्रेत के द्वारा दी गई पीडा के समझने चाहिये। जिस पर प्रेत का असर होता है वह अपने माता-पिता के वचनों का पालन नहीं करता, अपनी स्त्री से प्रेम नहीं करता, वरन् पराई स्त्रियों पर कुदृष्टि किया करता है। दुष्ट मृत्यु के होने से भी प्रेत योनि मिलती है और मृत शरीर का दाह-संस्कार न होने से भी प्रेतत्व प्राप्त होता है। खाट पर ही जिसकी मृत्यु हो जाती है उसका प्रेत होना सुनिश्चित ही समझना चाहिये।"

इस अध्याय में प्रेत-पीडा के जो लक्षण बतलाये गये हैं अगर विचार-पूर्वक देखा जाय तो ये मनुष्य की दुष्ट बुद्धि और विकृत मस्तिष्क के परिणाम होते हैं। माता-पिता की आज्ञा न मानना आवारागर्दी का लक्षण है और पराई स्त्रियों से दुराचार की भावना व्यभिचारी मनोवृत्ति का स्वाभाविक परिणाम है। शास्त्रों में कहा गया है कि ईश्वर ने मनुष्य को विवेक बुद्धि देकर कर्म करने में स्वतन्त्र बनाया है। इस सिद्धान्त के अनुसार ही ज्ञानीजन मनुष्य के प्रत्येक सुख-दुःख का कारण उसके वर्तव्य-कर्मों को मानते हैं।

इस लिये जब हम 'गरुड पुराण' के प्रेत-सम्बन्धी विधि-विधानों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते हैं तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इनका कारण या तो अनार्य जातियों में प्रचलित अवैदिक प्रथाओं का परम्परागत चला आया प्रभाव है अथवा कर्मकाण्ड में अनुरक्त किन्हीं व्यक्तियों ने इनका अनावश्यक विस्तार कर दिया है। वैदिक अध्यात्मवाद के अनुसार आत्मा की अमरता और मृत्यु के पश्चात् उसका अन्य शरीर में जाना तो निश्चित ही है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानिगृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

(गीता २-२२)

"जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्याग कर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है।"

भारतीय अध्यात्मवादी मनीषियों को पुनर्जन्म के विषय में कभी किसी तरह का सन्देह नहीं रहा, उनके विचार तर्क और विज्ञान के अनुकूल थे। आज वैज्ञानिक भी पुनर्जन्म के सम्बन्ध में जाँच-पड़ताल कर रहे हैं और आत्मा के स्थायी संस्कारों को कुछ-कुछ मानने लगे हैं। 'गीताकार' ने इन शब्दों में इसकी बहुत स्पष्ट रूप से घोषणा कर दी है—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुवं जन्म मृतस्य च।

इसी सिद्धान्त को 'गरुड पुराण' ने अविकसित और अल्प बुद्धि वालों को समझाने के उद्देश्य से कथा का रूप दे दिया है और जीवात्मा की सद्गति के लिये कर्म-काण्ड के विधि-विधानों को अनिवार्य बतला दिया है। ऐसी पौराणिक कथाओं का भी अशिक्षित जनता को समझाने के लिये उपयोग स्वीकार किया जा सकता है। इस दृष्टि से 'गरुड पुराण' का अध्ययन करना और उसकी उपयोगी बातों को विवेक सम्मत रूप में जनता को समझाना लाभदायक हो सकता है।

× × ×

'गरुडपुराण' की एक विशेषता यह है कि इसके प्रथम खण्ड में जिन जीवनोपयोगी विद्याओं की जानकारी संग्रह की गई है, उनको ऐसे साररूप में दिया गया है कि पाठक थोड़े समय में ही अधिक लाभ उठा सकता है। इसमें विभिन्न देवताओं की उपासना तथा पूजा की जो विधियाँ दी गई हैं वे निष्पक्ष भाव से एकत्रित की गई हैं और पूजा-पाठ करने वाले मनुष्यों के लिये विशेष उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। इसी प्रकार औषधियों के विषय में भी जो कुछ लिखा गया है वह प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर और अनुभूत है। तीर्थ, व्रत, दैनिक धर्म कृत्य आदि का वर्णन ऐसे ढङ्ग से किया गया है जिसे सामान्य पाठक भी सहज में समझ सकता है। 'रामायण' 'महाभारत' 'हरिवंश' 'भागवद्गीता' 'यमगीता' आदि प्रसिद्ध धार्मिक रचनाओं का सारांश

भी दे दिया गया है। हीरा, मोती, पुखराज, नीलम आदि रत्नों का वर्णन और गुण-दोष बहुत विस्तार के साथ दिया गया है। ज्योतिष, सामुद्रिक, स्वरोदय, अष्टाङ्ग-योग की विधियों का उत्तम रीति से सग्रह किया गया है। इस प्रकार यह प्रथम खण्ड 'अग्निपुराण' के नमूने पर भारतीय विद्याओं का 'सार-सग्रह' या 'विश्वकोष' माना जा सकता है।

सर्व श्रेष्ठ योग-मार्ग—

विभिन्न देवताओं की नाना प्रकार से पूजा और उपासना के विधान बतला कर अन्त में यही बतलाया गया है कि मनुष्यों के कल्याण के लिए सबसे श्रेष्ठ साधन-विधि यही है सब प्रकार की उपासनाओं के साथ परमात्मा का ध्यान अवश्य कर लिया जाय। "वह परमात्मा ही सब पापों को नष्ट करने वाले, सबके रचयिता और सच्चे ईश्वर हैं। वे ही वासुदेव, जगन्नाथ और ब्रह्म रूप हैं जो सब देहधारियों की देह में सदैव रहते हैं पर उनके बधन में कभी नहीं पड़ते। आत्मा रूप से देह के भीतर रहने वाला यह ईश्वरांश इन्द्रियों की पहुँच से परे है। वह मन का सञ्चालन करता है पर मन के धर्मों से रहित है। वे ही ज्ञान-विज्ञान स्वरूप वाले और सबके साक्षी हैं। वह बुद्धि से भी विवर्जित हैं अर्थात् बुद्धि के जो भी लक्षण हैं उनसे परे हैं। वे ही प्राणियों के प्राण, महान् शान्त स्वरूप, भय से विवर्जित और अहङ्कार आदि से रहित हैं। वे सबके साक्षी, नियन्ता, परम आनन्द रूप वाले हैं। जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति—तीनों दशाओं में स्थित उनके साक्षी, पर उससे विवर्जित हैं। तुरीय (चतुर्थ स्थिति) परम धाता, दृश्य के रूप वाले गुणों से रहित, मुक्त, बोधयुक्त, जरा से रहित, व्यापक, सत्य और शिव आत्मा वे ही हैं। जो विज्ञ मानव इस प्रकार से परमब्रह्म का ध्यान किया करते हैं वे परम पद को और उनके रूप को प्राप्त किया करते हैं।"

ससार में जितने प्रकार के ज्ञान हैं उनमें आत्मज्ञान का दर्जा सर्वोच्च है। जो व्यक्ति अपनी आत्मा और उसकी अपार शक्तियों को नहीं जानता वह कभी मानवता के अन्तिम लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकता। न वह संसार में पाई जाने

वाली श्राधि-व्याधि और जीवन-मरण के चक्र से सर्वथा मुक्त हो सकता है। इसीलिये पुराणकार की सम्मति है—

"जो आत्म ज्ञान की इच्छा रखता है उसे देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहङ्कार से रहित, भूत, तन्मात्रा, गुण, जन्म आदि से पृथक स्वयं प्रकाश, निराकार, सदानन्द स्वरूप, अनादि, नित्य, शुद्ध-बुद्ध, सत्य, अद्वय, तुरीय, अक्षर ब्रह्म का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये कि 'वह ब्रह्म मैं ही हूँ।'"

× × ×

इस प्रकार 'गरुड पुराण' में संग्रहीत सामग्री और उसकी वर्णन शैली में उसकी एक निजी विशेषता है। उसने सामान्य जनता के एक विशेष वर्ग के उपयोग की दृष्टि से विविध प्रकार की जानकारियों और आवश्यक विषयों का संक्षिप्त रूप में संग्रह किया है। संभवत, प्राचीन समय प्रचलित बहुसंख्यक विभिन्न विषयक ग्रन्थों से भी सहायता ली गई है। तो भी सबको अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक विशेष रूप दिया गया है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

'गरुड-पुराण' का 'प्रेत खण्ड' ही जनता में अधिक प्रचलित है और सामान्य पाठक उतने को ही 'गरुड पुराण' समझते हैं। कितने ही प्रकाशकों ने उसी अंश को 'गरुड-पुराण' के नाम से छापा भी है। पर इसके प्रथम खण्ड में जो विविध विषयक उपयोगी सामग्री एकत्रित की गई है वह भी कम आकर्षक नहीं है। जैसा हम लिख चुके हैं इसका सबसे महत्वपूर्ण अंग 'प्रेतखण्ड' में दिये गये 'यमराजपुरी' के वर्णन और नरकों की भयङ्करता को समझ कर पाप कर्मों से बचे रहने का प्रयत्न करना ही है। जो पाठक इसको ऐसी भावना से पढ़ेंगे वे अवश्य इससे लाभान्वित होंगे।

—:o※:o—

गरुड़पुराण की विषय-सूची

[प्रथम खण्ड]

श्रीगरुड़ महापुराणम्

पूर्वार्द्धम्

१--नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषियों का प्रश्न

अजमजरमनन्तं ज्ञानरूपं महान्तं शिवममलमनादिं भूतदेहादिहीनम्।
सकलकरणहीनं सर्वभूतस्थितं तं हरिममलममायं सर्वगं वन्द एकम् ॥१

नमस्यामि हरिं रुद्रं ब्रह्माणञ्च गणाधिपम्।
देवीं सरस्वतीञ्चैव मनोवाक्कर्मभिः सदा ॥२
सूतं पौराणिकं शान्तं सर्वशास्त्रविशारदम्।
विष्णुभक्तं महात्मानं नैमिषारण्यमागतम् ॥३
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन उपविष्टं शुभासने।
ध्यायन्तं विष्णुमनघं तमभ्यर्च्यास्तुवन् कविम् ॥४
शौनकाद्या महाभागा नैमिषीयास्तपोधनाः।
मुनयो रविसङ्काशाः शान्ता यज्ञपरायणाः ॥५

प्रारम्भ में मङ्गलाचरण करते हुए देव वन्दना की जाती है। मैं मल और माया से रहित सर्वग गमन करने वाले भगवान् हरि की वन्दना करता हूँ जो अजन्मा-अजर और अनन्त हैं, जो ज्ञान के स्वरूप वाले-महान्-अमल-अनादि-भूत देहादि से हीन हैं। जो समस्त करणों से रहित और सम्पूर्ण भूतों में वर्त्तमान हैं ॥ १ ॥ मैं भगवान् हरि-रुद्र-ब्रह्मा-गणों के स्वामी (गणेश)

–देवी सरस्वती इन सब देवगणों को मन, वाणी और धर्म के द्वारा सदा नमन करता हूँ ॥ २ ॥ सम्पूर्ण शास्त्रों के महामनीषी परमशान्त स्वरूप वाले, पुराणों के विद्वान् एवं प्रवक्ता विष्णु के भक्त महान् आत्मा वाले और तीर्थों की यात्रा के प्रसङ्ग से नैमिषारण्य में आये हुए, शुभ आसन पर सुस्थित भगवान् विष्णु का ध्यान करने वाले और प्रवरहित सूत जी की अभ्यर्चना करके उन कवि का स्तवन किया था ॥ ३ ॥ ४ ॥ तपश्चर्या रूपी धन वाले, नैमिष नामक महारण्य के निवासी–महान् भाग्य से सम्पन्न–सूर्य के समान तेजस्वी–शान्त रूप और निरन्तर यज्ञादि में परायण रहने वाले शौनक आदि महर्षिगण थे ॥५॥

सूत जानासि सर्वं त्वं पृच्छामस्त्वामतो वयम् ।
देवतानां हि को देव ईश्वरः पूज्य एव च ॥६
को ध्येयः को जगत्स्रष्टा जगत्पाति च हन्ति कः ।
कस्मात् प्रवर्त्तते धर्मो दुष्टहन्ता च कः स्मृतः ॥७
तस्य देवस्य किं रूपं जगत्सर्गः कथं मतः ।
कैर्व्रतैः स तु तुष्टः स्यात् केन योगेन वाप्यते ॥८
अवताराश्च के तस्य कथं वंशादिसम्भवः ।
वर्णाश्रमादिधर्माणां कः पाता कः प्रवर्त्तकः ॥९
एतत्सर्वं तथाऽन्यच्च ब्रूहि सूत महामते ।
नारायणकथां सर्वां कथयास्माकमुत्तमाम् ॥१०

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! आप सभी कुछ जानते हैं । इसी कारण से हम लोग आप से पूछते हैं । आप हम लोगों को यह बतलाइये कि देवों का देव तथा इनका स्वामी एवं पूज्य कौन है ॥ ६ ॥ ऐसा कौन सा देव है जिसका ध्यान करना चाहिए ? इस जगत् का सृजन करने वाला, विश्व का पालक और अन्त में संहार करने वाला कौन है ? किसके द्वारा लोक में धर्म प्रवृत्त हुआ करता है और संसार में उत्पन्न होने वाले दुष्ट पुरुषों का हनन कौन किया करता है ? ॥ ७ ॥ उस देव का कैसा स्वरूप है ? इस जगत् का सर्ग किस प्रकार से माना गया है ? वह सर्वोपरि विराजमान देवेश्वर किन व्रतों के द्वारा

परम प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हुआ करता है और किस योग मे वह प्राप्त किया जाता है ? ॥८॥ उस सर्वेश्वर के कौन-से अवतार होते हैं और किस प्रकार से उनकी वंश आदि मे समुत्पत्ति हुआ करती है ? लोक में जो ये वर्ण ब्राह्मण क्षत्रियादि हैं तथा ब्रह्मचर्यादि चार आश्रम हैं इन सबका पालन करने वाला और प्रवर्त्तक कौन है ? ॥९॥ यह सब तथा इसके अतिरिक्त अन्य जो कुछ भी बताने के योग्य हो उस सबको हे सूतजी ! आप हमको बताइये क्योंकि आप तो महान् मति वाले हैं । भगवान् नारायण से सम्बन्धित सभी उत्तम कथायें आप हम को बताइये ॥१०॥

पुराणं गारुडं वक्ष्ये सारं विष्णुकथाश्रयम् ।
गरुडोक्तं कश्यपाय पुरा व्यासाच्छ्रुतं मया ॥११
एको नारायणो देवो देवानामीश्वरेश्वरः ।
परमात्मा परं ब्रह्म जन्माद्यस्य यतो भवेत् ॥१२
जगतो रक्षणार्थाय वासुदेवोऽजरोमरः ।
स कुमारादिरूपेण अवतारान् करोत्यजः ॥१३
हरिः स प्रथमं देवः कौमारं सर्गमास्थितः ।
चचार दुश्चरं ब्रह्मन् ब्रह्मचर्यमखण्डितम् ॥१४
द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतां महीम् ।
उद्धरिष्यन्नुपादत्ते यज्ञेशः शौकरं वपुः ॥१५
तृतीयमृषिसर्गं तु देवर्षित्वमुपेत्य सः ।
तन्त्रं सात्वतमाचष्टे नैष्कर्म्यं कर्मणा यतः ॥१६
नरनारायणो भूत्वा तुर्ये तेपे तपो हरिः ।
धर्मसंरक्षणार्थाय पूजितः स सुरासुरैः ॥१७

श्री सूतजी ने कहा—मैं अब आप लोगों के समक्ष में गारुड पुराण बताऊँगा जो कि परम सार स्वरूप है और विष्णु भगवान् की कथा के आश्रय वाला है । यह महापुराण पहिले गरुड ने कश्यप मुनि से कहा था और मैंने व्यास मुनि से इसका श्रवण किया था ॥११॥ समस्त देवों के और ईश्वरों के भी

ईश्वर भगवान् नारायण देव परमात्मा एक ही है। वही परब्रह्म हैं और इनसे ही इस सम्पूर्ण विश्व का जन्मादि होता है ॥१२॥ भगवान् वासुदेव वंश स्वयं अजर एवं अमर है किन्तु इस जगत् की रक्षा के लिये वह कुमार आदि के स्वरूप से प्रजन्मा होकर भी अवतार धारण किया करते हैं ॥१३॥ उस देव हरि ने सबसे प्रथम कौमार सर्ग को ग्रहण कर हे ब्रह्मन्! अति कठिन अखण्डित ब्रह्मचर्य का पालन किया था ॥१४॥ दूसरा स्वरूप अर्थात् अवतार इन भगवान् का रसातल को प्राप्त हुई भूमि का उद्धार करते हुए हुआ था जिसमें यज्ञ के स्वामी ने वाराह का शरीर धारण किया था ।१५। तृतीय ऋषि का सर्ग हुआ था जिसमें उनने देवर्षित्व की प्राप्ति की थी अर्थात् नारद का शरीर धारण किया था और कर्मों की निष्कर्मता का सात्वत तन्त्र प्रचलित किया था ॥१६॥ चौथे अवतार में हरि ने नर-नारायण का स्वरूप धारण कर तपश्चर्या की थी। धर्म के संरक्षण करने के लिये देव और असुरों ने उनकी अर्चना की थी ॥१७॥

पंचम कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम् ।
प्रोवाचासुरये सांख्यं तत्वग्रामविनिर्णयम् ।१८
षष्ठमत्रेरपत्यत्वं दत्तः प्राप्तोऽनसूयया ।
आन्वीक्षिकीमलर्कायप्रह्लादादिभ्य ऊचिवान् ॥१९
ततः सप्तम आकूत्यां रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत ।
सत्यामाद्यैः सुरगणैर्यष्ट्वा स्वायम्भुवान्तरे ॥२०
अष्टमे मेरुदेव्या तु नाभेर्जात उरुक्रमः ।
दर्शयन्वर्त्म नारीणां सर्वाश्रमनमस्कृतम् ॥२१
ऋषिभिर्याचितो भेजे नवमं पार्थिवं वपुः ।
दुग्धेमहौषधीर्विप्रास्तेन सञ्जीविताः प्रजाः ॥२२
रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषान्तरसंप्लवे ।
नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम् ॥२३
सुरासुराणामुदधिं मथ्नतां मन्दराचलम् ।
दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः ॥२४

धान्वन्तर द्वादशम त्रयोदशममेव च ।
आप्याययन् सुरानन्यान्मोहिन्या मोहयन्स्त्रिया ॥२५

पाँचवाँ अवतार सिद्धेश कपिल का हुआ था जिसने अधिक काल से विलुप्त हुए सांख्य शास्त्र की व्याख्या कर तत्त्वों का विशेष निर्णय बताया था। ॥१८॥ छटा अवतार अत्रिका सन्तति के स्वरूप में अनसूया के द्वारा प्राप्त हुआ जिसमें आन्वीक्षिकी विद्या को प्रह्लादादि के लिये बताया था ॥१६॥ सप्तम सर्ग रुचि से आकूति में यज्ञ स्वरूप हुआ था और स्वायम्भुव मन्वन्तर में सामान्य सुरगणों के साथ यजन किया था ॥२०॥ आठवें अवतार में नाभि से मेरु देवी में उरुक्रम हुए थे और सम्पूर्ण आश्रमों का सम्मानित नारियों का धर्म प्रदर्शित किया था ॥२१॥ ऋषियों के द्वारा याचना करने पर नवम पार्थिव शरीर धारण किया था। हे विप्रगण! इस अवतार में दुग्ध तथा महौषधियों के द्वारा प्रजाओं को सञ्जीवित किया था ॥२२॥ उसने चाक्षुषान्तर मण्डल में मत्स्य का रूप धारण किया था और महीमयी नौका में चढ़ाकर वैवस्वत मनु की रक्षा की थी ॥२३॥ उस व्यापक प्रभु ने समुद्र के मन्थन करने में प्रवृत्त होने वाले दैत्यों के मन्थन दण्ड की स्थिति में रहने वाले मन्दराचल को एकादशवें अवतार में कमठ के रूप में पीठ पर धारण किया था ॥२४॥ भगवान् धन्वन्तरि का बारहवाँ अवतार हुआ है। तेरहवें अवतार में परम सुन्दरी मोहिनी का स्वरूप धारण कर अपने रूप लावण्यातिरेक से सबको मोहित करते हुए देवों को सुधा का पान करा कर तृप्त किया था ॥२५॥

चतुर्दशे नारसिंह चैत्य दैत्येन्द्रमूर्जितम् ।
ददार करजैरूरावेरका कटकृद्यथा ॥२६
पञ्चदश वामनको भूत्वाऽगादध्वर बलेः ।
पादत्रय याचमान प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टपम् ॥२७
अवतारे षोडशमे पश्यन्ब्रह्मद्रुहो नृपान् ।
त्रि सप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम् ॥२८

तत सप्तदशे जात सत्यवत्यां पराशरात् ।
चक्रे वेदतरो शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधस ॥२९
नरदेवत्वमापन्न सुरकार्यचिकीर्षया
समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे कार्याण्यत परम् ॥३०
एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी ।
रामकृष्णाविति भुवा भगवानहरद्भरम् ॥३१
तत कलेस्तु सन्ध्यान्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम् ।
बुद्धो नाम्ना जिनसुत कीकटेषु भविष्यति ॥३२
अथ सोऽष्टमसन्ध्यायां नष्टप्रायेषु राजसु ।
भविता विष्णुयशसो नाम्ना कल्की जगत्पति ॥३३
अवतारा ह्यसंख्येया हरे सत्वनिधेर्द्विजा ।
मनुवेदविदो ह्याद्या सर्वे विष्णुकला स्मृता ॥३४
तस्मात्सर्गादयो जाता सपूज्याश्च व्रतादिना ।
अष्टौ श्लोकसहस्राणि तथा चाष्टौ शतानि च ॥३५

चौदहवाँ अवतार भगवान् नृसिंह का हुआ था जिसमें अत्यन्त बलवान् दैत्येन्द्र हिरण्यकश्यपु को एरकाकटवृत की भाँति अपने अत्युग्र नखो से ही विदीर्ण किया था ॥२६॥ पन्द्रहवाँ अवतार वामन देव का हुआ था जिसमें बहुत ही छोटा बामन अंगुल का बौना रूप धारण कर भगवान् राजा बली के यज्ञ में गये थे। वहाँ केवल तीन पंड भूमि की याचना करके तीन लोकों के त्रिविष्टप को ही नाप डाला था ॥२७॥ सोलहवे अवतार में परशुराम का स्वरूप धारण किया था। जब यह देखा था कि राजा लोग ब्रह्मद्रोही हो गये हैं तो क्रोधित होकर ऐसा सङ्कल्प किया था कि मैं भूमि को क्षत्रियो से रहित कर दूंगा और इक्कीस बार उसे क्षत्रिय विहीन कर दिया था ॥२८॥ फिर सत्रहवें अवतार में पराशर मुनि से सत्यवती नाम वाली धीवर कन्या में व्यास के स्वरूप में समुत्पन्न हुए थे और मनुष्यो को अल्प बुद्धि वाले देखकर वेदरूपी वृक्ष की विभिन्न शाखाओ की रचना करदी थी ॥२६॥ इसके पश्चात् देवों के

कार्यों के सम्पादन करने की इच्छा से नरदेवत्व को प्राप्त होकर समुद्र का निग्रह आदि कर्म किये थे ॥३०॥ उन्नीसवें और बीसवें अवतारों में वृष्णियों के वंश में जन्म ग्रहण करके बलराम और कृष्ण इन शुभ नामों वाले अवतार हुए थे और भगवान् ने इस वसुधा का भार हलका किया था ॥३१॥ इसके अनन्तर कलियुग के सन्ध्यान्त में सुरद्विषों के सम्मोह के लिये कीटकों में जिनका पुत्र 'बुद्ध' इस नाम वाला अवतार होगा ॥३२॥ इसके पश्चात् अष्टम सन्ध्या में जबकि सभी राज्य प्रायः नष्ट जैसे हो जायेंगे तब विष्णुयश के कल्कि नाम वाला इस जगत् के स्वामी का अवतार होगा ॥३३॥ हे द्विजगण ! सत्त्वनिधि भगवान् के तो बहुत से अवतार हैं। मनु वेदों के ज्ञाता आदि सभी विष्णु के ही कलावतार कहे गये हैं। इसीलिये ये सर्ग आदि हुए हैं कि इनकी व्रतादि के द्वारा भली-भाँति पूजा करनी चाहिए। पहिले व्यास मुनि ने आठ हजार आठ सौ पद्यों से पूर्ण यह गरुड-पुराण को मुझे सुनाया था ॥३४॥३५॥

२—गरुड़ पुराण की उत्पत्ति

कथं व्यासेन कथितं पुराणं गारुडं तव ।
एतत्सर्वं समाख्याहि परं विष्णुकथाश्रयम् ॥१
अहं हि मुनिभिः सार्द्धं गतो बदरिकाश्रमम् ।
तत्र दृष्टो मया व्यासो ध्यायमानः परमेश्वरम् ॥
तं प्रणम्योपविष्टोऽहं पृष्टवान्हि मुनीश्वरम् ॥२
व्यास ब्रूहि हरे रूपं जगत्सर्गादिकं ततः ।
मन्ये ध्यायसि तं यस्मात्तस्मात्जानासि तं विभुम् ॥३
एवं पृष्टो यथा प्राह तथा विप्रा निबोधत ॥४
शृणु सूत प्रवक्ष्यामि पुराणं गारुडं तव ।
सह नारददक्षाद्यैर्ब्रह्मा मामुक्तवान्यथा ॥५
दक्षनारदमुख्यैस्तु युक्तं त्वां यथमुक्तवान् ।
ब्रह्मा श्रीगारुडं पुण्यं पुराणं सारवाचकम् ॥६

अह हि नारदो दक्षो भृग्वाद्याः प्रणिपत्य तम् ।
सार ब्रूहीति पप्रच्छुर्ब्रह्माणं ब्रह्मलोकगम् ॥७
पुराण गारुड सार पुरा रुद्रश्च मा यथा ।
सुरैं सहाब्रवीद्विष्णुस्तथाऽहं व्यास वच्मि ते ॥८

ऋषियो ने कहा—महामुनि व्यास ने आपको यह गरुड महापुराण कैसे सुनाया था— भगवान् विष्णु के माथम्य युक्त इसे सबको हमें श्रवण कराइये । ॥१॥ सूतजी ने कहा—एक समय मैं मुनियो के साथ बदरिकाश्रम को गया था और वहाँ मैंने परमात्मा के ध्यान मे समास्थित व्यास मुनि का दर्शन किया था । उस वक्त मैं उनको प्रणाम करके उनके समीप मे बैठ गया था और फिर मैंने उस महामुनि से पूछा था—हे महा मुनीश्वर व्यास देव ! भगवान् हरि के स्वरूप और फिर उनके द्वारा इस जगत् के सर्गादिक का वर्णन कीजिये । मै यह समझता हूँ कि आप सर्वदा उनका ही ध्यान किया करते हैं अतएव व्यापक भगवान् के स्वरूप आदि को भली भाँति जानते होगे । हे विप्रगण ! इस प्रकार स जब मैंने उनसे पूछा था तो जिस प्रकार से उन्होने मुझसे कहा था उसी तरह मैं तुमको बताता हूँ उसे तुम लोग मुझ से समझ लो ॥२॥३॥ व्यासजी ने मुझसे कहा था—हे सूत मैं अब तुमको गरुड पुराण को सुनाता हूँ जो कि नारद दक्ष आदि तथा ब्रह्मा ने मुझे कहा था । सूतजी ने कहा मैंने व्यासजी से भी इसी तरह पूछा था कि दक्ष नारद आदि प्रमुख देवो ने तथा ब्रह्माजी ने यह परम सार वाचक गरुड पुराण अत्यन्त योग्य आपको क्यो सुनाया था ? व्यासजी ने इसके उत्तर मे मुझ से कहा था कि एकबार मैं,नारद, दक्ष तथा भृगु प्रभृति सबने ब्रह्मलोक मे जाकर ब्रह्माजी से पूछा था कि आप परम सार वस्तु हमको बताइये तब ब्रह्माजी ने कहा था—हे व्यास ! पहिले समय मे भगवान् विष्णु ने देवो के सहित रुद्र को और मुझ को जो यह सारभूत गरुड पुराण कहा था वही अब मैं तुमको बताता हूँ ॥४॥५॥६॥७॥८॥

कथ रुद्र सुरैं सार्द्धमब्रवीद्वा हरि पुरा ।
पुराण गारुड सार ब्रूहि ब्रह्मन् महार्थकम् ॥९

अहं गतोऽद्रिकैलासमिन्द्राद्यैर्देवतैः सह।
तत्र दृष्टो मया रुद्रो ध्यायमानः परं पदम् ॥१०
पृष्टो नमस्कृतः कं त्वं देव ध्यायसि शङ्कर।
त्वत्तो नान्यं परं देवं जानामि ब्रूहि मां तत ॥
सारात् सारतरं तत्त्वं श्रोतुकाम सुरैः सह ॥११
अहं ध्यायामि तं विष्णुं परमात्मानमीश्वरम्।
सर्वदं सर्वगं सर्वं सर्वप्राणिहृदि स्थितम् ॥१२
भस्मोद्धूलितदेहस्तु जटामण्डलमण्डितः।
विष्णोराराधनार्थं मे व्रतचर्या पितामह। १३
तमेव गत्वा पृच्छाम सारं यं चिन्तयाम्यहम्।
विष्णुं जिष्णुं पद्मनाभं हरिं देहविवर्जितम् ॥१४
शुचिं शुचिषदं हंसं तत्पदं परमेश्वरम्।
युक्त्वा सर्वात्मनात्मानं तं देवं चिन्तयाम्यहम् ॥१५

व्यास ने ब्रह्माजी से कहा था—हे ब्रह्मन्! पहिले हरि भगवान् ने इस महान् से भी महान् अर्थ वाले गरुड-पुराण को देवों के साथ रुद्र देव को क्यों बताया था। तब ब्रह्माजी ने व्यास से कहा—एक बार मैं समस्त देवों को साथ में लेकर कैलाश पर्वत पर गया था। वहाँ पर मैंने परम पद के ध्यान में स्थित भगवान् रुद्र देव का दर्शन किया था ॥६॥१०॥ हम लोगों ने उनको नमस्कार करके उनसे पूछा था—हे भगवन् शङ्कर! आप किस देव का ध्यान कर रहे हैं क्योंकि आपसे पर तो अन्य कोई भी देव नहीं है। हम इस बात को अच्छी तरह से समझते हैं। वह देव कौन है? आप ठीक प्रकार से मुझको बताइये। मैं इन सब देवों के साथ यहाँ सार से भी सार स्वरूप जो देव हो—उसे सुनना चाहता हूँ ॥११॥ मेरे इस प्रश्न का उत्तर रुद्र देव ने देते हुए कहा था मैं उस परमात्मा ईश्वर भगवान् विष्णु का ध्यान किया करता हूँ जो सभी कुछ प्रदान करने वाले—सर्वत्र गमन करने वाले—समस्त प्राणियों के हृदय में स्थित और सर्व स्वरूप हैं। हे पितामह! भस्म से सम्पूर्ण शरीर को उद्धूलित

करके शिर पर जटाजूट धारण करने वाले मेरी उसी भगवान् विष्णु के आराधना करने की व्रतचर्या है ।।१२।।१३।। जिसका मैं अहर्निश चिन्तन किया करता हूँ उन्हीं के समीप मैं चलो चल कर सार को पूछें। वे विष्णु हरि विष्णु पद्मनाभ और देह से रहित हैं। वे स्वयं शुचि हैं—उनका पद (स्थान) परम शुचि (पवित्र) है। वे ब्रह्म स्वरूप हैं—परम ईश्वर हैं। वे सर्वात्माओं से युक्त होकर विराजमान है उन्हीं परात्पर परम देव का मैं ध्यान किया करता हूँ ।।१४।।१५।।

यस्मिन्विश्वानि भूतानि तिष्ठन्ति च विशन्ति च ।
गुणभूतानि भूतेशे सूत्रे मणिगणा इव ।।१६
सहस्राक्षं सहस्राङ्घ्रि सहस्रोरु वराननम् ।
अणीयसमणीयांसं स्थविष्ठञ्च स्थवीयसाम् ।।
गरीयसां गरिष्ठञ्च श्रेष्ठञ्च श्रेयसामपि ।।१७
यं वाक्येष्वनुवाक्येषु निषत्सूपनिषत्सु च ।
गृणन्ति सत्यकर्माणं सत्यं सत्येषु सामसु ।।१८
पुराणपुरुषः प्रोक्तो ब्रह्मा प्रोक्तो द्विजातिषु ।
क्षये सङ्कर्षणः प्रोक्तस्तमुपास्यमुपास्महे ।।१९
यस्मिल्लोकाः स्फुरन्तीमे जलेषु शकुलो यथा ।
ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म यत्तत्सदसतः परम् ।।
अर्चयन्ति च यं देवा यक्षराक्षसपन्नगाः ।।२०
यस्याग्निरास्यं द्यौर्मूर्द्धा खं नाभिश्चरणौ क्षितिः ।
चन्द्रादित्यौ च नयने तं देवं चिन्तयाम्यहम् ।।२१
यस्य त्रिलोकी जठरे यस्य काष्ठाश्च बाहवः ।
यस्योच्छ्वासश्च पवनं तं देवं चिन्तयाम्यहम् ।।२२
यस्य केशेषु जीमूता नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु ।
कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तं देवं चिन्तयाम्यहम् ।।२३

समस्त भूतों के ईश उनमें सूत्र में मणियों की भाँति इस सम्पूर्ण विश्व में स्थित रहा करते हैं और गुणभूत होकर प्रवेश किया करते हैं ॥१६॥ वे भगवान् विष्णु सहस्र नेत्रों वाले हैं—सहस्रों चरणों से युक्त हैं—उनके सहस्रों ऊरु हैं—श्रेष्ठ मुख वाले—सूक्ष्मों में भी परम सूक्ष्म—स्थूलों से भी अति स्थूल—गुरुओं में सबसे अधिक गुरु और श्रेष्ठों में सर्वश्रेष्ठ हैं। जिनको वाक्यों—अनुवादों में, उपनिषदों में सत्य कर्म करने वाला ग्रहण किया जाता है और सत्य सामों में उनका सत्य स्वरूप बताया जाता है ॥१७॥१८॥ उन्हें ही पुराण पुरुष और द्विजातियों में ब्रह्मा कहा गया है और उनको ही इस सृष्टि के क्षय काल में सङ्कर्षण नाम से पुकारा गया है। उसी उपासना करने के योग्य भगवान् की हम उपासना किया करते हैं ॥१९॥ जिस में यह समस्त लोकों का समुदाय जल में शकुन की भाँति स्फुरित हुआ करता है। वह अक्षर—एकाक्षर ब्रह्म और सत् अथवा असत् से भी पर है। जिसकी अर्चना ये सभी यक्ष–राक्षस और पन्नग किया करते हैं ॥२०॥ अग्नि जिसका मुख है—दिव लोक जिसका मूर्द्धा है—आकाश नाभि—चरण क्षिति तल और चन्द्र एवं सूर्य जिस परमात्मा के दोनों नेत्र हैं मैं उसी देव का निरन्तर ध्यान एवं चिन्तन किया करता हूँ ॥२१॥ यह त्रैलोक्य अर्थात् तीनों लोक जिसके उदर में हैं—समस्त दिशाएँ जिसकी बाहु हैं—पवन जिसका उच्छ्वास है उसी परम देव का मैं चिन्तन किया करता हूँ। ॥२२॥ जिसके केशों में मेघ हैं और नदियाँ समस्त अङ्गों की सन्धियों में हैं तथा जिसकी कुक्षि में चारों समुद्र स्थित रहा करते हैं उसी देव का मैं ध्यान करता हूँ ॥२३॥

पर कालात्परो यज्ञात्पर सदसतश्च य ।
अनादिरादिर्विश्वस्य तं देव चिन्तयाम्यहम् ॥२४

मनसश्चन्द्रमा यस्य चक्षुषोश्च दिवाकर ।
मुखादग्निश्च सजज्ञे त देव चिन्तयाम्यहम् ॥२५

पद्भ्या यस्य क्षितिर्जाता श्रोत्राभ्यां च तथा दिशः ।
मूर्द्ध भागाद्दिव यस्य त देवं चिन्तयाम्यहम् ॥२६

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं यस्मात्तं देवं चिन्तयाम्यहम् ॥२७
य ध्यायाम्यहमेतस्माद् व्रजाम सारमीक्षितुम् ॥२८
इत्युक्तोऽहं पुरा रुद्रः श्वेतद्वीपनिवासिनम् ।
स्तुत्वा प्रणम्य तं विष्णुं श्रोतुकामा किल स्थिरा ॥२९
अस्माकं मध्यतो रुद्र उवाच परमेश्वरम् ।
सारात्सारतरं विष्णुं पृष्टवांस्तं प्रणम्य वै ॥३०
यथा पृच्छसि मां व्यासस्तथासौ भगवान्भव ।
पप्रच्छ विष्णुं देवाद्यं शृण्वतो मम वै सह ॥३१

जो परमेश काल से भी पर हैं—यज्ञ में और सत् तथा असत् से भी पर है—जिसका कोई आदि काम नहीं है ऐसे इस विश्व के आदि स्वरूप उस देवेश्वर का मैं चिन्तन करता हूँ ॥२४॥ जिसके मन से चन्द्रमा—नेत्रों से दिवाकर (सूर्य)—मुख से अग्नि—की उत्पत्ति होती है उस देव की मैं आराधना करता हूँ ॥२५॥ जिसके चरणों से भूमि समुत्पन्न हुई है तथा श्रोत्रों से सम्पूर्ण दिशाओं की उत्पत्ति हुई है और जिसके मूर्द्धा के भाग से दिवलोक पैदा हुआ है मैं उसी देव का ध्यान करता हूँ ॥२६॥ सर्ग—प्रतिसर्ग—वंश—मन्वन्तर और वंशानुचरित जिससे ये सभी हुए हैं मैं उस देव का चिन्तन किया करता हूँ। ॥२७॥ मैं जिसका ध्यान करता हूँ उसी से इसका सार जानने को हम सब चलते हैं ॥२८॥ इस प्रकार से कहे जाने पर मैं और रुद्र श्वेत द्वीप में निवास करने वाले भगवान् विष्णु के पास आकर सबने उन्हें प्रणाम किया और श्रवण करने की इच्छा वाले वहाँ स्थिर होकर बैठ गये थे ॥२९॥ हम सबमें से रुद्रदेव परमेश्वर से बोले और सार से भी जो सार है उस विष्णु से उन्होंने पूछा था और उनको प्रणाम किया था ॥३०॥ ब्रह्मा ने कहा—जैसे व्यास मुझसे पूछते हैं वैसे ही भगवान् भव ने विष्णु से पूछा था। वहाँ उस समय समस्त देवों के सहित मैं भी श्रवण कर रहा था ॥३१॥

हरे कथय देवेश देवदेव क ईश्वर ।
को ध्येय कश्च वै पूज्यः कैर्व्रतैस्तुष्यते पर ।।३२
कैर्धर्मै- कैश्च नियमैः कया वा धर्मपूजया ।
केनाचारेण तुष्ट स्यात्किं तद्रूपञ्च तस्य वै ।।३३
कस्माद्देवाज्जगज्जात जगत्पालयते च क ।
कीदृशैरवतारैश्च कस्मिन्याति लय जगत् ।।३४
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वशो मन्वन्तराणि च ।
कस्माद्देवात्प्रवर्त्तन्ते कस्मिन्नेतत्प्रतिष्ठितम् ।।
एतत्सर्वं हरे ब्रूहि यच्चान्यदपि किञ्चन ।।३५
परमेश्वरमाहात्म्य युक्तयोगादिक तथा ।
तथाऽष्टादशविद्याश्च हरी रुद्र ततोऽब्रव त् ।।३६
शृणु रुद्र प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा च सुरै. सह ।
अह हि देवो देवाना सर्वलोकेश्वरेश्वर ।।३७

भगवान् रुद्र ने कहा—हे देवों के स्वामिन् ! हे हरे ! आप कृपा कर हमको यह बताइये कि देवों का भी देव ईश्वर कौन है ? कौन ध्यान करने योग्य है और किसकी पूजा करनी चाहिए ? वह परदेव जो भी कोई हो, किन व्रतों से तुष्ट हो जाता है ? ।।३२।। किन धर्मों के द्वारा तथा कौन-से नियमों की उपासना करने से अथवा किस धर्म की अर्चना में और किस प्रकार के कौन-से आचार से वह सन्तुष्ट एवं प्रसन्न होता है ? यह भी बताइये उनका स्वरूप क्या है ? ।।३३।। किस देव से यह जगत् समुत्पन्न हुआ है और इसका कौन पालन किया करता है ? वे किस प्रकार के अवतार हुआ करते हैं ? अन्त में यह जगत् किस में विलीन हो जाया करता है ।।३४।। सर्ग–प्रतिसर्ग–वंश–मन्वन्तर और वंशानुचरित किस देवसे प्रवृत्त हुआ करते हैं और किस में जाकर प्रतिष्ठित हुआ करते हैं ? हे हरे ! यह सब बताइये । इसके अतिरिक्त अन्य भी कुछ बताने के योग्य हो वह भी बता दीजिये ।। ३५।। इसके अनन्तर भगवान् हरि ने रुद्र देव को परमेश्वर का माहात्म्य–युक्त का योगादिक तथा अठारह विद्यायें बताई थी ।

॥३६॥ हरि ने कहा—हे रुद्र ! ब्रह्मा और समस्त देवों के सहित आप श्रवण करो, मैं सब तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देता हूँ। मैं ही सम्पूर्ण देवों का देव तथा समस्त लोकों के ईश्वरों का भी ईश्वर हूँ ॥३७॥

अहं ध्येयश्च पूज्यश्च स्तुत्योऽहं स्तुतिभिः सुरैः।
अहं हि पूजितो रुद्र ददामि परमां गतिम् ॥३८
नियमैश्च व्रतैस्तुष्ट आचारेण च मानवैः।
जगत्स्थितेरहं बीजं जगत्कर्त्ता त्वहं शिव ॥३६
दुर्निग्रहकर्त्ता हि धर्मगोप्ता त्वहं हर।
अवतारैश्च मत्स्याद्यैः पालयाम्यखिलं जगत् ॥४०
अहं मन्त्रादव मन्त्रार्थं पूजाध्यानपरो ह्यहम्।
स्वर्गादीनाञ्च कर्त्ताऽहं स्वर्गादीन्यहमेव च ॥४१
ज्ञाता श्रोता तथा मन्ता वक्ता वक्तव्यमेव च।
सर्वं सर्वात्मको देवो भुक्तिमुक्तिकरः परः ॥४२
ध्यानं पूजोपहारोऽहं मण्डलान्यहमेव च।
इतिहासान्यहं रुद्र सर्वदेवो ह्यहं शिव ॥४३
सर्वज्ञानान्यहं शम्भो ब्रह्मात्माहमहं शिव।
अहं ब्रह्मा गवल्लोकः सर्वदेवात्मको ह्यहम् ॥४४
अहं साक्षात्सदाचारो धर्मोऽहं पुरातनः ॥४५
यमोऽहं नियमो रुद्र व्रतानि विविधानि च।
अहं सूर्यस्तथा चन्द्रो मङ्गलादीन्यहं तथा ॥४६

मैं ही ध्यान करने के योग्य हूँ—पूजा करने के योग्य हूँ। हे रुद्र ! मैं ही पूजित होकर परम प्रसन्न होते हुए परम गति प्रदान किया करता हूँ ॥३८॥ मानवों के शुद्ध आचार व्रत और नियमों से मैं अधिक सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हुआ करता हूँ। इस जगत् की स्थिति का मैं ही बीज हूँ और हे शिव ! मैं ही इस जगत् की रचना करने वाला है ॥३६॥ हे हर ! दुष्जनों के निग्रह को करने वाला और धर्म की रक्षा करने वाला भी मैं हूँ। मत्स्य आदि अनेक अवतारों

के द्वारा मैं इस समस्त जगत् का पालन करता हूँ ॥४०॥ मैं ही स्वयं मन्त्र हूँ तथा मैं ही अर्थ भी हूँ और पूजा एवं ध्यान में तत्पर रहने वाला मैं ही हूँ। स्वर्ग आदि का करने वाला और स्वर्गादि भी मैं ही हूँ ॥४१॥ ज्ञाता अर्थात् ज्ञान रखने वाला—श्रवण करने वाला—मन्ता—वक्ता और वक्तव्य भी यह सब कुछ सर्वात्मक अर्थात् सबके स्वरूप वाला देव—भुक्ति तथा मुक्ति का करने वाला परम मैं ही हूँ ॥४२॥ ध्यान—पूजा का उपहार अर्थात् वे सभी पदार्थ जो अर्चा में समर्पित किये जाते हैं मैं हूँ। सपस्तमण्डल मैं हूँ—इतिहास भी मैं ही हूँ। हे रुद्र ! समस्त देवों का स्वरूप भी मेरा ही स्वरूप है—मैं ही शिव हूँ। ॥४३॥ हे शम्भो ! मैं ब्रह्मा की आत्मा हूँ—मैं ही ब्रह्म समस्त लोक और सब देवात्मक मैं ही हूँ ॥४४॥ साक्षात् सदाचार—धर्म और वैष्णव तथा वर्ण एवं सम्पूर्ण सदाचार उनके धर्म और पुरातन मैं ही हूँ अर्थात् यह सब भी मेरा ही स्वरूप है ॥४५॥ हे रुद्र ! यम-नियम-विविध भाँति के व्रत सूर्य-चन्द्र तथा मङ्गल आदि अन्य ग्रह ये सब मेरा ही स्वरूप है ॥४६॥

पुरा मा गरुड पक्षी तपसाऽऽराधयद् भुवि ।
तुष्ट ऊचे वरं ब्रूहि मत्तो वव्रे वरं स च ॥४७
मम माता च विनता नागैर्दासीकृता हरे ।
यथाहं देवताञ्जित्वा चामृतं ह्यानयामि तत् ॥४८
दास्याद्विमोक्षयिष्यामि यथाहं वाहनस्तव ।
महाबलो महावीर्यः सर्वज्ञो नागदारणः ॥
पुराणसंहिताकर्त्ता यथाऽहं स्यां तथा कुरु ॥४९
यथा त्वयोक्तं गरुड तथा सर्वं भविष्यति ।
नागदास्यान्मातरं त्वं विनतां मोक्षयिष्यसि । ५०
देवादीन्सकलाञ्जित्वा चामृतं ह्यानयिष्यति ।
महाबलो वाहनस्त्वं भविष्यसि विषार्दनः ॥५१
पुराणं मत्प्रसादाच्च मम माहात्म्यवाचकम् ।
यदुक्तं मत्स्वरूपञ्च तव चाविर्भविष्यति ॥५२

गारुड तव नाम्ना तल्लोके ख्याति गमिष्यति ।
यथाऽहं देवदेवाना श्री ख्याता विनतासुत ॥
तथा ख्याति पुराणेषु गारुड गरुडेष्यति ॥५३

पहिले गरुड पक्षी ने भूतल मे तपश्चर्या के द्वारा मेरी समाराधना की थी। मैं उसकी तपस्या से सन्तुष्ट होकर उससे बोला था कि तू अपना अभीष्ट वरदान माँगले। उसने मुझसे कहा था—हे हरे ! मेरी विनता को नागो ने दासी बना रखा है। ऐसा कृपया वर दीजिये कि मैं देवो को जीत कर अमृत को ले आऊँ और माता को दासीपन से छुटकारा दे सकूँ और मैं आपका वाहन बन जाऊँ—सर्वज्ञाता और नागो को विदीर्ण करने वाला तथा समस्त पुराण एव संहिताओ की रचना का विधायक हो जाऊँ ॥४८॥४९॥ तब विष्णु ने कहा था—हे गरुड ! जो कुछ तुमने मुझसे याचना करके कहा है वह सभी कुछ हो जायगा। तू अपनी माता विनता को नागो के दास्य भाव से भी अवश्य विमुक्त कर देगा ॥५०॥ तुम सब देवताओ पर विजय करके अमृत ले आओगे और महान् बलशाली विष का मर्दन करने वाला मेरा वाहन भी बन जाओगे ।५१॥ मेरी कृपा से मेरे माहात्म्य को बताने वाले पुराण की रचना के विषय मे जो तुमने चाहा है वह मेरा स्वरूप भी तुमको आविर्भूत हो जायगा। ॥५२॥ हे विनता के पुत्र ! जिस प्रकार से देवदेवो की श्री मैं विख्यात हूँ उसी भाँति यह पुराण तुम्हारे नाम से गारुड यह लोक मे ख्याति को प्राप्त होगा। पुराणो मे यह गारुड की ख्याति गरुड की तीव्र गति के समान ही प्रवृत्त हो जायगी ॥५३॥

यथाहं कीर्त्तनीयोऽथ तथा त्वं गरुडात्मना ।
मा ध्यात्वा पक्षिमुख्येद पुराण गद गारुडम् ॥५४
इत्युक्तो गरुडो रुद्र कश्यपायाह पृच्छते ।
कश्यपो गारुडं श्रुत्वा वृक्ष दग्धमजीवयत् ॥५५
स्वयश्चान्यमना भूत्वा विद्ययाऽन्यान्यजीवयत् ।
यक्षि ॐ उ स्वाहा जापी विद्येय गारुडी परा ॥
गरुडोक्त गारुड हि शृणु रुद्र महात्मकम् ॥५६

जिस प्रकार से मैं कीर्तन करने के योग्य हू वैसे ही तुम भी गरुडात्मा के द्वारा कीर्तन के योग्य हो। मेरा ध्यान करके पक्षि मुख्य का यह गारुड-पुराण कहो ॥५४॥ हे रुद्र ! इस रीति से कहे हुए गरुड ने पूछने वाले कश्यप से कहा था। कश्यप ने गारुड पुराण का श्रद्धा से श्रवण कर दग्ध हुए वृक्ष को सजीव कर दिया था ॥५५॥ और स्वयं अन्य मन वाला होकर विद्या से अन्यो को जीवित कर दिया था। 'यक्षि ॐ हू स्वाहा'—इसका जाप करने वाला हुआ। यह परा गारुडी विद्या है। हे रुद्र ! गरुड के द्वारा कहा गया गारुड माहात्म्य का आप श्रवण करो ॥५६॥

३—पुराण कीर्तन का उपक्रम

इति रुद्राब्जजो विष्णो शुश्राव ब्रह्मणो मुनि ।
व्यासो व्यासादहं वक्ष्येऽहं ते शौनक नैमिषे ॥१
मुनीनां शृण्वतां मध्ये सर्गाद्य देवपूजनम् ।
तीर्थं भुवनकोषञ्च मन्वन्तरमिहोच्यते ।।२
वर्णाश्रमादिधर्माश्च दानराज्यादिधर्मका. ।
व्यवहारो व्रत वशा वंद्यक मनिदाकम् ॥३
अङ्गानि प्रलयो धर्मकामार्थज्ञानमुत्तमम् ।
सप्रपञ्च निष्प्रपच कृत विष्णोर्निगद्यते ॥
पुराणे गारुडे सर्वं गरुडो भगवानथ ॥४
वासुदेवप्रसादेन सामर्थ्यातिशयैर्यु त ।
भूत्वा हरेर्वाहनञ्च सर्गादीनाञ्च कारणम् ॥
देवान् विजित्य गरुडो ह्यमृताहरणं तथा ॥५
चक्रे क्षुधाहत यस्य ब्रह्माण्डमुदरे हरे ।
य दृष्ट्वा स्मृतमात्रेण नागदीनाञ्च सक्षयम् ॥६
कश्यपो गारुडाद् वृक्ष दग्ध चाजीवयद्यत. ।
गरुड. स हरिस्तेन प्रोक्त श्रीकश्यपाय च ॥७

तत् श्रीमद्गारुडं पुण्यं सर्वदं पठितं तव ।
हरिरित्थं च रुद्राय शृणु शौनक तद्यथा ॥८

सूतजी ने कहा—हे शौनक ! यह व्यास मुनि ने रुद्र और ब्रह्मा से परम ब्रह्म भगवान् विष्णु ने कहा था। फिर व्यास मुनि से मैंने सुना था। उसे तुमसे कहता हूँ। नैमियारण्य में समस्त श्रवण करने वाले मुनियों के मध्य में यहाँ पर सर्ग का आद्य–देवपूजन–तीर्थ–भुवन कोष और मन्वन्तर कहा जा रहा है ॥१॥२॥ वर्णों का तथा आश्रमों आदि के धर्म, दान और राज्य प्रभृति के धर्म व्यवहार, व्रत, वश, निदान के सहित वैद्यक, अङ्ग, प्रलय तथा धर्म, काम और अर्थ का उत्तम ज्ञान विष्णु का किया हुआ है प्रपञ्च सहित एवं निष्प्रपञ्च सब कहा जाता है। यह सभी कुछ भगवान् गरुड ने अपने गारुड पुराण में कहा है ॥३॥४॥ भगवान् वासुदेव के प्रसाद से अतिशयित सामर्थ्य से युक्त होकर गरुड हरि भगवान् का वाहन हुआ और सर्गादि का कारण बना था। तथा समस्त देव आदि के ऊपर विजय प्राप्त कर गरुड ने अमृत का अपहरण किया था ॥५॥ जिस भगवान् हरि के उदर में क्षुधा से आहत ब्रह्माण्ड किया था, जिसको देखकर स्मरण मात्र से ही नाग आदि का क्षयप किया था ।६॥ कश्यप ने गारुड से ही वृक्ष को दाब कर दिया था। भगवान् हरि ने गरुड से कहा था और गरुड ने इस विद्या को कश्यप को बताया था ॥७॥ वह श्रीमद् गारुड पुराण पढने पर तुमको सब प्रदान करने वाला होगा। इस प्रकार से भगवान् हरि ने रुद्र देव से कहा था। हे शौनक ! अब आप लोग मुझसे यह सब उसी प्रकार से श्रवण करो ॥८॥

४—सृष्टिकथन, (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि की उत्पत्ति)

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव एतद् ब्रूहि जनार्दन ॥१
शृणु रुद्र प्रवक्ष्यामि सर्गादीन् पापनाशनान् ।
सर्गस्थितिप्रलयान्ता विष्णो क्रीडा पुरातनीम् ॥२

नरनारायणो देवो वासुदेवो निरञ्जन ।
परमात्मा परं ब्रह्म जगज्जनिलयादिकृत् ॥३
तदेतत् सर्वमेवैतद्व्यक्ताव्यक्तस्वरूपवत् ।
तथा पुरुषरूपेण कालरूपेण च स्थितम् ॥४
व्यक्तं विष्णुस्तथाऽव्यक्तं पुरुषः काल एव च ।
क्रीडतो बालकस्येव चेष्टास्तस्य निशामय ॥५
अनादिनिधनो धाता त्वनन्तः पुरुषोत्तमः ।
तस्माद्भवति चाव्यक्तं तस्मादात्मापि जायते ॥६
तस्माद् बुद्धिर्मनस्तस्मात्ततः खं पवनस्ततः ।
तस्मात्तेजस्ततस्त्वापस्ततो भूमिस्ततोऽसृजत् ॥७

श्री रुद्रदेव ने कहा—हे जनार्दन ! अब आप कृपा करके सर्ग–प्रतिसर्ग–वंश–मन्वन्तर और वंशानुचरित वर्णन कीजिये। अब भगवान् श्री हरि ने कहा—हे रुद्र ! तुम श्रवण करो, अब मैं पापों के नाश करने वाले सर्ग आदि का वर्णन करता हूँ जो कि भगवान् विष्णु की सर्ग-स्थिति और प्रलय के अन्त तक बहुत पुरातन क्रीडा होती है ॥१॥२॥ देव-नारायण, वासुदेव, निरञ्जन, परमात्मा परब्रह्म और इस जगत् के जन्म और निलय आदि के करने वाले हैं। वही यह सब व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप वाला है तथा वह ही पुरुष के रूप से और काल के स्वरूप में अब स्थित रहता है ॥४॥ विष्णु व्यक्त स्वरूप वाले हैं और उसी का अव्यक्त स्वरूप पुरुष तथा काल होता। एक बालक की भाँति क्रीडा करने वाले उस परम पुरुष की समस्त चेष्टाओं का श्रवण करो ॥५॥ धाता पुरुषोत्तम भगवान् आदि और अन्त से रहित एव अनन्त स्वरूप वाले हैं। उनसे अव्यक्त और उससे आत्मा भी उत्पन्न होता है ॥६॥ उस से बुद्धि मन होता है। फिर उससे आकाश, उससे पवन, फिर उससे तेज, उससे जल और उससे भूमि का सृजन किया था ॥७॥

अण्डो हिरण्मयो रुद्र तस्यान्तः स्वयमेव हि ।
शरीरग्रहणं पूर्वं सृष्ट्यर्थं कुरुते प्रभुः ॥८

ब्रह्मा चतुर्मुखो भूत्वा रजोमात्राधिक सदा ।
शरीरग्रहण कृत्वाऽसृजदेतच्चराचरम् ॥९
अण्डस्यान्तर्जगत् सव सदेवासुरमानुषम् ।
स्रष्टा सृजति चात्मान विष्णु पाल्य च पाति च ॥
उपसहरत चान्ते सहर्त्ता च स्वय हरि ॥१०
ब्रह्माभूत्वासृजद्विष्णुजगत् पाति हरि स्वयम् ।
रुद्ररूपी च कल्पान्त जगत् सहरत प्रभु ॥११
ब्रह्मानु सृष्टिकालेऽस्मिन् जलमध्यगता महीम् ।
दष्ट्रयोद्धरति ज्ञात्वा वाराहीमास्थितस्तनुम् ॥१२
देवादिसर्गान्वक्ष्येऽह सक्षेपाच्छृणु शङ्कर ।
प्रथमो महत सर्गो विरूपो ब्रह्मणस्तु स ॥१३
तन्मात्राणा द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि स स्मृत ।
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्गश्चेन्द्रियक स्मृत ॥१४
इत्येष प्राकृत सग सम्भूतो बुद्धिपूर्वक ।
मुख्यसर्गश्चतुथस्तु मुख्या वै स्थावरा, स्मृता ॥१५

हे रुद्र ! हिरण्य अण्ड और उसके मध्य म स्वय ही विराजमान रहते हैं। प्रभु पहिले ऋषि के लिये शरीर का ग्रहण किया करते हैं ॥८॥ चार मुखो वाला ब्रह्मा सदा रजोगुण की अधिक मात्रा वाला होकर शरीर ग्रहण करते हैं और फिर उन्होने इस सम्पूण चर एव अचर जगत् का सृजन किया था ॥९॥ स्रष्टा अण्ड के समस्त अन्तजगत् को जिसमे देव—असुर मनुष्य सभी हैं रचते हैं और विष्णु आत्मा का तथा पालन करने के योग्य का पालन एव रक्षण करते हैं। फिर अन्त म स्वय ही हरि ही सहर्त्ता होकर इस जगत् का उप सहरण किया करते हैं ॥१०॥ प्रभु ब्रह्मा का स्वरूप धारण करके सृजन करते हैं—हरि स्वय ही विष्णु के रूप म फिर इस जगत् का पालन करते हैं और कल्प के अन्त म वही प्रभु रुद्र के रूप वाले होकर सम्पूर्ण जगत् का सहार किया करते हैं ॥११॥ ब्रह्मा सृष्टि क समय में इस मही को जल के मध्य म

गई हुई जान कर वाराह के शरीर को धारण कर अपनी दाढ से इसका उद्धार किया है ।।१२।। हे शङ्कर ! अब हम देवादि के सर्ग से सक्षेप मे कहेगे । तुम इसको सुनो । सबसे प्रथम महत्तत्व का सर्ग है जो ब्रह्म का विरूप होता है । ।।१३।। दूसरा पञ्चतन्मात्राओ का सर्ग होता है जोकि भूत सर्ग इस नाम से कहा गया है । तीसरा ऐन्द्रियक सर्ग होता है और वैकारिक सर्ग कहा जाता है । इस प्रकार से बुद्धि पूर्वक यह प्राकृत सर्ग सम्भूत हुआ है । फिर चतुर्थ मुख्य सर्ग होता है और मुख्य स्थावर कहे गये है ।।१४।।१५।।

तिर्यक्स्रोतस्तु य प्रोक्तस्तिर्यग्योन्य स उच्यते ।
तदूर्ध्वस्रोतसा षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृत ।।१६
ततोऽर्वाक्स्रोतसा सर्ग सप्तम स तु मानुष ।
अष्टमोऽनुग्रह सर्ग सात्त्विकस्तामसस्तु स ।।१७
पचैते वैकृता सर्गा प्राकृतास्तु त्रय स्मृता. ।
प्राकृतो वैकृतश्चापि कौमारो नवम स्मृत ।।१८
स्थावरान्ता सुराद्यास्तु प्रजा रुद्र चतुर्विधा ।
ब्रह्मण कुर्वत सृष्टि जज्ञिरे मानसा सुता ।।१९
ततो देवासुरपितॄन् मानुषाश्च चतुष्टयम् ।
सिसृक्षुरम्भास्येतानि स्वमात्मानमपूजयत् ।।२०
मुक्तात्मनस्तु मात्रायामुद्रिक्ताभूत् प्रजापत ।
सिसृक्षोर्जघनात् पूर्वमसुरा जज्ञिरे तत ।।२१
उत्ससर्ज ततस्ता तु तमोमात्रात्मिका तनुम् ।
तमोमात्रा तनुस्त्यक्ता शङ्कराऽभूद्विभावरी ।।२२

तिर्यक स्रोत जो बताया गया है वह तिर्यग् योन्य सर्ग कहा जाता है । उससे ऊर्ध्व स्रोतो मे छटवाँ सर्ग नाम से पुकारा जाता है ।।१६।। उससे अर्वाक् स्रोतो मे सातवाँ मानुष सर्ग होता है। आठवाँ अनुग्रह सर्ग है । वह सात्त्विक और तामस होता है ।।१७।। इस तरह ये पांच वैकृत सर्ग होते हैं और तीन प्राकृत सर्ग कहे गये हैं । कौमार नवम सर्ग है जो प्राकृत और वैकृत दोनो

प्रकार का होता है ॥१८॥ हे रुद्र ! सुरो से आदि लेकर स्थावरो पर्यन्त चार प्रकार की प्रजा होती है। सृष्टि की रचना करने वाले ब्रह्मा के मानस पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥१९॥ इसके पश्चात् देव, असुर, पितृगण और मानुष इन चारों के सृजन की इच्छा रखने वाले ब्रह्मा ने इन जलो में अपनी आत्मा का अर्चन किया था ॥२०॥ मुक्तात्मा प्रजापति की मात्रा में उद्रिक्त हुई थी । सृजनेच्छुक के जाँघ से पहिले असुर उत्पन्न हुए थे ॥२१॥ फिर उस तमोमात्रात्मक शरीर का त्याग कर दिया था और तमोमात्रा त्यक्त वह तनुशङ्कुरा विभावरी (अँधेरी रात्रि) हो गई थी ॥२२॥

> सिसृक्षुरन्यदेहस्थ प्रीतिमाप तत सुरा ।
> सत्वोद्रिक्तास्तु मुखत सभूता ब्रह्मणो हर ॥२३
> सत्वप्राया तनुस्तेन सत्यक्ता साप्यभूद् दिनम् ।
> ततो हि बलिनो रात्रावसुरा देवता दिवा ॥२४
> सत्वमात्रान्तर गृह्य पितरश्च ततोऽभवन् ।
> सा चोत्सृष्टाऽभवत् सन्ध्या दिननक्तान्तरस्थिता ॥२५
> रजोमात्रान्तर गृह्य मनुष्यास्त्वभवस्तत ।
> सा त्यक्ता चाभवज्ज्योत्स्ना प्राक्सन्ध्या याभिधीयते ॥२६
> ज्योत्स्ना रात्र्यहनी सन्ध्या शरीराणि तु तस्य वै ।
> रजोमात्रान्तर गृह्य क्षुदभूत् कोप एव च ॥२७
> क्षुत्क्षामानसृजत् ब्रह्मा राक्षसान् रक्षणाच्च स ।
> यक्षाख्या यक्षणाज्जे या सर्पा वै वेशसर्पणात् ॥२८

हे हर ! जब अन्य देह में स्थित होकर सृष्टि के सृजन की इच्छा करने वाले हुए तो बहुत प्रीति को प्राप्त हुए और ब्रह्मा के मुख से सत्व गुण के उद्रेक वाले सुर समुत्पन्न हुए थे ॥२३॥ वह सत्वोद्रिक्त शरीर भी उसने त्यक्त कर दिया था जो कि दिन हो गया था। तभी से असुर लोग रात्रि में बल सम्पन्न हुए थे और देवगण दिन में बली हुए थे ॥२४॥ सत्वमात्रा के और अन्य के अन्तर से उत्पन्न से दिन तथा रात्रि के मध्य में स्थित रहने वाली

सन्ध्या समुत्पन्न हुई थी ॥२५॥ रजोमात्रात्मक का ग्रहण करके फिर उस शरीर से मनुष्य उत्पन्न हुए थे। वह शरीर भी परित्यक्त कर दिया तो ज्योत्स्ना हुई जो प्राक्सन्ध्या कही जाती है ॥२६॥ ये ज्योत्स्ना–रात्रि–दिन और सन्ध्या उसके शरीर ही हैं। रजो तन्मात्रा का ग्रहण करके क्षुधा और कोप हुए थे। ॥२७॥ उन ब्रह्मा ने क्षुधा से क्षाम और रक्षण से राक्षसों का सृजन किया था। यक्षण और वेद भपरण मे सर्प जानना चाहिए ॥२८॥

जाता कोपेन भूताद्या गन्धर्वा जज्ञिरे तत. ।
गायन्तो जज्ञिरे वाच गन्धर्वास्तेन तेऽनघ ॥२९

अवयो वक्षसश्चक्रे मुखतोऽजा स सृष्टवान् ।
सृष्ट्वानुदराद्गाश्च पार्श्वाभ्या च प्रजापति ॥३०

पद्भ्याश्चाश्वान् समातङ्गान् गर्दभोष्ट्रादिकास्तथा ।
ओषध्य फलमूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥३१

गौरज पुरुषो मेष अश्वाश्वतरगर्दभा ।
एतान् ग्राम्यान् पशून् प्राहुरारण्यांश्च निबोध मे ॥३२

श्वापद द्विखुर हस्तिवानरा पक्षिपञ्चमा ।
औदका पशव षष्ठा. सप्तमाश्च सरीसृपा ॥३३

पूर्वादिभ्यो मुखेभ्यस्तु ऋग्वेदाद्या प्रजज्ञिरे ।
आस्याद्वै ब्राह्मणा जाता बाहुभ्या क्षत्रिया. स्मृता ॥
ऊरुभ्या तु विश सृष्टा शूद्र पद्भ्यामजायत ॥३४

ब्राह्मो लोको ब्राह्मणाना शाक्र क्षत्रियजन्मनाम् ।
मारुतञ्च विशा स्थान गान्धर्वं शूद्रजन्मनाम् ॥३५

ब्रह्मचारिव्रतस्थाना ब्रह्मलोक प्रजायते ।
प्राजापत्य गृहस्थाना यथाविहितकारिणाम् ॥३६

स्थान सप्त ऋषीणा च तथैव वनवासिनाम् ।
यतीनामक्षय स्थानं यदृच्छागामिना सदा ॥३७

कोप से भूतादि की समुत्पत्ति हुई थी। फिर गन्धर्व उत्पन्न हुए थे। हे अनघ ! वे गायन करते हुए ही उत्पन्न हुए थे इसीलिये उनको गन्धर्व इस नाम से कहा गया है ॥२६॥ उन प्रजापति ने अवियों (भेड़ों) को अपने वक्षःस्थल से और मुख से बकरियों को उत्पन्न किया था। प्रजापति ने अपने उदर और पार्श्व भागों से गायों का सृजन किया था ॥३०॥ ब्रह्मा ने अपने पैरों से अश्व, हाथी, गर्दभ, उष्ट्र आदि को उत्पन्न किया था उनके रोमों से सम्पूर्ण औषधियाँ, फल और मूल उत्पन्न हुए थे ॥३१॥ गौ, अज, पुरुष, मेष, अश्व अश्वतर और गर्दभ इन सबको ग्राम्य पशु कहा जाता है। अब जो अरण्य में होने वाले पशु होते हैं उनको भी मुझसे समझ लो। श्वापद, दो खुरों वाले, हाथी, वानर और पाँचवें पक्षी, छठवें जल में रहने वाले पशु होते हैं तथा सातवें सरीसृप अर्थात् रेंग कर चलने वाले होते हैं ॥३२॥३३॥ पूर्व आदि ब्रह्मा के मुखों से ऋग्वेद आदि की समुत्पत्ति हुई थी। ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण और बाहुओं से क्षत्रिय समुत्पन्न हुए हैं। ऊरुओं से वैश्य तथा चरणों से शूद्र उत्पन्न हुए थे ॥३४॥ ब्राह्मणों का ब्रह्मलोक है, क्षत्रियों का शाक्रलोक, वैश्यों का स्थान मारुत लोक और शूद्रों का गान्धर्व स्थान है ॥३५॥ जो ब्रह्मचारियों के व्रत में स्थित हैं उनका ब्रह्मलोक होता है, गृहस्थों का प्राजापत्य है जो कि यथोक्त आश्रम के पालन करने वाले हैं ॥३६॥ सात ऋषियों का वनवासियों का, यतियों का और यदृच्छागामियों का स्थान सदा अक्षय होता है ॥३७॥

५—सृष्टिविवरण (१)

सृष्ट्वेहामुत्र सन्स्थान प्रजासर्गं तु मानसम् ।
अथासृजत् प्रजाकर्त्तॄन् मानसास्तनयान् प्रभुः ॥१
धर्मं रुद्रं मनुञ्चैव सनकं सनातनम् ।
भृगुं सनत्कुमारं च रुचिं श्रद्धां तथैव च ॥२
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
वसिष्ठं नारदञ्चैव पितॄन् बर्हिषदस्तथा ॥३

अग्निष्वात्ताश्च कव्यादानाज्यपाश्च सुकालिन' ।
उपहूतास्तथा दीप्यां स्त्रीश्च मूर्तिविर्वाजतान् ॥४
चतुरो मूर्त्तियुक्ताश्च दक्ष' चक्रेऽस्य दक्षिणात् ।
वामाङ्गुष्ठात्तस्य भार्य्यामसृजत् पद्मसम्भवः ॥५
तस्या तु जनयामास दक्षो दुहितर शुभा ।
ददौ ता ब्रह्मपुत्रेभ्यः सती रुद्राय दत्तवान् ॥
रुद्रपुत्रा वभूवुर्हि असख्याता महाबलाः ॥६
भृगवे च ददौ ख्याति रूपेणाप्रतिमा शुभाम् ।
भृगोर्धाताविधातारौ जनयामास स शुभा ॥७
श्रिय च जनयामास पत्नी नारायणस्य या ।
तस्या वै जनयामास बलोन्मादौ हरि स्वयम् ॥८

हरि ने कहा—यहाँ पर सन्थान रच कर फिर मानस प्रजा सर्ग किया था ॥१॥ धर्म, रुद्र, मनु, मनक, सनातन, भृगु, सनत्कुमार रुचि, श्रुद्ध, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, नारद, बर्हिषद पितृगण अग्नि ष्वात्त, कव्याद, आज्यप, सुकाली, उपहूत, दीप्य, तीन मूर्तियो से रहित और चार मूर्ति युक्तो का सृजन किया था । इसके अनन्तर दक्षिण से दक्ष को बनाया और वामाङ्गुष्ठ से उसकी भार्या का पद्म सम्भव व सृजन किया था ॥२।३।४।५॥ दक्ष ने अपनी उस पत्नी मे से परम शुभ दुहिताओ को जन्म दिया था । उन सब अपनी कन्याओ को दक्ष ने ब्राह्मण के पुत्रो को दे दिया था और सती को रुद्र के लिये दिया था । रुद्र के महान् बलशाली अगणित पुत्र हुए थे ॥६॥ दक्ष ने भृगु को ख्याति नामक कन्या दी थी जो रूप और लावण्य मे अद्वितीय और अत्यन्त शुभ थी । उस शुभा ने भृगु से धाता और विधाता को समुत्पन्न किया था ॥७॥ और श्री को जन्म ग्रहण कराया था जो भगवान् नारायण की पत्नी हुई थी । उस श्री मे हरि ने स्वय बल और उन्माद को उत्पन्न किया था ॥८॥

आयतिर्नियतिश्चैव मनोः कन्ये महात्मन ।
धाताविधात्रोस्ते भार्य्ये तयोर्जातौ सुतावुभौ ॥६

प्रायश्चैव मृकण्डुश्च मार्कण्डेयो मृकण्डुत. ॥
पत्नी मरीचे सम्भूति पौर्णमासमसूयत ।
विरज सर्वगश्चैव तस्य पुत्रौ महात्मन ॥१०
स्मृतेश्चाङ्गिरस पुत्रा प्रसूता कन्यकास्तथा ।
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा ॥११
अनसूया तथैवात्रेर्जज्ञे पुत्रानकल्मषान् ।
सोम दुर्वासस चैव दत्तात्रेय च योगिनम् ॥१२
प्रीत्या पुलस्त्यभार्य्याया दत्तोलिस्तत्सुतोऽभवत् ।
कर्म्मणश्चार्थवीरश्च सहिष्णुश्च सुतत्रयम् ॥
क्षमा सुषुवे भार्य्या पुलहस्य प्रजापते. ॥१३
क्रतोश्च सुमतिर्भार्य्या बालखिल्यानसूयत ।
षष्टि बालसहस्राणि ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम् ॥
अ गुष्ठपर्वमात्राणा ज्वलद्भास्करवर्चसाम् ॥१४
ऊर्ज्जाया तु वसिष्ठस्य सप्ताजायन्त वै सुता ।
रजागात्राध्र्ववाहुश्च शरणश्चानघस्तथा ॥
सुतपाः शुक्र इत्येते सर्वे सप्तर्षयो मता ॥१५

महत्न् आत्मा वाले मनु को आयति और नियति नाम वाली दो कन्यायें थी। वे दोनो धाता तथा विधाता की भार्यायें हुई थीं। उनमे दो सुत उत्पन्न हुए थे। उनके नाम प्राण और मृकण्डु थे। मृकण्डु से मार्कण्डेय उत्पन्न हुए ॥६॥ मरीचि नाम वाले ब्रह्मा के मानस पुत्र की पत्नी सम्भूति ने पौर्णमास को प्रसूत किया था। उस महात्मा के विरज और सर्वग नामधारी दो पुत्र हुए थे ॥१०॥ स्मृति म अङ्गिरा न पुत्र तथा कन्याऐ समुत्पन्न की थी, जिनके नाम सिनीवाली, कुहू, राका तथा अनुमति य थे ॥११॥ अनसूया ने अत्रि मुनि से कल्मष रहित पुत्रो को जन्म दिया था, जिनके नाम सोम, दुर्वासा, और महायोगी दत्तात्रेय थे ॥१२॥ पुलस्त्य की परम प्रिय भार्या प्रीति में दत्तोलि नाम वाला पुत्र समुत्पन्न हुआ था। उसके अर्थात् क्षमा के कर्म्मश,

अर्थवीर तथा सहिष्णु ये तीन आत्मज उत्पन्न हुए थे जो कि प्रजापति पुलह की भार्या थी ।।१३।। क्रतु की भार्या सुमति नाम धारिणी हुई थी उसने बाल खिल्य नाम वालों को जन्म दिया था जो कि ऊर्ध्व रेतस बाल खिल्य ऋषिगण सख्या मे साठ सहस्र हुए थे । वे भास्कर के समान जाज्वल्य मान वर्चस वाले थे और अंगुष्ठ के पर्व के तुल्य परिमाण वाले ही समुत्पन्न हुए थे ।।१४।। ऊर्जा मे वसिष्ठ मुनि के सात पुत्रो ने जन्म ग्रहण किया था । रज, गात्र, उर्ध्वबाहु, शरण, अनघ, सुतपा और शुक्र ये सब सप्तर्षि माने गये थे ।।१५।।

स्वाहा प्रादात् स दक्षोऽपि सशरीराय वह्नये ।
तस्मात् स्वाहा सुतान् लेभे त्रीनुदारौजसा हर ।।
पावक पवमान च शुचिश्चापि जलाशिन ।।१६
पितृभ्यश्च स्वधा जज्ञे मेना वैतरणी तथा ।
ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ मेनाऽगात्तु हिमाचलम् ।।१७
ततो ब्रह्माऽऽत्मसम्भूत पूर्व स्वायम्भुव प्रभु ।
आत्मानमेव कृतवान् प्रजापाल्ये मनु हर ।।१८
शतरूपा च ताँ नारी तपोनिहतकल्मषाम् ।
स्वायम्भुवो मनुर्देव पत्नीत्वे जगृहे तत ।।१९
तस्माच्च पुरुषाद्देवी शतरूपा व्यजायत ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रसूत्याकूतिसञ्ज्ञिते ।।२०
देवहूतिं मनुस्तासु आकूतिं रुचये ददौ ।
प्रसूतिञ्चैव दक्षाय देवहूतिञ्च कर्दमे ।।२१
रुचेर्यज्ञो दक्षिणाऽभूद्दक्षिणाया च यज्ञत ।
अभवन् द्वादश सुता यमो नाम महाबल ।।२२
चतुर्विंशति कन्याश्च सृष्टवान् दक्ष उत्तम ।
श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा ।।२३
बुद्धिर्लज्जा वपु शान्तिर्ऋद्धि कीर्तिस्त्रयोदशी ।
पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणः प्रभु ।।२४

उस दक्ष प्रजापति ने अपनी कन्या स्वाहा को शरीरधारी अग्निदेव का प्रदान किया था। हे हर! उस अग्निदेव से स्वाहा ने परम उदार ओज वाले तीन पुत्रों की प्राप्ति की थी जिनके नाम पावक, पवमान और शुचि थे जो जलाशी थे ॥१६॥ स्वधा नाम वाली दक्ष की कन्या ने पितृगण से मेना तथा वैतरणी को उत्पन्न किया था। वे दोनों ही ब्रह्म वादिनी थीं। मेना तो हिमवान् की पत्नी हुई थी ॥१७॥ इसके अनन्तर हे हर! प्रभु ब्रह्मा ने आत्मा से सम्भूत स्वायम्भुव को सबसे पूर्व प्रजा के पालन में आत्मा को ही मनु किया था। ॥१८॥ फिर स्वायम्भुव मनु देव ने तपश्चर्या से समस्त कल्मषों को ध्वस्त करने वाली शतरूपा नाम धारिणी नारी को अपनी पत्नी के स्वरूप में स्वीकार किया था ॥१९॥ शतरूपा देवी ने उस स्वायम्भुव महा पुरुष से प्रियव्रत और उत्तानपाद नाम वाले दो पुत्र तथा प्रसूति एवं आकूति संज्ञावाली दो कन्याऐं प्राप्त की थीं ॥२०॥ तीसरी एक देवहूति नाम वाली कन्या भी उत्पन्न की थी उन तीनों पुत्रियों में मनु ने आकूति का तो रुचि के लिये प्रदान किया था— प्रसूति को प्रजापति दक्ष के लिये दिया था और देवहूति नाम धारिणी कन्या को कर्दम मुनि को प्रदान किया था ॥२१॥ रुचि से यज्ञ उत्पन्न हुआ। यज्ञ से दक्षिणा में बारह पुत्र समुत्पन्न हुए जिनमें यम नाम वाला महान् बलवान् था। ॥२२॥ दक्ष ने चौबीस कन्याओं को जन्म ग्रहण कराया था। जिनके शुभ नाम श्रद्धा लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया बुद्धि लज्जा, वपु शान्ति, ऋद्धि, कीर्त्ति इन तेरहों का दाक्षायण प्रभु धर्म ने अपनी पत्नियाँ बनाने के लिये ग्रहण किया था ॥२४॥

ख्याति सत्यथ सम्भूति स्मृति प्रीति क्षमा तथा।
सन्ततिश्चानसूया च ऊर्ज्जा स्वाहा स्वधा तथा ॥२५
भृगुभवो मरीचिश्च तथा चैवाङ्गिरा मुनि।
पुलस्त्य पुलहश्चैव क्रतुश्चापिवरस्तथा ॥२६
अत्रिर्वसिष्ठो वह्निश्च पितरश्च यथाक्रमम्।
ख्यात्याद्या जगृहु कन्या मुनया मुनिसत्तमा ॥२७

श्रद्धा काम चला दर्प नियम धृतिरात्मजम् ।
सन्तोष च तथा तुष्टिर्लोभ पुष्टिरसूयत ॥२८
मेधा श्रुत क्रिया दण्ड लय विनयमेव च ।
बोध बुद्धिस्तथा लज्जा विनय वपुरात्मजम् ॥२९
व्यवसाय प्रजज्ञे वै क्षेम शान्तिसूयत ।
सुखमृद्धिर्यश कीर्तिरित्येते धर्मसूनव ॥
कामस्य च रतिर्भार्य्या तत्पुत्रो हर्ष उच्यते ॥३०
ईजे कदाचिद् यज्ञेन हयमेधेन दक्षक ।
तस्य जामातर सर्वे यज्ञ जग्मुर्निमन्त्रिता ॥३१
भार्य्याभि सहिता सर्वे रुद्र देवी सती विना ।
अनाहूता सती प्राप्ता दक्षेणैवावमानिता ॥३२
त्यक्त्वा देह पुनर्जाता मेनायान्तु हिमालयात् ।
शम्भोर्भार्य्याऽभवद् गौरी तस्या जज्ञे विनायक ॥३३
कुमारश्चैव भृङ्गीश क्रुद्धो रुद्र प्रतापवान् ।
विध्वस्य यज्ञ दक्ष तु शशाप पिनाकधृक् ॥
ध्रुवस्यान्वयसम्भूता मनुष्यस्त्व भविष्यसि ॥३४

ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा स्वाहा, स्वधा इनको क्रम से भृगु, भव, मरीचि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ, वह्नि और पितरो ने ग्रहण किया था। मुनियो मे परम श्रेष्ठ मुनियो ने ख्याति आदि कन्याओ को पाणिग्रहण किया था ॥२५॥२६॥२७॥ श्रद्धा ने काम को, चला ने दर्प को, धृति ने नियम आत्मा को, तुष्टि ने सन्तोष और पुष्टि ने लोभ पुत्र को प्रसूत किया था ॥२८॥ मेधा ने श्रुत, क्रिया ने दण्ड लय और विनय, बुद्धि ने बोध तथा लज्जा ने विनय वपु आत्मज को उत्पन्न किया था। व्यवसाय को उत्पन्न किया तथा शान्ति ने क्षेम को जन्म दिया था। ऋद्धि ने सुख को, कीर्ति ने यश को प्रसूत किया, इस तरह से ये सब धर्म के पुत्र हुए थे ॥२९॥३०॥ काम की भार्या रति हुई थी और उसका पुत्र हर्ष

उत्पन्न हुआ था ॥३०॥ प्रजापति दक्ष ने किसी समय हयमेघ यज्ञ का यजन किया था। उस समय उनके जमाई सभी निमन्त्रित होकर उस शुभ उत्सव मे गये थे ॥३१॥ सभी के साथ उनकी पत्नियाँ भी वहाँ पहुँची थी किन्तु केवल रुद्र देव और सती नही थी। बिना बुलाई हुई सती वहाँ बाद म अपने आप ही पहुँची तो उसके पिता दक्ष के द्वारा ही उसे अपमानित किया गया था ॥३२॥ उसी समय म सती ने देह का त्याग कर दिया था और फिर वह हिमालय से मेना मे उत्पन्न हुई थी। वही सती पार्वती गौरी भगवान् शम्भु की भार्या हुई और उससे विनायक गणेश समुत्पन्न हुए थे। गौरी के स्वामी कार्तिकेय कुमार की भी उत्पत्ति हुई थी। भृङ्गीश क्रुद्ध हुए और प्रतापी रुद्र ने यज्ञ का विध्वंस करके पिनाक धारी ने दक्ष को शाप दे दिया था कि ध्रुव के अन्वय मे उत्पन्न होने वाला तू मनुष्य होगा ॥३३॥

६-- सृष्टिनिवारण (२)

उत्तानपादादभवत् सुरुच्यामुत्तम सुत ।
सुनीत्यां तु ध्रुव पुत्र. लेभे स्थानमुत्तमम् ॥१
मुनिप्रासादादाराध्य देवदेव जनार्दनम् ।
ध्रुवस्य तनय श्लिष्टिमहाबलपराक्रम ॥२
तस्य प्राचीनबर्हिस्तु पुत्रस्तस्याप्युदारधी ।
दिवञ्जयस्तस्य सुतस्तस्य पुत्रो रिपु स्मृत ॥३
रिपो पुत्रस्तत श्रीमाश्चाक्षुप कीर्त्तितो मनु ।
रुरुस्तस्य सुत श्रीमानङ्गस्तस्य तथात्मज ॥४
अङ्गस्य वेण पुत्रस्तु नास्तिको धर्मवर्जित ।
अधर्मकारी वेणश्च मुनिभिश्च कुशैर्हत ॥५
ऊरु ममन्थु पुत्राय ततोऽस्य तनयोऽभवत् ।
ह्रस्वोऽतिमात्र कृष्णाङ्गो निषीदेति ततोऽभुवद् ॥
निषादस्तेन वै जातो विन्ध्यशैलनिवासक ॥६

ततोऽस्य दक्षिणं पाणिं ममन्थुः सहसा द्विजा ।
तस्मात्तस्य सुतो जातो विष्णोर्मानसरूपधृक् ॥७

हरि ने कहा—राजा उत्तान पाद से सुरुचि नाम वाली भार्या में उत्तम नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ था । दूसरी रानी सुनीति नाम वाली से ध्रुव पुत्र पैदा हुआ था जिसने उत्तम स्थान प्राप्त किया था ॥१॥ ध्रुव ने नारद मुनि के प्रसाद से देवों के देव भगवान् जनार्दन की आराधना करके उत्तम पद प्राप्त किया था । ध्रुव का पुत्र श्लिष्टि नाम वाला परम भक्त हुआ था । जो महान् बल और पराक्रम वाला था ॥२॥ उसका पुत्र प्राचीन बर्हि हुआ और उसका आत्मज अत्यन्त उदार बुद्धि वाला दिवञ्जय नाम वाला हुआ था इस दिवञ्जय का पुत्र रिपु हुआ और इसका सुत चाक्षुष मनु इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था । इस चाक्षुष का आत्मज रुरुका तनय श्रीमान् अङ्ग हुआ ॥३॥४॥ अङ्ग का वेण हुआ जो बड़ा नास्तिक और धर्म से रहित था । इस अधर्म के आचरण करने वाले वेण का हनन मुनियों ने कुशाओं के द्वारा कर दिया था ॥५॥ फिर मुनियों ने इसके ऊरुओं का मन्थन किया था । उस मन्थन से इसका पुत्र हुआ था जो अत्यन्त छोटा कृष्ण अङ्ग वाला था । उनके 'निषीद' अर्थात् बैठ जाओ और ऐसा बोले थे । इसलिये वह निषाद हो गया जो कि विन्ध्य पर्वत का निवास करने वाला था ॥६॥ इसके पश्चात् ब्राह्मणों ने उस वेण का दक्षिण हाथ सहसा मन्थन किया था । उससे एक सुत उत्पन्न हुआ था जो भगवान् विष्णु के मानस स्वरूप का धारण करने वाला था ॥७॥

पृथुरित्येव नाम्ना स वेण पुत्राद्दिव ययौ ।
दुदोह पृथिवीं राजा प्रजानां जीवनाय हि ॥८
अन्तर्धानं पृथो पुत्रो हविर्धानस्तदात्मजः ।
प्राचीन बर्हिस्तत्पुत्रः पृथिव्यामेकराड् बभौ ॥९
उपयेमे समुद्रस्य लवणस्य स वै सुताम् ।
तस्मात् सुषाव सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः ॥१०

सर्वे प्राचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगा :
अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तप ॥११
दशवर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशया ।
प्रजापतित्व सप्राप्ता भार्य्या तेषा च मारिषा ॥१२
अभवद् भवशापेन तस्या दक्षोऽभवत्तत ।
असृजन्मनसा दक्ष प्रजा पूर्वचतुर्विधा ॥१३
नावर्द्धन्त च तास्तस्य अपध्याता हरेण तु ।
मैथुनेन तत सृष्टि कर्त्तुमैच्छत् प्रजापति ॥१४
असिक्नीमावहद्भार्या वीरणस्य प्रजापते ।
तस्य पुत्रसहस्र तु वैरण्या समपद्यत ॥१५

इसका नाम पृथु था और इस पुत्र के प्रभाव से वह वेण स्वर्ग लोक को चला गया था। इस राजा पृथु ने प्रजाओं के जीवन के लिये पृथिवी का दोहन किया था ॥८॥ पृथु का पुत्र अन्तर्धान हुआ और इनका आत्मज हविर्धान हुआ था। इसका तनय प्राचीन बर्हि था जो इस भू मण्डल में एक ही राजा प्रदीप्त हुआ था ॥९॥ इस राजा ने लवण सागर की पुत्री के साथ विवाह किया था। उससे दस समुद्री प्राचीन वर्हिष समुत्पन्न हुए थे ॥१०॥ ये सब प्राचीनम नाम वाले थे और सभी धनुर्विद्या के बडे पारगामी विद्वान् हुए थे। ये अपृथक् धर्म के आचरण करने वाले थे। इनने महान् तप को किया था ॥११॥ दस हजार वर्ष पर्यन्त ये समुद्र के ही जल म शयन करने वाले हुए थे। इन्होने प्रजापति के पद को प्राप्त किया था। इनको भार्या मारिषा हुई थी ॥१२॥ भव क शाप उसमें दक्ष समुत्पन्न हुआ था। उस दक्ष ने मन से ही पहिले चार प्रकार की प्रजा का सृजन किया था ॥१३॥ वे प्रजा उसकी वृद्धिशीलता को प्राप्त नहीं हुई और भगवान् हर के द्वारा अपध्यान हो गई थी। इसके अनन्तर उसने मैथुन के द्वारा सृष्टि करने की इच्छा की थी ॥१४॥ फिर उस प्रजापति ने प्रजापति वीरण की भार्या असिक्नी के साथ विवाह किया था और उस वैरिणी मे एक सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥१५॥

नारदोक्ता भुवश्चान्तं गता ज्ञातुञ्च नागताः ।
दक्षः पुत्रसहस्रञ्च तेषु नष्टेषु सृष्टवान् ॥१६
शवलाश्वास्तेऽपि गता भ्रातृणां पदवीं हर ।
दक्षः क्रुद्ध शशापाथ नारद जन्म चाप्स्यसि ॥१७
नारदो ह्यभवत् पुत्र कश्यपस्य मुने पुन ।
यज्ञे ध्वस्तेऽथ दक्षोऽपि शशापोग्रं महेश्वरम् ॥१८
यष्ट्वा त्वामुपचारैश्च अपसव्यन्ति हि द्विजाः ।
जन्मान्तरेऽपि वैराणि न विनश्यन्ति शङ्कर ॥१९
असिक्न्या जनयामास दक्षो दुहितर ह्यथ ।
षष्टि कन्या रूपयुता द्वे चैवाङ्गिरसे ददौ ॥२०
द्वे प्रादात् स कृशाश्वाय दश धर्माय चाप्यथ ।
त्रयोदश कश्यपाय सप्तविंश तथेन्दवे ॥२१
प्रददौ बहुपुत्राय सुप्रभा भामिनी तथा ।
मनोरमा भानुमती विशाला बहुदामथ ॥२२
दक्ष. प्रादान्महादेव चतस्रोऽरिष्टनेमिने ।
स कृशाश्वाय च प्रादात् सुप्रजाञ्च तथा जयाम् ॥२३

ये सब नारद के द्वारा कहे हुए भूमण्डल के अन्त तक गये थे कि इसका ज्ञान प्राप्त करें किन्तु फिर वापिस नहीं हुए थे। उन सबके नष्ट हो जाने पर प्रजापति दक्ष ने पुन एक सहस्र पुत्रों का सृजन किया था ॥१६॥ हे हर ! ये शवलाश्व भी अपने भाइयों की ही पदवी को प्राप्त हो गये थे। फिर दक्ष ने अत्यन्त क्रोधित होकर नारद को शाप दे दिया था कि तू जन्म ग्रहण करेगा। ॥१७॥ इसके अनन्तर नारद ने कश्यप मुनि के यहाँ पुत्र के रूप में जन्म ग्रहण किया था। यज्ञ के ध्वस्त हो जाने पर दक्ष ने महेश्वर को भी पहिले शाप दिया था ॥१८॥ हे महेश्वर ! ब्राह्मण लोग तुम्हारा यजन करके भी तुम्हारे पूजोपचारों को त्याग दिया करेंगे और जन्मान्तर में ये वैर नष्ट न होंगे ॥१९॥ फिर इस दक्ष ने असिक्नी में पुत्री समुत्पन्न की थी। ये अत्यन्त रूप लावण्य से समन्वित साठ कन्या थीं। इनमें से दो तो अङ्गिरा को दी थी ॥२०॥ दो

कृशाश्व को दीं—दश धर्म को दी थीं और तेरह कश्यप मुनि को प्रदान की थीं तथा सत्ताईस चन्द्रमा को दी थीं ॥२१॥ फिर सुप्रजा भामिनी बहु पुत्र को दी थी। मनोरमा भानुमती, विशाखा और बहुदा इन चार कन्याओं को दक्ष ने हे महादेव! अरिष्ट नेमि को दिया था। उन्होंने सुप्रजा और जया को कृशाश्व के लिए प्रदान किया था ॥२२।२३।

अरुन्धती वसुर्यामी लम्बा भानुर्मरुद्वती।
सङ्कल्पा च मुहूर्त्ता च साध्या विश्वा च ता दश ॥२४
धर्मपत्न्य समाख्याता कश्यपस्य वदाम्यहम्।
अदितिर्दितिर्दनु काला ह्यनायु सिंहिका मुनि.।
कद्रू प्राधा इरा क्रोधा विनता सुरभि खगा ॥२५
विश्वेदेवास्तु विश्वाया साध्या साध्यान् व्यजायत।
मरुत्वन्या मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा ॥२६
भानोस्तु भानवा रुद्र मुहूर्त्ताश्च मुहूर्त्तजा ।
लम्बायाश्चैव घोषोऽथ नागवीथिस्तु यामित ॥२७
पृथिवीविषय सर्वमरुन्धत्या व्यजायत।
सङ्कल्पायास्तु सर्वात्मा जज्ञे सङ्कल्प एव हि ॥२८
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धवश्चैवानिलोऽनल ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभि स्मृता ॥२९
आपस्य पुत्रो वैतुण्ड्य श्रम श्रान्तो ध्वनिस्तथा।
ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् काला लोकस्य कालन ।
सोमस्य भगवान् वर्च्चा वर्च्चस्वा यन जायत ॥३०
धवस्य पुत्रा द्रुहिणो हुतहव्यवहस्तथा ।
मनोहराया शिशिर प्राणो-थ रमणस्तथा ॥३१

अरुन्धती, वसु, याम, लम्बा, भानु मरुद्वती सङ्कल्पा, मुहूर्ता, साध्या और विश्वा य दश धर्म की पत्नियाँ कही गई थी। अब कश्यप की पत्नियों को बतलाते हैं—अदिति, दिति, दनु काला, अनायु, सिंहिका, कद्रू, प्राधा, इरा, क्रोधा, विनता, सुरभि और खगा य तरह कश्यप की पत्नियाँ हुई थी ।२४।२५।

विश्वा के विश्वेदेवा समुत्पन्न हुए थे और साध्या के साध्यगण प्रसूत हुए। मरुत्वती से मरुद्वान् तथा वसु से वसुगण उत्पन्न हुए थे ॥२६॥ भानु नाम वाली से भानु गण—हे रुद्र ! मुहूर्त्ता से मुहूर्त्तज पैदा हुए थे। लम्बा से घोष उत्पन्न हुआ था और यामि से नागवीथि की उत्पत्ति हुई ॥२७॥ सम्पूर्ण पृथिवी विषय अरुन्धती से उत्पन्न हुआ था। सङ्कल्पा से सर्वात्मा सङ्कल्प समुत्पन्न हुआ था। ॥२८॥ आप, ध्रुव, सोम, धव, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास ये आठ नामों से वसुगण कहे गये हैं ॥२९॥ आपके पुत्र वैतुण्ड्य, श्रम, श्रान्त तथा ध्वनि हुए थे। ध्रुव का पुत्र भगवान् काल हुए जो समस्त लोक का कालन करने वाले हैं। सोम का पुत्र भगवान् वर्चा हुए जिससे वर्चस्वी उत्पन्न होता है ॥३०॥ धव का पुत्र द्रुहिण तथा हुत हव्यवह हुए थे। मनोहरा से शिशिर, प्राण तथा रमण हुए थे ॥३१॥

अनिलस्य शिवा भार्या तस्या पुत्र पुलोमज. ।
अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य तु ॥३२
अग्निपुत्र कुमारस्तु शरस्तम्बे व्यजायत ।
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठत. ।
अपत्य कृत्तिकाना तु कार्तिकेय इति स्मृत ॥३३
प्रत्यूषस्य विदु. पुत्रमृषि नाम्ना तु देवलम् ।
विश्वकर्मा प्रभासस्य विख्यातो देववर्द्धकि ॥३४
अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्रश्च वीर्यवान् ।
त्वष्टुश्चाप्यात्मज पुत्रो विश्वरूपो महातपा ।
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजित ॥३५
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा ।
मृगव्याधश्च शर्वश्च कपाली च महामुने ।
एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वरा ॥३६
सप्तविंशति सोमस्य पत्न्यो नक्षत्रसंज्ञिता. ।
अदित्या कश्यपाच्चैव सूर्या द्वादश जज्ञिरे ।
विष्णु शक्रोऽर्यमा धाता त्वष्टा पूषा तथैव च ॥३७

विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च ।
अंशुमाश्च भगश्चैव आदित्या द्वादश स्मृता· ॥३८
हिरण्यकशिपुर्दित्या हिरण्याक्षोऽभवत्तदा ।
सिंहिका चाभवत् कन्या विप्रचित्तिपरिग्रहा ॥३९
हिरण्यकशिपो पुत्राश्चत्वार पृथुलौजस ।
अनुह्लादश्च ह्लादश्च प्रह्लादश्चैव वीर्यवान् ।
सह्लादश्चाभवत्तेषा प्रह्लादो विष्णुतत्पर, ॥४०
सह्लादपुत्र आयुष्मान् शिविर्बाष्कल एव च ।
विरोचनश्च प्राह्लादिर्बलिर्जज्ञे विरोचनात् ।
बले पुत्रशत त्वासीद्बाणज्येष्ठ वृषध्वज ॥४१

अनिल की भार्या शिवा थी । उसका पुत्र पुलोमज और अविज्ञ त गति थे । ये दो अनिल के पुत्र हुए थे ॥३२॥ अग्नि का पुत्र कुमार शरसम्ब में समुत्पन्न हुआ था । उसके पीछे से शाख, विशाख और नैगमेय हुए थे । कृत्तिकाओं की सन्तति कार्तिकेय इस नाम से कही गई है ॥३३॥ प्रत्यूष का पुत्र देवल ऋषि के नाम से विख्यात हुए थे । प्रभास का पुत्र विश्वकर्मा हुआ जो देववर्द्धकि नाम से विख्यात हुआ था ।.३४॥ अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा और वीर्यवान् रुद्र उत्पन्न हुए । त्वष्टा का पुत्र महातपा विश्वरूप हुआ । हे महामुने ! हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, शर्व, कपाली—ये एकादश रुद्र हुए थे जो इस सम्पूर्ण त्रिभुवन के स्वामी हैं । ॥३५।३६॥ सोम की सत्ताईस पत्नियाँ थी जो नक्षत्र नाम से प्रसिद्ध थी । उनके अश्विनी, भरणी आदि नाम थे । अदिति म कश्यप मुनि से द्वादश सूर्य समुत्पन्न हुए थे । उनके नाम विष्णु, शक्र, अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता मित्र, वरुण, अंशुमान्, भग ये बारह हैं ॥३७।३८। कश्यप की दिति नाम वाली पत्नी में हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष पुत्र हुए थे । सिंहिका नाम वाली एक कन्या हुई थी जिसका परिग्रह विप्रचित्ति ने किया था । ३९॥ हिरण्यकशिपु के अधिक ओज वाले चार पुत्र उत्पन्न हुए थे । उनके नाम ये हैं— अनुह्लाद, ह्लाद, प्रह्लाद और सह्लाद थे । इन चारों म प्रह्लाद विष्णु भगवान्

का परम भक्त हुआ था ।।४०।। राह्लाद के पुत्र आयुष्मान्, शिबि, वाष्कल और विरोचन हुए थे। विरोचन से प्राह्लादि बलि उत्पन्न हुए थे। हे वृषध्वज ! बलि के सौ पुत्र हुए उनमें बाण सबसे ज्येष्ठ था ।।४१।।

हिरण्याक्षसुताश्चासन् सर्व एव महाबला ।
उत्कर शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा ।।
महानाभो महाबाहु कालनाभस्तथापर ।।४२
अभवन् दनुपुत्राश्च द्विमूर्धा शङ्कुरस्तथा ।
अयोमुख शकुशिरा कपिल शम्बरस्तथा ।।४३
एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबल ।
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च पुलोमा च महासुर ।।
एते दनो सुता ख्याता विप्रचित्तिश्च वीर्यवान् ।।४४
स्वर्भानो सुप्रभा कन्या शर्मिष्ठा वार्षपार्वणी ।
ओपदानवी हयशिरा प्रख्याता वरकन्यका ।।४५
वैश्वानरसुत चोभे पुलोमा कालका तथा ।
उभे ते तु महाभागे मारीचेस्तु परिग्रह ।।४६
ताभ्या पुनसहस्राणि षष्टिर्दानवसत्तमा ।
पौलोमा कालकञ्जाश्च मारीचतनया स्मृता ।।४७
सिंहिकाया समुत्पन्ना विप्रचित्तिसुतास्तथा ।
व्यश शल्यश्च बलवान् नभश्चैव महाबल ।।४८
वातापिनमुचिश्चैव इल्वल खसृमस्तथा ।
अञ्जकी नरकश्चैव कालनाभस्तथैव च ।।
निवातकवचा दैत्या प्रह्लादस्य कुलेऽभवन् ।।४९

हिरण्याक्ष के सभी पुत्र महान् बलवान् थे उनके नाम उत्कट, शकुनि, भूतसंतापन महानाभ, महाबाहु और काल नाम थे ।।४२।। दनु के पुत्र द्विमूर्धा, शङ्कुर, अयोमुख, शकुशिरा, कपिल, शम्बर एक चक्र, महाबाहु, तारक, महाबल, स्वर्भानु वृषपर्वा, पुलोमा, महा सुर हुए थे। ये सब दनु के सुत ख्यात थे

और विप्रचित्ति वीर्यवान् थे ।।४३।४४।। स्वर्भानु की सुप्रभा कन्या, शर्मिष्ठा, वार्षपार्वणी, और दानवी, हयशिरा ये श्रेष्ठ कन्यका प्रख्यात थीं ।।४५।। वैश्वानर के दो सुता थीं। उनके नाम पुलोमा तथा कालका थे। ये दोनों महान् भाग वाली थीं और मारीचि के परिग्रह हुई थीं ।।४६।। उन दोनों से दानवों में परश्रेष्ठ साठ हजार पुत्र हुए थे। वे पौलोम, कालखञ्ज और मारीचि तनय के नाम से प्रसिद्ध हुए थे ।।४७।। सिंहिका से विप्रचित्ति के पुत्र समुत्पन्न हुए थे। उनके नाम व्यंस, शल्य, बलवान् नभ, महाबल, वातापि, नमुचि, इल्वल, खसृम अञ्जक, नरक और काल नाम थे। प्रह्लाद के कुल में निवात कवच दैत्य हुए थे ।।४८।४९।।

षट्सुताश्चमहासत्वास्ताम्रायाः परिकीर्त्तिताः ।
शुकी श्येनी च भासी च सुग्रीवी शुचिगृध्रिका ।।५०
शुकी शुकानजनयदुलूकी प्रत्युलूककान् ।
श्येनी श्येनास्तथा भासी भासान्गृध्राश्च गृध्यपि ।।५१
शुच्यौदकान् पक्षिगणान् सुग्रीवी तु व्यजायत ।
अश्वानुष्ट्रान् गर्दभाश्च ताम्रावंश प्रकीर्त्तित ।।५२
विनतायास्तु पुत्रौ द्वौ विख्यातौ गरुडारुणौ ।
सुरसाया सहस्रन्तु सर्पाणाममितौजसाम् ।।५३
काद्रवेयाश्च फणिनः सहस्रममितौजसः ।
तेषां प्रधानो भूतेश शेषवासुकितक्षकाः ।।५४
शङ्खः श्वेतो महापद्म कम्बलाश्वतरो तथा ।
एलापत्रस्तथा नाग कर्कोटकधनञ्जयौ ।।
गणं क्रोधवशं विद्धि ते च सर्वे च दंष्ट्रिणः ।।५५
क्रोधा तु जनयामास पिशाचाश्च महाबलान् ।
गास्तु वै जनयामास सुरभिर्महिषास्तथा ।।५६

ताम्रा की छैः सुता महान् सत्व वाली बतलाई गई हैं। उनके नाम शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि और गृध्रिका थे। शुकी ने शुकों (तोतों)

को जन्म दिया था। उलूकी ने उलूकों को पैदा किया था श्येनी ने श्येनों को प्रसूत किया, भासी ने भासों को गृध्री ने गिद्धों को समुत्पन्न किया था ॥५०।५१॥ शुचि ने उदक में रहने वालों को तथा सुग्रीवी ने पक्षीगणों को उत्पन्न किया था। अश्वों को, उष्ट्रों को और गर्दभों (गधों) को समुत्पन्न किया था। यह ताम्र वंश कीर्तित हुआ था ॥५२॥ विनता के दो पुत्र हुए जोकि बहुत विख्यात हैं। उनके नाम गरुड और अरुण थे। सुरसा के अमित ओज वाले एक सहस्र सर्प हुए थे। अमित ओज से समन्वित काद्रवेय (कद्रू के पुत्र) फणी अर्थात् सर्प एक सहस्र थे। हे भूतेश ! उन सबमें शेष वासुकि और तक्षक य प्रधान हुए थे ॥५३।५४॥ सर्पों के अनेक भेद हैं जैसे–शङ्ख, श्वेत, महापद्म, कम्बल अश्वतर, एलापत्र, नाग, कर्कोटक धनञ्जय,। इनके गण को महाक्रोधी समझो और ये सभी दंष्ट्री थे ॥५५॥ क्रोधा ने महान् बल वाले पिशाचों को जन्म दिया था। सुरभि ने गौ तथा महिषों को उत्पन्न किया था ॥५६॥

इरा वृक्षलता वल्लीस्तृणजातीश्च सर्वश ।
खगा च यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा ॥
अरिष्टा तु महासत्वान् गन्धर्वान्समजीजनत् ॥५७
देवा एकोनपञ्चाशन्मरुता ह्यभवन्निति ।
एकज्योतिर्द्विज्योतिश्च त्रिचतुर्ज्योतिरेव च ॥५८
एकशुक्रो द्विशुक्रश्च त्रिशुक्रश्च महाबल ।
ईदृक्चान्यादृक्सदृक्च तत प्रतिसदृन्तथा ॥५९
मितश्च समितश्चैव सुमितश्च महाबल ।
ऋतजित्सत्यजिच्चैव सुषेण सेनजित्तथा ॥६०
अतिमित्रोऽप्यमित्रश्च दूरमित्रोऽजितस्तथा ।
ऋतश्च ऋतधर्म्मा च विहर्ता वरुणो ध्रुव. ॥६१
विधारणश्चतुर्थोऽय गृहमेकगण स्मृत. ।
ईदृक्षश्च सदृक्षश्च एतादृक्षा मिताशन. ॥६२

एतन प्रसदृक्षश्च सुरतश्च महातपाः ।
तादृगुग्रो ध्वनिर्भासो विमुक्तो विक्षिप. सह. ॥६३
द्युतिर्वसुर्बलाधृष्यो लाभ कामो जय। विराट् ।
उद्वेपणो गणो नाम वायुस्कन्धे तु सप्तमे ॥६४
एतत्सर्वं हरे रूप राजानो दानवा सुरा ।
सूर्यादिपरिवारेण मन्वाद्या ईजिरे हरिम् ॥६५

इराने वृक्ष, लता, वल्ली और सभी प्रकार की तृण जातियों को उत्पन्न किया था। खगा ने यक्ष और राक्षसों को प्रसूत किया था तथा मुनि ने अप्सराओं को जन्म दिया था। अरिष्टा ने महान् सत्व वाले गन्धर्वों को उत्पन्न किया था ॥५९॥ उनचास मरुत देव हुए थे। उन के नाम—एकज्योति, द्विज्योति, त्रिज्योति चतुर्ज्योति, एक शुक्र, द्वि शुक्र, त्रिशुक्र, महाबल, ईदृक्, अवादृक्, सदृक्, प्रति सदृक्, मित, समित, सुमित, महाबलवान्. ऋतजित्, सत्यजित्, सुषेण, सेनजित्, अमिमित्र, अमित्र, दूरमित्र, अजित ऋत, ऋतधर्मा, विहर्ता, वरुण, ध्रुव, विधारण यह चतुर्थ एक गण कथित है, ईदृक्ष, सदृक्ष, एतादृक्ष, मिताशन, एतन, प्रसदृक्ष सुरत, महातपा, तादृगुग्र, ध्वनि, भास, वियुक्त, विक्षिप, सह, द्युति, वसु, बलाधृष्य, लाभ, काम जयो, विराट्, उद्वेपण, गण नाम सप्तम वायुस्कन्ध में है। य सब दानव और सुर हरि का रूप राजा थे। सूर्यादि परिवार के द्वारा मनु आदि ने हरि का यजन किया था ॥५७ से ६५॥

७—सूर्यादिपूजा विधान

सूर्य्यादिपूजनं नू हि स्वायम्भुवादिभि कृतम् ।
भुक्तिमुक्ति प्रद सार व्यास सक्षपत शृणु ॥१
सूर्य्यादिपूजा वक्ष्यामि धर्म्मकामादिकारिकाम् ॥२
ॐ सूर्य्यासनाय नम ॐ नम सूर्य्यमूर्त्तये ।
ॐ ह्रां ह्रीं स सूर्य्याय नम । ॐ सोमाय नम ।
ॐ मङ्गलाय नम । ॐ बुधाय नम ।

ॐ बृहस्पतये नमः । ॐ शुक्राय नमः ।
ॐ शनैश्चराय नमः । ॐ राहवे नमः ।
ॐ केतवे नमः । ॐ तेजश्चण्डाय नमः ॥३
आसनावाहनं पाद्यमर्घ्यमाचमनं तथा ।
स्नानं वस्त्रोपवीतञ्च गन्धं पुष्पं च धूपकम् ॥४
दीपकञ्च नमस्कारं प्रदक्षिणविसर्जने ।
सूर्यादीनां सदा कुर्य्यादिति मन्त्रैर्वृषध्वज ॥५

रुद्र देव ने कहा—सूर्य आदि का पूजन बतलाइये जो कि स्वायम्भुव आदि मनु ने किया था । यह पूजन सम्पूर्ण सांसारिक सुखों की भुक्ति एवं अन्त समय मे परम पुरुषार्थ मुक्ति का प्रदान करने वाला है । हे व्यास ! अब तुम इसका संक्षिप्त रूप से श्रवण करो । श्री हरि भगवान् ने कहा—मैं सूर्य्य आदि की पूजा को बतलाता हूँ जो कि धर्म अर्थ और काम आदि के करने वाली होती है ॥१।२। हे वृष ध्वज ! लिखित मन्त्रों के द्वारा सर्वदा सूर्यादि देवों का पूजन करना चाहिए जिसमे उक्त देवों का आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य आचमन, स्नान, वस्त्र, उपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीपक, नमस्कार, प्रदक्षिणा और विसर्जन आदि सभी अर्चना के कृत्य सम्पादित करने चाहिए । इस प्रकार की पूजा के मन्त्र ये होते हैं—ॐ सूर्यासनाय नमः—ॐ नमः सूर्य मूर्तये—ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः—ॐ सोमाय नमः—ॐ मङ्गलाय नमः—ॐ बुधाय नमः—बृहस्पतये नमः—ॐ शुक्राय नमः—ॐ शनैश्चराय नमः—ॐ राहवे नमः—ॐ केतवे नमः—ॐ तेजश्चण्डाय नमः ॥३।४॥ यह समस्त देवों का पूजन होता है अतएव सभी देवों के नामों के मन्त्र हैं जिनका अर्थ सबके लिये नमस्कारात्मक होता है ॥५॥

ॐ ह्रां शिवासनाय नमः । ॐ ह्रां शिवमूर्त्तये नमः । ॐ ह्रां हृदयाय नमः । ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा । ॐ ह्रूं शिखायै वषट् । ॐ ह्रैं कवचाय हुँ । ॐ नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ ह्रः अस्त्राय फट् । ॐ ह्रां सद्योजाताय नमः । ॐ ह्रीं वामदेवाय नमः । ॐ ह्रूं अघोराय नमः । ॐ ह्रैं

तत्पुरुषाय नम । ॐ ह्रीं ईशानाय नम । ॐ ह्रां गौर्यै नम । ॐ ह्रां गुरुभ्यो नम । ॐ ह्रां इन्द्राय नम । ॐ ह्रां चण्डाय नम । ॐ ह्रां अघोराय नम । ॐ वासुदेवासनाय नम । ॐ वासुदेवमूर्तये नम । ॐ अ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नम । ॐ आ ॐ नमो भगवते सङ्कर्षणाय नम । ॐ अ ॐ नमो भगवते प्रद्युम्नाय नम । ॐ अः ॐ नमो भगवते अनिरुद्धाय नम । ॐ नारायणाय नम । ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नम । ॐ हूँ विष्णवे नम । ॐ क्षौं नमो भगवते नरसिंहाय नम । ॐ भू ॐ नमो भगवते वराहाय नम । ॐ क ट प श वैनतेयाय नम । ॐ ज ख व सुदर्शनाय नम । ॐ ख ठ फ ष गदाय नम । ॐ व ल म क्ष पाञ्चजन्याय नम । ॐ घ ढ भ ह श्रियै नम । ॐ ग ड व स पुष्ट्यै नम । ॐ ध प व स वनमालायै नम । ॐ स द ल श्रीवत्साय नम । ॐ ठ च भ य कौस्तुभाय नम । ॐ गुरुभ्यो नम । ॐ इन्द्रादिभ्यो नम । ॐ विष्वक्सेनाय नम ॥६

इनमें आसन आदि भी होते हैं। इन आसन मन्त्रों को भी बताया जाता है—ॐ ह्रां हृदयाय नम ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा ॐ हूँ शिखायै वषट् ॐ हैं कवचाय हुम् ॐ ह्रौं नेत्र त्रयाय वौषट ॐ ह्र अस्त्राय फट।

अन्य देवों के नाम नीचे दिये जाते हैं—ॐ ह्रां सद्योजाताय नम—ॐ ह्रीं वाम देवाय नम—ॐ ह्रू अघोराय नम—ॐ हैं तत्पुरुषाय नम—ॐ ह्रो ईशानाय नम—ॐ ह्रीं गौर्यै नम ॐ गुरुभ्यो नम—ॐ ह्रां इन्द्राय नम—ॐ ह्रां चण्डाय नम—ॐ ह्रां अघोराय नम—ॐ वासुदेव सनाय नम—ॐ वासुदेव मूर्तये नम—ॐ अ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नम—ॐ आं ॐ नमो भगवते सङ्कर्षणाय नम—ॐ अ ॐ नमो भगवते प्रद्युम्नाय नम। ॐ अः ॐ नमो भगवते अनिरुद्धाय नम—ॐ नारायणाय नम—ॐ तत्सद् ब्रह्मणे नम—ॐ हूँ विष्णवे नम—ॐ क्षौं नमो भगवते नरसिंहाय नम—ॐ भू ॐ नमो भगवते वराहाय नम—ॐ क ट प श वैनतेयाय नम—ॐ ज ख व सुदर्शनाय नम—ॐ ख ठ फ ष गदायै नम—ॐ व ल म क्ष पाञ्चजन्याय नम—ॐ घ ढ

भ ह श्रियै नम —ॐ ग ड व स पुष्ट्यै नम–ॐ ध प व स वनमालायै नम —ॐ स द ल श्रीवत्साय नम —ॐ ठ च भ य कौस्तुभाय नम —ॐ गुरुभ्यो नम –ॐ इन्द्र दिभ्यो नम —ॐ विष्वक्सेनाय नम ॥६॥

आसनादीन् हरेरेतैर्मन्त्रैर्दद्याद् वृषध्वज ।
विष्णुशक्त्या सरस्वत्या पूजा शृणु शुभाप्रदाम् ॥७
ॐ ह्री सरस्वत्यै नम । ॐ ह्रा हृदयाय नम । ॐ ह्रीं शिरसे नम । ॐ ह्रू शिखायै न म । ॐ ह्रैं कवचाय नम । ॐ ह्रौ नेत्र नयायनम ।ॐ ह्र अस्त्राय नम ॥८
श्रद्धा ऋद्धि कला मेधा तुष्टि पुष्टि प्रभा मति ।
ओंकाराद्या नमाऽन्ताश्च सरस्वत्याश्च शक्तय ॥६
ॐ क्षेत्रपालाय नम । ॐ गुरुभ्यो नम । ॐ परमगुरुभ्यो नम ॥१०
पद्मस्थाया सरस्वत्या आसनाद्य प्रकल्पयेत् ।
सूर्यादीना स्वकैर्मन्त्रै पवित्रारोहण तथा ॥११

हे वृषध्वज ! इन उपर्युक्त मन्त्रो के द्वारा भगवान् हरि के लिये आसन आदि उपचारो को समर्पित करना चाहिए । अब भगवान् विष्णु की शक्ति सरस्वती देवी की पूजा का श्रवण करो जो कि सम्पूर्ण शुभों के प्रदान करने वाली है ॥७॥ सरस्वती की समर्चना के निम्नलिखित मन्त्र हैं–ॐ ह्रा सरस्वत्यै नम —ॐ ह्री शिरसे नम –ॐ ह्रू शिखायै नम —ॐ ह्रैं कवचाय नम —ॐ ह्रौं नेत्र त्रयाय नम —ॐ अस्त्राय नम ॥८॥ इन पूजन के मन्त्रो म ओङ्कार आदि म और अन्त में नम'—यह जोडकर सरस्वती देवी की और श्रद्धा, ऋद्धि कला, मेधा, तुष्टि, पुष्टि, प्रभा मति इन शक्तियो का भी पूजन करना चाहिए । 'ॐ श्रद्धायै नम '—इत्यादि विधि से सभी शक्तियो के मन्त्रो की रचना कर पूजन करे । इसके पश्चात् ॐ क्षेत्रपाला नम –ॐ गुरुभ्यो नम –ॐ परम गुरुभ्यो नम — इन मन्त्रो से अर्चना करे ॥६।१०॥ पद्मासन पर सस्थित सरस्वती देवी के आसन आदि की कल्पना करनी चाहिए । तथा सूर्यादि देवो के लिये उनके अपने अपने नामो के मन्त्रो के द्वारा पवित्रारोहण करे ॥११॥

८---विष्णुपूजा विधि

भूमिष्ठे मण्डपे स्नात्वा मण्डले विष्णुमर्चयेत् ।
पञ्चरङ्गैश्च चूर्णेन वज्रनाभ तु मण्डलम् ॥१
षोडशै कोष्ठकैस्तत्र सम्मित रुद्र कारयेत् ।
चतुर्थपञ्चकोणेषु सूत्रपात तु कारयेत् ॥२
कोणसूत्रादुभयत कोणा य तत्र सस्थिता ।
तेषु चैव प्रकुर्वीत सूत्रपात विचक्षण ॥३
तदनन्तरकोणेषु एवमेव हि कारयेत् ।
प्रथमा नाभिरुद्दिष्टा मध्ये रेखाप्रसङ्गमे ॥४
अन्तरेषु च सर्वेषु अष्टौ चैव तु नाभय ।
पूर्वमध्यमनाभिभ्यामथ सूत्र तु भ्रामयेत् ॥५
अन्तरेषु द्विजश्रेष्ठ पादोन भ्रामयेद्धर ।
अनेन नाभिसूत्रस्य कर्णिका भ्रामयेच्छिव ॥६
कर्णिकाया द्विभागेन केशराणि विचक्षण ।
तदग्रेण सदा विद्वान्दलान्येव समालिखेत् ॥७

श्री हरि ने कहा—स्नान करके पवित्र होकर भूमि मे स्थित मण्डप मे विरचित मण्डल म भगवान् विष्णु का अर्चन करना चाहिए। पाँच रङ्ग के चूर्ण के द्वारा पञ्चनाभ मण्डल की रचना करे ॥१॥ हे रुद्र ! वह मण्डल सोलह कोष्ठको से सम्मित होना चाहिए। चतुर्थ पञ्च कोनो मे सूत्रपात कराना चाहिए ॥२॥ कोण सूत्र से दोनो और जो कोण वहा सस्थित होते है उनमे ही विचक्षण पुरुष को सूत्रपात करना चाहिए ॥३॥ उसके अन्तर कोणो मे भी इसी भाँति करावे। मध्य रेखा प्रसङ्गम मे प्रथमा नाभि उद्दिष्ट होती है। अन्तर सभी मे आठ नाभियाँ होती हैं। पूर्व और मध्यम नाभियो से सूत्र को घुमाना चाहिए ॥४ ५॥ हे हर ! अन्तर कोणो मे श्रेष्ठ द्विज को एक पाद न्यून घुमाना चाहिए। हे शिव ! इसके द्वारा नाभि सूत्र की कर्णिका को भ्रमित करे ॥४।५।६॥ मण्डल की रचना की विधि में बताया जाता है कि विचक्षण

पुरुष को कणिका के दो भागों के द्वारा केसरों की रचना करनी चाहिए और विद्वान् उसके अग्रभाग से दलों का लेखन करे ॥७॥

सर्वेषु नाभिक्षेत्रेषु मानेनानेन सुव्रत ।
पद्मानि तानि कुर्वीत देशिक परमार्थवित् ॥८
आदिसूत्रविभागेन द्वाराणि परिकल्पयेत् ।
द्वारशोभा तथा तत्र तदर्द्धेन तु कल्पयेत् ॥९
कणिका पीतवर्णेन सितरक्तादिकेशरान् ।
अन्तर नीलवर्णेन दलानि ह्यसितेन च ॥१०
कृष्णवर्णेन रजसा चतुरस्रं प्रपूरयेत् ।
द्वाराणि शुक्लवर्णेन रेखा पञ्च च मण्डले ॥११
सिता रक्ता तथा पीता कृष्णा चैव यथाक्रमम् ।
कुर्वेवं मण्डलञ्चादौ न्यासं तत्रार्चयेद्धरिम् ॥१२
हृन्मध्ये तु न्यसेद्विष्णुं मध्ये सङ्कर्षणं तथा ।
प्रद्युम्नं शिरसि न्यस्य शिखायामनिरुद्धकम् ॥१३
ब्रह्माणं सवगात्रेषु करयो श्रीधरं तथा ।
अहं विष्णुरिति ध्यात्वा कणिकाया न्यसेद्धरिम् ॥१४
न्यस्येत्सङ्कर्षणं पूर्वे प्रद्युम्नञ्चैव दक्षिणे ।
अनिरुद्धं पश्चिमे च ब्रह्माणञ्चोत्तरे न्यसेत् ॥१५
श्रीधरं रुद्रकोणेषु इन्द्रादीन्दिक्षु विन्यसेत् ।
ततोऽभ्यर्च्य च गन्धाद्यैः प्राप्नुयात्परमं पदम् ॥१६

हे सुव्रत ! इसी मान से सब नाभि क्षेत्रों में परमार्थ के ज्ञाता आचार्य को उन पद्मों की रचना करनी चाहिए ॥८॥ आदि सूत्र के विभाग के द्वारा ही द्वारों की कल्पना करे और उसके अर्ध भाग से वहाँ पर द्वार शोभा की परिकल्पना करनी चाहिए ॥९॥ कणिका की रचना पीत वर्ण से करे और सित तथा रक्त आदि वर्णों से केसरों की रचना करनी चाहिए। अन्तर भाग को नील वर्ण से तथा दलों को असित वर्ण से करे ॥१०॥ कृष्ण वर्ण की रज से चारों

और प्रपूरित करना चाहिए और उनके जो द्वार हों उन्हें शुक्ल वर्ण के चूर्ण से पूरित करे तथा मण्डल में पाँच रेखाएँ बनावे ॥११॥ उन रेखाओं के रङ्ग क्रम से सित, रक्त, पीत तथा कृष्ण होने चाहिए। इस प्रकार से मण्डल की रचना करके आदि में न्यास करके फिर वहाँ पर हरि की अर्चना करे ॥१२॥ हृदय के मध्य में विष्णु का न्यास करे—मध्य में सङ्कर्षण का करे, शिर में प्रद्युम्न का न्यास करके शिखा में अनिरुद्ध का न्यास करे ॥१३॥ सम्पूर्ण अङ्गों में ब्रह्मा का—हाथों में श्रीधर का न्यास करके मैं विष्णु हूँ—ऐसा ध्यान करके कर्णिका में हरि का न्यास करे ॥१४॥ सङ्कर्षण को पूर्व में, प्रद्युम्न को दक्षिण में, अनिरुद्ध को पश्चिम में और ब्रह्मा को उत्तर में न्यस्त करे ॥१५॥ श्रीधर को रुद्र कोणों में और इन्द्रादि को दिशाओं में विन्यस्त करना चाहिए। इसके अनन्तर सबका गन्धाक्षत पुष्पादि उपचारों के द्वारा अभ्यर्चन करके परम पद की प्राप्ति करे ॥१६॥

६ वैष्णव पञ्जर

प्रवक्ष्याम्यधुना ह्येतद्वैष्णवं पञ्जरं शुभम्।
नमो नमस्ते गोविन्द चक्रं गृह्य सुदर्शनम्॥
प्राच्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः ॥१
गदां कौमोदकीं गृह्य पद्मनाभ नमोऽस्तु ते।
याम्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः ॥२
हलमादाय सौनन्द नमस्ते पुरुषोत्तम।
प्रतीच्यां रक्ष मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः ॥३
मुसलं शातनं गृह्य पुण्डरीकाक्ष रक्ष माम्।
उत्तरस्यां जगन्नाथ भवन्तं शरणं गतः ॥४
खड्गमादाय चर्माथ अस्त्रशस्त्रादिकं हरे।
नमस्ते रक्ष रक्षोघ्न ऐशान्यां शरणं गतः ॥५
पाञ्चजन्यं महाशङ्खमनुद्बोधञ्च पङ्कजम्।
प्रगृह्य रक्ष मां विष्णो आग्नेय्यां रक्ष शूकर ॥६

चन्द्रसूर्य्यं समागृह्य खड्गं चान्द्रमसं तथा ।
नैर्ऋत्यां माञ्च रक्षस्व दिव्यमूर्ते नृकेशरिन् ॥७

हरि ने कहा—अब मैं यह परम शुभ वैष्णव पञ्जर बतलाता हूँ—हे गोविन्द ! आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है। आप अपने सुदर्शन चक्र को ग्रहण करके हे विष्णो ! मेरी पूर्व दिशा मे रक्षा कीजिए। मैं आपकी शरणागति मे आ गया हूँ ॥१॥ हे पद्मनाभ ! आप अपनी कौमोदकी नाम वाली गदा को ग्रहण करके दक्षिण दिशा मे मेरी रक्षा करें। मेरा आपको नमस्कार है और हे विष्णुदेव ! मैं आपके शरण मे उपस्थित हो गया हूँ ॥२॥ हे विष्णो ! आप सौनन्द हल को लेकर हे पुरुषों मे उत्तम ! प्रतीची (पश्चिम) में मेरी रक्षा करें। मैं आपके शरण मे आया हूँ ॥३॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! शातन मुसल का ग्रहण करें और हे जगतो के स्वामिन् ! आप मेरी उत्तर दिशा मे रक्षा करें। मैं आपके चरणों की शरण मे आ गया हूँ ॥४॥ हे हरे ! आप खड्गचर्म तथा अन्य अस्त्र शस्त्र दि को ग्रहण करें। मेरी आपको नमस्कार है। हे राक्षसों के हनन करने वाले ! ऐशानी दिशा मे आप मेरी रक्षा करिये। मैं आपकी शरण मे हूँ ॥५॥ हे विष्णुदेव ! अब अपने महान् शङ्ख पाञ्चजन्य और अनुद्योध पङ्कज का ग्रहण कर हे शूकरदेव ! मेरी आग्नेयी दिशा मे रक्षा कीजिये ॥६॥ हे दिव्य मूर्ति वाले ! हे नृकेशरी ! आप चन्द्र और सूर्य को लेकर तथा चान्द्रमस खड्ग का ग्रहण कर मेरी नैऋत्य दिशा मे रक्षा करें ॥७॥

वैजयन्तीं सम्प्रगृह्य श्रीवत्सं कण्ठभूषणम् ।
वायव्यां रक्ष मां देव हयग्रीव नमोऽस्तु ते ॥८
वैनतेयं समारुह्य त्वन्तरिक्षे जनार्द्दन ।
माञ्च रक्षाजित सदा नमस्तेऽस्त्वपराजित ॥९
विशालाक्षं समारुह्य रक्ष मां त्वं रसातले ।
अकूपार नमस्तुभ्यं महामीन नमोऽस्तु ते ॥१०
करशीर्षाद्यङ्गुलेषु सत्य त्वं बाहुपञ्जरम् ।
कृत्वा रक्षस्व मां विष्णो नमस्ते पुरुषोत्तम ॥११

एवमुक्त शङ्कराय वैष्णव पञ्जर महत् ।
पुरा रक्षार्थमीशान्या. कात्यायन्या वृषध्वज ॥१२
नाशयामास सा येन चामर महिषासुरम् ।
दानव रक्तबीजञ्च अन्याश्च सुरकण्टकान् ।
एतज्जपन्नरो भक्त्या शत्रून्विजयते सदा ॥१३

हे देव ! हे हयग्रीव ! आप अपनी वैजयन्ती माला कण्ठ के भूषण और श्री वत्स का ग्रहण करके मेरी वायव्य दिशा मे रक्षा करे । मेरा आपको नमस्कार है ॥८॥ हे जनादन ! आप अपने वाहन वैनतेय (गरुड) पर समारूढ हो जाइये और आकाश मे मेरी रक्षा कीजिये । आप सर्वदा अजित हैं । हे अपराजित देव ! मेरा आपको प्रणाम है ॥९॥ विशाल नेत्रो वाले पर समारोहण करके आप मेरी रसातल म रक्षा करिये । हे अकूपार ! हे महामीन ! आपको मेरा बारम्बार प्रणाम है ॥१०॥ हे सत्य स्वरूप ! आप मेरे कर-शीष और अङ्गुलि आदि मे अपना बाहु-पञ्जर करके हे विष्णो ! हे पुरुषो मे उत्तम ! मेरी रक्षा कीजिय ॥११॥ हे वृषध्वज ! इस प्रकार से यह महान् वैष्णव पञ्जर शङ्कर के लिए कहा गया था । पहिले कात्यायनी ने ईशानी की रक्षा के लिए कहा था । जिसके द्वारा उसने अमर महिषासुर और दानव रक्तबीज तथा अन्य सुरो को कष्ट देने वालो का नाश किया था । इस वैष्णव पञ्जर का मनुष्य सर्वदा भक्ति-भाव के साथ जाप करता हुआ अपने शत्रुओ पर विजय प्राप्त करता है ॥१२।१३॥

१०—योग वर्णन

अथ योग प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिकर परम् ।
ध्यायिभि प्रोच्यते ध्येयो ध्यानेन हरिरीश्वर ॥१
तच्छृणुष्व महेशान सर्वपापविनाशन ।
विष्णुः सर्वेश्वरोऽनन्त षड्ूर्मिपरिवर्जित ॥२
वासुदेवो जगन्नाथो ब्रह्मात्माऽस्म्यहमेव हि ।
देहिदेहस्थितो नित्य सर्वदेहविवर्जित' ॥३

देहधर्मविहीनश्च क्षराक्षरविवर्जितः ।
षड्विधेषु स्थितो द्रष्टा श्रोता घ्राता ह्यतीन्द्रिय ॥४
तद्धर्मरहितः स्रष्टा नामगोत्रविवर्जित ।
मन्ता मन स्थितो देवो मनसा परिवर्जित. ॥५
मनोधर्मविहीनश्च विज्ञान ज्ञानमेव च ।
बोद्धा बुद्धिस्थित साक्षी सर्वज्ञो बुद्धिवर्जित ॥६

श्री हरि ने कहा—इसके अनन्तर अब मैं उस परम योग को तुमको बतलाता हूँ जो सासारिक सुखों का भोग और अन्त मे मोक्ष प्रदान करने वाला है। ध्यान करने वालों के द्वारा यह कहा जाता है कि ध्यान के साथ ईश्वर हरि का ध्यान करना चाहिए ॥१॥ हे महेशान ! उस योग का अब तुम श्रवण करो। भगवान् विष्णु सम्पूर्ण प्रकार के पापो के विनाश करने वाले, सबके ईश्वर, अनन्त और षड्ऊर्मि से रहित हैं ॥२॥ मैं ही वासुदेव, जगन्नाथ और ब्रह्मात्मा हूँ जो कि देहधारियों के देहों में स्थित रहता हुआ नित्य हूँ तथा सब प्रकार के देहों से विवर्जित हूँ। ३॥ वह मैं देह के सभी तरह के धर्मों से रहित एव क्षर तथा अक्षर स विहीन हूँ। छ प्रकारो में स्थित रहने वाला द्रष्टा, श्रोता घ्राता, इन्द्रियों की पहुँच से पर हैं ॥४॥ उनके धर्मों से रहित होकर सृजन करने वाला तथा नाम एव गोत्र से रहित हूँ। मन में स्थित रहने वाला मन्ता-देव हूँ किन्तु स्वय मन से परिवर्जित रहने वाला हूँ ॥५॥ मन के जो भी कुछ धर्म होते है उन सबसे रहित हूँ और मैं विज्ञान तथा ज्ञान का स्वरूप वाला हूँ वह सभी कुछ के बोध रखने वाला—बुद्धि म स्थित—सबका साक्षी अर्थात् देखने वाला होते हुए भी स्वय बुद्धि से रहित है ॥६॥

बुद्धिधर्मविहीनश्च मर्व सर्वगतो मत. ।
सर्वप्राणिविनिर्मुक्त प्राणधर्मविवर्जित ॥७
प्राणिप्राणो महाशान्तो भयेन परिवर्जित. ।
अहङ्कारादिहीनश्च तद्धर्मपरिवर्जित ॥८

अक्षय सर्वगं नित्यं महद्ब्रह्मास्ति केवलम् ।
सर्वस्य जगतो मूल सर्वेश परमेश्वरम् ॥३
सर्वभूतहृदिस्थं वै सर्वभूतमहेश्वरम् ।
सर्वाधार निराधार सर्वकारणकारणम् ॥४
अलेपक तथा मुक्त मुक्तयोगिविचिन्तितम् ।
स्थूलदेहविहीनञ्च चक्षुषा परिवर्जितम् ॥५
प्राणेन्द्रियविहीनञ्च प्राणिधर्मविवर्जितम् ।
पायूपस्थविहीनञ्च सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ॥६
मनोविरहित तद्वन्मनोधर्मविवर्जितम् ।
बुद्धया विहीन देवेश चेतसा परिवर्जितम् ॥७
अहङ्कारविहीन वै बुद्धिधर्मविवर्जितम् ।
प्राणेन रहितञ्चैव ह्यपानेन विवर्जितम् ॥
प्राणाख्यवायुहीन वै प्राणधर्मविवर्जितम् ॥८

रुद्र देव ने कहा—हे शङ्ख, चक्र और गदा धारण करने वाले ! शुद्ध, देव, ईश, परमात्मा भगवान् विष्णु के ध्यान को पुन करना चाहिए ॥१॥ हरि ने कहा—हे रुद्र ! सुनो, हरि का ध्यान इस समार रूपी तरु के नाश करने वाला है । उसका रूप तथा मन्त्र दृष्ट नहीं है वह सर्वव्यापी-अज और अव्यय है ॥२॥ वह अक्षय, सर्वत्र गमन करने वाला नित्य और केवल महान् ब्रह्म है । वह इस सम्पूर्ण जगत् का मूल, सभी का ईश और परमेश्वर है ॥३॥ समस्त भूतो के हृदय मे स्थित रहने वाला तथा समस्त प्राणियो का महान् ईश्वर है । वह सभी का आधार भी है और स्वय बिना आधार वाला है । वह सबके जो कारण है उसका भी कारण है ॥४॥ वह लेप से रहित है अर्थात् किसी को भी लिप्तता का प्रभाव उस पर नहीं होता है । वह मुक्त तथा मुक्त हुए योगी जनो के द्वारा विशेष रूप से चिन्तन किया हुआ है । वह स्थूल देह से रहित है और समस्त इन्द्रियों से भी विहीन होता है । मन इन्द्रिय से रहित और मन के जो धर्म होते हैं उन सबसे भी शून्य होता है । बुद्धि तथा चित्त से विहीन

एव ग्रहङ्कार से रहित तथा बुद्धि आदि के धर्मों से ही देवेश होता है। प्राण एव अपान से रहित तथा प्राणाख्य की आयु से शून्य वह परम देव होते हैं। ॥५ से ८॥

पुनः सूर्यार्चन वक्ष्ये यदुक्त धनदाय हि।
अष्टपत्र लिखेत् पद्म शुचौ देशे सकर्णिकम् ॥९
आवाहनी ततो बद्ध्वा मुद्रामावाहयेद्धरिम्।
खखोल्क स्थापयेन्मध्ये स्नापयेद् यन्त्ररूपिणम् ॥१०
आग्नेय्या दिशि देवस्य हृदय स्थापयेच्छिव।
एशान्या तु शिर स्थाप्य नैर्ऋत्या विन्यसेच्छिखाम् ॥११
पौरन्दर्या न्यसेद्धर्ममेकाग्रस्थितमानस।
वायव्याश्चैव नेत्रन्तु वारुण्यामस्त्रमेव च ॥१२
ऐशान्या स्थापयेत् सोम पौरन्दर्यान्तु लोहितम्।
आग्नेय्या सोमतनय याम्याश्चैव बृहस्पतिम् ॥१३
नैर्ऋत्या दानवगुरु वारुण्या शनैश्चरम्।
वायव्याञ्च तथा केतु कौवेर्यां राहुमेव च ॥१४
द्वितीयायान्तु कक्षाया सूर्यान् द्वादश पूजयेत्।
भग सूर्योऽर्यमा चैव मित्रो वै वरुणस्तथा ॥१५
सविता चैव धाता च विवस्वाश्च महाबल।
त्वष्टा पूषा तथा चेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते ॥१६
पूर्वादावर्चयेद्देवानिन्द्रादीन् श्रद्धया नरः।
जया च विजया चैव जयन्ती चापराजिता॥
शेशश्च वासुकिश्चैव नागानित्यादि पूजयेत् ॥१७

श्री हरि ने कहा—अब मैं पुन सूर्यदेव के अर्चन के विषय मे बतलाता हूँ जो कि धनद के लिये कहा गया था। आठ दलो से युक्त एक पद्म का लेखन करे जो कि किसी अति पवित्र देश मे होना चाहिए। उस पद्म की कर्णिका को भी लिखना चाहिए ॥९॥ इस लेखन करने के अनन्तर आवाहन करने की मुद्रा

प्रदर्शित कर वहाँ पर हरि का आवाहन करे। मध्य में खखोल्क की स्थापना करे और मन्त्र के स्वरूप वाले देव का स्नपन करावे ।१०। हे शिव ! आग्नेयी दिशा में देव के हृदय को स्थापित करे। ऐशानी दिशा में शिर की स्थापना करनी चाहिए तथा नैर्ऋत्य दिशा में शिखा का विन्यास करे ।११। ऐन्द्री दिशा में एकाग्र मनकी स्थिति रखने वाले धर्म को न्यस्त करना चाहिए। वायव्य दिशा में नेत्र तथा वारुणी दिशा में अस्त्र का विन्यास करे ।१२। ऐशानी दिशा में सोम की स्थापना करे–पौरन्दरी में लोहित (मङ्गल)–आग्नेयी में सोम-तनय (बुध)–और याम्री दिशा में बृहस्पति को विन्यस्त करे ।१३। नैर्ऋत्य में दानव गुरु (शुक्र)–वारुणी में शनैश्चर–वायव्य में केतु तथा कौवेरी दिशा में राहु का विन्यास करना चाहिए ।१४। द्वितीय कक्षा में बारह सूर्यों का पूजन करना चाहिए। उन बारह सूर्यों के नाम ये हैं–भग, सूर्य, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, महाबलवाला विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और बारहवा विष्णु कहा जाता है ।१५।१६। मनुष्य को पूर्वादि दिशाओं में इन्द्र आदि का बड़ी ही श्रद्धा के साथ अर्चन करना चाहिए। जय विजय जयन्ती और अपराजित, शेष वासुकि तथा नागों का पूजन करे ।१७।

१२—मृत्युञ्जयार्चन

गरुडोक्त कश्यपाय वक्ष्ये मृत्युञ्जयार्चनम् ।
उद्धारपूर्वकं पुण्यं सर्वदेवमयं मनुम् ॥१
ओङ्कारं पूर्वमुद्धृत्य जुङ्कारं तदनन्तरम् ।
सविसर्गं तृतीयं स्यान्मृत्युदारिद्र्यमर्दनम् ॥२
अमृतेशं महामन्त्रं त्र्यक्षरं पूजनं समम् ।
जपनाद् मृत्युहीनाः स्यु. सर्वपापविवर्जिताः ॥३
शतजप्याद् वेदफलं यज्ञतीर्थफलम् लभेत् ।
अष्टोत्तरशतं जप्यं त्रिसन्ध्यं मृत्युशत्रुजित् ॥४

ध्यायेच्च सितपद्मस्थं वरदञ्चाभयं करे ।
द्वाभ्यां चामृतकुम्भं तु चिन्तयेदमृतेश्वरम् ॥५
तस्यैवाङ्कगतां देवीममृताममृतभाषिणीम् ।
कलशं दक्षिणे हस्ते वामहस्ते सरोरुहम् ॥६
जपेदष्टसहस्रं वै त्रिसन्ध्यं मासमेकतः ।
जरामृत्युमहाव्याधिशत्रुजिज्जीवशान्तिदः ॥७

श्री सूतजी ने कहा—कश्यप मुनि के लिये गरुड के द्वारा कथित मृत्युञ्जय का अर्चन मैं बताता हूँ। यह उद्धार के साथ परम पुण्य तथा समस्त देवों से परिपूर्ण माना गया है ॥१॥ सबसे पूर्व में प्राङ्कार का अर्थात् "ॐ"—इसका उद्धार करे इसके अनन्तर 'जु" का और फिर विसर्ग से युक्त 'स"—यह तृतीय होना चाहिए। "ॐ जु स"—यह मन्त्र मृत्यु और दारिद्र्य के मदन करने वाला है। यह अमृतेश का महामन्त्र तीन अक्षर वाला है। इसका आराधन पूजन के ही समान होता है। इस तीन अक्षर वाले महामन्त्र के जप से मानव मृत्यु से रहित हो जाते हैं तथा सब प्रकार के पापों से छुटकारा पा जाया करते हैं ॥२ ३॥ इस महामन्त्र के एकसौ बार जाप करने से वेद तथा यज्ञ और तीर्थ करने का फल प्राप्त होता है। इस महामन्त्र का अष्टोत्तर शत अर्थात् एक माला तीनों सन्ध्याओं में करे तो मनुष्य मृत्यु और शत्रु को जीतने वाला होता है ॥४॥ और भगवान् अमृतेश्वर का ध्यान इस प्रकार से करना चाहिए कि श्वेत कमल पर वे विराजमान हैं तथा उनके हाथ में वरदान एवं अभय दोनों ही प्रदान करने के लिए विद्यमान हैं और दोनों हाथों में अमृत के कुम्भ हैं ऐसा चिन्तन करना चाहिए ॥५॥ उन्हीं अमृतेश्वर के अङ्क के साथ संकुलन देवी भी हैं जो कि अमृत तथा अमृतभाषण करने वाली हैं इनके दाहिने हाथ में कलश है और बायें हाथ में कमल पुष्प है ॥६॥ ऐसा ध्यान करते हुए उक्त तीन अक्षर वाले महा मन्त्र का आठ हजार जाप तीनों सन्ध्याओं में एक मास पर्यन्त नित्य करे तो मनुष्य की जरा (वृद्धता), मृत्यु महाव्याधि और

शत्रु इन सब पर विजय हो जाती है तथा जीवात्मा को बहुत ही अधिक शांति का लाभ होता है ॥७॥

आस्थानं स्थापनं रोधः सन्निधानं निवेशनम् ।
पाद्यमाचमनं स्नानमर्घ्यं चागुरुलेपनम् ॥
दीपाम्बरं भूषणञ्च नैवेद्यं पानजीवनम् ॥८
मात्रा मुद्रा जपं ध्यानं दक्षिणा चाहुतिः स्तुतिः ।
वाद्यं गीतञ्च नृत्यञ्च न्यासं योगं प्रदक्षिणम् ॥
प्रणतिर्मन्त्र इज्या च वन्दनञ्च विसर्जनम् ॥९
षडङ्गादिप्रकारेण पूजनन्तु क्रमोदितम् ।
परमेशमुखोद्गीर्णं यो जानाति स पूजकः ॥१०
अर्घ्यपाशाचनञ्चादौ वस्त्रेणैव तु ताडनम् ।
शोधनं कवचेनैव अमृतीकरणं ततः ॥११
पूजा चाधारशक्त्यादेः प्राणायामं तथासने ।
पिण्डशुद्धिं ततः कुर्याच्छोपगाद्यैस्ततः स्मरेत् ॥१२
आत्मानं देवरूपञ्च कराङ्गन्यासकञ्चरेत् ।
आत्मानं पूजयेत्पश्चाज्ज्योतीरूपं हृदब्जतः ॥१३

अमृतश्वर भगवान् के आराधन का साङ्गोपाङ्ग क्रम करना चाहिए। सर्व प्रथम उनका आवाहन करे–फिर स्थापन करे–सरोधन करे एवं सन्निधान तथा सम्मुखीकरण निवेशन करना चाहिए। इसके अनन्तर पूजन का क्रम आरम्भ करे। अर्घ्य, पाद्य, आचमन और स्नान के लिये जल का समर्पण करना चाहिए। इसके पश्चात् अगुरुलेपन, दीप, वस्त्र, आभूषण, नैवेद्य, पुनराचमनीय, गन्धाक्षत पुष्प और मुखशुद्ध्यर्थ ताम्बूल, द्रव्यदक्षिणा, प्रदक्षिणा एवं नमस्कार करे। मात्रा, मुद्रा, जप, ध्यान, दक्षिणा, आहुति तथा स्तुति करे। फिर वाद्य गीत, नृत्य, न्यास, योग, प्रदक्षिणा प्रणति, मन्त्र, यजन, वन्दना आदि करके अन्त में देव का विसर्जन करना चाहिए ॥८-९॥ इस प्रकार से यह षडङ्ग पूजन का क्रम बताया गया है जो कि स्वयं परमेश के मुखारविन्द से उद्गीर्ण हुआ

है। इस समग्र क्रम को जो भली-भाँति से जानता है वही यथार्थ पूजा करने वाला होता है ॥१०॥ आदि में अर्घ्य, पाद्य, अर्चन और अस्त्र के द्वारा ही ताडन करे। फिर कवच के द्वारा शोधन तथा इसके अनन्तर अमृतीकरण करे। ॥११॥ आधार शक्ति आदि की पूजा--प्राणायाम तथा आसन और इसके अनन्तर शोषणादि के द्वारा पिण्ड शुद्धि करे और इसके उपरान्त स्मरण करना चाहिए ॥१२॥ आत्मा को देवरूप करके कराङ्गन्यासादि करे। अपने आप में अन्तःस्थित हृदय कमल पर विराजमान ज्योति रूप का सृजन करे ॥१३॥

मूर्त्तौ वा स्थण्डिलेवापि क्षिपेत्पुष्पं तु भास्वरम्।
आत्मानं द्वारपूजार्थं पूजा चाधारशक्तिजा ॥१४
सान्निध्यकरणं देवे परिवारस्य पूजनम्।
अङ्गषट्कस्यपूजार्थं कर्त्तव्या दिग्विभागतः ॥१५
धर्मादयश्च शक्राद्याः सायुधाः परिवारकाः।
युगवेदमुहूर्त्ताश्च पूजेयं भुक्तिमुक्तिकृत् ॥१६
मातृकाया गणश्चादौ नन्दिगङ्गे च पूजयेत्।
महाकालञ्च यमुनां देहल्यां पूजयेत् पुरा ॥१७
ॐ अमृतेश्वरभैरवाय नमः।
एवं ॐ जुं सः सूर्य्याय नमः।
एवं शिवाय कृष्णाय ब्रह्मणे च गणाय च।
चण्डिकायै सरस्वत्यै महालक्ष्म्यादि पूजयेत् ॥१८

मूर्ति पर अथवा स्थण्डिल पर पुष्पों का क्षेपण करे। भास्वर आत्मा की पूजा तथा द्वार पूजा के लिये आधार शक्ति की पूजा करनी चाहिए। देव में सन्निधीकरण, परिवार का पूजन तथा दिशाओं के विधान से षडङ्ग पूजा करनी चाहिए ॥१४॥ अपने-अपने आयुधों से समन्वित धर्म आदि एवं शक्र प्रभृति परिवार वाले होते हैं। युगवेद और मुहूर्त्त होते हैं। इनकी यह पूजा भुक्ति अर्थात् समस्त प्रकार के सांसारिक सुखोपभोगों के रसास्वादन का आनन्द और मुक्ति अर्थात् बारम्बार विभिन्न योनि में जन्म मरण के बन्धन वहो से

छुटकारा दोनों ही की प्राप्त कराने वाली होती है ॥१५ से १७ तक॥ आदि में मातृका, गण नन्दी, गङ्गा का पूजन करना चाहिए। पहिले देहली में महाकाल और यमुना का अर्चन करे। 'ॐ अमृतेश्वर भैरवाय नम'—इस मन्त्र से एव 'ॐ जु स मृर्याय नम'- इस मन्त्र के द्वारा पूजन करना चाहिये। इसी प्रकार से शिवाय', 'कृष्णाय', 'ब्रह्मणे', 'गणाय', चाशिष्टकायै', 'सरस्वत्यै', 'महालक्ष्म्यै' इत्यादि क्रम से इनके आगे प्रणव तथा अन्त में 'नम' यह लगाकर सबका मजन करना चाहिए ॥१८॥

१३—शिवार्चन और पचतत्वदीक्षा

शिवार्चन प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिकर परम् ।
शान्त सर्वगत शून्य मात्रा द्वादशके स्थितम् ॥
पञ्चवक्त्राणि ह्रस्वानि दीर्घाण्यङ्गानि बिन्दुना ॥१
सविसर्गं वदेदत्र शिव ऊर्ध्वं तथा पुन ।
षष्ठेनाद्यो महामन्त्रो हौमित्येवाखिलार्थद ॥२
हस्ताभ्या सस्पृशेत् पाशावूर्ध्वं पादान्तमस्तकम् ।
महामुद्रा हि सर्वेषा कराङ्गन्यासमाचरेत् ॥३
तालहस्तेन पृष्ठञ्च अस्त्रमन्त्रेण शोधयेत् ।
कनिष्ठामादित कृत्वा तर्जन्यङ्गानि विन्यसेत् । ४
पूजन सम्प्रवक्ष्यामि कर्णिकाया हृदम्बुजे ।
धर्मं ज्ञान च वैराग्यमैश्वर्यादि हृदाऽर्चयेत् ॥५
आवाहन स्थापनञ्च पाद्यमर्घ्यं हृदार्पयेत् ।
आचाम स्नपन पूजामेकाधारणतुल्यकाम् ॥६
अग्निकार्यविधि वक्ष्ये शरेणोल्लेखन चरेत् ।
वर्मणाभ्युक्षण कार्यं शक्तिन्यास हृदाचरेत् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अब मैं शिव के अर्चन को बताऊँगा जो कि परम भुक्ति तथा मुक्ति का करने वाला है। वह शान्त, सर्वगत अर्थात् सभी में

व्याप्त रहने वाला और शून्य है। यह द्वादश मात्रा में स्थित रहता है। पाँच वक्त्र ह्रस्व है और अन्य अङ्ग बिन्दु से दीर्घ हैं ॥१॥ विसर्ग के सहित अस्त्र को बोले 'शिव'-यह ऊर्ध्व में है तथा पुनः पद से महामन्त्र "हौम्" इतना ही समस्त प्रकार के अर्थों का प्रदान करने वाला होता है ॥२॥ दोनों हाथों से दोनों पादों को पादान्त मस्तक ऊर्ध्व का स्पर्श करे। सबकी महामुद्रा है—कर न्यास तथा अङ्ग न्यास करना चाहिए ॥३॥ और लाल हस्त में पुष्प को अस्त्र मन्त्र के द्वारा शोधन करे। कनिष्ठा को आदि में करके तर्जनी से अङ्गों का विन्यास करे ॥४॥ अब मैं हृदय कमल में कर्णिका में पूजन को बतलाता हूँ। हृदय से धर्म-ज्ञान-वैराग्य और ऐश्वर्य आदि की अर्चना करे ॥५॥ हृदय के द्वारा ही आवाहन और स्थापना, सम्मुखीकरण, सरोधन आदि पाद्य एवं अर्घ्य समर्पित करना चाहिए। आचमन, स्नपन एवं ही आधार के तुल्य पूजा करनी चाहिए ॥६॥ अब अग्नि कार्य की विधि को बतलाऊँगा। शस्त्र के द्वारा उल्लेखन करे—वर्म के द्वारा अभ्युक्षण और हृदय से शक्ति का न्यास करना चाहिए ॥७॥

> हृदि वा शक्तिगर्ते च प्रक्षिपेज्जातवेदसम्।
> गर्भाधानादिकं कृत्वा निष्कृतिञ्चास्य पश्चिमाम् ॥८
> हृदा हुत्वा सर्वकर्म शिवं साङ्गं तु होमयेत्।
> पूजयेन्मण्डले शम्भुं पद्मगर्भे गणाङ्कितम् ॥९
> मनुं शष्ठ्यन्तमष्टादि स्वाक्षिस्त्राध्यादिमण्डलम्।
> साक्षीन्द्रसूर्यगं सर्वं स्वादिवेदेन्दुवर्तनात् ॥१०
> आग्नेय्यां कारयेत् कुण्डमर्द्धचन्द्रनिभं शुभम्।
> अग्निशाम्भपरा शस्त्रहृदयादिगणोच्यते ॥
> अस्त्रं दिशामुपान्तेषु कर्णिकायां सदाशिवम् ॥११
> दीक्षां वक्ष्ये पञ्चतत्त्वे स्थिता भूम्यादिका परे।
> निवृत्तिर्मूं प्रतिष्ठा च विद्याग्निं शान्तिरश्मिन ॥१२
> शान्त्यतीतं भवेद्धोमे तत्परं शान्तमव्ययम्।

एकैकस्य शतं होममित्येवं पञ्च होमयेत् ॥
पश्चात् पूर्णाहुतिं दत्वा प्रसादेन शिवं स्मरेत् ॥ १३
प्रायश्चित्तविशुद्धयर्थमेकैकमाहुतिं क्रमात् ।
होमयेदस्त्रबीजेन एव दीक्षा समाप्यते ॥१४
यजनव्यतिरेकेण गोप्यं संस्कारमुत्तमम् ।
एवं संस्कार शुद्धस्य शिवत्वं जायते ध्रुवम् ॥१५

हृदय में अथवा शक्तिगर्त्त में अग्नि का प्रक्षेपण करे । गर्भाधानादि करके इसकी पश्चिम निष्कृति करनी चाहिए । हृदय के द्वारा समस्त कर्म करके फिर साङ्ग शिव का होम करे । मण्डल में पद्मगर्भ में सर्वाङ्कित शम्भु का पूजन करना चाहिए ॥८॥६॥ अष्ट आदि चौसठ के अन्त तक अक्षियों में स्वाध्यादि मण्डन को, अन्तरिक्ष के अक्षीन्द्र सूर्य में गमन करने वाले को, सबको आकाश की भाँति इन्दुवर्त्तन से आग्नेय दिशा में अर्धचन्द्र के सदृश परम शुभ कुण्ड की रचना करानी चाहिए । अग्नि शास्त्र में परायण शास्त्र हृदयादि गण कही जाती है । दिशाओं के उपान्तों में अस्त्र को और कर्णिका में सदाशिव का अर्चन करे ॥१०।११॥ अब पर पञ्चतत्व में स्थित भूम्यादिकी दीक्षा को बतलाता हूँ । निवृत्ति, भू प्रतिष्ठा, विद्याग्नि और अग्नि को शान्ति तथा शांति के पश्चात् होम में तत्पर अव्यय शान्त होता है । एक एक की सौ आहुतियों का होम होता है । इस प्रकार से पाँच होम करने चाहिए । इनके अनन्तर पूर्णाहुति देकर प्रसाद के द्वारा भगवान् शिव का स्मरण करना चाहिए ॥ १२। १३॥ प्रायश्चित की विशुद्धि के लिये क्रम से एक-एक आहुति अस्त्र बीज से होम करनी चाहिए । इस प्रकार से दीक्षा की समाप्ति की जाती है ॥१४॥ यजन के व्यतिरेक से उत्तम संस्कार को गुप्त रखना चाहिए । इस प्रकार से संस्कारों से शुद्ध को शिवत्व निश्चित ही प्राप्त हो जाता है ॥१५॥

१४—श्रीकृष्ण पूजन वर्णन

गोपालपूजां वक्ष्यामि भुक्तिमुक्ति प्रदायिनीम् ।
द्वारे धाता विधाता च गङ्गा यमुनया सह ॥१

शङ्खपद्मनिधी चैव शारङ्ग शरभ. श्रिया ।
पूर्वे भद्र सुभद्रो द्वौ दक्षौ चण्डप्रचण्डको ॥२
पश्चिमे बलप्रबलौ जयश्च विजयो यजेत् ।
उत्तरे श्रीश्चतुर्द्वारे गणो दुर्गा सरस्वती ॥३
क्षेत्रस्याग्न्यादिकोणेपु दिक्षु नारदपूर्वकम् ।
सिद्धो गुरुर्नलकूवर कोणे भागवत यजेत् ॥४
पूर्वे विष्णु विष्णुतपो विष्णुशक्ति समर्चयेत् ।
ततो विष्णुपरावार मध्ये शक्तिश्च कूर्मकम् ॥५
अनन्त पृथिवीधर्म ज्ञान वैराग्यमग्नित ।
ऐश्वर्य वायुपूर्वञ्च प्रकाशात्मानमुत्तरे ॥६
सत्वाय प्रकृतात्मने रजसे मोहरूपिणे ।
तमसे पद्माय यजेदहङ्कारकतत्वकम् ॥७
विद्यातत्व पर तत्व सूर्य्येन्दुवह्निमण्डलम् ।
विमलाद्या आसनञ्च प्राच्या श्री ह्री सपूजयेत् ॥
गोपीजवल्लभाय स्वाहान्तो मनुरुच्यते ॥८

सूतजी ने कहा—अब मैं आप लोगों को गोपाल की भोग तथा मोक्ष प्रदान कराने वाली पूजा के विषय बतलाता हूँ द्वार में धाता, विधाता और यमुना के साथ गङ्गा का यजन करना चाहिए ॥१॥ शङ्ख और पद्म निधियों को तथा शारङ्ग एव श्री के सहित शरभ का यजन करे। पूर्व दिशा मे भद्र, सुभद्र दो दक्ष चण्ड और प्रचण्डक, पश्चिम दिशा मे बल,प्रबल जय और विजय उत्तर मे श्री, चतुर्द्वार मे गण दुर्गा और सरस्वती, क्षेत्र के अग्नि आदि कोणों मे दिशाओ मे नारद के साथ सिद्ध गुरु एव कोण मे परम भागवत नल कूवर का यजन करना चाहिए ॥२।३।४॥ पूर्व मे विष्णु, विष्णुतप और विष्णु शक्ति की समर्चना करनी चाहिए। इसके अनन्तर विष्णु के परिवार की अर्चना करे और मध्य मे शक्ति और कूर्म का पूजन करना चाहिए ॥५॥ आग्नेयी दिशा मे अनन्त पृथ्वी--धर्म–ज्ञान और वैराग्य का यजन करे तथा वायुपूर्व ऐश्वर्य का

एवं उत्तर में प्रकाशात्मा का पूजन करे ॥६॥ प्रकृतात्मा सत्व के लिये—मोह रूपी रजोगुण के लिये और तमोगुण पद्म के लिये अहङ्कार तत्व का यजन करना चाहिए ॥७॥ विद्या तत्व, पर तत्व, सूर्य, इन्दु, वह्नि मण्डल, विमला आदि और आसन को प्राची (पूर्व दिशा में) में श्रीं ह्रीं से पूजित करे। 'गोपीजन वल्लभाय स्वाहा'—यह जिसके अन्त में है, ऐसा उसका मन्त्र कहा जाता है ॥८॥

> आचक्रञ्च सुचक्रञ्च विचक्रञ्च तथैव च ।
> त्रैलोक्यरक्षणं चक्रमसुरारिसुदर्शनम् ॥९
> हृदादिपूर्वकोणेषु अस्त्रं शक्तिञ्च पूर्वत ।
> रुक्मिणी सत्यभामा च सुनन्दा नाग्नजित्यपि ॥१०
> लक्ष्मणा मित्रवृन्दा च जाम्बवत्या सुशीलया ।
> शङ्खचक्रगदापद्म मुसलं शार्ङ्गमर्चयेत् ॥११
> खड्ग पाशाकुशं प्राच्यां श्रीवत्स कौस्तुभं यजेत् ।
> मुकुट वनमालाञ्च इन्द्राद्यान् ध्वजमुख्यकान् ॥१२
> कुमुदाद्यान्विष्वक्सेन कृष्णं श्रिया सहार्चयेत् ।
> जप्याद्ध्यानात्पूजनाच्च सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥१३

अब मन्त्रों को बतलाया जाता है—आचक्र, सुचक्र, विचक्र तथा त्रैलोक्य की रक्षा करने वाला असुरों के अरि भगवान् विष्णु के सुदर्शन चक्र का यजन करे ॥९॥ हृदादि पूर्व कोणों में शक्ति का पूजन करे। पूर्व में रुक्मिणी, सत्यभामा, सुनन्दा, नाग्नजिती, लक्ष्मणा, मित्र वृन्दा और सुशीला जाम्बवती इन आठ महा महिषियों के सहित शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, मुसल और शार्ङ्ग धनु, इन भगवान् के आयुधों का समर्चन करना चाहिए ॥१०।११॥ प्राची दिशा में खड्ग, पाश, अंकुश श्रीवत्स, कौस्तुभ मुकुट, वनमाला और इन्द्रादि ध्वज मुख्यों का यजन करे। कुमुदादि, विष्वक्सेन तथा श्री के सहित कृष्ण का अर्चन करना चाहिए। इस प्रकार से जाप से, ध्यान से पूजन में मानव अपने समस्त कामनाओं की प्राप्ति किया करता है ॥१२।१३॥

१५ – गायत्री न्यास

न्यासादिकं प्रवक्ष्यामि गायत्र्याश्छन्द एव च ।
विश्वामित्र ऋषिश्चैव सविता चाथ देवता ।।१
ब्रह्मशीर्षा रुद्रशिखा विष्णोर्हृदयसंश्रिता ।
विनियोगैकनयना कात्यायनसगोत्रजा ।।२
त्रैलोक्यचरणा ज्ञेया पृथिवीकुक्षिसंस्थिता ।
एवं ज्ञात्वा तु गायत्रीं जपेद् द्वादशलक्षकम् ।।३
त्रिपदाऽष्टाक्षरा ज्ञेया चतुष्पादा षडक्षरा ।
जपेच्च त्रिपदा प्रोक्ता अर्चने च चतुष्पदा ।।४
न्यासे जपे तथा ध्याने अग्निकार्ये तथार्चने।
गायत्री विन्यसेन्नित्यं सर्वपापप्रणाशिनीम् ।।५

श्री हरि ने कहा–अब हम गायत्री के न्यास आदि को बतलाते हैं। पर गायत्री के छन्द भी बतलायेंगे। गायत्री के विश्वामित्र ऋषि हैं और इसके देवता सविता हैं। ब्रह्म के शीष वाली यह रुद्र की शिखा वाली है । यह गायत्री विष्णु के हृदय में संश्रित रहती है। इसका विनियोग एक नेत्र है तथा कात्यायन की सगोत्रजा है ।।१।२।। गायत्री को त्रैलोक्य के चरण वाली और पृथिवी की कुक्षि में संस्थित रहने वाली समझना चाहिए। गायत्री का इस प्रकार का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके तथा स्वरूप को जानकर ही इसका बारह लक्ष जप करना चाहिए ।।३।। इसे तीन पदों वाली, आठ अक्षरों वाली चार पादों से युक्त तथा षडक्षरा जानना चाहिए। त्रिपदा का जप करना चाहिए और अर्चन में चतुष्पदा यह बताई गई है ।।४।। न्यास में, जप में, ध्यान में, अग्नि कार्य में अर्थात् हवन में तथा अर्चन में इस समस्त पापों के प्रकृष्ट रूप से नाश कर देने वाली गायत्री का नित्य ही विन्यास करना चाहिए ।।५।।

पादाङ्गुष्ठे गुल्फमध्ये जङ्घयोर्विद्धि जानुनोः ।
ऊर्वोर्गुह्ये च वृषणे नाड्या नाभौ तनूदरे ।।६

स्तनयोर्हृदि कण्ठोष्ठमूले तालुनि बाहयोः ।
नेत्रे भ्रुवोर्ललाटे च पूर्वस्यां दक्षिणोत्तरे ॥
पश्चिमे मूर्ध्नि चाकारं न्यसेद्वर्णान् वदाम्यहम् ॥७
इन्द्रनीलञ्च वह्निञ्च पीतं श्यामञ्च कापिलम् ।
श्वेतं विद्युत्प्रभं तारं कृष्णं रक्तं क्रमेण तत् ॥८
श्यामं शुक्लं तथा पीतं श्वेतं वै पद्मरागवत् ।
शङ्खवर्णं पाण्डरञ्च रक्तञ्चासवसन्निभम् ॥
अर्कवर्णं सम सौम्यं शशभं श्वेतमेव च ॥९
यद्यत्स्पृशति हस्तेन यच्च पश्यति चक्षुषा ।
पूतं भवति तत् सर्वं गायत्र्या न परं विदुः ॥१०

इस गायत्री के न्यास करने के स्थानों को बताते हुए कहते हैं कि पैरों के अँगूठे गुल्फ के मध्य में, दोनों जंघाओं में, जानुओं में, ऊरुओं में, गुह्य में वृषण में, नाडी में, नाभि में, शरीर के उदर में, स्तनों में, हृदय में, कण्ठ में ओष्ठ, मूल, तालु में, दोनों कंधों में, नेत्र में, भौंहों में और ललाट में न्यास करे। पूर्व, दक्षिण, उत्तर, पश्चिम तथा मूर्धा में आकार का न्यास करना चाहिए अब न्यास के वर्णों को मैं बताता हूँ ॥६॥७॥ इनका वर्ण इन्द्र नील और वह्नि के समान है—पीत, श्याम, कपिल, श्वेत, विद्युत् की प्रभा के तुल्य तार, कृष्ण और क्रम से रक्त वर्ण है ॥८॥ श्याम, शुक्ल, पीत, श्वेत पद्मराग मणि के समान है। शङ्ख वर्ण और पाण्डर वर्ण हैं तथा रक्त वर्ण आसव के तुल्य है। अर्क (सूर्य) के वर्ण के सम वर्ण है और शङ्ख की आभा के तुल्य सौम्य एवं श्वेत वर्ण होता है ॥९॥ जिस जिसका हाथ स्पर्श करता है और जो-जो नेत्र से देखता वह सभी पूत हो जाता है। गायत्री से पर अन्य कुछ भी नहीं है। यह गायत्री सर्वोपरि शिरोमणि मन्त्र है ॥१०॥

१६—सन्ध्याविधि

सन्ध्याविधिं प्रवक्ष्यामि शृणु पापविनाशनम् ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा सन्ध्यास्नानमुपक्रमेत् ॥१

सप्रणवा सव्याहृति गायत्री शिरसा सह ।
त्रि पठेदायतप्राण प्राणायाम स उच्यते ॥२
मनोवाक्कायज दोप प्राणायामैर्दहेद् द्विज ।
तस्मात् सर्वेपु कालेपु प्राणायामपरो भवेत् ॥३
सायमग्निश्च मेत्युक्त्वा प्रात सूर्येत्यप पिबेत् ।
आप पुनन्तु मध्याह्ने उपस्पृश्य यथाविधि ॥४
आपोहिष्ठेत्यृचा कुर्यान्मार्जन तु कुशोदकै ।
प्रणवेन तु सयुक्त क्षिपेद्वारि पदे पदे ॥५
रजस्तम स्वमोहोत्थान् जागृत्स्वप्नसुपुप्तिजान् ।
वाङ्मन कर्मजान् दोपान् नवैतान्नवभिर्दहेत् ॥६
समुद्धृत्योदक पाणौ जप्त्वा च द्रुपदा क्षिपेत् ।
त्रिपडष्टौ द्वादशधा वर्त्तयेदघमर्पणम् ॥७
उदुत्य चित्रमित्याभ्यामुपतिष्ठेद् दिवाकरम् ।
दिवारात्रौ च यत् पाप सर्व नश्यति तत्क्षणात् ॥८

श्री हरि ने कहा—हे रुद्र ! अब मैं तुमको सन्ध्या की विधि बतलाता हूँ जो कि अघो का नाश करने वाली होती है। तीन वार प्राणायाम करके फिर सन्ध्या के स्नान का उपक्रम करना चाहिए ॥१॥ आयत प्राण वायु वाला होते हुए तीन वार प्रणव व्याहृतियाँ और शिर के सहित गायत्री का जप करे, इसी को प्राणायाम कहा जाता है ॥२॥ ब्राह्मण को प्राणायामो के द्वारा मन-वाणी और शरीर से उत्पन्न होने वाले दोपो का दाह कर देना चाहिए। इस-लिये ब्राह्मण को सब कालो मे प्राणायाम परायण होना चाहिए ॥३॥ सन्ध्या के समय मे 'अग्निश्च मे'—इस मन्त्र का उच्चारण करके, प्रात काल मे "सूर्यश्च"—इत्यादि मन्त्र को कह कर और मध्याह्न में 'आप पुनन्तु'—इत्यादि मन्त्र को बोल कर यथाविधि उपस्पर्शन करना चाहिए ॥४॥ इसके अनन्तर "आपोहिष्ठा मयोभुव" इत्यादि ऋचा से कुशोदक से मार्जन करना चाहिए। प्रणव से सयुक्त वारि को पद पद मे प्रक्षिप्त करे। ५॥ रजोगुण, तमोगुण से

होने वाले अपने मोह के कारण उठे हुए—जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति काल में उत्पन्न होने वाले तथा वाणी, मन और कर्म से समुत्पन्न हुए दोषों को जो नौ प्रकार के होते हैं उनको इन 'आपोहिष्ठा'—इत्यादि नौ मन्त्रों के द्वारा दग्ध कर देना चाहिए ॥६॥ फिर हाथ में जल को लेकर "द्रुपदादिव"—इत्यादि मन्त्र का उच्चारण एवं जाप करके उस जल को प्रक्षिप्त करना चाहिए। तीन बार, छै बार, आठ बार और बारह बार अघमर्षण करना चाहिए ॥७॥ 'उदुत्य', 'चित्रम्'—इत्यादि मन्त्रों के द्वारा सूर्यदेव का उपस्थान करना चाहिए। इस प्रकार से दिन और रात्रि के समय में जो भी कुछ पाप किया है वह सभी उसी क्षण में नष्ट हो जाया करता है ॥८॥

पूर्वं सन्ध्या जपस्तिष्ठेत् पश्चिमामुपविश्य च ।
महाव्याहृतिसंयुक्ता गायत्री प्रणवान्विताम् ॥९
दशभिर्जन्मजनितं शतेन तु पुराकृतम् ।
त्रियुगं तु सहस्रेण गायत्री हन्ति दुष्कृतम् ॥१०
रक्ता भवति गायत्री सावित्री शुक्लवर्णिका ।
कृष्णा सरस्वती ज्ञेया सन्ध्यात्रयमुदाहृतम् ॥११
ॐ भूर्विन्यस्य हृदये ॐ भुवः शिरसि न्यसेत् ।
ॐ स्वरिति शिखायाञ्च गायत्र्याः प्रथमं पदम् ॥१२
विन्यसेत्कवचे विद्वान् द्वितीयं नेत्रयोर्न्यसेत् ।
तृतीयेनाङ्गविन्यासं चतुर्थं सर्वतो न्यसेत् ॥१३
सन्ध्याकाले तु विन्यस्य जपेद्वै वेदमातरम् ।
शिवस्तस्यास्तु सर्वाङ्गं प्राणायामपरं न्यसेत् ॥१४

इस विधि से पूर्व अर्थात् प्रातःकाल की सन्ध्या को जप करते हुए खड़ा होकर पूर्ण करे और पश्चिम सन्ध्या को भी बैठकर करे। महा व्याहृतियों से युक्त तथा प्रणव से समन्वित गायत्री मन्त्र का एकसौ वार जाप से पहिला किया हुआ दस जन्मों का समुत्पन्न पाप नष्ट हो जाता है। एक सहस्र के जाप करने पर सावित्री त्रियुग के दुष्कृत का नाश कर दिया करती है ॥९।१०॥

गायत्री का रक्त वर्ण होता है—सावित्री का शुक्ल वर्ण होता है तथा सरस्वती का कृष्ण वर्ण माना जाता है। ये तीनों काल की सन्ध्याओं का विवरण बता दिया गया है। अब न्यास का प्रकार बताया जाता है—ॐ भूः—इसका विन्यास हृदय में करे अर्थात् 'ॐ भूः हृदयाय नमः'—यह उच्चारण करके हृदय का स्पर्श करना चाहिए। इसी विधि से 'ॐ भुवः'—इसका शिर में न्यास करे—'ॐ स्वः' इसका शिखा में विन्यास करना चाहिए। इस प्रकार से गायत्री के प्रथम पद का विन्यास करे। प्रथम हृदय के न्यास में—'नमः' का प्रयोग, द्वितीय में 'स्वाहा' का और तृतीय में 'वषट्'—का प्रयोग करे। इसके पश्चात् विद्वान् को कवच में न्यास करना चाहिए और द्वितीय विन्यास नेत्रों में करे तथा तृतीय से अङ्ग का विन्यास करे और चतुर्थ का सब ओर करे ॥११।१२।१३॥ सन्ध्या की वेला में इस तरह से विन्यास करके फिर वेदमाता का विशेष रूप से जप करना चाहिए। उसके समस्त अङ्ग में शिव होवे। प्राणायाम पर न्यास करे ॥१४॥

त्रिपदा या तु गायत्री ब्रह्मविष्णुमहेश्वरी।
विनियोगमृषिच्छन्दो ज्ञात्वा तु जपमारभेत् ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥१५
परोरजसि सारं तं तुरीयपदमीरितम्।
तं हन्ति सूर्य्यं सन्ध्यायां नोपास्ति कुरुते तु यः ॥१६
तुरीयस्य पदस्यापि ऋषिर्निर्मल एव च।
छन्दस्तु देवी गायत्री परमात्मा च देवता ॥१७

ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के स्वरूप वाली जो त्रिपदा गायत्री है उसका विनियोग, ऋषि और छन्द का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके ही जप का आरम्भ करना चाहिए। गायत्री का इस प्रकार से विधि पूर्वक जप करने वाला व्यक्ति सब तरह के पापों से छुटकारा पाकर अन्त में ब्रह्मलोक की प्राप्ति किया करता है ॥१५॥ जो तुरीय पद कहा गया है उसको परोरज में सार बताया गया है। सन्ध्या में सूर्य उसका हनन कर देता है जो कि सन्ध्या समय में उपासना नहीं

किया करता है। अतः सन्ध्योपासना करना नितान्त आवश्यक है। तुरीय पद का भी ऋषि निर्मल होता है। उसको छन्द गायत्री होता है और परमात्मा देवता है ॥१६॥१७॥

१६—गायत्री माहात्म्य

गायत्री परमा देवी भुक्तिमुक्तिप्रदा च ताम्।
यो जपेत्तस्य पापानि विनश्यन्ति महान्त्यपि ॥१
गायत्रीकल्पमाख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदञ्च तत्।
अष्टोत्तर सहस्र वा अथवाऽष्टशत जपेत् ॥
त्रिसन्ध्य ब्रह्मलोकी स्यात्स्नानजप्त जले पिबेत् ॥२
सन्ध्यायां सर्वपापघ्नी देवीमावाह्य पूजयेत्।
भूर्भुव स्व स्वमन्त्रेण युता द्वादशनामभिः ॥३
गायत्र्यै नम सावित्र्यै सरस्वत्यै नमो नम।
वेदमात्रे च साकृत्यै ब्रह्माणी कौशिकी क्रमात् ॥४
साध्व्यै सर्वार्थसाधिन्यै सहस्राक्ष्यै च भूर्भुव।
स्वरेव जुहुयादग्नौ समिधाऽऽज्य हविष्यकम् ॥५
अष्टोत्तरसहस्र वाप्यथवाष्टशत घृतम्।
धर्मकामादिसिद्धयर्थं जुहुयात् सर्वकर्मसु ॥६
प्रतिमा चन्दनस्वर्णनिर्मिता प्रतिपूज्य च।
यथा लक्ष तु जप्तव्य पयोमूलफलाशनैः।
अयुतद्वयहोमेन सर्वान् कामनावाप्नुयात् ॥७
उत्तरे शिखरे जाता भूम्यां पर्वतवासिनी।
ब्रह्मणा समनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम् ॥८

श्री हरि ने कहा—गायत्री परमा अर्थात् सर्वोच्च देवी है। यह सांसारिक समस्त भोग और अन्त में मोक्ष प्रदान करने वाली है। जो मनुष्य इसका जप करता है उसके चाहे बड़े-से-बड़े पाप क्यों न हों सभी समूल विनष्ट हो जाया

करते हैं ॥१॥ अब मैं गायत्री के कल्प को बताऊँगा वह कल्प भुक्ति तथा मुक्ति दोनों को देने वाला होता है । गायत्री को एक सौ आठ सहस्र बार अथवा आठ सौ जपना चाहिए । तीन काल की सन्ध्या में गायत्री का जाप करने से ब्रह्मलोक के प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है । सौ बार जप किया हुआ जल पीना चाहिए ॥२॥ सन्ध्या में समस्त पापों का नाश करने वाली देवी का आवाहन करके उसका पूजन करना चाहिए । 'ॐ भूर्भुव स्व" इस स्वमन्त्र से उसके द्वादश नामों से गायत्री का यजन करना चाहिए । गायत्री के लिये नमस्कार है । सावित्री के लिये नमस्कार है-सरस्वती के लिये बारम्बार नमस्कार है । वेदों की माता के लिये नमस्कार है । साकृति के लिये नमस्कार है । ब्रह्माणी के लिये नमस्कार है । कौशिकी के लिये नमस्कार है । इस क्रम से साध्वी के लिये नमस्कार है । सर्व अर्थों के साधन करने वाली के लिये नमस्कार है और सहस्र नेत्रा वाली के लिये नमस्कार है । फिर भूर्भुव स्व - इससे ही अग्नि में समिधा आज्य (घृत) और हवि का हवन करना चाहिए ॥३-४-५ अष्टोत्तर शत अथवा आठ सौ की आहुतियाँ समस्त कर्मों में धर्म आदि कामादि की सिद्धि के लिये अग्नि में देनी चाहिए ॥६॥ गायत्री की प्रतिमा चन्दन अथवा सुवर्ण की बनवा कर उसका पूजन करे । गायत्री का एक लाख जप करना चाहिए । फल मूल और पय के द्वारा दो अयुत अर्थात् बीस हजार होम करने पर मानव सभी कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करता है ॥७॥ उत्तर शिखर में समुत्पन्न हुई भूमि में हे पर्वत पर निवास करने वाली ! ब्राह्मणों के द्वारा समनुज्ञात होती हुई हे देवी ! अब आप सुखपूर्वक पधारिये-इस प्रकार से गायत्री का विसर्जन अन्त में करना चाहिए ॥८॥

१८—ब्रह्म-ध्यान

पूजयित्वा पवित्रार्च ब्रह्म ध्यात्वा हरिर्भवेत् ।
ब्रह्मध्यानं प्रवक्ष्यामि मायायन्त्रप्रमर्दकम् ॥१
यच्छेद्वाङ् मनसा प्राज्ञस्तं यजेद् ज्ञानमात्मनि ।
ज्ञानं महति सयच्छेद्य इच्छेज्ज्ञानमात्मनि ॥२

देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्जितम् ।
वर्जित भूततन्मात्रैं गुणजन्मादानादिभिः ॥३
स्वप्रकाश निराकार सदानन्दमनादि यत् ।
नित्य शुद्ध बुद्धमुद्ध सत्यमानन्दमद्वयम् ॥४
तुरीयमक्षरं ब्रह्म अहमस्मि पर पदम् ।
अह ब्रह्मोत्यवस्थान समाधिरपि गीयते ॥५
आत्मान रथिन विद्धि शरीर रथमेव तु ।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयास्तेषु गोचरा ॥६
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तो भोक्तेत्याहुर्मनीषिण ।
यस्तु विज्ञानवाह्नेन युक्तेन मनसा सदा ।
स तु तत्पदमाप्नोति स हि भूयो न जायते ॥७

श्री हरि ने कहा—पवित्रादि के द्वारा पूजन करके और ब्रह्म का ध्यान करके हार हो जाना है । अब ब्रह्म के ध्यान को बतलाता हूँ जो कि इस माया के बन्ध का प्रमर्दन कर देने वाला है । प्राज्ञ पुरुष को वाणी और मन के द्वारा उसका यजन करना चाहिए । आत्मा मे ज्ञान का उपयोग करे । जो आत्मा मे ज्ञान की इच्छा रखता है उसे महान् मे ज्ञान को लगा देना चाहिये ॥१।२॥ देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहङ्कार से रहित, भूत, तन्मात्रा, गुण जन्म और अदान आदि से हीन, अपने आपमे प्रकाश वाला, आकार से शून्य, सदा आनन्द स्वरूप, अनादि, नित्य, शुद्ध बुद्ध, वृद्ध, सत्य, आनन्दमय, अद्वय, तुरीय और अक्षर ब्रह्म-पर यह मैं ही हूँ। मैं ब्रह्म हूँ-यह अवस्थान तथा समाधि यह भी गाया जाता है ॥३।४।५॥ इस आत्मा को रथ मे स्थित रथी तथा इस शरीर को रथ समझना चाहिये । इस शरीर मे जो इन्द्रियाँ हैं वे इस शरीर रूपी रथ को चलाने वाले अश्व हैं और समस्त इन्द्रियों के विषय गोचर पदार्थ होते हैं। ॥६॥ विद्वान् पुरुष मन, इन्द्रियों से युक्त मनस्वी ही भोक्ता होता है—ऐसा कहते हैं । जो सदा विज्ञान-वाहन मन से युक्त होता है वही उस पद को प्राप्त होता है और फिर वह जन्म ग्रहण नहीं किया करता है ॥७॥

विज्ञानसारथिर्यस्य मन प्रग्रहवान्नर ।
स्वहिन्या पारमाप्नोति तद्विष्णो परम पदम् ॥८
अहिंसादि यम प्रोक्त शौचादि नियम स्मृत ।
पद्माद्युक्त आसनञ्च प्राणायामो मरुज्जय ॥९
प्रत्याहारो जय प्रोक्ता ध्यानमीश्वरचिन्तनम् ।
मनोधृतिर्धारणास्यात्समाधिर्ब्रह्मणि स्थिति ॥१०
अमूर्त्तो चेट्टणी स्यात् ततो मूर्त्ति विचिन्तयेत् ।
हृत्पद्मकर्णिकामध्ये शखचक्रगदाधर ॥११
श्रीवत्सकौस्तुभयुतो वनमालाश्रिया युत ।
नित्य शुद्धो बुद्धियुक्त सत्यानन्दाह्वय पर ॥१२
आत्माऽह परम ब्रह्म परमज्योतिरेव तु ।
चतुर्विशतिमूर्त्ति स शालग्रामशिलास्थित ॥१३
द्वारवादिशिलासस्था ध्येय पूज्योऽपि वा हरि ।
मनसोऽभीप्सित प्राप्य देवो वैमानिको भवेत ॥
निष्कामो मुक्तिमाप्नोति मूर्त्ति ध्यायन्स्तुवन् जपन् ॥१४

जिसका सारथी अर्थात् इस शरीर रूपी रथ के इन्द्रिय स्वरूपी अश्वों का चलाने वाला ड्राइवर विज्ञान होता है वह मनुष्य मन रूपी प्रग्रह (बागडोर) को हाथ रखने वाला होकर इस स्वहिनी के पार लग जाया करता है अर्थात् इस ससार से पार हो जाया करता है और वह ही विष्णु का परम पद होता है ॥८॥ अहिंसा आदि को यम कहा जाता है और शौच आदि नियम कहे जाया करते हैं। पद्म आदि को आसन कहते है तथा वायु पर विजय प्राप्त करने को ही प्राणायाम कहा जाता है । इस प्रक्रिया पर जय प्राप्त कर लेने की स्थिति को ही 'प्रत्याहार'–इस नाम से योग के एक अङ्ग को पुकारा जाता है। इस प्रकार से ईश्वर के चिन्तन करने को ध्यान कहते हैं। मन की धृति का अर्थात् मन का वहिन कर लेने का नाम ही धारणा कही जाती है। इस तरह से मन को एकाग्र करके जो ब्रह्म में स्थिति कर ली जाती है वह ही समाधि कही जाया करती है ॥९।१०॥ यदि निराकार ब्रह्म का ध्यान नहीं

बन पावे तो साकार ब्रह्म का ही चिन्तन करना चाहिये। ध्यान करने वाले पुरुष को ऐसा ध्यान करना चाहिए कि उनके हृदय रूपी कमल में जो उसके मध्य भाग में कर्णिका है वहाँ पर शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म इन चारों आयुधों के धारण करने वाले प्रभु हैं जो श्रीवत्स एवं कौस्तुभ को धारण किये हुए हैं तथा वनमाला पहिने हुए हैं। उनका स्वरूप नित्य, शुद्ध, बुद्धियुक्त, सत्य, पर एवं आनन्दमय है ॥११।१२॥ मैं आत्मा ही परमब्रह्म एवं परम ज्योति हूँ। चौबीस मूर्त्तियों वाला मैं ही शालग्राम की शिला में भी स्थित रहता हूँ ॥१३॥ द्वारका आदि की शिला में स्थित रहने वाला भी हरि ध्यान करने के तथा पूजा के योग्य है, जो भी मेरी मूर्त्ति ध्यान करने वाले को अभीष्ट हो उसी का ध्यान करने से वह अभीप्सित की प्राप्ति कर लेता है और वैमानिक देव हो जाता है। तात्पर्य यह है कि स्वर्गादि का अधिकारी देव बन जाता है। जो कामनाओं से रहित होकर मेरी मूर्त्ति का ध्यान किया करता है वह परम पद मुक्ति को प्राप्त करता है चाहे मेरा ध्यान करे, स्तवन करे या मेरा जाप करे ॥१४॥

१६-शालग्राम लक्षण

अग्न्ङ्गारकथयिष्यामि शालग्रामस्य लक्षणम् ।
शालग्रामशिलास्पर्शात्कोटिजन्माघनाशनम् ॥१
शङ्खचक्रगदापद्मी केशवाख्यो गदाधर ।
साब्जकौमोदकीचक्रशङ्खो नारायणो विभु ॥२
सच क्राब्जादी माधव श्रीगदाधर ।
गदाब्जशङ्खचक्री वा गोविन्दोऽर्च्यो गदाधर ॥३
पद्मशङ्खारिगदिने विष्णुरूपाय ते नम ।
सशङ्खाब्जगदाचक्रमधुसूदनमूर्त्तये ॥४
नमो गदारिशङ्खाब्जमूर्त्तिस्त्रिविक्रमाय च ।
सारिकौमोदकीपद्मशङ्खवामनमूर्त्तये ॥५
चक्राब्जशङ्खगदिने नम श्रीधरमूर्त्तये ।
हृषीकेशायाब्जगदाशङ्खिने चक्रिणे नम ॥६

साब्जचक्रगदाशंखपद्मनाभस्वरूपिणे ।
दामोदरशखचक्रगदापद्मिन्नमोनम ।।७
सारिशखगदाब्जाय वासुदेवाय वै नम. ।
शखाब्जचक्रगदिने नम. सङ्कर्षणाय च ।।८

श्री हरि ने कहा—अब मैं प्रसङ्गवश शालग्राम के लक्षण बतलाता हूँ। शालग्राम की शिला का बहुत ही अधिक महत्त्व है। शालग्राम की शिला के स्पर्श करने से करोडो जन्मो के अघो का नाश हो जाता है ।।१।। शङ्ख, चक्र, पद्म और गदा के धारण करने वाले भगवान् का नाम केशव है। कमल, कौमोदकी, चक्र और शङ्ख धारी विभु का नाम नारायण है ।।२।। चक्र, शङ्ख, पद्म ओर गदा वाले श्रीगदाधर का नाम माधव है। गदा, अब्ज, शङ्ख और चक्र के धारण करन वाले गदाधर गोविन्द अर्चना के योग्य है ।।३।। पद्म, शङ्ख और शत्रु की नाशक गदा के धारण करने वाले विष्णु के स्वरूप आपके लिये नमस्कार है। शङ्ख, चक्र, अब्ज, गदा के सहित मधु दैत्य के सूदन करने वाली मूर्ति के लिये नमस्कार है ।।४।। गदादि, शङ्ख अब्ज की मूर्ति त्रिविक्रम के लिये प्रणाम है। सारि, कौमोदकी अर्थात् आरके सहित कौमोदकी गदा, पद्म और शङ्ख वाले वामन मूर्ति वाले आपको नमस्कार है। चक्र, अब्ज, शङ्ख और गदा वाले श्रीधर मूर्ति को नमस्कार है। हृषीकेश अर्थात् विषयेन्द्रियों के स्वामी, अब्ज, गदा और शङ्खधारी चक्री के लिए नमस्कार है ।।५।६।। अब्ज, चक्र, गदा और शङ्ख के सहित पद्मनाभ के स्वरूप वाले–हे दामोदर ! हे शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारिन् ! आपके लिए बारम्बार नमस्कार है ।।७।। सारि, शङ्ख, गदा और अब्ज के सहित वासुदेव के लिए प्रणाम है। शङ्ख, अब्ज, चक्र और गदा के धारण करने वाले सङ्कर्षण के लिए प्रणाम है ।।८।।

सुदासमुगदाब्जारिधृते प्रद्युम्नमूर्तये ।
नमोऽनिरुद्धाय गदाशङ्खाब्जारिविधारिणे ।।९
साब्जशङ्खगदाचक्रपुरुषोत्तममूर्त्तये ।
नमोऽधोक्षजरूपाय गदाशङ्खारिपद्मिने ।।१०

नृसिंहमूर्त्तये पद्मगदाशङ्खारिधारिणे ।
पद्मारिशङ्खगदिने नमोऽस्त्वच्युतमूर्त्तये ॥११
सशङ्खचक्राब्जगदं जनार्दनमिहानये ।
उपेन्द्र सगदं सारिं पद्मशङ्खिन्नमो नमः ॥१२
सुचक्राब्जगदाशङ्खयुक्ताय हरिमूर्त्तये ।
सगदाब्जारिशङ्खाय नमः श्रीकृष्णमूर्त्तये ॥१३
शालग्रामशिलाद्वारगतलग्नद्विचक्रधृक् ।
शुक्लाभो वासुदेवाख्यः सोऽव्याद्वः श्रीगदाधरः ॥१४
लग्नद्विचक्रो रक्ताभः पूर्वभागस्तु पद्मभृत् ।
सङ्कर्षणोऽथ प्रद्युम्नः सूक्ष्मचक्रस्तु पीतकः ॥१५
सदीर्घः सशिरश्छिद्रो योऽनिरुद्धस्तु वर्तुलः ।
नीलो द्वारि निरेखश्च अथ नारायणोऽसितः ॥१६

सुन्दर शङ्ख, सुन्दर गदा, अब्ज और अरि के धारण करने वाले प्रद्युम्न की मूर्ति आपके लिए नमस्कार है तथा गदा, शङ्ख, अब्ज और अरि के विधारी अनिरुद्ध के लिए नमस्कार है ॥९। अब्ज, शङ्ख, गदा, चक्र के सहित पुरुषोत्तम मूर्ति वाले के लिए प्रणाम है। गदा, अरि, शङ्ख और पद्म वाले अधोक्षज रूप वाले के लिए प्रणाम है ॥१०॥ पद्म, गदा, शङ्ख और अरि के धारण करने वाले नृसिंह मूर्ति के लिये नमस्कार है। पद्म, अरि, शङ्ख तथा गदा वाले अच्युत मूर्ति भगवान् को नमस्कार है ॥११॥ शङ्ख, चक्र, अब्ज, गदा से समन्वित भगवान् जनार्दन को यहाँ लाता हूँ। गदा और अरि के सहित उपेन्द्र को हे पद्म और शङ्ख के धारी ! बारम्बार नमस्कार है ॥१२॥ सुन्दर चक्र अब्ज, गदा और शङ्ख से युक्त हरि की मूर्ति के लिये प्रणाम है। गदा, अब्ज, अरि और शङ्ख से संयुत भगवान् श्रीकृष्ण मूर्ति के लिए नमस्कार है ॥१३॥ शालग्राम शिला के द्वार पर गत एवं लग्न दो चक्र के धारण करने वाले, शुक्ल आभा से युक्त वासुदेव नाम वाले श्री गदाधर हैं वह भगवान् हमारी रक्षा करें। ॥१४॥ लग्न दो चक्र वाले, रक्त आभा से युक्त, पूर्व भाग में पद्मभृत् सङ्कर्षण तथा सूक्ष्म चक्र वाले, पीत वर्ण से युक्त प्रद्युम्न, सदीर्घ तथा शिरश्छिद्र से सम-

न्वित जो वर्त्तुल अनिरुद्ध, द्वार पर नील, तीन रेखा वाले असित वर्ण से युक्त नारायण रक्षा करें ॥१५।१६॥

मध्ये गदाकृती रेखा नाभिचक्रो महोन्नत. ।
पृथुवक्षो नृसिंहो व कपिलोऽव्यात्त्रिबिन्दुक ॥१७
अथवा पञ्चबिन्दुस्तत्पूजन ब्रह्मचारिणा ।
वराहशक्तिलिङ्गोऽव्याद्विषमद्वयचक्रक ॥१८
नीलस्त्रिरेखः स्थूलोऽथकूर्ममूर्त्ति स विन्दुमान् ।
कृष्ण स वर्त्तुलावर्त्त पातु वो नतपृष्ठक ॥१९
श्रीधर पञ्चरेखोऽव्याद्वनमाली गदाङ्कित ।
वामनो वर्त्तुलो ह्रस्वो वामचक्र सुरेश्वर ॥२०
नानावर्णोऽनेकमूर्तिर्नागभोगी त्वनन्तक ।
स्थूलो दामोदरो नीलो मध्ये चक्र सुनीलक ॥२१
सङ्कीर्णद्वारको वाव्यादथ ब्रह्मा सुलोहित ।
सदीर्घरेख शुषिर एकचक्राम्बुज पृथु ॥२२
पृथुच्छिद्र स्थूलचक्र कृष्णो बिन्दुश्च विन्दुमत् ।
हयग्रीवोऽङ्कुशाकार पञ्चरेख सकौस्तुभ ॥२३
वैकुण्ठो मणिरत्नाभ एकचक्राम्बुजाऽसित ।
मत्स्यो दीर्घोऽम्बुजाकारो द्वाररेखश्च पातु व ॥२४
रामचक्रो दक्षरेख श्यामो वोऽव्यात्त्रिविक्रम ।
शालग्रामे द्वारकाया स्थिताय गदिने नम ॥२५
एकद्वारे चतुश्चक्र वनमालाविभूषितम् ।
स्वर्ण रेखासमायुक्त गोष्पदेन विराजितम् ।
कदम्बकुसुमाकार लक्ष्मीनारायणोऽवतु ॥२६

मध्य म गदा की म ा़ति वा ी रेखा, नाभिचक्र, महान् उन्नत, पृथु वक्ष वाले नृसिंह, त्रिबिन्दु कपिल हमारी रक्षा करे ॥१७॥ अथवा पञ्च बिन्दु ब्रह्मचारी का वह पूजन, व ाह शक्ति चिह्न विषमद्वय चक्रक रक्षा करें ॥१८॥ नील-तीन रेखा स युक्त, स्थूल, कूर्म मूर्ति, विन्दुमान्, वर्त्तुलावर्त्तक नत पृष्ठ

वाले वह कृष्ण हमारी रक्षा करें ।।१६।। श्रीधर, पाँच रेखा वाले, वनमाली, गदा से अङ्कित, वर्तुल, वामनह्रस्व, वामचक्र, सुरेश्वर, नाना वर्ण से युक्त, अनेक मूर्ति वाले, नाग भोगी, अनन्तक, स्थूल, दामोदर, नील—मध्य में सुनीलक चक्र तथा सङ्कीर्ण द्वार वाला रक्षा करे । इसके अनन्तर सुलोहित ब्रह्मा, दीर्घ-रेखा से युक्त, सुषिर, एक चक्र और अम्बुज वाले, पृथु, पृथु छिद्र वाले, स्थूल चक्र, कृष्ण, विन्दु, विन्दुमत् हयग्रीव, अङ्कुशाकार, पञ्चरेख, कौस्तुभ से युक्त, वैकुण्ठ, मणिरत्नाभ, एक चक्र, अम्बुज असित, मत्स्य, दीर्घ, अम्बुजाकार और द्वार रेख हमारी रक्षा करे ।।२० से २४।। रामचक्र, दक्षरेख, श्याम और त्रिविक्रम हमारी रक्षा करें । शालग्राम में, द्वारका में स्थित गदा वाले के लिये नमस्कार है । एक द्वार में चार चक्र वाले, वनमाला से विशेष रूप से भूषित स्वर्ण रेखा से समायुक्त, गोप्पद से विराजित और कदम्ब के कुसुम के आकार वाले की भगवान् लक्ष्मीनारायण रक्षा करें ।।२५।२६।।

एकेन लक्षितो योऽव्याद् गदाधारी सुदर्शन. ।
लक्ष्मीनारायणो द्वाभ्या त्रिभिर्यूस्त्रिविक्रम ।।२७
चतुर्भिश्च चतुर्व्यूहो वासुदेवश्च पञ्चभि ।
प्रद्युम्न षड्भिरेव स्यात्सङ्कर्षण इतस्तन ।।२८
पुरुषोत्तमोऽष्टाभि स्यान्नवव्यूहो नवाङ्कित ।
दशावतारो दशभिरनिरुद्धोऽवतादथ ।।२९
द्वादशात्मा द्वादशभिरत ऊर्ध्वमनन्तक ।
विष्णोर्मूर्तिमय स्तोत्र य पठेत्स दिव व्रजेत् ।।३०
ब्रह्मा चतुर्मुखो दण्डी कमण्डलुयुगान्वित. ।
महेश्वर पञ्चवक्त्रो दशबाहुर्वृषध्वज ।।३१
यथायुधस्तथा गौरी चण्डिका च सरस्वती ।
महालक्ष्मीर्मातरश्च पद्महस्तो दिवाकर. ।।३२
गजास्यश्च गण. स्कन्द षण्मुखोऽनेकधा गुणा ।
एतेऽर्चिता स्थापिताश्च प्रासादे वास्तुपूजिते ।।
धर्मार्थकाममोक्षाद्या. प्राप्यन्ते पुरुषेण च ।।३३

एक से लक्षित जो गदाधारी सुदर्शन भगवान् है वह आपकी रक्षा करे। दो से लक्ष्मीनारायण, तीन मूर्तियों से युक्त त्रिविक्रम भगवान् रक्षा करे। चार से चतुर्व्यूह, पाँच से भगवान् वासुदेव, छः से प्रद्युम्न और इधर-उधर भगवान् सङ्कर्षण रक्षा करे। आठ से भगवान् पुरुषोत्तम आपकी रक्षा करे। दस प्रकार से नवाङ्कित नव व्यूह होते हैं। दश से दशावतार वाले भगवान् अनिरुद्ध रक्षा करें। द्वादश आत्मा वाले जो बारह से युक्त है रक्षा करें। अन तक भगवान् ऊपर से रक्षा करे। इस भगवान् के मूर्ति स्वरूप इस स्तोत्र का जो पाठ किया करता है वह दिव लोक को प्राप्त होता है ॥२७ से ३०॥ ब्रह्मा चार मुख वाले दण्डी और दो कमण्डलुओं से युक्त हैं। महेश्वर पाँच मुख वाले हैं और वृषध्वज दश बाहुओं से युक्त है ॥३१॥ जिस प्रकार से यह आयुधों से युक्त हैं वैसे ही गौरी, चण्डिका और सरस्वती देवी तथा महालक्ष्मी माताएं हैं। दिवाकर पद्म हाथ में धारण करने वाले हैं। गज के समान मुख वाले गण अर्थात् गणेश हैं छः मुखों से युक्त स्कन्द हैं। ये इस तरह अनेक प्रकार के गुण है ये सब स्थापित एवं समर्चित होते हैं और प्रासाद—में वास्तु का पूजन किये जाने पर पुरुष के द्वारा धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष आदि सब प्राप्त किये जाया करते हैं ॥३२।३३।

२०—वास्तुयाग-विधि

वास्तु सङ्क्षेपतो वक्ष्ये गृहादौ विघ्ननाशनम्।
ईशानकोणादारभ्य ह्येकाशीतिपदे यजेत् ॥१
ईशाने च शिरः पादौ नैर्ऋतेऽग्न्यनिले करौ।
आवासवासवेश्मादौ पुरे ग्रामे वणिक्पथे ॥२
प्रासादारामदुर्गेषु देवालयमठेषु च।
द्वात्रिंशत् सुरान्बाह्ये तदन्तश्च त्रयोदश ॥३
ईशश्चैवाथ पर्जन्यो जयन्तः कुलिशायुधः।
सूर्यः सत्या भृगुश्चैव आकाशो वायुरेव च ॥४
पूषा च वितथश्चैव गृहक्षेत्रयमावुभौ।
गन्धर्वो भृङ्गराजस्तु मृगः पितृगणस्तथा ॥५

द्वौवारिकोऽथ सुग्रीव पुष्पदन्तो गणाधिपः ।
असुर शेषपादौ च रोगोऽहिमुख्य एव च ॥६
भल्लाट सोमसर्पौ च अदितिश्च दितिस्तथा ।
बहिर्द्वात्रिंशद् देवे तु तदन्तश्चतुर शृणु ॥७
ईशानादि चतुष्कोण संस्थितान्पूजयेद् बुध ।
आपश्चैवाथ सावित्रो जयो रुद्रस्तथैव च ॥८
मध्ये नवपदे ब्रह्मा तस्याष्टौ च समीपगान् ।
देवानेकोत्तरानेतान्पूर्वादौ नामत शृणु ॥९

श्री हरि भगवान् ने कहा—अब मैं संक्षेप से वास्तु के विषय में बतलाता हूँ जो कि गृह आदि में विघ्नों का नाश करने वाला है । ईशान कोण से आरम्भ करके इक्यासी पद तक यजन करना चाहिए ॥१॥ ईशान उपदिशा में सिर का यजन करना चाहिए—नैऋत दिशा में पादों का अर्चन करे तथा अग्नि एवं वायव्य मे दोनों करों का यजन करना चाहिए । आवास, वास, वेश्म आदि में पुर, ग्राम वाणिज्यपथ मे, प्रासाद, आराम दुर्ग में और देव नय तथा मठों में बत्तीस देवों का आवाहन करना चाहिए । उनके अन्दर तेरह का आवाहन करे ॥२।३॥ ईश, पर्जन्य, जयन्त, कुलिश के आयुध वाला अर्थात् इन्द्र सूर्य्य, सत्य, भृगु, आकाश, वायु, पूषा, वितथ, दोनों ग्रहक्षेत्र यम गन्धर्व, भृगुराज, मृग तथा पितृगण । द्वारपाल सुग्रीव पुष्पदन्त, गणाधिप, असुर, शेष, पाद, रोग, अहिमुख्य, भल्लाट, सोम, सर्प, अदिति, दिति ये बाहिर बत्तीस देवगण हैं । इसके अन्दर चार हैं । उनका श्रवण करो ॥४।५।६।७॥ बुध पुरुष को ईशान आदि चार कोणों में संस्थित देवों का पूजन करना चाहिए । आप, सावित्री, जय, रुद्र, मध्य नवपद में ब्रह्मा और उसके समीप में रहने वाले आठ पूर्वादि में एकोत्तर देवों का यजन करे । उनके नाम श्रवण करो ॥८।९॥

अर्यमा सविता चैव विवस्वान्विबुधाधिप ।
मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधर, क्रमात् ॥
अष्टमश्चापवत्सश्च परितो ब्रह्मण स्मृता ॥१०

ईशानकोणादारभ्य दुर्गे च वश उच्यते ।
आग्नेयकोणादारभ्य वशो भवति दुर्द्धर ॥११
अदिति हिमवन्तश्च जयन्तश्च इद त्रयम् ।
नायिका कलिता नाम शक्राद् गन्धर्वगा पुन ॥
वास्तुदेवान्पूजयित्वा गृहप्रासादकृद्भवेत् ॥१२
सुरेज्य पुरत कार्यो दिश्याग्नेय्या महानसम् ।
कपिनिगमने येन पूर्वत सत्रमण्डपम् ॥१३
गन्धपुष्पगृह चार्यमशान्या पट्टसयुतम् ।
भाण्डागारञ्च कौवेर्यां गोष्ठागारञ्च वायवे ॥१४

यक्ष्मा, सविता विवस्वान् विबुधाधिप मित्र राजयक्ष्मा, पृथ्वीधर और आठवाँ आप वत्स है जो ब्रह्मा के चारो ओर कहे गये हैं ॥१०॥ और दुर्ग मे ईशान कोण से प्रारम्भ करके वश कहा जाता है। आग्नेय कोण से आरम्भ करके वश दुर्धर होता है ॥११॥ अदिति हिमवन्त और जयन्त ये तीनो, कलिका नाम वाली नायिका शक्र (इन्द्र) से गन्धर्व को जाने वाली इन समस्त वास्तु देवो का पूजन करके गृह प्रासाद का कर्त्ता होना चाहिए। ॥१२॥ आगे सुरेज्य करना चाहिए आग्नेयी दिशा मे महानस (रसोईघर) रखना चाहिए। पूर्व मे कपि निगमन मे सत्र मण्डप रक्खे। ऐशानी दिशा मे पट्ट से सयुक्त गन्ध एव पुष्पो का गृह रखना चाहिए। कौवेरी दिशा मे भाण्डो (बर्तनो) का आगार रखे। वायव्य दिशा गोष्ठागार रखना चाहिए ।१३।१४।

उदगाश्रय वारुण्या वातायनसमन्वितम् ।
समित्कुशेन्धनस्थानमायुधाना च नैऋते ॥१५
अभ्यागतालय रम्य सशय्यासनपादुकम् ।
तोयाग्निदीपसद्भृत्यैर्युक्त दक्षिणतो भवेत् ॥१६
गृहान्तराणि सर्वाणि सजलै कदलीगृहै ।
पञ्चवर्णैश्च कुसुमै शोभितानि प्रकल्पयेत् ॥१७

प्राकार तद्बहिर्दद्यात् पंचहस्तप्रमाणतः ।
एवं विष्ण्वाश्रमं कुर्याद्वनैश्चोपवनैर्युतम् ॥१८

जल के आश्रय का स्थान वारुणी दिशा में नियत करे जो कि वायु के आने जाने वाले वातायनों से संयुत हो । समिधा, कुशा, ईंधन और आयुध के रखने का स्थान नैऋ त्य दिशा में होना चाहिए । अभ्यागत पुरुषों के रहने का स्थान परम सुन्दर होना चाहिए जो शय्या, आसन और पादुका आदि से समन्वित होवे और वहाँ पर जल, अग्नि, दीपक तथा समुचित भृत्य भी रहने चाहिए । यह स्थान दक्षिण दिशा में होना चाहिए ॥१५॥१६॥ समस्त गृहों के अन्तर्भाग मजल कदलीगृह और पाँच वर्ण वाले कुसुमों से सुशोभित कल्पित करने चाहिए ॥१७॥ उसके बाहिर पाँच हाथ के परिमाण वाला प्राकार रखना चाहिए । इस प्रकार से वन तथा उपवनों से समन्वित भगवान् विष्णु का आश्रम बनाना चाहिए ॥१८॥

चतुःषष्टिपदो वास्तु प्रासादादौ प्रपूजितः ।
मध्ये चतुष्पदो ब्रह्मा द्विपदास्त्वर्यमादयः ॥१९
पर्णे चैवाथ शिख्याद्यास्तथा देवा प्रकीर्त्तिताः ।
तेभ्यो ह्युभयतः सार्द्धा येऽपि द्विपदाः सुराः ॥
चतुःषष्टिपदा देवा इत्येवं परिकीर्त्तिताः ॥२०
चरकी च विदारी च पूतना पापराक्षसी ।
ईशानाद्यास्ततो बाह्ये देवाद्या हेतुकादयः ॥२१
हेतुकस्त्रिपुरान्तश्च अग्निवेतालको यमः ।
अग्निजिह्वः कालकश्च करालो ह्येकपादकः ॥२२
ऐशान्यां भीमरूपस्तु पाताले प्रेतनायकः ।
आकाशे गन्धमाली स्यात्क्षेत्रपालास्ततो यजेत् ॥२३
विस्ताराभिहतं दैर्घ्यं गाधि वास्तोस्तु कारयेत् ।
हृत्वा च वसुभिर्भागं शेषं चैवायमादिशेत् ॥२४

पुनर्गुणितमष्टाभिर्ऋक्षभाग तु भाजयेत् ।
यच्छेष तद्भवेदृक्ष भागैर्हृत्वा व्यय भवेत् ॥२५
ऋक्ष चतुर्गुण कृत्वा नवभिर्भागहारितम् ।
शेषमश विजानीयाद्देवलस्य मत यथ ॥२६
अष्टाभिर्गुणित पिण्ड षष्टिभिर्भागहारितम् ।
यच्छेष तद्भवेज्जीव मरण भूतहारितम् ॥
वास्तुक्रोडे गृह कुर्यान्न पृष्ठे मानव सदा ।
वामपार्श्वेन स्वपिति नात्रकार्या विचारणा ॥२८

चौसठ पदो वाला वास्तु प्रासाद के आदि मे प्रपूजित होवे। मध्य मे चतुष्पद ब्रह्मा और द्विपद अयमा आदिक पूजित होवें। कर्ण मे शिखी आदि देव कहे गये हैं। उनके दोनो ओर अन्य भी द्विपद सुर होते हैं। ये सभी चतु-षष्टि पदों वाले देव परिकीर्त्तित किय गय हैं ॥१६।२०॥ चरकी, विदारी, पूतना पाप राक्षसी ईशानाद्य हैं। इनके अनन्तर बाह्य मे हेतुकादि देवाद्य हैं। हेतुक त्रिपुरान्त, अग्नि, वेतालक, यम, अग्निजिह्व कालका, कराल, एक पादक॥ ऐशानी दिशा मे भीमरूप, पाताल मे प्रेतनायक, आकाश मे गन्धमाली इसके अनन्तर क्षेत्रपालो का यजन करे। दैर्घ्यराशि को विस्तार से अभिहृत करे। इस तरह से वास्तु का करावे और आठ से भाग करके शेष को आदिष्ट करना चाहिए ॥२१ से २४ तक। फिर आठ से गुणित कर ऋक्षभाग को भाजित करे। जो शेष हो वह ऋण होता है। भागो से हरण करके व्यय होता है। ॥२५॥ ऋक्ष को चतुर्गुण करके नौ से भाग हरित करे। जो शेष रहता है वह जीव होना है और भूत हारित मरण है ॥२६।२७॥ वास्तु के क्रोड (गोद) मे मानव को गृह करना चाहिए सदा पृष्ठ में न करे। वाम पार्श्व से सोना है-- इसमे कोई विचार नहीं करना चाहिए ॥२८॥

सिंहक-यातुलायाञ्च द्वार शुद्धेदयोत्तरम् ।
एव च वृश्चिकादौ स्यात्पूर्वदक्षिणपश्चिमम् ।२९
द्वार दीर्घार्द्ध विस्तार द्वाराण्यष्टौ स्मृतानि च ॥३०

स्वनल्पे प्लवनीचत्वं सर्पेण सूत्रभाजनम् ।
पुनर्हीनत्वं रौद्रेण वीर्यघ्नं दक्षिणे तथा ॥३१
वह्नौ बन्धश्च वायौ च पुत्रलाभ. सुतृप्तिद' ।
धनदे नृपपीडादं बन्धनं रोगदं जले ॥३२
नृपभीतिर्मृतापत्यं ह्यनपत्यञ्च वैरिदम् ।
अर्यदे चार्थहानिश्च दोषदं पुत्रमृत्युदम् ।
द्वाराण्युत्तरसञ्ज्ञानि पूर्वद्वाराणि वच्म्यहम् ॥३३
अग्निभीतिर्बहुकन्या धनसम्मानकं पदम् ।
राजघ्नं रोगदं पूर्वे फलतो द्वारमीरितम् ॥३४
ईशानादौ भवेत्पूर्वमाग्नेयादौ तु दक्षिणम् ।
नैर्ऋत्यादौ पश्चिमं स्याद्वायव्यादौ तु चोत्तरम् ॥
अष्टभागे कृते भागे द्वाराणां च फलाफलम् ।३५
अश्वत्थप्लक्षन्यग्रोधाः पूर्वादौ स्यादुदुम्बरः ।
गृहस्य शोभन. प्रोक्त ईशाने चैव शाल्मलिः ॥
पूजितो विघ्नहारी स्यात्प्रासादस्य गृहस्य च ॥३६

सिंह, कन्या और तुला में द्वार शुद्ध करे । इसके अनन्तर उत्तर में इसी प्रकार से वृश्चिकादि में पूर्व-दक्षिण और पश्चिम होवे । दीर्घ के आधे विस्तार वाला द्वार होना चाहिए । आठ द्वार कहे गये हैं ॥२९।३०॥ स्वनल्प में प्लव नीचत्व है—सर्प में सूत्र भाजन है—रौद्र में पुत्रहीनता होती है—दक्षिण में वीर्य का हनन करने वाला है ॥३१॥ वह्नि दिशा में बन्ध होता है—वायु दिशा में पुत्र का लाभ एवं सुतृप्तिप्रद है । धनद दिशा में नृप की पीड़ा देने वाला—जल में बन्धन और रोगप्रद होता है ॥३२॥ नृप से भय—मृतापत्यता (सन्तान का मृत हो जाना—सन्तति का अभाव तथा वैरियों को देने वाला होता है । अर्यद में अर्थ की हानि—दोषप्रद और पुत्र की मृत्यु देने वाला है । अब मैं पूर्वद्वार उत्तर नाम वाले द्वारों को बतलाता हूँ ॥३३॥ अग्नि का भय बहुत कन्याओं का होना—धन तथा सम्मान प्रदान करने वाले पद का पाना—राजा का

हनन—रोगप्रद पूर्व में फल से द्वार मनोष्ट होता है ॥२४॥ ईशान आदि में पूर्व होता है—आग्नेय आदि मे दक्षिण—नैऋत्य आदि में पश्चिम और वायव्य आदि में उत्तर होता है। भाग के अष्टभाग करने पर द्वारों का फलाफल होता है ॥२५॥ पूर्वादि में अश्वत्थ (पीपल)—प्लक्ष (पाखर)—न्यग्रोध (बड) और उदुम्बर (गूलर) गृह का शोभन कहा गया है। ईशान में शान्तिप्रासाद तथा गृह का पूजित होता हुआ विघ्नों का हरण करने वाला होता है। ॥२६॥

२१—प्रासादलक्षण

प्रासादानां लक्षणञ्च वक्ष्ये शौनक तच्छृणु।
चतुःषष्टिपदं कृत्वा दिग्विदिक्षूपलक्षितम् ॥१
चतुष्कोणे चतुर्भिश्च द्वाराणि सूर्य्यसंख्यया।
चत्वारिंशाष्टभिश्चैव भित्तीनां कल्पना भवेत् ॥२
ऊर्ध्वक्षेत्रसमा जङ्घा तदूर्ध्वे द्विगुणं भवेत्।
गर्भविस्तारविस्तीर्णा शुकाङ्घ्रिश्च विधीयते ॥३
तत्त्रिभागेन कर्त्तव्यं पञ्चभागेन वा पुनः।
निर्गमस्तु शुकाङ्घ्रेश्च उच्छ्राय शिखरार्द्धगः ॥४
चतुर्द्धा शिखरं कृत्वा त्रिभागे वेदिबन्धनम्।
चतुर्थे पुनरस्यैव कण्ठमामूलसाधनम् ॥५
अथवापि समं वास्तु कृत्वा षोडशभागिकम्।
तस्य मध्ये चतुर्भागमादौ गर्भन्तु कारयेत् ॥६
भागद्वादशिका भित्तिं ततश्च परिकल्पयेत्।
चतुर्भागेन भित्तीनामुच्छ्रायः स्यात्प्रमाणतः ॥७
द्विगुणः शिखरोच्छ्रायो भित्त्युच्छ्रायाच्च मानतः।
शिखरार्द्धस्य चार्द्धेन विधेयास्तु प्रदक्षिणा ॥८

चतुर्दिक्षु तथा ज्ञेयो निर्गमस्तु तथा बुधै ।
पञ्चभागेन सभज्य गर्भमान विचक्षण ॥९
भागमेक गृहीत्वा तु निर्गम कल्पयेत् पुन ।
गर्भसूत्रसमो भागादग्रतो मुखमण्डप ॥
एतत्सामान्यमुद्दिष्ट प्रासादस्य हि लक्षणम् ॥१०

सूतजी ने कहा—हे शौनक ! अब प्रासादों का लक्षण बताऊँगा उसे तुम सुनो। दिशा और विदिशाओ म उपलक्षित उपर्युक्त चौसठ पदों वाला करके चारो ओर भीकोर और सूर्य सख्या से अर्थात् बारह द्वार करे और अडतालीस भित्तियो की कल्पना होनी चाहिए। ऊर्ध्व क्षेत्र के समान जघा उसके ऊध्व म द्विगुण होवे। गर्भ के विस्तार से विस्तीर्ण शुकाग्रि की जाती है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ वह त्रिभाग से अथवा पञ्च भाग से करे। निर्गम और शुकाग्रिका शिखर का अर्धगामी उच्छ्राय (ऊँचाई) होवे ॥४॥ चार प्रकार से शिखर करक त्रिभाग में वेदी बन्धन कर फिर इसके ही चतुर्थ में आमूल साधन कण्ठ करे ॥५॥ अथवा वास्तु को षोडश भाग वाला समान करके उसके उसमे मध्य में आदि मे चार भाग को गर्भ करावे ॥६॥ इस के अनन्तर द्वादश भाग की भित्ति की कल्पना करनी चाहिए। प्रमाण स चतुर्भाग से भित्तियों की ऊँचाई के मान से होवे। भित्ति की ऊचाई से शिखर की ऊचाई दूनी होनी चाहिए। शिखरार्ध के अर्धभाग से प्रदक्षिणा (परिक्रमा) करनी चाहिए ॥७॥८॥९॥ बुध पुरुषो के द्वारा चारो दिशाओ म निर्गम (निकास भाग) जानना चाहिए। विचक्षण पुरुष को पाँचवाँ भाग गर्भ का मान समाजित करके उसम स फिर एक भाग ग्रहण करके निगम की कल्पना करनी चाहिए। गर्भ सूत्र के समान भाग से आगे मुख मण्डप करे। यह साधारण प्रासाद का लक्षण उद्दिष्ट किया गया गया है ॥१०॥

लिङ्गमानमथो वक्ष्ये पीठो लिङ्गसमो भवेत् ।
द्विगुणेन भवेद् गर्भ. समन्ताच्छौनक ध्रुवम् ।
तद्विधा च भवेद् भित्तिर्जङ्घा तद्विस्तरार्धगा ॥११
द्विगुण शिखर प्रोक्त जङ्घायाश्चैव शौनक ।
पीठगर्भावर कर्म तन्मानेन शुकाङ्घ्रिकाम् ॥१२

निर्गमस्तु समाख्यात शेष पूर्ववदेव तु ।
लिङ्गमान स्मृतो ह्येष द्वारमानयोच्यते ॥१३
कराग्र वेदवत्कृत्वा द्वार भागाष्टम भवेत् ।
विस्तरेण समाख्यात द्विगुण स्वेच्छया भवेत् ॥१४
द्वारवत्पीठमध्ये तु शेष शुषिरक भवेत् ।
पादिक शेषिक भित्तिद्वाराद्धेन परिग्रहात् ॥१५
तद्विस्तारसमा जङ्घा शिखर द्विगुण भवेत् ॥
उक्त मण्डपमानन्तु स्वरूप चापर वद ॥१६
त्रैवेद कारयेत् क्षेत्र यत्र तिष्ठन्ति देवता ।
इत्थ कृतेन मानेन बाह्यभागविनिर्गतम् ॥१७
नेमि पादेन विस्तीर्णा प्रासादस्य समन्तत ।
गर्भन्तु द्विगुण कुर्यान्नेम्या मान भवेदिह ॥
स एव भित्तेरुत्सेधो शिखरो द्विगुणो मत ॥१८

इसके अनन्तर लिङ्ग मान कहता हूँ। पीठ लिङ्ग के समान होना चाहिए। हे शौनक ! चारो ओर निश्चय ही द्विगुण भाग से गर्भ होना चाहिए। इस प्रकार की भित्ति हो और जघा उसके विस्तार से अर्ध भाग वाली होनी चाहिए ॥११॥ हे शौनक ! दुगुना शिखर कहा गया है जो कि जघा मे होना चाहिए। पीठ गर्भ से अवर कर्म उसके मान युक्त इष्टिका होवे ।१२। निर्गम तो कह दिया गया है। शेष सब पूर्व की भाँति ही होवे। यह लिङ्ग का मान कहा गया है। अब यह द्वार का मान कहा जाता है ॥१३॥ वेद की भाँति कराग्र करके आठवाँ भाग द्वार होना चाहिए। विस्तार से यह बताया गया है स्वेच्छा से दुगुना हो जाता है ॥१४॥ द्वार की भाँति पीठ के मध्य मे शेष शुषिरक होता है। द्वाराध के भाग से परिग्रह से शेषिक पादिक भित्ति होती है ॥१५॥ उसके विस्तार के समान जघा और दुगुना शिखर होता है। शुकाङ्घ्रि पूर्व की भाँति ही जान लेना चाहिए और निर्गम की ऊँचाई होनी है। यह मण्डप का मान कहा गया है अब दूसरा स्वरूप बतलाओ ।१६। त्रैवेद क्षेत्र करना चाहिए जहाँ

पर देवता स्थित रहा करते हैं। इस प्रकार मान के करने से इसका बाह्य भाग विनिगत हो जाता है ॥१७॥ प्रासाद के चारों ओर पाद से विस्तीर्ण नेमि होती है और गर्भ द्विगुण नेमि के मान से करना चाहिए जो कि महा होता है। वह ही भित्ति का उत्सेध दुगुना शिखर माना गया है ॥१८॥

प्रासादानाञ्च वक्ष्यामि मान योनिश्च मानत ।
वैराज पुष्पकाख्यश्च कैलासो मालिकाह्वय ॥
त्रिपिष्टपञ्च पञ्चैते प्रासादा नवयोनय ॥१६
प्रथमश्चतुरस्रो हि द्वितीयस्तु तदायत ।
वृत्तो वृत्तायतश्चान्योऽष्टास्रश्चेह च पञ्चम ॥२०
एतेभ्य एव सम्भूता प्रासादा सुमनोहरा ।
सवप्रकृतिभूतेभ्यश्चत्वारिंशच्च एव च ॥२१
मेरुश्च मन्दरश्चैव विमानश्च तथापर. ।
भद्रक सर्वतोभद्रो रुचको नन्दनस्तथा ॥२२
नन्दिवर्द्धनसज्ञश्च श्रीवत्सश्च नवेत्यमी ।
चतुरस्रा समुद्भूता वैराजादिति गम्यताम् ॥२३
वलभी गृहराजश्च शालागृहञ्च मन्दिरम् ।
विमानञ्च तथा ब्रह्म मन्दिर भवन तथा ॥
उत्तम्भ शिविकावेश्म नवैते पुष्पकोद्भवा ॥२४
वलयो दुन्दुभि पद्मो महापद्मस्तथापर ।
मुकुली चास्य उष्णीषी शङ्खश्च कलशस्तथा ॥
गुवावृक्षस्तथान्यश्च वृत्ता कैलाससम्भवा ॥२५
गजोऽथ वृषभो हसो गरुड. सिंहनामक ।
भूमुखो भूधरश्चैव श्रीजय पृथिवीधरः ॥
वृत्तायता समुद्भूता नवैते मालकाह्वयात् ॥२६
वज्र चक्र तथान्यच्च मुष्टिक वभ्रु सज्ञितम् ।

वज्र स्वस्तिव भङ्गी च गदा श्रीवृक्ष एव च ॥
विजयो नामत श्वेतस्त्रिपिष्टपसमुद्भवा ॥२७

अब प्रासादों का मान और मान से योनि बतलाऊँगा । वैराज, पुष्पकाख्य कैलाम, मालिकाह्वय और त्रिपिष्टप ये पाँच प्रासाद सर्व योनि वाले होते हैं ॥१६॥ प्रथम प्रासाद जो वैराज नाम वाला होता है वह चतुरस्र होता है। द्वितीय उसके आयत वाला है । तीसरा वृत्त होता है तथा चतुर्थ वृत्तायत होता और पाँचवाँ अष्टास्र होता है ॥२०॥ सर्व प्रकृतिभूत इन्ही से सुमनोहर प्रासाद सम्भूत होते हैं जो कि चालीस होते हैं ॥२१॥ मेरु, मन्दर, विमान तथा अपर भद्रक सर्वतो भद्र, रुचक, नन्दन, नन्दि वधन, श्री वत्स—ये नौ हैं जो वैराज से चतुरस्र सम्भूत होते हैं ऐसा जान लो ॥२२।२३॥ वलभी, गृह राज, शालागृह, मन्दिर, विमान ब्रह्म मन्दिर, भवन, उत्तम्भ, शिविका वेश्म, ये नौ पुष्पक से उद्भव होने वाले हैं । वलय, दुन्दुभि, पद्म महापद्म, मुकुली, उष्णीषी, शङ्ख कलश, गुवावृक्ष व वृत्त प्रासाद कैलास सज्ञक से सम्भूत होने वाले हैं ।२४।२५। गज, वृषभ, हस, गरुड, सिंह, भूमुख, भूधर श्रीजय, पृथिवीधर ये वृत्तायत्त नौ मालव सज्ञा वाले से उद्भव प्राप्त करने वाले होते हैं । वज्र, चक्र, मुष्टिक, वभ्रु, वक्र, स्वस्तिक, भङ्ग, गदा, श्री वृक्ष, विजय और श्वेत ये त्रिपिष्टिका से समुद्भव प्राप्त करने वाले हैं ॥२६।२७॥

त्रिकोण पद्ममर्द्धेन्दुश्चतुष्कोण द्विरष्टकम् ।
यत्र यत्र विधातव्य सस्थान मण्डपस्य तु ॥२८
राज्यश्च विभवश्चैव ह्यायुर्वर्द्धनमेव च ।
पुत्रलाभ स्त्रिय पुष्टिस्त्रिकोणादिक्रमाद् भवेत् ॥२६
कुर्याद् ध्वजादिक ख्याता द्वारि गर्भगृह तथा ।
मण्डप समसस्याभिगुणित सूत्रतस्तथा ॥३०
मण्डपस्य चतुर्थांशाद् भद्र कार्यो विजानता ।
सार्द्ध गवाक्षकोपेनो निर्गवाक्षोऽथवा भवेत् ॥३१

सार्द्धं भित्तिप्रमाणेन भित्तिमानेन वा पुन ।
भित्तेर्द्विगुणयतो वापि कर्त्तव्या मण्डपा. क्वचित् ॥३२
प्रासादे मञ्जरी कार्याश्चित्रा विषमभूमिका ।
परिमाणविरोधेन रेखा वैषम्यभूषिता ॥३३
आधारस्तु चतुर्द्वारश्चतुर्मण्डपशोभित ।
शतशृङ्गसमायुक्तो मेरु प्रासाद उत्तम ॥३४
मण्डपास्तस्य कर्त्तव्या भद्रैस्त्रिभिरलकृता. ।
गठनाकारमानाना भिन्नाद्भिन्ना भवन्ति ते ॥३५
कियन्तो येषु चाधारा निराधाराश्च केचन ।
प्रतिच्छन्दकभेदेन प्रासादा सम्भवन्ति ते ॥३६

त्रिकोण-पद्म-अर्घ इन्दु-चतुष्कोण और द्विरष्टक जहाँ-जहाँ मण्डप का सस्थान हो करना चाहिए ॥२८॥ राज्य—वैभव—आयु की वृद्धि—पुत्रलाभ—स्त्री की पुष्टि ये फल त्रिकोणादि के क्रम से होते हैं ॥२९। ध्वजादिक करे जो कि द्वार पर स्थान हैं तथा गर्भगृह करे । सम सख्याओ मे गुणित मण्डप करे । तथा ज्ञाता पुरुष को सूत्र से मण्डप के चतुर्थ अंश से भद्र करना चाहिए । वह सार्द्ध गवाक्ष से युक्त अथवा बिना गवाक्ष वाला होवे ॥३०।३१॥ सार्द्ध भित्ति के प्रमाण से अथवा फिर भित्ति के मान मे या भित्ति की द्विगुणता से कहीं पर मण्डप बनाने चाहिए । प्रासाद मे विषम भूमिका वाली चित्र मञ्जरी करनी चाहिए । परिमाण के विरोध से भूषित रेखा करे । चार द्वार वाला और चार मण्डपों से शोभित आधार जो शतशृङ्गो (शिखरो) से समायुक्त हो वह मेरु प्रासाद उत्तम होता है ॥३२।३३।३४॥ उनके मण्डप तीन भद्रो से अलकृत करने चाहिए । गठनाकार मान वालो के वे भिन्न से भिन्न होते हैं ॥३५॥ जिनमे कुछ आधार होते हैं और कुछ निराधार ही होते हैं । वे प्रासाद प्रति छन्दक भेद मे सम्भूत हुआ करते हैं ॥३६॥

अन्यान्य सस्कारात्तेषा गठनानामभेदतः ।
देवताना विशेषाय प्रासादा बहव स्मृता. ॥३७

प्रासादे नियमो नास्ति देवताना स्वयम्भुवाम् ।
तानेव देवतानाञ्च पूर्वमानेन कारयेत् ॥३८
चतुरस्रायतास्तत्र चतुष्कोणसमन्विता ।
चन्द्रशालान्विताः कार्या भेरी शिखर सयुताः ॥३९
पुरतो वाहनानाञ्च कर्त्तव्या लघुमण्डपा ।
नाट्यशाला च कर्त्तव्या द्वारदेशसमाश्रया ॥४०
प्रासादे देवतानाञ्च कार्या दिक्षु विदिक्ष्वपि ।
द्वारपालाश्च कर्त्तव्या मुख्या गत्वा पृथक्-पृथक् ॥४१
किञ्चिद् दूरत कार्या मठास्तत्रोपजीविनाम् ।
प्रावृता जगती कार्या फलपुष्पजलान्विता ॥४२
प्रासादेषु सुरान् स्थाप्यान् पूजाभि पूजयेन्नर ।
वासुदेव सर्वदेव सर्वभाक् तद्गृहादिकृद् ॥४३

अन्य अन्य सस्कार मे गठन वाले उनके प्रभेद स देवताओ के विशेष के लिये बहुत से प्रासाद कहे गय हैं ॥३७॥ स्वयम्भू देवताओ का प्रासाद मे नियम नहीं होता है । उनको देवताओ के पूर्वमान से कराना चाहिए ॥३८॥ वहाँ चतुरस्रायता, चतुष्कोण समन्वित, चन्द्रशालान्वित और भेरीशिखर सयुत करने चाहिए । आगे के भाग मे वाहनो के छोटे मण्डप बनाने चाहिए । द्वारदेश मे समाश्रय रखने वाली नाट्यशाला भी करनी चाहिए ॥३८॥३९॥४०॥ प्रासाद मे देवताओ के दिशा-विदिशाओं मे भी पृथक् पृथक् मुख्य द्वारपाल करने चाहिए । ॥४१॥ कुछ दूर चलकर वहाँ पर मठोपजीवियो के भी मठ बनाने चाहिए । फल, पुष्प और जल से युक्त प्रावृता जगती करनी चाहिए । मानव प्रासादो मे स्थाप्य सुरो का पूजनोपचारो से यजन करना चाहिए । उन गृहादि का करने वाला सर्व सेवनकारी सबके देव भगवान् वासुदेव ही हैं ॥४२॥४४॥

२२—सर्वदेव प्रतिष्ठा वर्णन

प्रतिष्ठा सर्वदेवाना सक्षेपेण वदाम्यहम् ।
सुनिष्पादो गुरुम्यश्च प्रतिष्ठा कारयेद् गुरु ॥१

ऋत्विग्भिः सह चाचार्यं वरयेन्मध्यदेशगम् ।
स्वशाखोक्तविधानेन अथवा प्रणवेन तु ॥२
पञ्चभिर्बहुभिर्वापि कुर्यात् पाद्यार्घमेव च ।
मुद्रिकाभिस्तथा वस्त्रं गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥
मन्त्रन्यास गुरु कृत्वा ततः कर्म समारभेत् ॥३
प्रासादस्याग्रतः कुर्यान्मण्डप दशहस्तकम् ।
कुर्याद् द्वादशहस्त वा स्तम्भैः षोडशभिर्युतम् ॥
ध्वजाष्टकैश्चतुर्हस्ता मध्ये वेदीञ्च कारयेत् ॥४
नदीसङ्गमतोयेत्या बालुका तत्र दापयेत् ।
चतुरस्रं कार्मुकाभ वर्तुलं कमलाकृति ॥५
पूर्वादितः समारभ्य कर्त्तव्य कुण्डपञ्चकम् ।
अथवा चतुरस्राणि सर्वाण्येतानि कारयेत् ॥६
शान्तिकर्मविधानेन सर्वकामार्थसिद्धये ।
शिरःस्थाने तु देवस्य आचार्यो होममाचरेत् ॥
ऐशान्यां केचिदिच्छन्ति उपलिप्यावनिं शुभाम् ॥७

श्रीसूतजी ने कहा—अब मैं समस्त देवों की प्रतिष्ठा को सक्षेप मे बतलाता हूँ। गुरु को सुशोभन किसी तिथि में सुरम्य प्रतिष्ठा करानी चाहिए। ऋत्विजों के साथ आचार्य का जो कि मध्यदेशज हो वरण करना चाहिए। अपनी शाखा में उक्त विधान के द्वारा अथवा प्रणव से करें ॥१।२॥ पाँच अथवा बहुत मुद्रिकाओं से पाद्य-अर्घ्य आदि करे तथा मन्त्र न्यास वस्त्र एवं गन्ध-माल्य और अनुलेपनों द्वारा करके फिर गुरु को कर्म का आरम्भ करना चाहिए ॥३॥ प्रासाद के आगे के भाग में दस हाथ प्रमाण वाले एक मण्डप की रचना करनी चाहिए। अथवा बारह हाथ के प्रमाण वाले मण्डप करे जिसमें सोलह स्तम्भ निर्मित किये गये हों। आठ ध्वजाओं से युक्त चार हाथ प्रमाण वाली मध्य में एक वेदी का निर्माण कराना चाहिए ॥४॥ नदी के सङ्गम के तट पर रहने वाली बालुका को वहाँ डलवाना चाहिए। चतुरस्र (चौकोर) कार्मुक (धनुष) की आभा के तुल्य वर्तुल (गोलाकार) अथवा कमल के पुष्प की आकृति वाले

पूर्व आदि दिशाओं में आरम्भ करके पाँच कुण्डों की रचना करे। अथवा ये कुण्ड सभी चतुरस्र ही निर्मित करा लेवे ॥५।६॥ समस्त कामनाओं की सिद्धि के लिए शान्ति कर्म के विधान में आचार्य को शिरःस्थान में देवता का होम करना चाहिए। कुछ मनीषी गण इसे शुभ भूमि का लेखन करा कर ऐशानी दिशा में करने का मत रखते हैं ॥७॥

द्वाराणि चैव चत्वारि कृत्वा वै तोरणान्तिके ।
न्यग्रोधादुम्बराश्वत्थचैत्रपालाशखादिरा ॥८
तोरणा पञ्चहस्ताश्च वस्त्रपुष्पाद्यलंकृता ।
निखनेद्धस्तमात्रं च चत्वारश्चतुरो दिश ॥९
पूर्वद्वारे मृगेन्द्रन्तु हयराजन्तु दक्षिणे ।
पश्चिमे गोपतिर्नाम सुरशार्दूलमुत्तरे ॥१०
अग्निमीळेति मन्त्रेण प्रथमं पूर्वतो न्यसेत् ।
इषेत्वेति च मन्त्रेण दक्षिणस्यां द्वितीयकम् ॥११
अग्न आयाहि मन्त्रेण पश्चिमस्यां तृतीयकम् ।
शन्नोदेवीति मन्त्रेण उत्तरस्यां चतुर्थकम् ॥१२
पूर्वे श्रग्नुदगत् कार्या आग्नेय्यां धूमरूपिणी ।
याम्यां वै कृष्णरूपा तु नैर्ऋत्यां श्यामला भवेत् ॥१३
वारुण्यां पाण्डरा ज्ञेया वायव्यां पीतवर्णिका ।
उत्तरे रक्तवर्णा तु शुक्लैशी च पताकिका ॥
बहुरूपा तथा मध्ये इन्द्रविष्णेति पूर्वतः ॥१४
अग्निं मूर्धेतिमन्त्रेण यमोनागेति दक्षिणे ।
पूज्या रक्षोहणावेति पश्चिमे उत्तरेऽपि च ॥१५
वात इत्यभिषिञ्चाथ आप्यायस्वेति चोत्तरे ।
तमीशानमनस्त्वन्त्र त्रिपादूर्ध्वेति मध्यमे ॥१६

तोरण के समीप में चार द्वार करके न्यग्रोध (वट), उदुम्बर (गूलर) अश्वत्थ (पीपल), पलाश और खदिर के पाँच हाथ प्रमाण वाले तोरण करे, जो कि वस्त्र तथा पुष्पों से सुविभूषित हों। चारों दिशाओं में चार गर्त्त एक-

एक हाथ के खोदे ॥८॥६॥ पूर्व दिशा के द्वार में मृगेन्द्र, दक्षिण मे हयराज, पश्चिम में गोपति और उत्तर दिशा के द्वार पर सुर शार्दूल रक्खे। "अग्नि-मीले"—इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए पहिले पूर्व दिशा मे न्यास करना चाहिए। "ईषेत्वेति"—इस मन्त्र से दक्षिण में दूसरा न्यास करे ॥१०।११॥ "अग्न आयाहि"—इस मन्त्र के द्वारा पश्चिम मे तृतीय रक्खे। "शन्नो देवी"—इस मन्त्र से उत्तर दिशा में चतुर्थ को न्यस्त करे ॥१२॥ पूर्व दिशा मे पताका मेघ के समान वर्ण वाली लगावे। आग्नेयी दिशा मे धूम्र वर्ण वाली—याम्य दिशा मे कृष्ण वर्ण वाली—नैऋत्य में श्यामल वर्ण से युक्त—वारुणी दिशा मे पाण्डर—वायव्य में पीत वर्ण की, उत्तर मे रक्त वर्ण वाली और ईशान दिशा में शुक्ल वर्ण वाली पताका होनी चाहिए। एव मध्य भाग मे बहुत से रूप और वर्णों वाली पताकाएँ होनी चाहिए। पूव मे इन्द्र विद्या—अग्नि समुत्ति मन्त्र के द्वारा 'यमो नागा'—इससे दक्षिण मे, पश्चिम और उत्तर मे 'रक्षो हनाद्य' इससे पूजा करे, वात—इससे अभिषेक करके 'आप्यायस्व'—इससे उत्तर मे। तमीशान—विष्णुलोक—इससे मध्य में यजन करे ॥१२ से १६॥

कलशौ तु ततो द्वौ द्वौ निवेश्यौ तोरणान्तिके।
वस्त्रयुग्मसमायुक्ताश्चन्दनाद्यैः स्वलङ्कृताः ॥१७
पुष्पैर्वितानैर्बहुलैरादिवर्णाभिमन्त्रिता ।
दिक्पालाश्च ततः पूज्याः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥१८
त्रातारमिन्द्रमन्त्रेण अग्निर्मूर्द्धेति चापरे।
अस्मिन् वृक्ष इतश्चैव प्रचारीति परा स्मृता ॥१९
किञ्चेदधातु आचात्वा भिन्नादेवीति सप्तमी।
इमारुद्रेति दिक्पालान्पूजयित्वा विचक्षणः ।
होमद्रव्याणि वायव्ये कुर्यात्सोपस्कराणि च ॥२०
शङ्खान्शास्त्रोदितान्श्चैतान्श्चाम्या विन्यसेद् गुरुः।
आलोकनेन द्रव्याणि शुद्धि यान्ति न संशय ॥२१
हृदयादीनि चाङ्गानि व्याहृतिप्रणवेन च।
अस्त्रश्चैव समस्ताना न्यासोऽय सार्वकामिकः ॥२२

अक्षतान्विष्टरञ्चैव अस्त्रेणैवाभिमन्त्रितान् ।
विष्टरेण स्पृशेद् द्रव्यान्यागमण्डपसयुतान् ।
अक्षतान्विकिरेत्पश्चादस्त्रपूतान्समन्ततः ॥२३

इसके अनन्तर दो दो कलश तोरण के समीप मे निवेशित करने चाहिएँ। वस्त्र युग्म अर्थात् दो वस्त्रो से युक्त एव चन्दन आदि से समलङ्कृत हुए बहुत से पुष्पो तथा वितानो से समन्वित और आदि वर्ण से अभिमन्त्रित दिशाओ के पालक देव शास्त्र मे दृष्ट कर्म के द्वारा पूजित होने चाहिए ॥१७ १८॥ 'त्रातारम्' –इन्द्र मन्त्र से और दूसरे 'अग्नि मूर्धा–इस मन्त्र से, इन वृक्ष में दूसरी ऋचा इतश्चैव प्रचारी—यह कही गई है। किञ्चेद धातु आचात्वा भिन्ना देवी–इस सप्तमी से–इमा रुद्र–इससे विचक्षण पुरुष को दिक्पालो का पूजन करना चाहिए। वायव्य दिशा में उपस्कर के सहित होम के द्रव्य रक्खे ॥१६।२०॥ शास्त्र में कथित श्वेत शङ्खो को नेत्रो के हेतु विन्यस्त करे। आलोकन के द्वारा समस्त द्रव्य शुद्धि को प्राप्त हो जाते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२१॥ हृदय आदि अङ्गो का व्याहृति प्रणव के द्वारा न्यास करे और समस्तो का न्यास अस्त्र के द्वारा करे। यह न्यास समस्त कामनाओ के लिये होता है ॥२२॥ अक्षतो को और विष्टर को अस्त्र मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रित करे। याग मण्डप से सयुत द्रव्यो का विष्टर से स्पर्श करे। फिर अस्त्र द्वारा पूत किये हुए अक्षतो को चारो ओर फैलादे ॥२३॥

शाक्री दिशमयारभ्य यावदीशानगोचरम् ।
अवकीर्य्याक्षतान्सर्वान्लिपयेन्मण्डप तत ॥२४
गन्धाद्यैरर्घ्यपात्रे च मन्त्रग्राम न्यसेद् गुरु ।
तेनार्घ्यपात्रतोयेन प्रोक्षयेद् यागमण्डपम् ॥२५
प्रतिष्ठा यस्य देस्य तदाख्य कलश न्यसेत् ।
ऐशान्या पूजयेद् याम्ये अस्त्रेणैव च वर्द्धनीम् ॥
कलश वर्द्धनीञ्चैव ग्रहान्वास्तोष्पति तथा ॥२६
आसने तानि सर्वाणि प्रणवाख्य जपेद् गुरु ।
सूत्रग्रीव रत्नगर्भ वस्त्रयुग्मेन वेष्टितम् ॥

सर्वौषधि गन्धलिप्तं पूजयेत्कलशं गुरु ॥२७
देवस्तु कलशे पूज्यो वर्द्धन्या वस्त्रमुत्तमम् ।
वर्द्धन्या तु समायुक्तं कलशं भ्रामयेदनु ॥२८
वर्द्धनीधारया सिञ्चन्नग्रतो धारयेत्ततः ।
अभ्यर्च्य वर्द्धनीं कुम्भं स्थण्डिले देवमर्चयेत् ॥२९
घटस्थावाह्य वायव्यां गणानान्त्वेति सद्गणम् ।
देवमीशानकोणे तु जपेद्वास्तुपतिं बुधः ॥
वास्तोष्पतीति मन्त्रेण वास्तुदोषोपशान्तये ॥३०
कुम्भस्य पूर्वतो भूतं गणदेवं बलिं हरेत् ।
पठेद्दिनिं च विद्याश्च कुर्य्यादालम्भनं बुधः ॥३१
योगे योगेति मन्त्रेण मन्त्ररन् ज्वलने कुशैः ।
आचार्य्य ऋत्विजे साद्धंस्नानपीठे हरस्तथा ॥३२

ऐन्द्री दिशा से आरम्भ करके ईशान दिशा पर्यन्त अक्षतों का अब किरण कर इसके अनन्तर मण्डप का लेपन कराते। फिर गुरु को गन्धादि से युक्त अर्घ्य पात्र में मन्त्र ग्राम का न्यास करना चाहिए। उस अर्घ्यपात्र के जल से सम्पूर्ण याग मण्डप का प्रोक्षण करे ॥२४।२५॥ जिस देवता की प्रतिष्ठा करनी हो उसके नाम का एक कलश न्यस्त करे। ऐशानी दिशा में उसका यजन करे और याम्य दिशा में अस्त्र मन्त्र के द्वारा ही वर्द्धनी का यजन करे। कलश वर्द्धनी, ग्रह तथा वास्तोष्पति इन सबका आसन पर गुरु प्रणव नाम का जाप करे। गुरु को चाहिए कि इस कलश के ग्रीवा में सूत्र—मध्य में रत्न रख कर मुख्य वस्त्र से वेष्टित करे तथा सर्वौषधि एवं गन्ध से प्रलिप्त कर कलश का पूजन करे ॥२६।२७॥ देव का कलश में ही यजन करना चाहिए। कलश का पूजन कर वर्द्धनी से युक्त कलश को पीछे भ्रमित करे ॥२८॥ इसके पश्चात् वर्द्धनी की धारा से सिञ्चन करता हुआ आगे धारण करे। फिर वर्द्धनी और कुम्भ का अभ्यर्चन करके स्थण्डिल में देव का समर्चन करे ॥२९॥ वायव्य में घट का आवाहन करके "गणानान्त्वा"—इस मन्त्र से सद्गण देव को ईशान

कोण मे जार करे। बुध याजक को "वास्तोष्पति"—इस मन्त्र के द्वारा वास्तु दोषों के उपशमनार्थ वास्तु पतिका जाप करना चाहिए ॥३०॥ कुम्भ के पूर्व भाग में भूत गणादव के लिये बलि का आहरण करे। "पठेत्"—इससे विघ्नों का बुध को प्रातम्भन करना चाहिए ॥३१॥ "योगे योग"—इस मन्त्र के द्वारा ज्वलन कुशो से सस्तरण करते हुए फिर ऋत्विजों के साथ प्राचार्य को स्नान पीठ पर हरण करना चाहिए ॥३२॥

विविधैर्ब्रह्मघोषैश्च पुण्याहजयमङ्गलैः।
कृत्वा ब्रह्मरथे देव प्रतिष्ठन्ति ततो द्विजा ॥३३
ऐशान्यामानयेत्पीठ मण्डपे विन्यसेद् गुरु ।
भद्र वर्णोत्यथ स्नात्वा सूत्रबन्धनजेन तु ॥
सस्नाप्य लक्षणे द्वार कुर्य्याद् दूराभिवादनैः ॥३४
मधुसर्पिःसमायुक्त कास्य वा ताम्रभाजने।
अक्षिणी चाञ्जयेच्चास्य सुवर्णस्य शलाकया ॥३५
अग्निर्ज्योतीति मन्त्रेण नेत्रोद्घाटन्तु कारयेत् ।
लक्षणे क्रियमाणे तु नाम्नैक स्थापको वदेत् ॥३६
इमम्मे गाङ्गमन्त्रेण नेत्रयो शीतलक्रिया ।
अग्निर्मूर्द्धेति मन्त्रेण दद्याद्वल्मीकमृत्तिकाम् ॥३७
बिल्वोदुम्बरमश्वत्थ वट पालाशमेव च।
यज्ञायज्ञेति मन्त्रेण दद्यात्पञ्चकषायकम् ॥३८
पञ्चगव्यै स्नापयेच्च सहदेव्यादिभिस्तत ।
सहदेवी बला चैव शतमूली शतावरी ॥३९
कुमारी च गुडूची च सिंही व्याघ्री तथैव च।
याओषधीति मन्त्रेण स्नानमापधिमज्जलं ॥
या. फलिनीति मन्त्रेण फलस्नान विधीयते ॥४०

अनेक भांति के ब्रह्म घोषों के द्वारा तथा पुण्याह और जय मङ्गल ध्वनियों के द्वारा देवता को ब्रह्मरथ मे स्थित करके फिर द्विजगण प्रतिष्ठा करते

हैं ॥३३॥ उस पीठ को गुरु को चाहिए कि ऐशानी दिशा में ले आवे और फिर मण्डप में उसका न्यास करे। "भद्र कर्णों"—इससे स्नान कराके इसके अनन्तर सुवर्चस्थनज से सस्नपन कराकर दूराभि बाहनों से लक्षण में द्वार करे ॥३४॥ कांस्य पात्र में अथवा ताम्र पात्र में मधु, घृत से युक्त करके सुवर्ण शलाका से देवता के नेत्रों को अञ्जित करे ॥३५॥ "अग्नि ज्योति"—इस मन्त्र का उच्चारण करके देव के नेत्रों को उद्घाटित करना चाहिए। लक्षण के किये जाने पर स्थापक एक को नाम द्वारा बोले ॥३६॥ "इमम्मे गाङ्ग"—इत्यादि मन्त्र से नेत्रों की शीतल क्रिया करे। फिर "अग्निमूर्धा"—इस मन्त्र से बाँबी की मृतिका को अर्पित करे ॥३७॥ "यज्ञायज्ञा"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा बिल्व-उदुम्बर-अश्वत्थ-वट और पलाश इनके पञ्च कषाय को समर्पित करे ॥३८॥ पहिले पञ्च गव्य से स्नान करावे। पञ्चगव्य में गौ की पाँच वस्तुऐं होती हैं जिन में दूध-दधि,घृत,गोमूत्र और गोमय ये हैं। इनके अनन्तर सहदेवी आदि से स्नान करावे जिनमें सहदेवी—बला-शतमूली-शतावरी-कुमारी—गिलोय-सिंही-व्याघ्री ये सब हैं। इन समस्त ओषधियों वाले जल से 'या ओषधीति'—इत्यादि मन्त्र से स्नान कराना चाहिए। 'या. फलानि"-इत्यादि मन्त्र के द्वारा, फलों द्वारा स्नान का विधान होता है ॥३९।४०॥

द्रुपदादिवेति मन्त्रेण कार्य्यमुद्वर्तनं बुधैः ।
कलशेषु च विन्यस्य उत्तरादिष्वनुक्रमात् ॥
रत्नानि चैव धान्यानि ओषधिं शतपुष्पिकाम् ॥४१
समुद्रांश्चैव विन्यस्य चतुरश्चतुरो दिशा ।
क्षीरं दधि क्षीरोदस्य घृतोदस्येति वा पुनः ॥४२
आप्यायस्व दधिक्राव्णो या ओषधीरितीति च ।
तेजोऽसीति च मन्त्रश्च कुम्भश्चाभिमन्त्रयेत् ॥
समुद्रारव्यैश्चतुर्भिश्च स्नापयेत् कलशैः पुनः ॥४३
स्नातश्चैव सुर्वगस्य धूपो देयश्च गुग्गुलुः ।
अभिषेकाय कुम्भेषु तत्तत्तीर्थानि विन्यसेत् ॥४४

पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितः सागरास्तथा ।
या ओषधीति मन्त्रेण कुम्भाश्चैवाभिमन्त्रयेत् ॥
तेन तोयेन यः स्नायात् स मुच्येत् सर्वपातकैः ॥४५

अभिषिच्य समुद्रैस्तु चार्घ्यं दद्यात्ततः पुनः ।
गन्धद्वारेति गन्धश्च न्यासं वै वेदमन्त्रकैः ॥४६
स्वशास्त्रविहितैः प्रार्थ इमं मन्त्रेति वस्त्रकम् ।
कविर्ह्याविति मन्त्रेण आनयेन्मण्डपं शुभम् ॥४७

बुध पुरुषों के द्वारा 'द्रुपदा दिव'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा उद्वर्त्तन करना चाहिए। कलशों में विन्यास करके उत्तरादि म अनुक्रम में करे। रत्न, धान्य, ओषधि, सप्तमृत्तिका, चार समुद्र, चार दिशाएं, क्षीर, दधि जो कि क्षीरोद और घृताद का है। इन सबका विन्यास कर "आप्यायस्व दधिक्राव्णो" "या ओषधीति"—'तेजोऽसि'—इन मन्त्रों से कुम्भ को अभिमन्त्रित करे। फिर चार समुद्र संज्ञक कलशों से स्नपन कराना चाहिए ॥४१।४२।४३॥ स्नान कराये हुए और सुन्दर पोशाक धारण कराये जाने पर गुग्गुल की धूप देनी चाहिए। कुम्भों में अभिषेक कराने के लिये उन उन तीर्थों का विन्यस्त करना चाहिए ॥४४॥ पृथ्वी मण्डल में जितने जो जो भी तीर्थ, नदियाँ तथा सागर हैं और जो जो भी औषधियाँ हैं उनको "या ओषधि'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा कुम्भ में अभिमन्त्रित करे। उस अभिमन्त्रित किए हुए जल से जो स्नान करे वह समस्त पातकों से मुक्त हो जाता है ॥४५॥ समुद्रों में अभिषेक करके फिर अर्घ्य देना चाहिए। गन्ध द्वारा दुराधर्षा'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा गन्ध का न्यास करे और वेदोक्त मन्त्रों के द्वारा तथा स्वशास्त्र में विहित मन्त्रों के द्वारा "इमं मन्त्र,'—इससे वस्त्र देवे तथा 'कविर्ह्यो'—इस मन्त्र से फिर शुभ मण्डप में ले आवे ॥४६।४७॥

शय्यायामेति मन्त्रेण शय्यायां विनिवेशयेत् ।
विश्वतश्चक्षुमन्त्रेण कुर्यात् सकलनिष्कलम् ॥४८

स्थित्वा चैव परे तत्त्वे मन्त्रन्यासन्तु कारयेत् ।
स्वशास्त्रविहितो मन्त्री न्यासस्तस्मिस्तथोदित ॥४६
वस्त्रेणाच्छादयित्वा तु पूजनीय स्वभावत. ।
यथाशास्त्र निवेद्यानि पादमूले तु दापयेत् ॥५०
अथ प्रणवसंयुक्तं वस्त्रयुग्मेन वेष्टितम् ।
कलश सहिरण्यञ्च शिर स्थाने निवेदयेत् ॥५१
स्थित्वा कुण्डसमीपेऽथ अग्नेः स्थापनमाचरेत् ।
स्वशास्त्रविहितैर्मन्त्रं र्वेदोक्तैर्वाथवा गुरु ॥५२
श्रीसूक्त पावमानञ्च वास दास्य सहाजिनम् ।
वृपाकपिञ्च मित्रञ्च बह्वृ.च पूर्वतो जपेद् ॥५३
रुद्र पुरुपसूक्तञ्च श्लोकाध्यायञ्च सुक्रियः ।
ब्रह्माण पितृमंत्रञ्च अध्वर्युर्दक्षिणे जपेत् ॥५४

फिर "शम्भवाय"—इत्यादि मन्त्र मे शय्या मे निवेशित करावे । 'विश्वतश्चक्षु'—इत्यादि मन्त्र से सकल निष्कल करे ॥४८॥ परतत्त्व मे स्थिर होकर मन्त्र का न्यास करावे,अपने शास्त्र से विहित मन्त्री का न्यास उस प्रकार से कहा गया है ॥४६॥ वस्त्र से आच्छादित करके स्वभाव से पूजन करना चाहिए । शास्त्र के अनुसार जो निवेदन करने के योग्य नैवेद्य हैं उन्हें पाद के मूल मे समर्पित करे ॥५०॥ इसके अनन्तर प्रणव से संयुक्त वस्त्रो के युग्म से वेष्टित किये हुए और हिरण्य से संयुत कलश को शिर के स्थान मे निवेदन करे ॥५१॥ फिर कुण्ड के समीप मे स्थित होकर अग्नि की स्थापना करे । अग्नि की स्थापना वेद मे कथित मन्त्रो के द्वारा गुरु को करना चाहिए ॥५२॥ श्री सूक्त–पवमान–वास दास्य सहाजिन–वृपाकपि और मित्र इन बहुत ऋचाओं को पूर्व की ओर जपे अर्थात् जाप करे या पढ़े ॥५३॥ रुद्र पुरुप सूक्त और श्लोकाध्याय, ब्राह्मण और पितृ मंत्र को सुन्दर क्रिया करने वाला अध्वर्यु दक्षिण दिशा मे जप करे ॥५४॥

वेदव्रत वामदेव्य ज्येष्ठमामरथन्तरम् ।
भेरुण्डानि च सामानि छन्दोग पश्चिमे जपेत् ॥५५
अथवशिरमश्चैव कुम्भसूक्तमथर्वण ।
नीलरुद्राश्च मैत्रञ्च अथर्वश्चोत्तरे जपेत् ॥५६
कुण्ड चास्त्रेण सप्रोक्ष्य आचार्यस्य विशेषत ।
ताम्रपात्रे शरावे वा यथाविभवतोऽपि वा ॥
जाततेद समानीय अग्रतस्तन्निवेशयेत् ॥५७
अस्त्रेण ज्वालयेद्वह्नि कवचेन तु वेष्टयेत् ।
अमृतीकृत्य त पश्चान्मन्त्रै सर्वैश्च देशिक ॥५८
पात्र गृह्य कराभ्याञ्च कुण्ड भ्राम्य तत पुन ।
वैष्णवेन तु योगेन पर तेजस्तु निक्षिपेत् ॥५९
दक्षिण स्थापयेद् ब्रह्म प्रणीताश्चोत्तरेण तु ।
साधारणेन मन्त्रेण स्वशास्त्रविहितेन वा ॥
दिक्षु दिक्षु ततो दद्यात्परिधि विष्टरै सह ॥६०
ब्रह्मविष्णुहरेशाना पूज्या साधारणेन तु ।
दर्भेषु स्थापयेद्वह्नि दर्भैश्च परिवेष्टितम् ॥
दर्भतोयेन सस्पृष्टो मन्त्रहीनोऽपि शुद्धयति ॥६१

वेद व्रत, वामदेव्य ज्येष्ठ साम रथन्तर, भेरुण्ड सामों को छन्दोग पश्चिम दिशा में जप करे ॥५५॥ अथर्व शिर, कुम्भ सूक्त जो कि अथर्वोक्त है— नील रुद्रों को और मैत्र का अथर्व से उत्तर दिशा में जप ॥५६॥ अस्त्र मन्त्र के द्वारा कुण्ड भली-भाँति प्रोक्षण करके तथा विशेष रूप से आचार्य का सम्प्रोक्षण करके ताम्र के पात्र में अथवा शराव (सकोरा) में अथवा विभव के अनुसार जो भी हो अग्नि को लाकर आगे की ओर सन्निवेशित करे ॥५७॥ अस्त्र मन्त्र से अग्नि को जलावे और कवच से वेष्टन करे। इसके पश्चात् आचार्य समस्त मन्त्रों के द्वारा अमृतीकरण करे ॥५८॥ दोनों हाथों से पात्र को ग्रहण कर फिर कुण्ड के सब ओर भ्रमण करावे और वैष्णव योग के द्वारा परतेज

का निक्षेप करना चाहिए ॥५९॥ साधारण मन्त्र के द्वारा या अपने शास्त्र में विहित के द्वारा दक्षिण मे ब्रह्म को और उत्तर मे प्रणीता को स्थापित करे। इसके अनन्तर दिशाओ मे विष्टरो सहित परिधि देनी चाहिए ॥६०॥ साधारण तथा ब्रह्मा, विष्णु हर और ईशान का पूजन करना चाहिए। फिर दर्भों के द्वारा परिवेष्टित वह्नि को दर्भों में स्थापित करना चाहिए। दर्भ के जल से संस्पर्श किया हुआ च है मन्त्र से हीन भी हो तो वह विशुद्ध हो जाता है। ॥६१॥

प्रागग्रैरुदगग्रैश्च प्रत्यगग्रैरखण्डितैः ।
विततैर्वेष्टितो वह्नि स्वय साभिध्यता व्रजेत् ॥६२
अग्नेस्तु रक्षणार्थाय यदुक्तं कर्म मन्त्रवित् ।
आचार्य्या केचिदिच्छन्ति जातकर्मादनन्तरम् ॥६३
पवित्रन्तु तत कृत्वा कुर्य्यादाज्यस्य सस्कृतिम् ।
आचार्योऽस्य निरीक्ष्यापि नीराजमभिमन्त्रितम् ॥६४
आज्यभागाभिघारान्तमवेक्षेताज्यसिद्धये ।
पञ्च पञ्चाहुतीर्हुत्वा आज्येन तदनन्तरम् ॥६५
गर्भाधानादितस्तावद्यावद् गोदानिक भवेत् ।
स्वशास्त्रविहितैर्मन्त्रै प्रणवेनाथ होमयेत् ॥६६
ततः पूर्णाहुतिं दत्त्वा पूर्णात्पूर्णमनोरथ ।
एवमुत्पादितो वह्नि सर्वकर्मसु सिद्धिद ॥६७
पूजयित्वा ततो वह्निं कुण्डेषु विहरेत्तया ।
इन्द्रादीना स्वमन्त्रैश्च तथाहुतिशत शतम् ॥६८

प्रत्यगग्र, प्रागग्र, उदगग्र, अखण्डित और वितनदर्भों से वेष्टित वह्नि स्वयं ही साभिध्य को प्राप्त जाता है ॥६२॥ मन्त्र के ज्ञाता ने अग्नि की रक्षा के लिये जो भी कर्म कहा है उसे कुछ आचार्य जातकर्मा के अनन्तर चाहा करते हैं ॥६३॥ इसके पश्चात पवित्र करके घृत का सस्कार करना चाहिए। इसके अनन्तर आचार्य देख कर भी नीराज को अभिमन्त्रित करे। आज्य (घृत)

की सिद्धि के लिये आज्य के आदि भाग से अभिधारा के अन्त पर्यन्त अवेक्षण करे और फिर उस आज्य से पाँच पाँच आहुतियों द्वारा हवन करे ।।६४।६५।। गर्भाधान से आदि लेकर जब तक गोदानिक होवे अपने शास्त्र में विहित मन्त्रों के द्वारा या प्रणव से होम करना चाहिए ।।६६।। इसके पश्चात् पूर्णाहुति देकर पूर्णात्पूर्ण मनोरथ होवे। इस प्रकार से उत्पादित वह्नि सम्पूर्ण कर्मों में सिद्धि का प्रदान करने वाला होता है ।।६७।। इसके पश्चात् अग्नि का पूजन करके कुण्डों में विहुत करे। इन्द्र आदि देवों को अपने अपने मन्त्रों के द्वारा सौ सौ आहुतियाँ देवे ।।६८।।

पूर्णाहुति शतस्यान्त सर्वेषाञ्च होमयेत् ।
स्वामाहुतिमथाज्येषु होता तत्कलशे न्यसेत् ।।६९
देवताश्चैव मन्त्राश्च तथैव जातवेदसम् ।
आत्मानमेकत कृत्वा तत पूर्णां प्रदापयेत् ।।७०
निष्क्रम्य वहिराचार्यो दिक्पालानां बलिं हरेत् ।
भूतानाञ्च देवाना नागानाञ्च प्रयोगत ।।७१
तिलाश्च समिधश्चैव होमद्रव्य द्वय स्मृतम् ।
आज्य तयो सहकारि तत्प्रदान यदङ्गयो ।।७२
पुरुषसूक्तं पूर्वेणैव रुद्रश्चैव तु दक्षिणे ।
ज्येष्ठसाम च भीरुण्ड तन्नयामीति पश्चिमे ।।७३
नीलरुद्रो महामन्त्र कुम्भसूक्तमथर्वंग ।
हुत्वा सहस्रमेकैकं देव शिरसि सत्पयत् ।।७४
एवं मध्ये तथा पाद पूर्णाहुत्या तथा पुन ।
शिर स्थानेषु जुहुयादाविशेच्च अनुक्रमात ।।७५
स्वनामाग्निमन्त्रैर्वा मन्त्रैर्वा अथवा पुन ।
स्वशास्त्रविहितैर्वापि गायत्र्या वाथ स द्विजा ।।
गायत्र्या वाथवाऽऽचार्यो व्याहृतिप्रणवेन तु ।।७६

एवं होमविधिं कृत्वा न्यसेन्मन्त्रांस्तु देशिक ।
चरणावग्निमीले तु ईषेत्वो गुल्फयो: स्थिता: ॥७७

सौ आहुतियों के मन्त्र से सबके लिये पूर्णाहुति का होम करना चाहिये। इसके अनन्तर अपनी आहुति को होता आज्यों में उस कलश में न्यास करे। ॥६८॥ देवता, मन्त्र और जातवेद तथा आत्मा को एकत्र करके फिर पूर्णाहुति देनी चाहिए ॥७०॥ आचार्य को बाहिर निकाल कर दिक्पालों के निमित्त बलि का हरण करना चाहिए। भूतों को—देवों तथा नागों को सबको बलि देवे ॥७१॥ तिल और समिधा ये दो होम के द्रव्य हैं। इन दोनों द्रव्यों का घृत सहकारी पदार्थ होता है। जिनके अङ्गों में उसका प्रधान होता है ।७२। पूर्व में पुरुष सूक्त और दक्षिण में रुद्र सूक्त, ज्येष्ठसाम और भीरुण्ड तन्नयादि, यह पश्चिम में नील रुद्र महामन्त्र, कुम्भसूक्त और अथर्वण इन सब एक-एक को सहस्र बार हवन कर शिर में देव को कल्पित करे ।७३।७४। इस प्रकार से मण्डप में तथा बाद में फिर उसी प्रकार से पूर्णाहुति द्वारा शिर स्थानों में हवन करना चाहिए और अनुक्रम से आविष्ट करे ।७५। देवों का आदि मन्त्रों के द्वारा अथवा स्वशास्त्र में विहित मन्त्रों के द्वारा या गायत्री के द्वारा अथवा द्विज एवं आचार्य प्रणव एवं व्याहृति के द्वारा इस प्रकार से होमकी विधि को सुसम्पन्न करके फिर आचार्य मन्त्रों का न्यास करे। चरणों में 'अग्नि मीले'—इस मन्त्र का न्यास करे गुल्फों में "ईषेत्वो"—इसका न्यास करे ।७६।७७।

अग्नआयाहि जंघे द्वे शन्नोदेवीति जानुनी ।
बृहद्रथन्तरे ऊरू उदरेष्वाग्निलो न्यसेत् ॥७८
दीर्घायुष्ट्वाय हृदये श्रीश्च ते गलके न्यसेत् ।
त्रातारमिन्द्र वक्षे च नेत्राभ्यान्तु त्रियुग्मकम् ॥
मूर्द्धा भव तथा मूर्ध्नि ह्यालग्नाद्धोममाचरेत् ॥७९
उत्थापयेत्ततो देवमुत्तिष्ठ ब्रह्मण. पते ।
वेदपुण्याहशब्देन प्रासादानां प्रदक्षिणम् ॥८०
पिण्डिकालभनं कृत्वा देवस्यत्वेति मन्त्रवित् ।
दवपालान्सह रत्नैश्च धातूनौषधयस्तथा ॥

लोहबीजानि सिद्धानि पश्चाद्देवन्तु विन्यसेत् ॥८१
न गर्भे स्थापयेद्देव न गर्भन्तु परित्यजेत् ।
ईषन्मध्य परित्यज्य ततो दोषापन तु तत् ॥८२
तिलस्य तु समाग्रन्तु उत्तर किञ्चिदानयेत् ।
ॐ स्थिरो भव शिवो भव प्रजाभ्यश्च नमो नम ॥८३
देवस्य त्वा सवितुर्व पड्भ्यो वै विन्यसेद् गुरु ।
तत्त्ववर्णकलामात्र प्रजानि भुवनात्मजे ॥८४
पड्भ्यो विन्यस्य सिद्धार्थ ध्रुवार्थैरभिमन्त्रयेत् ।
सम्पातकलशेनैव स्नापयेत्सुप्रष्ठितम् ॥८५

दोनो जांघों मे "अग्न आयाहि' –इसका जानुओं मे "शन्नो देवी"–इस मन्त्र का और उदरो मे आतिल'— इसका न्यास करे।७८। हृदय मे 'दीर्घा-युष्ट्वाय'— इस मन्त्र का और गले मे 'श्रीश्चते'— इसका न्यास करे। वक्ष स्थल मे 'त्रातारमिन्द्रम्'— इसका एव दोनो नेत्रो मे 'त्रियुग्मकार'— इसका न्यास करना चाहिए। मूर्द्धाभव'— इससे मूर्द्धा मे न्यास करे और पालन होम करे ।।७९।। इसके अनन्तर देव का उत्थापन करे तथा 'उत्तिष्ठ ब्रह्मण पते' —इस मन्त्र से करना चाहिए। वेद पुण्याह शब्द के द्वारा प्रासादो को प्रदक्षिणा करे।८०। मन्त्रों के वेत्ता को 'देवस्यत्व'— इससे पिण्डिकालभन करके रत्नो के सहित दिक्पालो को—धातुओ को—औषधियो को और सिद्ध लोह बीजो को विन्यस्त करके पाछे देव का विन्यास करना चाहिए।८१। गर्भ में देव को स्थापित न करे और गर्भ का परित्याग भी नही करना चाहिए। थोडा सा मध्य का परित्याग करके इसके अनन्तर दोषापन करे ।८२। तिल का कुछ सम न उत्तर लावे। गुरु को 'ॐ स्थिरोभव शिवोभव प्रजाभ्यश्च नमो नम। देवस्य त्वा सवितुर्व पड्भ्यो वै'–इससे विन्यास करना चाहिए। भुवनात्मज में तत्त्व वर्ण कलामात्र प्रजनो का पड्भ्यो—इससे विन्यास करके ध्रुवार्थों से सिद्धार्थ को अभिमन्त्रित करे। सुप्रतिष्ठित को सम्पात कलश के द्वारा ही स्नापन करावे ॥८३।८४।८५॥

दीपधूपसुगन्धैश्च नैवेद्यैश्च प्रपूजयेत्
अर्घ्यं दत्त्वा नमस्कृत्य ततो देव क्षमापयेत् ॥८६
पात्रं वस्त्रयुग छत्र तथा दिव्यागुरीयकम् ।
ऋत्विग्भ्यश्च प्रदातव्या दक्षिणा चैव शक्तित ॥८७
चतुर्थी जुहुयात्पश्चाद्यजमान समाहित ।
आहुतीना शत हुत्वा तत पूर्णा प्रदापयत् ॥८८
निष्क्रम्य बहिराचार्यो दिक्पालाना बलि हरेत् ।
आचार्य्य पुष्पहस्तस्तु क्षमस्वेति विसर्जयेत् ॥८६
यागान्ते कपिला दद्यादाचार्य्याय च चामरम् ।
मुकुट कुण्डल छत्र केयूर कटिसूत्रकम् ।
व्यञ्जन ग्रामवस्त्रादीन्सोपस्कार समण्डलम् ॥६०
योजनञ्च महती कुर्य्यात् कृतकृत्यश्च जायते ।
यजमानो विमुक्त स्यात्स्थापकस्य प्रसादत ॥६१

फिर दीपों—धूपों और सुगन्धियों के द्वारा और नैवेद्य के द्वारा पूजन करना चाहिए अर्घ्य देकर—नमस्कार करके इसके अनन्तर देवता से क्षमापन करने की क्रिया करे।८६। पात्र—वस्त्र युग्म तथा दिव्य अगु ीयक और शक्ति पूर्वक दक्षिणा देनी च हिए।८७। इसके पीछे यजमान को पूर्ण सावधान होकर चतुर्थी का हवन करना चाहिए। इस प्रकार से एक सौ आहुतियाँ देकर फिर पूर्णाहुति देवे।८८। आचार्य बाहिर निकल कर दिक्पालों के लिये बलि का हरण करे। आचार्य पुष्प हाथों में लेकर 'क्षमस्व'—इससे विसर्जन करे। याग की समाप्ति हो जाने पर आचार्य को एक कपिला गौ का दान करे तथा चामर मुकुट—कुण्डल—छत्र—केयूर—कटिसूत्र—व्यञ्जन एवं सोपस्कर तथा समंडल ग्राम वस्त्रादि देवे। इससे यजमान कृतकृत्य होता है और स्थापक के प्रासाद से विमुक्त हो जाता है।८६।६०।६१।

२३—अष्टाङ्गयोग कथन

मर्यादिकृद्धरिश्चैव पूज्य स्वायम्भुवादिभि ।
प्राचे स्वेन धर्मेण तद्धर्म व्यास वै शृणु ॥१

यजन याजन दानं ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहः ।
अध्यापनश्चाध्ययनं षट्कर्माणि द्विजोत्तमे ॥२
दानमध्ययनं यज्ञो धर्मः क्षत्रियवैश्ययोः ।
दण्डस्तथा क्षत्रियस्य कृषिर्वैश्यस्य शस्यते ।३
शुश्रूषैव द्विजातीनां शूद्राणां धर्मसाधनम् ।
कारुकर्म तथा जीवो पाकयज्ञोऽपि धर्मतः ॥४
भिक्षाचर्य्याथ शुश्रूषा गुरोः स्वाध्याय एव च ।
सन्यासकर्माग्निकार्यश्च धर्मोऽयं ब्रह्मचारिणः ॥५
सर्वेषामाश्रमाणाञ्च द्वैविध्यन्तु चतुर्विधम् ।
ब्रह्मचार्य्युपकुर्वाणो नैष्ठिको ब्रह्मतत्परः ॥६
योऽधीत्य विधिवद्वेदान्गृहस्थाश्रममाव्रजेत् ।
उपकुर्वाणको ज्ञेयो नैष्ठिको मरणान्तिकः ॥७
अग्नयोऽतिथिशुश्रूषा यज्ञो दानं सुरार्चनम् ।
गृहस्थस्य समासेन धर्मोऽयं द्विजसत्तम ॥८

ब्रह्माजी ने कहा—सर्गादि के करने वाले हरि स्वायम्भुव आदि के द्वारा तथा विप्रादि के द्वारा अपने धर्म से पूजने के योग्य हैं। हे व्यास ! अब उस धर्म का श्रवण करो ॥१॥ यजन करना—यज्ञ कराना—दान लेना—ब्राह्मणों को दान देना—वेद-शास्त्रों का अध्ययन करना तथा अध्यापन कराना ये द्विज के श्रेष्ठ छः धर्म होते हैं ॥२॥ दान देना—अध्ययन करना और यज्ञ कर्म करना—ये क्षत्रिय और वैश्य के धर्म हैं। क्षत्रिय का कर्म दण्ड देना तथा वैश्य का कर्म कृषि करना प्रशस्त कहा जाता है ॥३॥ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य इन द्विजातियों की सेवा करना ही शूद्रों का धर्म साधन कर्म होता है। तथा शूद्रों का कारुकर्म और धर्म से अपाक यज्ञ भी जीविका का साधन होता है ॥४॥ भिक्षाचरण करना—गुरु की सेवा करना और स्वाध्याय करना—सन्यास कर्म और अग्नि कार्य हवनादि ये ब्रह्मचारी के धर्म कृत्य होते हैं ॥५॥ समस्त आश्रमों के दो प्रकार होते हैं। इस प्रकार से चार भेद होते हैं। ब्रह्म

चारी—उप कुर्वाण—नैष्ठिक और ब्रह्मतत्पर होते हैं ॥६॥ जो विधिपूर्वक गुरु के पास ब्रह्मचर्य विधि से रह कर वेदों का अध्ययन करे और फिर समावर्त्तन कर के गार्हस्थ्य आश्रम को ग्रहण करता है उसे उपकुर्वाण जानना चाहिए। जो गृहस्थाश्रम में प्रवेश न करके मरण पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करता है वह नैष्ठिक होता है ॥७॥ हे द्विजश्रेष्ठ! अग्नि कर्म—अतिथियों की सत्कारपूर्वक सेवा—यज्ञ करना—दान देना और देव पूजन करना यह गृहस्थ का संक्षेप में धर्म कहा गया है ॥८॥

उदासीन साधकश्च गृहस्थो द्विविधो भवेत् ।
कुटुम्बभरणे युक्त साधकोऽसौ गृही भवेत् ॥६
ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य त्यक्त्वा भार्य्याधनादिकम् ।
एकाकी यस्तु विचरेदुदासीन स मौक्षिक ॥१०
भूमौ मूलफलाशित्व स्वाध्यायस्तप एव च ।
संविभागो यथान्याय धर्मोऽयं वनवासिन ॥११
तपस्तप्यति योऽरण्ये यजेद्देवान्जुहोति च ।
स्वाध्याये चैव निरतो वनस्थस्तापसोत्तम ॥१२
तपसा कर्षितोऽत्यर्थं यस्तु ध्यानपरो भवेत् ।
सन्यासी स हि विज्ञेयो वानप्रस्थाश्रमे स्थित ॥१३
योगाभ्यासरतो नित्यमारुरुक्षुर्जितेन्द्रिय. ।
ज्ञानाय वर्त्तते भिक्षु प्रोच्यते पारमेष्ठिक ॥१४
यस्त्वात्मरतिरेव स्यान्नित्यतृप्तो महामुनि ।
सम्यक् चन्दनसम्पन्न स योगी भिक्षुरुच्यते ॥१५
भैक्ष्य श्रुतञ्च मौनित्व तपो ध्यानं विशेषत ।
सम्यक्च ज्ञानवैराग्य धर्मोऽयं भिक्षुके मत ॥१६

उदासीन और साधक भेद से गृहस्थ भी दो प्रकार का हुआ करता है। जो अपने कुटुम्ब के भरण-पोषण में युक्त रहा करता है वह साधक गृही होता है ॥६॥ देव ऋषि और पितर इन तीनों के ऋणों को दूर कर अर्थात् चुका कर

फिर अपनी भार्या और धन-वैभव का त्याग करके एकाकी जो विचरण किया करता है वह भौक्षिक उदासीन गृही होता है ॥१०॥ वन में निवास करने वाले का यह धर्म होता है कि भूमि में शयन करे—वन के मूल और फलों का भोजन करे—स्वाध्याय करे—तपश्चर्या करे और यथान्याय संविभाग करे ॥११॥ जो वन में तपश्चर्या करता है—देवों का यजन किया करता है—हवन करता है और सदा स्वाध्याय में निरत रहा करता है वह वनवासियों में परमश्रेष्ठ तापस होता है ॥१२॥ तपस्या से जो अत्यन्त कर्षित होता हुआ निरन्तर ध्यान में ही परायण रहता है उसे वानप्रस्थ आश्रम में रहने वाला सन्यासी ही समझना चाहिए ॥१३॥ नित्य ही योग के अभ्यास में रति रखने वाला और उपरत पद पर आरोहण करने की इच्छा वाला—इन्द्रियों को जीत कर वश में रखने वाला ज्ञान के लिये ही वर्त्तन करता है वह पारमेष्ठिक भिक्षु कहा जाता है ॥१४॥ जो आत्मा में ही रति रखने वाला—नित्य तृप्त सम्यक् तथा चन्दन समदर्श महा-मुनि होता है वह योगी भिक्षु कहा जाया करता है ॥१५॥ भिक्षा करना—शास्त्र तथा वेद का ज्ञान—मौन व्रत धारण करना—तपश्चर्या-विशेष रूप से ध्यान लगाना और भली भाँति ज्ञान एवं वैराग्य का रखना ये ही भिक्षु का धर्म कहा गया है ॥१६॥

ज्ञानसन्यासिनः केचिद् वेदसन्यासिनोऽपरे ।
कर्मसन्यासिनः केचित्त्रिविधः पारमेष्ठिकः ॥१७

योगी च त्रिविधो ज्ञेयो भौतिकः क्षत्र एव च ।
तृतीयोऽन्त्याश्रमी प्रोक्तो योगमूर्त्तिसमाश्रितः ॥१८

प्रथमा भावना पूर्वे मोक्षे दुष्करभावना ।
तृतीये चान्तिमा प्रोक्ता भावना पारमेश्वरी ॥१९

धर्मात्संजायते मोक्षो ह्यर्थात् कामोऽभिजायते ।
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च द्विविधं कर्म वैदिकम् ।
ज्ञानपूर्वं निवृत्तं स्यात्प्रवृत्तमग्निदेववत् ॥२०

क्षमा दमो दया दानमलोभस्त्याग एव च ।
आर्जवश्चानसूया च तीर्थानुसरणं तथा ॥२१
सत्य सन्तोष आस्तिक्यं यथा चेन्द्रियनिग्रह ।
देवताभ्यर्चनं पूजा ब्राह्मणानां विशेषत ॥२२
अहिंसा प्रियवादित्वमपैशुन्यमरूक्षता ।
एते आश्रमिका धर्माश्चातुर्वर्ण्यं ब्रवीम्यतः ॥२३
प्राजापत्य ब्राह्मणाना स्मृत स्थान क्रियावताम् ।
स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणा सग्रामेष्वपलायिनाम् ॥२४
वैश्याना मारुत स्थान स्वधर्ममनुवर्त्तताम् ।
गन्धर्वं शूद्रजातीना परिचारे च वर्त्तताम् ॥२५
अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणामूर्ध्वरेतसाम् ।
स्मृत तेषान्तु यत् स्थान तदेव गुरुवासिनाम् ॥२६

यह पारमेष्ठिक तीन प्रकार के होते हैं—कुछ तो ज्ञान सन्यासी होते हैं अर्थात् ज्ञान के बल से हृदय मे सबका पूर्ण त्याग भाव रखने वाले होते हैं—दूसरे वेद सन्यासी हुआ करते हैं और तीसरे प्रकार के कर्म सन्यासी होते हैं ॥१७॥ योगी भी तीन प्रकार के होते हैं—भौतिक योगी—क्षत्र योगी और तृतीय योगमूर्ति समाप्रित अन्त्याश्रमी होता है ॥१८॥ प्रथम मे प्रथमा भावना होती है—मोक्ष मे दुष्कर भावना होती है और तीसरे में अन्तिम पारमेश्वरी भावना हुआ करती है ॥१९॥ धर्म से मोक्ष हुआ करता है और अर्थ से काम की उत्पत्ति होती है। इस तरह से यह वैदिक कर्म प्रवृत्ति परक और निवृत्ति-परक दो प्रकार का होता है। जो ज्ञानपूर्वक कर्म होता है वह निवृत्ति परक होता है और जो अग्नि एव देव परक कर्म होता है वही प्रवृत्ति कर्म कहा जाता है ॥२०॥ क्षमा—दम—दया—दान—लोभ का अभ्यास—सरलता—अनसूया अर्थात् दूसरों के दोषों का प्रकट करने का अभाव—तीर्थों का अटन—सत्य—सन्तोष—आस्तिकता की भावना—इन्द्रियों पर निग्रह रखना—देवताओं का समर्चन—विशेष रूप से ब्राह्मणों की पूजा—अहिंसा—प्रिय बोलना—पिशुनता का न होना—

इसलिए उन का अभाव से सब आश्रमों वालों के धर्म होते हैं। अतएव मैं अब चातुर्वर्ण्य को बतलाता हूँ ।२१॥२ ॥२३॥ क्रिया वाले ब्राह्मणों का प्राजापत्य स्थान कहा गया है। संग्रामों में पलायन न करने वाले क्षत्रियों का ऐन्द्र स्थान कहा गया है। अपने धर्म का अनुवर्त्तन करने वाले वैश्यों का मारुत स्थान होता है। परिचर्या में सवदा संलग्न रहने वाले शूद्रों का गान्धर्व स्थान बताया गया है ॥२४॥२५॥ ऊर्ध्व रेतस अट्ठासी सहस्र ऋषियों का जो स्थान कहा गया है वही गुरुवासियों का होता है ॥२६॥

> सप्तर्षीणान्तु यत्स्थानं स्थानं तद्वै वनौकसाम् ।
> यतीनां यतचित्तानां न्यासिनामूर्ध्वरेतसाम् ।
> आनन्दं ब्रह्म तत् स्थानं यस्मान्नावर्त्तते मुनिः ॥२७
> योगिनाममृतस्थानं व्योमाख्यं परमाक्षरम् ।
> आनन्दमैश्वरं यस्मान्मुक्तो नावर्त्तते नरः ॥२८
> मुक्तिरष्टाङ्गविज्ञानात् संक्षेपात्तद्वदे शृणु ।
> यमाः पञ्चत्वहिंसाद्या अहिंसा प्राण्यहिंसनम् ॥२९
> सत्यं भूतहितं वाक्यमस्तेयं स्वग्रहं परम् ।
> अमैथुनं ब्रह्मचर्यं सर्वत्यागोऽपरिग्रहः ॥३०
> नियमाः पञ्च सत्याद्या बाह्यमाभ्यन्तरं द्विधा ।
> शौचं सत्यश्च सन्तोषस्तपश्चेन्द्रियनिग्रहः ॥३१
> स्वाध्यायः स्यान्मन्त्रजपः प्रणिधानं हरेर्यजिः ।
> आसनं पद्मकाद्युक्तं प्राणायामो मरुज्जयः ॥३२
> मन्त्रध्यानयुतो गर्भो विपरीतो ह्यगर्भकः ।
> एवं द्विधा त्रिधाप्युक्तं पूरणात् पूरकः स च ।
> कुम्भको निश्चलत्वाच्च रेचनाद्रेचकस्त्रिधा ॥३३

सप्तर्षियों का जो स्थान होता है वह स्थान वन में रहने वाले यतियों का होता है जो यतचित्त होते हैं और न्यास करने वाले तथा ऊर्ध्व रेता होते हैं। वह आनन्द ब्रह्म स्थान है जहाँ से फिर मुनि पुनरावर्तित नहीं हुआ करता

है ॥२७॥ योगियों का ज्योतिर्मय परमाक्षर अमृत स्थान होता है। वह आनन्दमय तथा ऐश्वर स्थान है जहाँ से फिर मानव का पुनरावर्त्तन इस संसार में नहीं होता है ॥२८॥ आठ अङ्गों के विशेष ज्ञान से मुक्ति हुआ करती है। उसे मैं अब संक्षेप में बतलाता हूँ। उसका श्रवण करो। अहिंसा आदि पाँच यम होते हैं। प्राणियों की कायिक वाचिक एवं मानसिक हिंसा का न करना ही अहिंसा कही जाती है ॥२९॥ भूतों का हित करने वाला वाक्य सत्य होता है। पराई वस्तु का न ग्रहण करना अस्तेय है। मैथुन का न करना ब्रह्मचर्य होता है। समस्त वस्तुओं का परिग्रह न करना ही त्याग है ॥३०॥ सत्य आदि पाँच नियम होते हैं। वे बाह्य और अभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार के होते हैं। शौच—सत्य एवं सन्तोष है—ब्रह्मचर्य—इन्द्रियों का निग्रह है—स्वाध्याय—मन्त्रों का जप है—प्रणिधान—हरि का यजन है—पद्मक आदि आसन हैं—वायु पर जय प्राप्त कर लेना ही प्राणायाम होता है ॥३१॥३२॥ मन्त्र के ध्यान से जो युक्त होता है वह सगर्भक कहा जाता है। इस प्रकार से वह दो एवं तीन प्रकार का है। पूरण करने से वह पूरक होता है। निश्चल होने से कुम्भक और रेचन से रेचक कहा जाता है ॥३३॥

लघुर्द्वादशमात्रः स्याच्चतुर्विंशतिकः परः।
षट्त्रिंशन्मात्रिकः श्रेष्ठः प्रत्याहारश्च रोधनम् ॥३४
ब्रह्मात्मचिन्ता ध्यानं स्याद्धारणा मनसो धृतिः।
अहं ब्रह्मेत्यवस्थानं समाधिर्ब्रह्मणः स्थितिः ॥३५
अहमात्मा परं ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तकम्।
ब्रह्मविज्ञानमानन्दः स तत्त्वमसि केवलम् ॥३६
अहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्म अशरीरमनिन्द्रियम्।
अहं मनोबुद्धिमहदहङ्कारादिवर्जितम् ॥३७
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादियुक्तज्योतिस्तदीयकम्।
नित्यं शुद्धं बुद्धियुक्तं सत्यमानन्दमद्वयम् ॥३८

योऽसावादित्यपुरुष सोऽसावहमखण्डितम् ।
इति ध्यायन् विमुच्येत ब्राह्मणो भवबन्धनात् ॥३६

बारह मात्राओं वाला लघु प्राणायाम होता है और चौबीस मात्राओं वाला पर होता है तथा छत्तीस मात्राओं से युक्त परम श्रेष्ठ होता है। रोधन करने को ही प्रत्याहार कहते हैं ॥३४॥ ब्रह्मात्म का चिन्तन करने को ही ध्यान कहते हैं। मन की धृति को धारणा कहा जाता है। मैं ही ब्रह्म हूँ—इस प्रकार की जो अवस्थिति होने पर ब्रह्म की स्थिति का प्राप्त हो जाना है उसे ही समाधि कहा जाता है ॥३५॥ मैं आत्मा हूँ ब्रह्म पर है और वह सत्य एवं ज्ञानस्वरूप तथा अनन्त है। ब्रह्म का विज्ञान ही आनन्दमय है और वह केवल तत्त्वमसि है ॥३६॥ मैं ब्रह्म हूँ—मैं बिना शरीर वाला और इन्द्रियों से रहित हूँ—मैं मन, बुद्धि अहङ्कार आदि से वर्जित हूँ और जाग्रत्, सुषुप्ति आदि से मुक्त उसी की ज्योति स्वरूप हूँ। मैं नित्य-शुद्ध बुद्धियुक्त सत्य एवं आनन्दस्वरूप अद्वितीय हूँ। जो यह आदित्य पुरुष है वह मैं अखण्डित हूँ—इस प्रकार से अपने आपको ध्यान करने वाला ब्राह्मण इस संसार के महा बन्धन से विमुक्त हो जाता है ॥३७। ३८॥३६॥

२४—नित्य क्रिया शौच वर्णन

अहन्यहनि य कुर्यात् क्रिया स ज्ञानमाप्नुयात्।
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय धर्ममर्थञ्च चिन्तयेत् ॥१
चिन्तयेद्धृदि पद्मस्थमानन्दमजरं हरिम् ।
उष काले तु सम्प्राप्ते कृत्वा चावश्यकं बुधः ॥
स्नायान्नदीषु शुद्धासु शौचं कृत्वा यथाविधि ॥२
प्रातः स्नानेन पूयन्ते येऽपि पापकृतो जनाः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रातः स्नानं समाचरेत् ॥३
प्रातः स्नानं प्रशमन्ति दृष्टादृष्टकरं हि तत् ।
सुखात् सुप्तस्य सततं लालाद्या सम्स्रवन्ति हि ॥
अतो नैवाचरेत् कर्माण्यकृत्वा स्नानमादितः ॥४

अलक्ष्मीः कालकर्णी च दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तितम् ।
प्रातःस्नानेन पापानि धूयन्ते नात्र संशयः ॥५
न च स्नानं विना पुंसां प्राशस्त्यं कर्म संस्मृतम् ।
होमे जप्ये विशेषेण तस्मात् स्नानं समाचरेत् ॥६
अशक्तावशिरस्कं तु स्नानमस्य विधीयते ।
आर्द्रेण वाससा वापि मार्जनं कायिकं स्मृतम् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—जो प्रति दिन इस क्रिया को करता है वह ज्ञान को प्राप्त किया करता है। ब्रह्म मुहूर्त्त में उठ कर अर्थात् शय्या का त्याग करके सर्व प्रथम धर्म और अर्थ का चिन्तन करना चाहिये। उषा काल के सम्प्राप्त होने पर बुध पुरुष को आवश्यक कृत्य करके हृदय में पद्मासन पर संस्थित आनन्दस्वरूप अजर श्रीहरि का चिन्तन करे। यथा विधि शौच कार्य करके फिर शुद्ध नदियों में स्नान क्रिया सम्पन्न करे ॥१।२॥ पापों के करने वाले भी मनुष्य प्रातःकाल में स्नान करने से पवित्र हो जाया करते हैं। इसलिये पूर्व प्रयत्नों के द्वारा प्रातःकाल के समय में अवश्य ही स्नान करना चाहिए। प्रातः-काल में किये जाने वाले स्नान की प्रशंसा की जाती है क्योंकि वह दृष्ट और अदृष्ट के करने वाला होता है। सुख से सोते हुए मनुष्य की सर्वदा लाला (लार) आदि का स्रवण हुआ करता है। इसलिये आदि में स्नान न करके कभी भी अन्य कर्मों का आरम्भ न करे ॥३॥४॥ प्रातःकाल में नित्य किये हुए स्नान से अलक्ष्मी, कालकर्णी, दुःस्वप्न, दुर्विचिन्तित (बुरी भावना) एवं सभी पाप नष्ट हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥५॥ स्नान के बिना पुरुषों के प्रशस्त कर्म नहीं बताये गये हैं। होम और मन्त्र जाप के करने में तो विशेष रूप से स्नान करना ही चाहिए। ६॥ यदि सर्वाङ्ग स्नान करने की स्थिति में न हो और ऐसी शक्ति शरीर में न हो तो बिना शरीर को भिगोये हुए ही स्नान अवश्य ही करना चाहिए। इतना भी न किया जा सके तो गीला वस्त्र करके उससे ही शरीर का मार्जन अवश्य करे—ऐसा कहा गया है ॥७॥

ब्राह्ममाग्नेयमुद्दिष्टं वायव्यं दिव्यमेव च ।
वारुणं यौगिकं तद्वत्षडङ्गं स्नानमाचरेत् ।।८
ब्राह्मन्तु मार्जनं मन्त्रैः कुशैः सोदकबिन्दुभिः ।
आग्नेयं भस्मना पादमस्तकाद् देहधूननम् ।।९
गवां हि रजसा प्रोक्तं वायव्यं स्नानमुत्तमम् ।
यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तद्दिव्यमुच्यते ।।१०
वारुणश्चावगाहश्च मानसं स्वात्मवेदनम् ।
यौगिकं स्नानमाख्यातं योगेन परिचिन्तनम् ।
आत्मतीर्थमिति ख्यातं सेवितं ब्रह्मवादिभिः ।।११
क्षीरवृक्षसमुद्भूतं मालतीसम्भवं शुभम् ।
अपामार्गश्च बिल्वश्च करवीरञ्च धारणम् ।।१२
उदङ्मुख प्राङ्मुखो वा कुर्यात्तु दन्तधावनम् ।
प्रक्षाल्य भुक्त्वा तज्जह्याच्छुचौ देशे समाहितः ।।१३
स्नात्वा सन्तर्पयेद्देवानृषीन्पितृगणांस्तथा ।
आचम्य विधिवन्नित्यं पुनराचम्य वाग्यतः ।।१४
समार्ज्य मन्त्रैरात्मानं कुशैः सोदकबिन्दुभिः ।
आपोहिष्ठाव्याहृतिभिः सावित्र्या वारुणैः शुभैः ।।१५

ब्राह्म स्नान को आग्नेय स्नान कहा गया है—वायव्य स्नान को दिव्य स्नान बताया गया है—वारुण स्नान को यौगिक कहा गया है। इसी भाँति षडङ्ग स्नान करे ।।८।। जल की बूँदों के सहित कुशों के द्वारा मन्त्रों से जो स्नान क्रिया को सम्पन्न करके मार्जन किया जाता है उसे ब्राह्म स्नान कहते हैं। भस्म से मस्तक से लेकर पाद पर्यन्त जो देह-धूनन किया जाता है उसे आग्नेय स्नान कहा जाता है ।।९।। गौओं के खुरों से उठी हुई रज से जो स्नान किया जाता है उस उत्तम स्नान को वायव्य स्नान कहते हैं। जो आतप रहते हुए वर्षा की बूँदों से स्नान होता है उसे दिव्य स्नान कहा जाता है ।।१०।। मानस स्नान को वारुण स्नान कहते हैं और आत्मवेदन यौगिक स्नान होता है जिसमें योग के द्वारा परिचिन्तन किया जाता है। ब्रह्मवादियों के द्वारा सेवित आत्मतीर्थ

कहा गया है ॥११॥ दूध जिन वृक्षों से निकला करता है उन वृक्षों की बनाई हुई—मालती लता की टहनी से बनाई गई परम शुभ—अपामार्ग (ओंघा) की बिल्व की और करवीर की दाँतुन को उत्तर की ओर मुख करके अथवा पूर्व की ओर मुख वाला होकर करना चाहिए। चबा कर और धोकर शुचि देश में समाहित होकर उसका उपयोग करके फिर त्याग देवे ॥१२॥१३॥ फिर स्नान करके देवों का—ऋषियों का पितृगण का तर्पण करना चाहिए। विधि के सहित आचमन करके नित्य ही पुन आचमन करके मौन होकर उदक बिन्दुओं के सहित कुशाओं से मन्त्रों के द्वारा अपना समार्जन करे और वह "आपोहिष्ठा मयोभुव" इत्यादि व्याहृतियों से—सावित्री से और शुभ वारुणों से करना चाहिए ॥१४॥१५॥

ॐकारव्याहृतियुता गायत्री वेदमातरम् ।
जप्त्वा जलाञ्जलिं दद्याद्भास्कर प्रति तन्मना ॥१६
प्रात काले तत स्थित्वा दर्भेषु सुसमाहित ।
प्राणायाम तत कृत्वा ध्यायेत्सन्ध्यामिति श्रुति ॥१७
या सन्ध्या सा जगत्सूतिर्मायातीता हि निष्कला ।
ऐश्वरी केवला शक्तिस्तत्वत्रयसमुद्भवा ॥१८
ध्यात्वा रक्ता सिता कृष्णा गायत्री वै जपेद्बुध ।
प्राङ मुख सतत विप्र सन्ध्योपासनमाचरेत् ॥१९
सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ।
यदन्यत्कुरुते किञ्चिन्न तस्य फलभाग्भवेत् ॥२०
अनन्यचेतस मन्तो ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
उपास्य विधिवत्सन्ध्या प्राप्ता पूर्वपरा गतिम् ॥२१
योऽन्यत्र कुरुते यत्न धर्मकार्ये द्विजोत्तम ।
विहाय सन्ध्याप्रणतिं स याति नरकायुतम् ॥२२

फिर ओङ्कार व्याहृतियों से युक्त वेदमाता गायत्री का जप करके तन्मनस्क होकर भगवान् भास्कर देव के प्रति जलाञ्जलि समर्पित करे ॥१६॥ इसके अनन्तर प्रात काल में कुशासन पर स्थित होकर सुसमाहित होते हुए

प्रणाम करके सन्ध्या की उपासना करे—ऐसा श्रुति प्रतिपादन करती है ॥१७॥ जो यह सन्ध्या है वह जगत् की जननी है—माया से अतीत और निष्कला है। यह केवल ऐश्वरी शक्ति तीनों तत्त्वों से समुत्पन्न होने वाली है ॥१८॥ बुध पुरुष को चाहिए कि गायत्री के स्वरूप का रक्त-सित और कृष्ण वर्ण का ध्यान करके फिर इसका जप करे। विप्र को सर्वदा पूर्व की ओर मुख करके सन्ध्या की उपासना करनी चाहिए ॥१९॥ जो विप्र सन्ध्या नहीं करता है वह धर्महीन ही होता है और समस्त कर्मों के करने के अयोग्य होता है। और भी वह जो कुछ करता है उसके फल को भोगने वाला नहीं होता है ॥२०॥ अनन्य चित्त वाले होते हुए वेद के पारगामी ब्राह्मण विधि-विधान के साथ सन्ध्या की उपासना करके पूर्वपरा गति को प्राप्त हुए हैं ॥२१॥ जो द्विज श्रेष्ठ अन्य कर्मों में जो कि धर्मयुक्त होते हैं यत्न किया करता है और सन्ध्या की प्रणति की प्रणति का त्याग कर देता है वह दस सहस्र वर्ष पर्यन्त नरक का गामी होता है ॥२२॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सन्ध्योपासनमाचरेत् ।
उपासितो भवेत्तेन देवो योगतनुः परः ॥२३
सहस्रपरमा नित्या शतमध्या दशापराम् ।
गायत्रीं वै जपेद्विद्वान् प्राङ्मुखः प्रयतः शुचिः ॥२४
अथोपतिष्ठेदादित्यमुदयस्थं समाहितः ।
मन्त्रैस्तु विविधैः सार्द्धं ऋग्यजुःसामसञ्ज्ञितैः ॥२५
उपस्थाय महायोगं देवदेवं दिवाकरम् ।
कुर्वीत प्रणतिं भूमौ मूर्द्धानमभिमन्त्रितः ॥२६
ॐ खद्योताय शान्ताय कारणत्रयहेतवे ।
निवेदयामि चात्मानं नमस्ते ज्ञानरूपिणे ॥२७
त्वमेव ब्रह्म परममापोज्योतीरसोऽमृतम् ।
भूर्भुवः स्वस्त्वमोङ्कारः सर्वो रुद्रः सनातनः ॥२८
एतद्वै सूर्यहृदयं जप्त्वा स्तवनमुत्तमम् ।
प्रातःकाले च मध्याह्ने नमस्कुर्याद्दिवाकरम् ॥२९

अथागम्य गृहं विप्रः समाचम्य यथाविधि ।
प्रज्वाल्य वह्निं विधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम् ॥३०

अतएव सम्पूर्ण प्रयत्नों से ब्राह्मण को सन्ध्योपासना अवश्य करनी चाहिए। उस सन्ध्या में उपासित देव परमभोग तनु हो जाता है ॥२३॥ विद्वान् ब्राह्मण को नित्य प्रति एक सहस्र गायत्री मन्त्र का जाप करना चाहिए—यह सर्वोत्तम है। यदि इतना न बन सके तो एकसो आठ बार एक ही माला गायत्री के जप की करे—यह मध्यम है और इतना भी यथन्तनायन न कर सके तो कम से कम दस बार तो अवश्य ही गायत्री का जप प्रति दिन करना चाहिए—यह सबसे निम्न श्रेणी की जप संख्या है। विद्वान् को पूर्व की ओर मुख करके और परम प्रसन्न होकर ही परम शुचिता के साथ गायत्री का जप करना चाहिए ॥२४॥ इसके अनन्तर बहुत सावधान होते हुए उदयस्थ भगवान् आदित्यदेव का उपस्थान करे। यह उपस्थान परम सारूप विविध ऋक्-यजु और सामवेद की संज्ञा वाले मन्त्रों के द्वारा करे ॥२५॥ महायोग देवों के भी देव भगवान् दिवाकर (सूर्य) का उपस्थान करके अभिमन्त्रित होते हुए भूमि में मस्तक टेक कर सूर्यदेव को प्रणाम करे। प्रणाम करने का मन्त्र यह है—"ओम् ख खोल्काय शान्ताय–इत्यादि"—अर्थात् ख अर्थात् आकाश के उल्का-स्वरूप—परम शान्त—तीनों कारणों के हेतु—ज्ञानस्वरूप वाले आप के लिये मेरा नमस्कार है। मैं अपने आपको आपके लिये निवेदित करता हूँ ॥२६॥२७॥ आपही परम ब्रह्म हैं। आपो ज्योति रस एवं अमृत हैं। आप भूर्भुवः स्वः हैं—आप ओङ्कार–सर्व–रुद्र एवं सनातन हैं ॥२८॥ इस उत्तम स्तवन का हृदय में सूर्य जाप करके प्रातःकाल में और मध्याह्न के समय में भगवान् दिवाकर को नमस्कार करे ॥२९॥ इसके अनन्तर विप्र अपने घर में आकर विधिपूर्वक आचमन करके अग्नि को प्रज्वलित करे और विधि के साथ उसे अग्नि में हवन करना चाहिए ॥३०॥

ऋत्विक्पुत्रोऽथपत्नी वा शिष्यो वापि महोदरः ।
प्राप्यानुज्ञां विशेषेण जुहुयाद्वा यथाविधि ॥

विना मन्त्रेण यत्कर्म नामुत्रेह फलप्रदम् ॥३१
दैवतानि नमस्कुर्य्यादुपहारान्निवेदयेत् ।
गुरुञ्चैवाप्युपासीत हितञ्चास्य समाचरेत् ॥३२
वेदाभ्यास ततः कुर्य्यात् प्रयत्नाच्छक्तितो द्विज. ।
जपेदध्यापयेच्छिष्यान्धारयेद्वै विचारयेत् ॥३३
अवेक्षेत च शास्त्राणि धर्मादीनि द्विजोत्तम ।
वैदिकाश्चैव निगमान्वेदाङ्गानि च सर्वश ॥३४
उपेयादीश्वरञ्चैव योगक्षेमप्रसिद्धये ।
साधयेद्विविधानर्थान्कुटुम्बार्थं ततो द्विज ॥३५
ततो मध्याह्नसमये स्नानार्थं मृदमाहरेत् ।
पुष्पाक्षतान्तिलकुशान् गोमय शुद्धमेव च ॥३६
नदीपु देवखातेपु तडागेपु सर सु च ।
स्नान समाचरेन्नैव परकीये कदाचन ॥
पञ्च पिण्डाननुद्धृत्य स्नान दुष्यन्ति नित्यश ॥३७

ऋत्विक्-पुत्र-पत्नी-शिष्य अथवा सहोदर भाई को आज्ञा प्राप्त करके विशेष रूप से यथा विधि हवन करना चाहिए । मन्त्र के बिना जो कोई भी कर्म होता है वह इस लोक मे तथा परलोक मे फल प्रदान करने वाला नहीं होता है ॥३१॥ समस्त देवो को नमस्कार करे और उन्हे उपहारो को समर्पित करे । फिर गुरुदेव और इनके जो भी हित हो उनकी उपासना करनी चाहिए ॥३२॥ इस कृत्य के सम्पन्न करने के अनन्तर द्विज को अपनी शक्ति से प्रयत्न पूर्वक वेदो का अभ्यास करना चाहिए । जप करे-शिष्यों को अध्यापन करे-धारण करे और विचारण करे ॥३३। हे द्विज श्रेष्ठ ! फिर शास्त्रों का अवेक्षण करे तथा धर्म आदि का निरीक्षण करे । वैदिक निगमो को तथा सभी वेद के अङ्ग व्याकरण-निरुक्त आदि शास्त्रो का परिशीलन करे ॥३४॥ अपने योगक्षेम की प्रसिद्धि के लिए ईश्वर का उपगमन करे और इसके पश्चात् द्विज को कुटुम्ब के लिए अनेक प्रकार के अर्थों का साधन करना चाहिए ॥३५॥

इसके अनन्तर मध्याह्न के समय स्नान के लिए मृत्तिका लावे। पुष्प—अक्षत—तिल—कुशा और शुद्ध गोमय लाना चाहिए ॥३६॥ नदी—देवखात—तड़ाग अथवा सरोवर में स्नान करना चाहिए। किन्तु दूसरों के स्थान में कभी भी स्नान नहीं करे। नित्य ही पाँच पिण्डों का उद्धार न करके लोग स्नान को दूषित कर दिया करते हैं ॥३७॥

मृदैकया शिरः क्षाल्य द्वाभ्यां नाभेस्तथोपरि ।
अधश्च तिसृभिः क्षाल्य पादौ षड्भिस्तथैव च ॥३८
मृत्तिका च समुद्दिष्टा वृद्धामलकमात्रिका ।
गोमयस्य प्रमाणन्तु तेनाङ्गं लेपयेत्ततः ॥
प्रक्षाल्याचम्य विधिवत्ततः स्नायात्समाहितः ॥३९
लेपयित्वा तु तीरस्थस्तल्लिङ्गैरेव मन्त्रतः ।
अभिमन्त्र्य जलं मन्त्रैरालिङ्गैर्वारुणैः शुभैः ॥
स्नानकाले स्मरेद्विष्णुमापो नारायणो यतः ॥४०
प्रेक्ष्य ओंकारमादित्यं त्रिर्निमज्जेज्जलाशये ।
आचान्तः पुनराचामेन्मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ॥४१
अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखम् ।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योतीरसोऽमृतम् ॥४२
द्रुपदां वा त्रिरभ्यस्येद् व्याहृतिप्रणवान्विताम् ।
सावित्रीं वा जपेद्विद्वांस्तथा चैवाघमर्षणम् ॥४३

एक मृत्तिका से शिर को धोना चाहिए— दो से नाभि के ऊपर के भाग का प्रक्षालन करें —तीन मृत्तिकाओं से अधोभाग को और छैः से पैरों का प्रक्षालन करना चाहिए। बढे हुए आँवले के फल के बराबर एक मृत्तिका समझनी चाहिए। फिर गोमय (गोबर) का प्रमाण लेकर उससे अङ्ग का लेपन करे और प्रक्षालन करके फिर आचमन करे तथा फिर विधि पूर्वक समाहित होकर स्नान करना चाहिए ॥३८-३९॥ तीर में स्थित होते हुए लेप करके उसके लिंगों से ही मन्त्र से जल को आलिंग शुभ वारुणों द्वारा अभिमन्त्रित करके स्नान के

समय मे भगवान् विष्णु का स्मरण करना चाहिए क्योंकि आप नारायण का स्वरूप है ॥४०॥ ओङ्कार आदित्य का प्रेक्षण करके जलाशय में तीन बार निमज्जन करे। मन्त्र वेत्ता को निम्न मन्त्र से आचान्त होकर पुनः आचमन करना चाहिए ॥४१॥ मन्त्र—"अन्तश्चरसि—अमृतम्"—यह है अर्थात् विश्व तो मुख आप प्राणियों के अन्तस्तल मे गुहा मे चरण करते हैं। आप यज्ञ स्वरूप हैं-वषट्कार-आप-ज्योति-रस और अमृत हैं। ४२॥ 'द्रुपदा-इस मन्त्र को तीन बार बोले अथवा व्याहृतियां तथा प्रणव से युक्त सावित्री का जाप विद्वान् को करना चाहिए। एव अघमर्षण मन्त्र का उच्चारण करे ॥४३॥

तत समार्जन कुर्य्यादापोहिष्ठामयो भुव ।
इदमाप प्रवहत व्याहृतिभिस्तथैव च ॥
ततोऽभिमन्त्रित तोयमापोहिष्ठादिमन्त्रकं ॥४४
अन्तर्जलमवागम्नो जपेत्त्रिरघमर्षणम् ।
द्रुपदा वाथ सावित्री तद्विष्णो परम पदम् ॥
आवर्त्तयेद्वा प्रणव देवदेव स्मरेद्धरिम् ॥४५
आप पाणौ समादाय जप्त्वा वै मार्जने कृते ।
विन्यस्य मूर्ध्नि तत्तोय मुच्यते सर्वपातकै ॥४६
सन्ध्यामुपास्य चाचम्य सस्मरेन्नित्यमीश्वरीम् ।
अथोपतिष्ठेदादित्यमूर्ध्वंपुष्पान्विताञ्जलि ॥४७
प्रक्षिप्यालोकयेद्देवमुदयस्थ न शक्यते ।
उदुत्य चित्रमित्येव चक्षुरिति मन्त्रत: ॥४८
इम शुचि मदेतेन साविश्या च विशेषत. ।
अन्यै सौरैर्वैदिकैश्च गायत्रीश्च ततो जपेत् ॥४९
मन्त्राश्च विविधान् पश्चात् प्राक्कूले च कुशासने ।
तिष्ठश्च वीक्ष्यमाणोऽर्कं जप कुर्यात्समाहित ॥५०

इसके उपरान्त "आपो हिष्ठामयो भुव '—इत्यादि मन्त्रों से समार्जन करे "इदमाप प्रवहत"—इसस तथा व्याहृतियों से एव 'आपो हिष्ठा"—इत्यादि मन्त्रों

से जल को अभिमन्त्रित करे ॥४४॥ जल के मध्य में चुपचाप अघमर्षण मन्त्र का तीन बार जप करे। अथवा 'द्रुपदा'-इसका या सावित्री का किम्वा 'तद्विष्णो परम पदम्'—इसका अथवा प्रणव का आवर्तन करे और देवों के भी देव श्री हरि का स्मरण करना चाहिए ॥४५॥ हाथ में जल लेकर अघमर्षण मन्त्र का जाप करके मार्जन करने पर विन्यास करके उस जल को समस्त पातकों के सहित छोड़ देना चाहिए ॥४६॥ सन्ध्या की उपासना करके आचमन करे और ईश्वर का नित्य ही स्मरण करना चाहिए। इसके अनन्तर ऊपर की ओर पुष्पाञ्जलि लेकर भगवान् आदित्य देव का उपस्थान करना चाहिए ॥ ४७ ॥ उस पुष्पों की अञ्जलि को प्रक्षिप्त करके देव का आलोकन करे। उदयाचल में स्थित का नहीं किया जा सकता है। "उदुत्यं चित्रम्" और 'तच्चक्षु '—इत्यादि मन्त्रों से हंस शुचि सदेत' इससे तथा विशेषतया सावित्री से एवं अन्य सौर तथा वैदिक मन्त्रों द्वारा उपस्थान करे। इसके अनन्तर गायत्री मन्त्र का जाप करे ॥४८।४६॥ तट पर पूर्व की ओर मुख करके स्थित होकर सूर्य का दर्शन करते हुए अति समाहित होकर कुशासन पर बैठकर विविध मन्त्रों का जाप करे ॥५०॥

स्फटिकाब्जाक्षरुद्राक्षैः पुत्रजीवसमुद्भवैः ।
कर्त्तव्या त्वक्षमाला स्यादन्तरा तत्र सा स्मृता ॥५१
यदि स्यात्क्लिन्नवासा वै वारिमध्यगतश्चरेत् ।
अन्यथा च शुचौ भूम्यां दर्भेषु च समाहितः ॥५२
प्रदक्षिणं समावृत्य नमस्कुर्यात्ततः क्षितौ ।
आचम्य च यथाशास्त्रं शक्त्या स्वाध्यायमाचरेत् ॥५३
ततः सन्तर्पयेद् देवानृषीन् पितृगणांस्तथा ।
आदावोङ्कारमुच्चार्य नमोऽन्ते तर्पयामि च ॥५४
देवान् ब्रह्मऋषींश्चैव तर्पयेदक्षतोदकैः ।
पितृन् देवान् मुनीन् भक्त्या स्वसूत्रोक्तविधानतः ॥
देवर्षींस्तर्पयेद्धीमानुदकाञ्जलिभिः पितृन् ॥५५

यज्ञोपवीती देवाना निवीती ऋषितर्पणे ।
प्राचीनावीती पित्र्ये तु तेन तीर्थेन भारत ॥५६
निष्पीड्य स्नानवस्त्रं वै समाचम्य च वाग्यतः ।
स्वैर्मन्त्रैरर्चयेद् देवान् पुष्पैः पत्रैस्तथाम्बुभिः ॥५७

अब जाप करने की माला के विषय मे बतलाते हैं कि माला स्फटिक-कमलगट्टा-रुद्राक्ष अथवा पुत्रजीव की निर्मित होनी चाहिए। यह मन्तरा अक्षमाला कही गई है ॥५१॥ यदि गीले वस्त्रो वाला हो तो जल के मध्य में स्थित होकर ही जप करे अन्यथा शुचि भूमि में दर्भासन पर स्थित होकर समाहित होते हुए जप करे ॥५२॥ फिर प्रदक्षिणा करके भूमि में नमस्कार करे और शास्त्रोक्त विधि के अनुसार आचमन करके अपनी शक्ति के अनुरूप स्वाध्याय करे ॥ ५३ ॥ इसके उपरान्त देवगण—ऋषिगण और पितरो का सन्तर्पण करना चाहिए। आदि मे ओङ्कार का उच्चारण करके अन्त मे "नम तर्पयामि"—इसे बोलकर तर्पण करना चाहिए। देवो को और ब्रह्म ऋषियो को तर्पण अक्षत मिश्रित जल से करे। अपने सूत्रोक्त विधान से भक्ति के साथ पितर-देव और मुनियो का तर्पण करना चाहिए। उदकाञ्जलियो के द्वारा धीमान् पुरुष को देवर्षियो का तथा पितृगण का तर्पण करना चाहिए ॥५४॥ ॥५५॥ हे भारत ! देवों का तर्पण करने के समय में यज्ञोपवीती रहे—ऋषियो के तर्पण के समय में निवीती रहे और पितृगण के तर्पण में प्राचीनावीती रहते हुए उस तीर्थ से तर्पण करे ॥५६॥ स्नान के वस्त्र का निष्पीडन कर आचमन करे और वाग्यत अर्थात् मौन होकर अपने मन्त्रो के द्वारा पुष्पो से-पत्रों से तथा जलो से देवों का अर्चन करना चाहिए ॥५७॥

ब्रह्माणं शङ्करं सूर्यं तथैव मधुसूदनम् ।
अन्यांश्चाभिमतान् देवान् भक्त्या चाक्रोधनो हर ॥५८
प्रदद्याद्वाथ पुष्पादि सूक्तेन पुरुषेण तु ।
आपो वा देवताः सर्वास्तेन सम्यक् समर्चिताः ॥५९

ध्यात्वा प्रणवपूर्वं वै देवं परिसमाहित ।
नमस्कारेण पुष्पाणि विन्यसेद्वै पृथक् पृथक् ॥६०
नतें ह्याराधना पुण्य विद्यते कर्म वैदिकम् ।
तस्मात्तादिमध्यान्ते चेतमा धारयेद्धरिम् ॥६१
तद्विष्णोरिति मन्त्रेण सूक्तेन पुरुषेण तु ।
निवेदयेत्र आत्मानं विष्णवेऽमलतेजसे ॥६२
तदध्यातमनाः शान्तस्तद्विष्णोरिति मन्त्रिन ।
देवयज्ञ भूतयज्ञ पितृयज्ञ तथैव च ॥
मानुष ब्रह्मयज्ञञ्च पञ्च यज्ञान् समाचरेत् ॥६३
यदि स्यात्तर्पणादर्वाग् ब्रह्मयज्ञ कृता भवेत् ।
कृत्वा मनुष्ययज्ञ वै तत स्वाध्यायमाचरेत् ॥६४

ब्रह्मा—शङ्कर—सूर्य तथा मधुसूदन एव अन्य जो अपने अभिमत (माने हुए) देवगण हो उनका क्रोध रहित होकर भक्ति भाव से समचन करे ।५८। पुष्प सूक्त के मन्त्रो के द्वारा पुष्पाक्षत गन्धादि सम्पूर्ण उपचारो को समर्पित करे । अथवा जल के द्वारा ही समस्त देव समर्चित करने चाहिए ॥५९॥ परि-समाहित होकर प्रणव पूर्वक देव का ध्यान करे और नमस्कार के द्वारा पृथक्-पृथक् पुष्पो का विन्यास करना चाहिए ॥६०॥ इनकी आराधना करना पुण्य नहीं किन्तु यह एक वैदिक कम है । इसलिये आदि—मध्य और अन्त म चित्त से भगवान् हरि को धारण करना चाहिए ॥६१॥ अमल तेज से युक्त भगवान् विष्णु के लिये "तद्विष्णो परम पदम्'—इत्यादि मन्त्र से और पुरुष सूक्त से अपनी आत्मा को निवेदित करे ॥६२॥ उसका ध्यान मन में रखने वाला परम शान्त रहते हुए 'तद्विष्णो'—इत्यादि मन्त्र से मन्त्रित होकर देवयज्ञ–भूतयज्ञ–पितृयज्ञ–मानुष यज्ञ और ब्रह्मयज्ञ—इन पांच यज्ञों को करना चाहिए ॥६३॥ यदि तर्पण करे तो इसके पीछे ब्रह्मयज्ञ कैसे होगा । मानुष यज्ञ करके इसके अनन्तर स्वाध्याय करना चाहिए ॥६४॥

वैश्वदेवस्तु कर्त्तव्यो देवयज्ञ स तु स्मृत ।
भूतयज्ञ स विज्ञेयो भूतेभ्यो यस्त्वयं बलि ॥६५

श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च पतितादिभ्य एव च ।
दद्याद् भूमौ बहिस्त्वन्न पक्षिभ्यश्च द्विजोत्तम ॥६६
एक तु भोजयेद्विप्र पितृनुद्दिश्य सत्तम ।
नित्यश्राद्ध तदुद्दिश्य पितृयज्ञो गतिप्रद ॥६७
उद्धृत्य वा यथाशक्ति किञ्चिदन्न समाहित ।
वेदतत्त्वार्थविदुषे द्विजायैवोपपादयेत् ॥६८
पूजयेदतिथि नित्य नमस्येदर्चयेद् द्विजम् ।
मनोवाक्कर्मभि शान्त स्वागत स्वगृह तत ॥६९
भिक्षामाहुर्ग्रासमात्रमन्न तस्य चतुर्गुणम् ।
पुष्कल हस्तमात्रन्तु तच्चतुर्गुणमुच्यते ॥७०
गादोहमात्रकालो वै प्रतीक्षेदतिथि स्वयम् ।
अभ्यागतान् यथाशक्ति पूजयेदतिथि तथा ॥७१
भिक्षा वै भिक्षवे दद्याद्विधिवद् ब्रह्मचारिणे ।
दद्यादन्न यथाशक्ति अर्थिभ्यो लोभवर्जित ॥
भुञ्जीत बन्धुभि सार्द्ध वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ॥७२

वैश्वदेव करना चाहिए। यह देवयज्ञ कहा गया है। भूतयज्ञ उसे ही समझना चाहिए। जसमे भूतो के लिये बलि या आहरण किया जाता है ॥६५॥ द्विज श्रेष्ठ को श्वानो के लिये—श्वपचो के लिये और पतित आदि को बाहिर भूमि म अन्न देना चाहिए। पक्षियो के लिये भी अन्न देना चाहिए ॥६६॥ श्रेष्ठतम पुरुष को पितरो का उद्देश्य करके एक ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए। इसे नित्य श्राद्ध कहते हैं जोकि पितृगण के उद्देश्य से किया जाता है। यह पितृयज्ञ गति के प्रदान करने वाला होता है ॥ ६७ ॥ अथवा सावधान होते हुए अपनी शक्ति के अनुसार कुछ अन्न उद्धृत करके वेदो के तत्त्वों के विद्वान् द्विज के लिये उपपादित करना चाहिए ॥६८॥ अतिथि का नित्य ही पूजन करे। अपने घर पर समागत शान्त द्विज को मन-वाणी और कर्म से किय हुए स्वागत-सत्कारो के द्वारा नमस्कार करे और अर्चना करे। ॥६९॥ ग्रास मात्र अन्न को भिक्षा कहते हैं। उसका चतुर्गुण पुष्कल कहलाता

है और इसका चतुर्थांश हस्त मात्र कहा जाता है ॥७०॥ अतिथि की जितने समय में एक गाय का दोहन होता है उतने काल तक स्वयं प्रतीक्षा करनी चाहिए। अभ्यागतों को तथा अतिथियों को अपनी शक्ति भर पूजन करना चाहिए।७१॥ ब्रह्मचारी भिक्षु के लिए विधि पूर्वक भिक्षा देनी चाहिए। लोभ से रहित होकर अर्थियों (याचकों) के लिए यथाशक्ति अन्न का दान करना चाहिए। अन्न की बुराई न करते हुए मौन होकर अपने बन्धुओं के साथ भोजन करे ॥७२॥

अकृत्वा तु द्विज पञ्च महायज्ञान् द्विजोत्तम ।
भुञ्जते चेत् स मूढात्मा तिर्यग्योनिञ्च गच्छति ॥७३
वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रियाक्षमा ।
नाशयन्त्याशु पापानि देवानामर्चनं तथा ॥७४
यो मोहादथवाऽलस्यादकृत्वा देवनार्चनम् ।
भुङ्क्ते स याति नरकान् शूकरादव जायते ॥७५
अशौचं सम्प्रवक्ष्यामि अशुचि पातकी सदा ।
अशौचं चैव समगाच्छुचि संसर्गवर्जनात् ॥७६
दशाहं प्राहुराशौचं सर्वे विप्रा विपश्चित ।
मृतेषु वाथ जातेषु ब्राह्मणाना द्विजोत्तम । ७७
आदन्तजननात्सद्य आचूडादेकरात्रकम् ।
त्रिरात्रमौपनयनाद्दशरात्रमत परम् ॥७८
क्षत्रियो द्वादशाहेन दशभि पञ्चभिर्विश ।
शुद्धयेन्मासेन वै शूद्रो यतीनां नास्ति पातकम् ॥
रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावेषु शौचकम् ॥७९

द्विजों में श्रेष्ठ द्विज पाँच महायज्ञों को न करके यदि स्वयं भोजन कर लेता है तो वह मूढ आत्मा वाला है और दूसरे जन्म में वह तिर्यग् योनि में जन्म ग्रहण किया करता है ॥७३॥ नित्य प्रति वेदों का अभ्यास और शक्ति से महायज्ञों की क्रिया में समर्थ तथा देवों का अर्चन ये पापों को शीघ्र ही नष्ट

कर देते है ॥७४॥ जो भी मोह से अथवा आलस्य से देवताओं की अर्चना न करके भोजन कर लेता है वह नरकों को प्राप्त होता है और शूकर की योनि में जन्म ग्रहण किया करता है ॥७५॥ अब मैं अशौच को बताऊँगा। पातक करने वाला पुरुष सर्वदा अशुचि रहा करता है। समर्ग से भी अशुचि हो जाता है यदि शुचि था उसे कभी समर्ग ही न होता हो ॥ ७६ ॥ विद्वान् पुरुष है द्विज श्रेष्ठ ! मृत होने पर और जन्म होने पर ब्राह्मण को दश दिन पर्यन्त आशौच कहते है ॥७७॥ जब तक बालक के दांत नहीं निकलते हैं और उसकी मृत्यु हो जावे तो उसका आशौच तुरन्त ही दूर हो जाता है। जब तक चूड़ा कर्म न हो तब तक एक रात्रि का आशौच होता है। उप नयन सस्कार हो जाने पर तीन रात्रि का आशौच मृतक का होता है और इसके आगे तो दश रात्रि तक आशौच मृतक का होता है ॥७८॥ यह ब्राह्मण के आशौच के विषय मे बताया गया है किन्तु क्षत्रिय वर्ण वाले पुरुष का आशौच बारह दिन तक रहता है तथा वैश्य का आशौच पन्द्रह दिन तक होता है और शूद्र का आशौच एक मास पर्यन्त रहा करता है। यतियों को पातक नहीं होता है। गर्भ के स्राव हो जाने पर जितने भी मास का गर्भ हो उतनी ही रात्रियों तक उसका आशौच रहा करता है और इसके पश्चात् वह शुद्ध होता है ।७९।

२५–दान धर्म वर्णन

अथात सम्प्रवक्ष्यामि दानधर्ममनुत्तमम्।
अर्थानामुचिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम् ॥१
दानन्तु कथितं तज्ज्ञैर्भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्।
न्यायेनोपार्जयेद्वित्तं दानभोगफलञ्च तत् ॥२
अध्यापनं याजनञ्च वृत्तमाहुः प्रतिग्रहम्।
कुसीदं कृषिवाणिज्यं क्षत्रवृत्तोऽथवार्जयेत् ॥३
यद्दीयते तु पात्रेभ्यस्तद्दानं सात्त्विकं विदुः।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं दानमीरितम् ॥४

अहन्यहनि यत्किञ्चिद्दीयतेऽनुपकारिणे ।
अनुद्दिश्य फलं तस्माद् ब्राह्मणाय तु नित्यशः ॥५
यत्तु पापोपशान्त्यै च दीयते विदुषां करे ।
नैमित्तिकं तदुद्दिष्टं दानं सद्भिरनुष्ठितम् ॥६
अपत्यविजयैश्वर्यस्वर्गार्थं यत्प्रदीयते ।
दानं तत्काम्यमाख्यातमृषिभिर्धर्मचिन्तकैः ॥७

ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर अब मैं सर्व श्रेष्ठ दान के धर्म के विषय में बतलाऊँगा किसी समुचित दान देने के पात्र पुरुष को श्रद्धा पूर्वक किया हुआ दान का प्रतिपादन विज्ञ पुरुषों के द्वारा मुक्ति एवं मुक्ति का प्रदान करने वाला दान बताया गया है। न्याय से उपार्जन करे यही वित्त दान के फल का भोग कहा गया है ॥१।२॥ ब्राह्मण के लिए अध्यापन करना—याजन करना और प्रतिग्रह ग्रहण करना ये ही वृत्ति बताई गई है। कुसीद (ब्याज)—कृषि और वाणिज्य कर्म यह क्षत्रियों की वृत्ति है। इसके द्वारा अर्जन करे ॥३॥ जो दान किसी भी योग्य पुरुष को दिया जाता है वही दान सात्त्विक कहा गया है। दान कितने ही प्रकार का होता है—नित्य—नैमित्तिक—काम्य और विमल दान होता है ॥४॥ जो नित्य प्रति हर एक दिन कुछ भी किसी अनुपकारी को अर्थात् जिससे किसी भी अपने उपकार की आशा न हो, दान दिया जाता है वह नित्य दान होता है। किसी फल का उद्देश्य न रखकर ब्राह्मण को नित्य दान दिया जाता है ॥ ५ ॥ जो किसी पाप की उपशान्ति के लिये विद्वान् पुरुषों के हाथ में दान दिया जाता है सत्पुरुषों ने उस दान को नैमित्तिक दान बतलाया है ॥ ६ ॥ सन्तति—विजय—ऐश्वर्य और स्वर्ग की प्राप्ति के उद्देश्य से जो दान दिया जाता है यह काम्य दान कहा गया है और धर्म का चिन्तन करने वाले ऋषियों ने इसे कामना की पूर्ति के लिये किया गया काम्य दान कहा है ॥७॥

ईश्वरप्रीणनार्थाय ब्रह्मवित्सु प्रदीयते ।
चेतसा सत्त्वयुक्तेन दानं तद्विमलं शिवम् ॥८

इक्षुभिः सन्नतां भूमिं यवगोधूमशालिनीम् ।
ददाति वेदविदुषे स न भूयोऽभिजायते ॥
भूमिदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥६
विद्यां दत्त्वा ब्राह्मणाय ब्रह्मलोके महीयते ।
दद्यादहरहस्तांस्तु श्रद्धया ब्रह्मचारिणे ॥
सर्वपाप विनिर्मुक्तो ब्रह्म स्थान मवाप्नुयात् ॥१०
वैशाख्यां पौर्णमास्यान्तु ब्राह्मणान्सप्त पञ्च च ।
उपोष्याभ्यर्चयेद्विद्वान्मधुना तिलपिष्टकैः ॥
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य वाचयेद्वा स्वयं वदेत् ॥११
प्रीयतां धर्मराजाभिर्यथा मनसि वर्त्तते ।
यावज्जीव कृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥१२
कृष्णाजिने तिलान्कृत्वा हिरण्यमधुसर्पिषा ।
ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम् ॥१३
घृतान्नमुदकञ्चैव वैशाख्यां च विशेषतः ।
निदिश्य धर्मराजाय विप्रेभ्यो मुच्यते भयात् ॥१४

केवल भगवत्प्रीति प्राप्त करने के लिये ब्रह्म के वेत्ता पुरुषों में जो दान दिया जाता है और सत्त्व सम्पन्न चित्त से जिसको दिया जाता है वह परम शिव विमल दान कहा गया है ।।८।। ईख को सदा उपज से सम्पन्न भूमि—यव—गोधूम (गेहूं) के उपज वाली भूमि का जो किसी वेद के विद्वान् को दान देता है वह परम पद को प्राप्त हो जाता है और फिर इस संसार में जन्म ग्रहण नहीं किया करता है । भूमि का दान सबसे परम एवं श्रेष्ठ दान होता है । ऐसा उत्तम अन्य कोई भी दान न अब तक हुआ है और न भविष्य में भी होगा ।। ६ ।। जो विद्या का दान है जिसको कि ब्राह्मण के लिये दिया जाता है उसका बड़ा आदर ब्रह्मलोक में होता है । वह विद्या का दान नित्य प्रति बड़ी श्रद्धा से ब्रह्मचारी को देना चाहिए । ब्रह्मचारी को विद्या का दान करने वाला पुरुष समस्त प्रकार के पापों से छुटकारा पाकर ब्रह्मस्थान को प्राप्त किया करता है ।।१०।। वैशाख मास की पूर्णिमा के दिन बारह ब्राह्मणों को उपवास कराकर

विद्वान् को मधु और तिल पिष्ट से उनका अभ्यर्चन करना चाहिए। गन्धाक्षत पुष्पादि से भली भाँति अर्चना करके उनसे स्वस्तिवाचन कराये या स्वयं बोले ।। ११ ।। धर्म वाणियों से प्रसन्न होवो उस प्रकार से मन में वर्त्तमान होता है। पूरे जीवन में जो भी पाप किये हैं वे सब उसी क्षण में नष्ट हो जाते हैं ।।१२।। कृष्णाजिन में तिलों को रखकर हिरण्य—मधु और घृत के सहित जो ब्राह्मण के लिये दान देता है वह सब दुष्कृतों से तर जाता है ।।१३।। वैशाखी पूर्णिमा के दिन घृत—अन्न और जल विशेष रूप से धर्मराज का निर्देश करके ब्राह्मणों को दान देता है वह भय से मुक्त हो जाता है ।।१४।।

द्वादश्यामर्चयेद्विष्णुमुपोष्याघप्रणाशनम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो नरो भवति निश्चितम् ।।१५
यो हि या देवतामिच्छेत्समाराधयितु नर ।
ब्राह्मणान्पूजयेद्यत्नाद्भोजयेद्योषित सुरान् ।।१६
सन्तानकाम सतत पूजयेद् वै पुरन्दरम् ।
ब्रह्मवर्चसकामस्तु ब्राह्मणान् ब्रह्मनिश्चयात् ।।१७
आरोग्यकामोऽथ रवि धनकामो हुताशनम् ।
कर्मणा सिद्धि कामस्तु पूजयेद् वै विनायकम् ।।१८
भोगकामो हि शशिन बलकाम· समीरणम् ।
मुमुक्षु· सर्वसंसारात् प्रयत्नेनार्चयेद्धरिम् ।।
अकाम सर्वकामो वा पूजयेत्तु गदाधरम् ।।१९
वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नद· ।
तिलप्रद प्रजामिष्टा दीपदश्चक्षुरुत्तमम् ।।२०
भूमिद सर्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यद ।
गृहदोऽग्र्याणि विश्वानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ।।२१

द्वादशी के दिन में पापों के प्रनष्ट करने वाले भगवान विष्णु की उपोषित होकर जो अर्चना करता है वह मनुष्य सम्पूर्ण पापों से विनिर्मुक्त निश्चय ही हो जाया करता है ।।१५।। जो मनुष्य जिस देवता की आराधना करने की

औषध स्नेहमाहार रोगिरोगप्रशान्तये ।
ददानो रोगरहित सुखी दीर्घायुरेव च ॥२५
असिपत्रवन मार्गं क्षुरधारसमन्वितम् ।
तीक्ष्णातपञ्च तरति छत्रोपानत्प्रदानत ॥२६
यद्यदिष्टतम लोके यच्चास्य दयित गृहे ।
तत्तद् गुणवते देय तदेवाक्षयमिच्छता ॥२७

वसु (धन) का दान करने वाला चन्द्र देव के सालोक्य की प्राप्ति करता है और अश्व का दाता अश्वि के लोक की प्राप्ति करता है । वृषभ का दाता पुष्टि का लाभ करता है । गौ का दाता व्रध्न के विष्टप को पाता है ॥२२॥ यान तथा शरणा के दान करने वाला पुरुष भार्य्या को पाता है । अभय के दान देने वाला ऐश्वर्य की प्राप्ति करता है । धान्य का दाता शाश्वत सुख प्राप्त किया करता है । ब्रह्म का दान करने वाला शाश्वत ब्रह्म की प्राप्ति करता है ॥२३॥ वेदो के ज्ञाताओ मे दिया हुआ ज्ञान स्वर्ग लोक मे प्रतिष्ठित होता है । गौओ को घास देने से मनुष्य समस्त पापों से प्रमुक्त हो जाता है । ईधनो के दान से मानव दीप्त अग्नि वाला होता है ॥२४॥ औषध—स्नेह और आहार रोग वाले के रोग को शान्त करने के लिये जो दान करने वाला है वह सदा रोगो से रहित-परम सुखी तथा लम्बी उम्र वाला होता है ॥२५॥ छाता और उपानत् अर्थात् जूतो के प्रदान करने पर असिपत्र वन नाम वाले नरक के मार्ग को जो कि छुरा की धारा से युक्त होता है उसे और अत्यन्त तीव्र आतप के कष्ट को तैर जाया करता है ॥२६॥ जो जो भी वस्तु ससार मे अपने आपको घर मे अभीष्टतम और प्रिय हो वह—वही वस्तु किसी गुण वाले विप्र को दान मे प्रदान करनी चाहिए । इससे अक्षय सुख की प्राप्ति हुआ करती है ॥२७॥

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययो ।
सक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्त भवति चाक्षयम् ॥२८
प्रयागादिषु तीर्थेषु गगायाञ्च विशेषत ।
दानधर्मात्परो धर्मो भूताना नेह विद्यते ॥२९

स्वर्गादच्युतिकामेन दानं पापोपशान्तये ।
दीयमानन्तु या माहाद्विप्राग्निध्वघ्वरेषु च ॥
निवारयति पापात्मा तिर्य्यग्योनिं व्रजेनर ॥३०

यस्तु दुर्भिक्षवलायामन्नाद्य न प्रयच्छति ।
म्रियमाणेषु विप्रेषु ब्रह्महा स तु गर्हित ॥३१

अयन मे—विषुव अर्थात् सक्रान्ति के समय मे तथा चन्द्र एवं सूर्य के ग्रहण के अवसर पर एवं मास सक्रान्ति आदि के समयो पर जो दान किया जाता है वह कभी क्षय को प्राप्त न होने वाला होता है ॥ २८ ॥ प्रयाग आदि महान् तीर्थों मे और विशेष रूप से गया नामक तीर्थ मे दान करने के धर्म से बडा धर्म प्राणियो का मास कोई भी धर्म इस ससार मे नहीं होता है ॥२६॥ स्वर्ग प्राप्त करके फिर वहाँ से कभी भी च्युति न हो अर्थात् स्वर्गलोक का त्याग न करना पडे एव किये हुए समस्त पापो के उपशमन करने के लिये दिये हुए दान को मोह वश होकर जो विप्र–अग्नि और अध्वरा मे निवारण कर देता है वह पापात्मा पुरुष तिर्यग यानि को प्राप्त हुआ करता है ॥ ३० ॥ जो दुर्भिक्ष (अकाल) के समय मे अन्न आदि का दान नहीं दिया करता है अर्थात् जो अन्न प्राप्त न होने के कारण विप्रगण भूख से मर रहे हो उन्हें अन्न नहीं देता है वह ब्रह्म हत्यारा ही होता है और बहुत ही निन्दित होता है ॥३१॥

२६–सप्तद्वीप उत्पत्ति और वंश वर्णन

अग्निध्रश्चाग्निबाहुश्च वपुष्मान्द्युतिमांस्तथा ।
मघा मेघातिथिर्भव्य शवल पुत्र एव च ॥
ज्योतिष्मान्दशमा जात पुत्रा ह्येते प्रियव्रतात् ॥१

मेधाग्निबाहुपुत्रास्तु त्रयो योगपरायणा ।
जातिस्मरा महाभागा न राज्याय मनो दधु ॥
विभज्य सप्त द्वीपानि सप्ताना प्रददौ नृप ॥२

योजनानां प्रमाणेन पञ्चाशत्कोटिरान्पुता ।
जलोपरि मही याता नौरिवास्ते सरिज्जले ॥३
जम्बूप्लक्षद्वयो द्वीपौ शाल्मलश्चापरो हर ।
कुश. क्रौञ्चस्तथा शाक. पुष्करश्चैव सप्तम ॥४
एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृता ।
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलान्तका ॥५
द्वीपात् द्विगुणो द्वीप समुद्रश्च वृषध्वज ।
जम्बुद्वीपे स्थितो मेरुर्लक्षयोजनविस्तृत ॥६
चतुरशीतिसाहस्रं योजनैरस्य चोच्छ्रय. ।
प्रविष्ट षोडशाधस्ताद् द्वात्रिंशन्मूर्ध्निविस्तृत ॥७
अथ षोडशसाहस्र. कर्णिकाकारसंस्थित ।
हिमवान्हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे ॥
नील श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः ॥८

श्रीहरि भगवान् ने कहा—राजा प्रियव्रत के दश पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनके नाम-अग्निध्र अग्निबाहु-वपुष्मान्—द्युतिमान्—मेधातिथि—भव्य—सवन-पुत्र और ज्योतिष्मान् ये थे ॥ १ ॥ मेधा-अग्निबाहु और पुत्र ये तीनों योगाभ्यास में परायण और महान् भाग वाले जातिस्मर हुए थे जिन्होंने कभी भी अपना मन राज्य के सुखों का उपभोग करने में नहीं लगाया था। केवल प्रियव्रत नृप के सात ही पुत्र ऐसे थे जिनके लिये राजा ने सातों को भूमि का सात द्वीपों में विभाजन करके दे दिया था ॥२॥ पचास करोड योजनों के प्रमाण से युक्त यह पृथ्वी नदी के जल में एक नौका की भाँति आप्लुत थी ॥३॥ सात द्वीपों के नाम—जम्बु द्वीप—प्लक्ष—शाल्मल द्वीप—हे हर ! कुश—क्रौञ्च—शाक द्वीप और सातवाँ पुष्कर द्वीप है ॥ ४ ॥ ये सातों द्वीप सात समुद्रों से आवृत थे। हे वृषध्वज ! उन सात समुद्रों के नाम ये हैं—लवण—समुद्र-इक्षु-सुरा-सर्पि (घृत)—दधि—दुग्ध सागर और जल सागर हैं ॥५॥ एक द्वीप से दूसरा द्वीप तथा इसी भाँति एक सागर से दूसरा समुद्र दुगुना विस्तार वाला होता है जम्बूद्वीप में स्थित मेरु गिरि एक लाख योजन के विस्तार वाला है ॥ ६ ॥

चोरासी सहस्र योजन वाली इस मेरु पर्वत की ऊँचाई होती है। षोडश योजन नीचे के भाग मे प्रविष्ट है और बत्तीस योजन मूर्द्धा मे विस्तृत है ।।७।। सोलह सहस्र नीचे वर्णिका के आकार मे संस्थित है। हिमवान् और हेमकूट तथा इसके दक्षिण में निषध है। उत्तर दिशा मे नील—श्वेत और शृङ्गी पर्वत संस्थित हैं ।।८।।

प्लक्षादिषु नरा रुद्र ये वसन्ति सनातना ।
शङ्कर हि न तेष्वस्ति युगावस्था कथञ्चन ।।६
जम्बुद्वीपेश्वरात्पुत्रा ह्यग्निध्रादभवन्नव ।
नाभि किंपुरुषश्चैव हरिवर्ष इलावृत ।।१०
रम्यो हिरण्वान्षष्ठश्च कुरुर्भद्राश्व एव च ।
केतुमालो नृपस्तेभ्यस्तत्सञ्ज्ञान्खण्डकान्ददौ ।।११
नाभेस्तु मेरुदेव्यान्तु पुत्रोऽभूदृषभो हर ।
तत्पुत्रो भरतो नाम शालग्रामे स्थितो व्रती ।।१२
सुमतिर्भरतस्याभूत्तत्पुत्रस्तेजसोऽभवत् ।
इन्द्रद्युम्नश्च तत्पुत्र परमेष्ठी तत स्मृतः ।।१३
प्रतीहारश्च तत्पुत्र प्रतिहर्त्ता तदात्मज ।
सुतस्तस्मादथो जात प्रस्तारस्तत्सुतो विभु ।।१४
पृथुश्च तत्सुतो नक्तो नक्तस्यापि गय स्मृत ।
नरो गयस्य तनयस्तत्पुत्रो बुद्धिराट् ततः ।।१५
ततो धीमान्महातेजा भौवनस्तस्य चात्मज ।
त्वष्टा त्वष्टुश्च विरजा रजस्तस्याप्यभूत्सुत ।।
शतजिद्रजसस्तस्य विष्वग्ज्योति सुत स्मृत ।।१६

हे रुद्र ! प्लक्ष आदि द्वीपों मे जो सनातन मनुष्य निवास किया करते हैं हे शङ्कर ! उनमें युगावस्था किसी भी प्रकार से नहीं होती है ।।६।। जम्बूद्वीप के अधिपति नृप मे अग्निध्र नाम प्रसिद्ध था उससे नौ पुत्र समुत्पन्न हुए थे। उनके नाम नाभि-किंपुरुष—हरिवर्ष—इलावृत—रम्य—हिरण्वान् षष्ठ है।

कुरु-भद्राश्व और केतुमाल थे । राजा ने उनके लिए उन्ही की सज्ञा वाले खण्डो को दे दिया ॥१०।११॥ हे हर ! नाभि से मेरु देवी से ऋषभ नामधारी पुत्र समुत्पन्न हुआ था । उसका पुत्र भरत नाम वाला था जो शालग्राम की उपासना मे स्थित और व्रतधारी था ॥ १२ ॥ भरत का सुमति पुत्र हुआ और उसका पुत्र तैजस हुआ । तेजस का तनय इन्द्र द्युम्न हुआ और फिर इससे परमेष्ठी नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी ॥१३॥ परमेष्ठी का आत्मज प्रतीहार हुआ था तथा इसका पुत्र प्रतिहर्ता हुआ । फिर इसका पुत्र प्रस्तार समुत्पन्न हुआ और प्रस्तार का पुत्र विभु हुआ था ॥१४॥ विभु का आत्मज नक्त हुआ और नक्त का गय तथा गयका सुत नर और इसका पुत्र बुद्धि राट् उत्पन्न हुआ था ॥१५॥ इससे महान् तेजस्वी धीमान् भौवन पुत्र हुआ और इसका आत्मज त्वष्टा हुआ त्वष्टा का पुत्र विरजा और विरजा का पुत्र रज हुआ था । रज का पुत्र सत-जित् हुआ और इसका पुत्र विष्वग्ज्योति हुआ था ॥१६॥

२७—वर्ष और कुल पर्वत वर्णन

मध्ये त्विलावृतो वर्षो भद्राश्वः पूर्वतो भवेत् ।
पूर्वदक्षिणतो वर्षो हिरण्वान्वृषभध्वज ॥१
ततः किम्पुरुषो वर्षो मेरोर्दक्षिणतः स्मृतः ।
भारतो दक्षिणे प्रोक्तो हरिर्दक्षिणपश्चिमे ॥
पश्चिमे केतुमालश्च रम्यक पश्चिमोत्तरे ॥२
उत्तरे च कुरोर्वर्षः कल्पवृक्षसमावृत ।
सिद्धि. स्वाभाविकी रुद्र वर्जयित्वा तु भारतम् ॥३
इन्द्रद्वीप कशेरुमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ।
नागद्वीपः कटाहश्च सिंहलो वारुणस्तथा ॥
अयन्तु नवमस्तेषा द्वीप सागरसंवृत. ॥४
पूर्वे किरातास्तस्यास्ते पश्चिमे यवनाः स्थिता. ।
आन्ध्रा दक्षिणतो रुद्र तुरुष्कास्त्वपि चोत्तरे ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चान्तरवासिन ॥५

महेन्द्रो मलय सह्य शुक्तिमानृक्षपर्वत ।
विन्ध्यश्च पारिभद्रश्च सप्तात्र कुलपर्वता' ॥६
वेदस्मृतिर्नर्मदा च वरदा सुरसा शिवा ।
तापी पयोष्णी सरयू कावेरी गोमती तथा ॥७
गोदावरी भीमरथी कृष्णवर्णा महानदी ।
केतुमाला ताम्रपर्णी चन्द्रभागा सरस्वती ॥८
ऋषिकुल्या च कावेरी मृतगङ्गा पयस्विनी ।
विदर्भा च शतद्रुश्च नद्य पापहरा शुभा ॥
आभा पिबन्ति सलिल मध्यदेशादयो जना ॥९

श्री हरि भगवान् ने कहा—हे वृषभ ध्वज ! इलावर्त्त वर्ष मध्य में स्थित है। इसके पूर्व दिशा मे भद्राश्व वर्ष है। पूर्व और दक्षिण मे हिरण्वान् वर्ष है। इसके अनन्तर किम्पुरुष वर्ष मेरु के दक्षिण मे स्थित कहा गया है। दक्षिण मे भारत वर्ष बताया गया है तथा दक्षिण और पश्चिम मे हरि वर्ष स्थित है। पश्चिम मे केतुमाल है और पश्चिम उत्तर मे रम्यक वर्ष है ॥१-२॥ उत्तर दिशा मे कुरु का वर्ष है जो कि कल्प वृक्ष से समावृत है। हे रुद्र ! भारत को वर्जित करके सर्वत्र स्वाभाविकी सिद्धि होती है ॥३॥ इन्द्रद्वीप कसेरुमान् ताम्र वर्ण—गभस्तिमान्—नागद्वीप और कटाह—सिंहल तथा वारुण यह उनमें नवम द्वीप है जोकि सागर से संवृत होता है ॥४॥ इसके पूर्व मे किरात लोग निवास किया करते हैं और पश्चिम मे यवन जाति वाले मानव रहते हैं। दक्षिण दिशा मे आन्ध्र लोग तथा हे रुद्र ! उत्तर दिशा मे तुरुष्क निवास करते हैं। ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य और शूद्र अन्तर मे वास करने वाले हैं ॥५॥ यहाँ पर सात कुल पर्वत हैं जिनके नाम—महेन्द्र—मलय—सह्य—शुक्तिमानृक्ष पर्वत—विन्ध्य और पारिभद्र हैं ॥६॥ वेदस्मृति—नर्मदा—वरद—सुरसा—शिवा—तापी—पयोष्णी—सरयू—कावेरी—गोमती—गोदावरी—भीमरथी—कृष्णवर्णा—महानदी—केतुमाला—ताम्र पर्णी—चन्द्र भागा—सरस्वती—ऋषि कुल्या—कावेरी—मृत गङ्गा—पयस्विनी—विदर्भा और शतद्रु हैं। ये सभी नदियाँ परम

शुभ एवं पापों के हरण करने वाली हैं। इन समस्त नदियों का जल मध्य देशादि के मानव पान किया करते हैं ॥६॥

पाञ्चाला कुरवो मत्स्या यौधेया सपटच्चरा ।
कुन्तयः शूरसेनाश्च मध्यदेशजना स्मृता ॥१०
वृषध्वज जना पाद्या सूतमागधचेदयः ।
काषायाश्च विदेहाश्च पूर्वस्या कोशलास्तथा ॥११
कलिङ्गवङ्गपुण्ड्राङ्गा वैदर्भा मूलकास्तथा ।
विन्ध्यान्तर्निलया देशा पूर्वदक्षिणत स्मृता ॥१२
पुलिन्दाश्मकजीमूतनयराष्ट्रनिवासिन ।
कार्णाटा काम्बोजा घाटा दक्षिणापथवासिन ॥१३
अम्बष्ठद्रविडा लाटा कम्बोजा स्त्रीमुखा शका ।
आनर्तवासिनश्चैव ज्ञेया दक्षिणपश्चिमे ॥१४
स्त्रीराज्या सैन्धवा म्लेच्छा नास्तिका यवनास्तथा ।
पश्चिमेन च विज्ञेया माथुरा नैषधै सह ॥१५
माण्डव्याश्च तुषाराश्च मूलिकाश्चमसा खशा ।
महाकेशा महानादा देशास्तूत्तरपश्चिमे ॥१६
लम्बकास्तननागाश्च माद्रगान्धारवाह्लिका ।
हिमाचलालया म्लेच्छा उदीची दिशमाश्रिता ॥१७
त्रिगर्तनीलकोलाभब्रह्मपुत्रा सटङ्कणा ।
अभीषाहा सकाश्मीरा उदक्पूर्वेण कीर्त्तिता ॥१८

पाञ्चाल—कुरु-मत्स्य-यौधेय—सपटच्चर—कुन्ति और शूरसेन ये मध्य देश के मनुष्य कहे जाते हैं ॥१०॥ हे वृषध्वज ! पाद्य—सूत-मागध—चेदि—काषाय-विदेह तथा कोशल ये देश पूर्व में स्थित हैं ॥ ११ ॥ कलिंग—बङ्ग—पुण्ड्र-अंग—वैदर्भ-मूलक ये देश विन्ध्य के अन्तर्निलय रहते हैं और पूर्व तथा दक्षिण में स्थित हैं ॥१२॥ पुलिन्द अश्मक—जीमूत-नय राष्ट्र निवासी-कार्णाट काम्बोज और घाट ये दक्षिणापथ के निवासी होते हैं ॥१३॥ अम्बष्ठ-द्रविड—

पीछे दूसरे का नाम शिशिर था ॥१॥ सुखोदय-नन्द-शिव-क्षेमक-ध्रुव सातवाँ पुत्र था। वे सब प्लक्ष द्वीप के स्वामी हुए थे ॥२॥ गोमेद-चन्द्र-नारद-दुन्दुभि सोमक—सुमना—शैल यह सातवाँ वैभ्राज हुआ था ॥ ३ ॥ इसी प्रकार से निम्नग भी मान हुए थे। उनके नाम अनुतप्ता-शिखी-विपाशा-त्रिदिव-क्रमु-अमृत और सुकृत ये हैं ॥४॥ वपुष्मान् शाल्मल द्वीप का स्वामी था। उसके पुत्र वर्ग नामधारी हैं। श्वेत—हरित—जीमूत—रोहित-वैद्युत—मानस और सातवाँ सप्रभ था ॥ ५ ॥ कुमुद—उन्नत—द्रोण-महिष-बलाहक—क्रौञ्च—ककुद्मान् ये सब गिरि हैं और नदियाँ ये हैं—योनिस्तोया-वितृष्णा—चन्द्रा-शुक्ला—विमोचनी—विधृति सातवीं है। ये सब पापों की शान्ति प्रदान करने वाली कही गई हैं ॥६।७॥

ज्योतिष्मत कुशद्वीपे सप्त पुत्राः शृणुष्व तान्।
उद्भिदो वेणुमांश्चैव द्वैरथो लम्बनो धृति ॥
प्रभाकरोऽथ कपिलस्तन्नामा वर्षपद्धति ॥८
विद्रुमो हेमशैलश्च द्युतिमान्पुष्पवांस्तथा।
कुशेशयो हरिश्चैव सप्तमो मन्दराचल ॥९
धूतपापा शिवा चैव पवित्रा सम्मतिस्तथा।
विद्युदम्भा मही काशा सर्वपापहरास्त्विमा. ॥१०
क्रौञ्चद्वीपे द्युतिमत पुत्रा सप्त महात्मन ।
कुशलो मन्दगश्चोष्ण पीवरोऽथान्धकारक ॥
मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सप्तैते तत्सुता हर ॥११
क्रौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीयश्चान्धकारक ।
देवावृत्त महाशैलो दुन्दुभि पुण्डरीकवान् ॥१२
गौरी कुमुद्वती चैव सन्ध्या रात्रिर्मनोजवा ।
ख्यातिश्च पुण्डरीका च सप्तैता वर्षनिम्नगा. ॥१३
शाकद्वीपेश्वराद्भव्यात्सप्त पुत्रा प्रजज्ञिरे ।

जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मरीवक ॥
कुसुमोद समोदार्कि सप्तमश्च महाद्रुम ॥१४

कुशद्वीप में ज्योतिष्मान् के सात पुत्र हुए थे उनका श्रवण करो। उद्भिद—वेणुमान्—द्वैरथ—लम्बन—धृति—प्रभाकर—कपिल ये उनके सात नाम हैं। इनके नामों से ही वर्षों की पद्धति की रचना हुई थी ॥८॥ विद्रुम—हेमशैल द्युतिमान्—पुष्पवान्—कुशेशय—हरि और सातवाँ मन्दराचल ये सात पर्वत हैं ॥९॥ धूतपापा—शिवा—पवित्रा—सम्मति—विद्युदम्भा—मही और काशा ये सात नदियाँ हैं जो समस्त प्रकार के पापों को हरण करने वाली हैं ॥ १० ॥ क्रौञ्च द्वीप में महान् आत्मा वाले द्युतिमान् के सात पुत्र हुए थे। उनके नाम कुशल—मन्दग—उष्ण—पीवर—अन्धकारक—मुनि और दुन्दुभि है हर ये सात उनके पुत्रों के शुभ नाम हैं ॥ ११ ॥ क्रौञ्च—वामन—अन्धकारक—देवावृत्—महाशैल—दुन्दुभि और पुण्डरीकवान् ये सात पर्वत हैं ॥ १२ ॥ गौरी—कुमुद्वती—सन्ध्या—रात्रि—मनोजवा—क्षान्ति और पुण्डरीका ये सात उस क्रौञ्च द्वीप में बहने वाली नदियाँ हैं ॥१३॥ शाक द्वीप के स्वामी भव्य से सात पुत्र समुत्पन्न हुए थे। उनके नाम जलद—कुमार—सुकुमार—मरीवक—कुसुमोद—प्रमोदार्कि और सातवें पुत्र का नाम महाद्रुम था ॥१४॥

सुकुमारी कुमारी च नलिना धेनुका च या ।
इक्षुश्च वेणुका चैव गभस्ती सप्तमी तथा ॥१५
शबलात्पुष्करेशाश्च महावीरश्च धातकि ।
अभूद्वर्षद्वयञ्चैव मानसात्तत्पूर्वत ॥१६
योजनाना सहस्राणि ऊर्ध्वं पञ्चाशदुच्छ्रित ।
तावच्चैव च विस्तीर्णं सर्वत परिमण्डल ॥१७
स्वादूदकेनोदधिना पुष्कर परिवेष्टितः ।
स्वादूदकस्य पुरतो दृश्यते लोकसंस्थिति ॥१८
द्विगुणा काञ्चनी भूमिः सर्वजन्तुविवर्जिता ॥१९
लोकालोकस्तत. शैलो योजनायुतविस्तृतः ।
तमसा पर्वतो व्याप्तस्तमोऽण्डकटाहृत. ॥२०

उस द्वीप मे सात नदियाँ हैं उनके नाम सुकुमारी-कुमारी-नलिनी-धेनुका-इक्षु—वेणुका-गभस्ती ये हैं ॥ १५ ॥ शबल और पुष्करेश से महावीर और धातकि ये मानस के उत्तर-पूर्व मे दो वर्ष हुए थे ॥१६॥ पचास सहस्र योजन ऊपर को ऊँचे और उतना ही सब ओर से परिमण्डल विस्तार वाला था ॥१७॥ पुष्कर समुद्र के जल से परिवेष्टित है। उदक के आगे लोक संस्थिति दिखलाई देती है ॥१८॥ दुगुनी स्वर्णमयी भूमि है जोकि सब प्रकार के जन्तुओं से रहित है ॥१९॥ वहाँ पर लोकालोक पर्वत है जोकि दश हजार योजन के विस्तार वाला है। वह पर्वत अन्धकार से व्याप्त है और अन्धकार अण्डकटाह से व्याप्त है। २०॥

२६–पाताल नरकादि वर्णन

सप्ततिस्तु सहस्राणि भूम्युच्छ्रायोऽपि कथ्यते।
दशसाहस्रमेकैकं पाताल वृषभध्वज ॥१
अतल वितलश्चैव नितलश्च गभस्तिमत्।
महाख्य सुतलञ्चाग्र्य पातालञ्चापि सप्तमम् ॥२
कृष्णा शुक्लारुणा पीता शर्करा शैलकाञ्चना।
भूमयस्तत्र दैतेया वसन्ति च भुजङ्गमा ॥३
रौद्रे तु पुष्करद्वीपे नरका सन्ति तान् शृणु।
रौरव शूकरो बोधस्तालो विशसनस्तथा ॥४
महाज्वालस्तप्तकुम्भो लवणोऽथ विमोहित.।
रुधिरोऽथ वैतरणी कृमिश: कृमिभोजन ॥५
असिपत्रवन' कृष्णो नानाभक्षश्च दारुणः।
तथा पूयवह पापो वह्निज्वालोऽद्भुवोऽशिव। ६
सदश. कृष्णसूत्रश्च तमश्चावीचिरेव च।
श्वभोजनोऽथाप्रतिष्ठोऽप्यवीचिर्नरका. स्मृता. ॥
पापिनस्तेषु पच्यन्ते विषशस्त्राग्निदायिन ॥७
ऊर्ध्वमुपरि वै लोका रुद्र भूतादय: स्थिता ॥८

वारिवह्न्यनिलाकाशै वृत भूतादिना च तत् ।
तदण्ड महता रुद्र प्रधानेन च वेष्टितम् ॥
अण्ड दशगुण व्याप्त व्याप्य नारायण स्थित ॥६

श्री हरि भगवान् ने कहा—हे वृषभ ध्वज ! इस भूमि की ऊँचाई भी सत्तर हजार योजन कही जाती है और एक-एक का दश सहस्र वाला पाताल है पाताल भी सात हैं—उनके नाम अनल-वितल-नितल-गभस्तिमत्-महत्र-सुतल और अग्र्य पाताल सातवाँ है ॥१।२॥ कृष्णा-शुक्ला—अरुणा-पीता-शर्करा और शैलकाञ्चना ये वहाँ पर भूमियाँ हैं। दैत्य और भुजङ्गम वहाँ निवास किया करते हैं ॥३॥ रौद्र पुष्कर द्वीप म नरक हैं अब उनके नामो का श्रवण करो। रौरव—सूकर—रोधस्ताल—विशसन—महाज्वाल-तप्त कुम्भ-लवण—विमोहित-रुधिर-वैतरणी-कृमिश-कृमिभोजन-असिपत्र वन-कृष्ण—नानाभक्ष—पूय वह-पाप—वह्निज्वालोद्भव-असिर—सदंश-कृष्ण सूत्र-तम-अवीचि-श्वभोजन-अप्रतिष्ठ-उष्णवीचि-य नरक कहे गये हैं। पापी लोग इन उक्त नरको मे अपने किये हुए पापो के फलो की पीडा भोगा करते हैं जो कि विष—शस्त्र तथा अग्नि के देने वाले होते हैं। हे रुद्र ! इनके ऊपर—उत्तर मे लोक हैं जहाँ पर भूतादि स्थित रहा करते हैं। जल-अग्नि-वायु और आकाश म वह भूतादि से वृत है। ह रुद्र ! वह अण्ड महान् प्रधान के द्वारा वेष्टित है यह अण्ड दश गुना व्याप्त है और वहाँ नारायण व्याप्त होकर स्थित हैं। ४ से ६॥

३०-ज्योतिषशास्त्र वर्णन

षडादित्ये दशा ज्ञेया सोमे पञ्चदश स्मृता ।
अष्टावङ्गारके चैव बुधे सप्तदश स्मृता ॥१
शनैश्चरे दश ज्ञेया गुरोरेकोनविंशति ।
राहोर्द्वादशवर्षाणि एकविंशति भार्गवे ॥२
रवेर्दशा दु मदा स्याद्बुद्ध गनृपनाशकृत् ।
विभूतिदा सोमदशा शुभमिष्टान्नदा तथा ॥३

दुःखप्रदाकुजदशा राज्यादे स्याद्विनाशिनी ।
दिव्यस्त्रीदा बुधदशा राज्यदा कोषवृद्धिदा ॥४
शनेर्दशा राज्यनाशावन्धुदुःखकरी भवेत् ।
गुरोर्दशा राज्यदा स्यात् सुखधर्मादिदायिनी ॥
राहोर्दशा राज्यनाशव्याधिदा दुःखदा भवेत् ॥५
हस्त्यश्वदा शुक्रदशा राज्यस्त्रीलाभदा भवेत् ॥६
मेषमङ्गारकक्षेत्र वृष शुक्रस्य कीर्तितम् ।
मिथुनस्य बुधो ज्ञेय सोमः कर्कटस्य च ।७

श्री हरि भगवान् बोले—छै भ्रादित्य में दशा जाननी चाहिए । चन्द्रमा मे पन्द्रह दशा बताई गई हैं । मङ्गल मे भ्राठ—बुध मे सत्रह कही गई हैं ॥१॥ शनीचर मे दश भ्रौर गुर की उन्नीस तथा राहु की बारह वर्ष की भ्रौर शुक्र की इक्कीस वर्ष की दशा होती है ॥ २ ॥ रवि की दशा दुःख दायिनी होती है । यह उद्वेग भ्रौर नृप का नाश करने वाली होती है । चन्द्रमा की दशा विभूति के प्रदान करने वाली होती है भ्रौर यह सुख तथा मिष्टान्न के देने वाली है ।३। मङ्गल की दशा दु ख देने वाली भ्रौर राज्य भ्रादि के विनाश करने वाली होती है । बुध की दशा दिव्य स्त्री का प्रदान करने वाली राज्य देने वाली तथा कोष की वृद्धि करने वाली है ॥ ४ ॥ शनि की दशा राज्य के नाश करने वाली भ्रौर बन्धुभ्रों को दुःख करने वाली होती है । गुरु की दशा राज्य प्रदान करने वाली तथा सुख एवं धर्म भ्रादि के देने वाली होती है । राहु की दशा राज्य का नाश करने वाली व्याधि देने वाली भ्रौर दुःख दायिनी होती है ॥ ५ ॥ शुक्रदेव की दशा हाथी—घोडे देने वाली भ्रौर राज्य—स्त्री एवं लाभ कराने वाली हुमा करती है ॥ ६ ॥ मङ्गल का क्षेत्र मेष है और शुक्र का क्षेत्र वृष होता है । मिथुन का बुध जानना चाहिए तथा कर्क का सोम होता है ॥७।

सूर्यक्षेत्रं भवेत् सिंह कन्याक्षेत्रं बुधस्य च ।
भार्गवस्य तुलाक्षेत्र वृश्चिकोऽङ्गारकस्य च ॥८

धनु सुरगुरोश्चैव शनेर्मकरकुम्भको ।
मीन सुरगुरोश्चैव ग्रहक्षेत्र प्रकीर्तितम् ॥९
पौर्णमास्या द्वय यत्र पूर्वाषाढाद्वय भवेत् ।
द्विराषाढ स विज्ञेयो विष्णु स्वपिति कर्कटे ॥१०
अश्विनी रेवती चित्रा धनिष्ठा स्यादलङ्कृतौ ॥११
मृगाहिकपिमार्जारश्वान शूकरपक्षिण ।
नकुलो मूषिकश्चैव यात्राया दक्षिणे शुभ ॥१२
विप्रकन्या शवो रुद्र शङ्खभेरीवसुन्धरा ।
वेणुस्त्रीपूर्णकुम्भाना यात्राया दर्शन शुभम् ॥
जम्बूकोष्ट्रखराद्याश्च यात्राया वामके शुभा ॥१३
कार्पासौषधितैलञ्च पक्वाङ्गारभुजङ्गमा ।
मुक्तकेशी रक्तमाल्य नग्नाद्यशुभमीक्षितम् ॥१४

सिह का स्वामी सूर्य होता है और क या का अधिपति बुध होता है। अङ्गारका अर्थात् मङ्गल का क्षेत्र वृश्चिक होता है। तात्पर्य यह है कि मेष और वृश्चिक दोनो का स्वामी भौम है तथा तुला और वृष दोनो का स्वामी शुक्र होता है। वृहस्पति धन का स्वामी है तथा मकर और कुम्भ इन दोनो का स्वामी शनि होता है। मीन का भी धन क साथ स्वामी गुरु होता है। इस तरह ये ग्रहो के क्षेत्र बता दिये गये हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ पौर्णमासी से जहाँ पर दो पूर्वाषाढा हो वह दो आषाढ वाला जानना चाहिए विष्णु कर्कट म शयन किया करते है ॥ १० ॥ अलङ्कृति म अश्विनी—रेवती—चित्रा और धनिष्ठा ये नक्षत्र लिये जात हैं ॥ ११ ॥ मृग—अहि—कपि—मार्जार—श्वान—शूकर पक्षी—नकुल और मूषिक य यात्रा म दक्षिण रहने वाले शुभ होते हैं ॥ १२ ॥ विप्रकी कन्या—शव (मृत दह)—शङ्ख—भेरी—वसुधरा—वेणु—पूर्ण कुम्भ ये हैं रुद्र। यात्रा के समय म दर्शन दने वाल शुभ माने जाते है। जम्बूक—उष्ट्र (ऊँट) और खर आदि यात्रा म कोई वाम हो तो शुभ कहे गये हैं ॥ १३ ॥ कार्पास—औषधि—तैल—पक्व अङ्गार—भुजङ्गम—मुक्त कशो वाली—रक्त वर्ण

की माला और नग्न (नागा गीर) आदि ये सब अगर दिखलाई देते हैं तो अशुभ होते हैं ॥ १४ ॥

हिक्काया लक्षरा वक्ष्ये नभेत्पूर्व महाफलम् ।
आग्नेये शोकसन्तापौ दक्षिणे हानिमाप्नुयात् । १५
नैर्ऋत्ये शोकसन्तापौ मिष्टान्नश्चैव पश्चिमे ।
अर्थं प्राप्नोति वायव्ये उत्तरे कलहो भवेत् ॥
ईशाने मरण प्रोक्त हिक्कायाश्च फलाफलम् ॥१६
विलिख्य रविचक्रन्तु भास्करो नरसन्निभ ।
यस्मिनृक्षे वसेद्भानुस्तदादि त्रीणि मस्तके ॥१७
त्रय वक्त्रे प्रदातव्यमेकैक स्कन्धयोर्न्यसेत् ।
एकैक बाहुयुग्मे तु एकैक हस्तयोर्द्वयो ॥१८
हृदये पञ्च ऋक्षाणि एक नाभौ प्रदापयेत् ।
ऋक्षमेक न्यसेद् गुह्ये एकैक जानुके न्यसेत् ॥१६
नक्षत्राणि च शेषाणि रविपादे नियोजयेत् ।
चरणस्थेन ऋक्षेण अल्पायुर्जायते नर. ॥२०
विदेशगमन जानौ गुह्यस्थे परदारवाम् ।
नाभिस्थेनाल्पसन्तुष्टो हृत्स्थेन स्यान्महेश्वर ॥२१
पाणिस्थेन भवेच्चौरः स्थानभ्रष्टो भवेद् भुजे ।
स्कन्धस्थिते धनपतिर्मुखे मिष्टान्नमाप्नुयात् ॥
मस्तके पट्टवस्त्रन्तु नक्षत्र स्याद्यदि स्थितम् ॥२२

अब हिचकी के लक्षण बताये जाते हैं। यदि हिचकी पूर्व दिशा में होवे तो इसका महान् फल होता है। अग्नि कोण मे यह शोक एव सन्ताप की देने वाली होती है। दक्षिण दिशा में होने वाली हिचकी हानिप्रद होती है ॥ १५ ॥ नैर्ऋत्य कोण की हिचकी शोक एव सन्ताप की देने वाली है। पश्चिम में होने वाली मिष्टान्न प्रदान करने वाली है। वायव्य दिशा की हिचकी अर्थ प्रद है और उत्तर मे होने से कलह होता है। ईशान दिशा में होने से

मरण होता है। इस प्रकार से त्रिकों के ये फलाफल होते हैं ॥ १६ ॥ रवि का चक्र लिखे। भास्कर एक नर के सदृश होता है। जिस नक्षत्र पर सूर्य हो उस नक्षत्र से आदि लेकर तीन नक्षत्र मस्तक पर विन्यस्त करे। तीन मुख मे न्यस्त करे और एक-एक दोनो कन्धो पर विन्यस्त करे। एक-एक दोनो बाहुओ मे और एक-एक दोनो हाथो मे न्यस्त करे ॥ १७ ॥ १८ ॥ उस नराकृति रविचक्र के हृदय मे पाँच नक्षत्र उसी क्रम से लिखे और एक नाभि मे विन्यस्त करना चाहिए। एक नक्षत्र गुह्य मे रक्खे और एक-एक दोनो घुटनो मे विन्यस्त करे ॥ १९ ॥ शेष नक्षत्रो को रवि के चरणो मे विन्यस्त कर देना चाहिए। चरण मे स्थित नक्षत्र से मनुष्य अल्प आयु वाला होता है ॥ २० ॥ जानु मे स्थित नक्षत्र से विदेश में गमन होता है और जो गुह्य में स्थित नक्षत्र है उससे पराई स्त्री से सम्बन्ध रखने वाला होता है। नाभि मे स्थित नक्षत्र से अल्प सन्तोष वाला होता है तथा हृदय मे स्थित नक्षत्र से महेश्वर हुआ करता है ॥ २१ ॥ हाथ मे स्थित नक्षत्र से चोर होता है और भुजा में स्थित नक्षत्र से स्थान भ्रष्ट होता है। स्कन्ध में स्थित नक्षत्र का यह फल है कि वह धन का स्वामी होता है तथा मुख मे स्थित नक्षत्र से मिष्टान्न की प्राप्ति वाला है। मस्तक मे स्थित नक्षत्र से पट्ट वस्त्र वाला होता है ॥२२॥

२१-चन्द्रशुद्धि कथन।

सप्तमोपचयाद्यस्थश्चन्द्र सर्वत्र शोभन ।
शुक्लपक्षे द्वितीयस्तु पञ्चमो नवमस्तथा ॥
सपूज्यमानो लोकैस्तु गुरुवद् दृश्यते शशी ॥१
चन्द्रस्य द्वादशावस्था भवन्ति शृणुत अपि ।
त्रिपु त्रिपु च ऋक्षेपु अश्विन्यादि वदाम्यहम् ॥२
प्रवासस्थ पुनर्नष्ट मृतावस्थ जयावहम् ।
हास्यावस्थ क्रीडावस्थ प्रमोदावस्थमेव च ॥३
विषादावस्थभोगस्थे ज्वरावस्थ व्यवस्थितम् ।
कम्पावस्थ स्वस्थावस्थ द्वादशावस्थग भवेत् ॥४

प्रवासो हानिर्मृत्युश्च जयो हासो रतिः सुखम् ।
शोको भोगो ज्वरः कम्प सुस्थावस्था क्रमात् फलम् ॥५
जन्मस्थ कुरुते तुष्टि द्वितीये नास्ति निर्वृति. ।
तृतीये राजसम्मान चतुर्थे कलहागम ॥६
पञ्चमेन मृगाङ्केण स्त्रीलाभो वै तथा भवेत् ।
धनधान्यागम षष्ठे रति पूजा च सप्तमे ॥
अष्टमे प्राणसन्देहो नवमे कोषसञ्चय. ॥७
दशमे कार्यनिष्पत्तिध्रुवमेकादशे जय ।
द्वादशेन शशाङ्केन मृत्युरेव न सशय ॥८

श्री हरि ने कहा—सप्तम उपचयादि मे स्थित चन्द्रमा सब जगह शोभन होता है । शुक्लपक्ष मे द्वितीय—पञ्चम और नवम लोकों के द्वारा सपूज्यमान तथा गुरु के समान चन्द्र दिखलाई देता है ॥ १ ॥ चन्द्र की बारह अवस्थाऐ होती हैं उनका भी अब श्रवण करो । अश्विनी आदि तीन—तीन नक्षत्रों मे वह होती है जिसको मैं अब बतलाता हू ॥ २ ॥ वे बारह अवस्थाएँ ये हैं—प्रवासावस्था—पुन नष्टावस्था—मृतावस्था—जयावस्था—हास्यावस्था—विषादावस्था भोगावस्था—ज्वरावस्था—कम्पावस्था—स्वस्थावस्था ये बारह अवस्थाएँ हैं । इस प्रकार से द्वादश अवस्थाओ मे चन्द्र गमन करने वाला होता है ॥३॥ ४॥ इन अवस्थाओ का क्रम से फल भी कहा जाता है प्रवास का होना-हानि मृत्यु-जय प्राप्त करना—हास—रति—सुख—शोक—भोग—ज्वर—कम्प और सुख ये हुआ करते हैं ॥ ५ ॥ जन्म मे रहने वाला चन्द्र तुष्टि किया करता है । द्वितीय चन्द्र निर्वृति (आनन्द) नही करने वाला होता है । तीसरे घर में रहने वाला चन्द्र राज सम्मान का प्रदान कराने वाला होता है । चतुर्थ चन्द्र कलह कराने वाला है ॥ ६ ॥ पाँचवाँ चन्द्र स्त्री का लाभ देने वाला है और छटवें चन्द्र मे धन धान्यादि का आगम होता है । सातवें चन्द्र मे रति और पूजा होती है । आठवें घर में स्थित चन्द्रमा मारक होता है और इसमें प्राणो का भी सन्देह रहा करता है । नवम चन्द्र मे कोष का सञ्चय होता है ॥ ७ ॥ दशम चन्द्र में कार्यों

की सिद्धि होती है तथा ग्यारहवें चन्द्र में जय होता है। बारहवा चन्द्र अत्यन्त अशुभ है। इसमें निश्चय ही मृत्यु होती है और कुछ भी सफल नहीं होता है ॥ ८ ॥

कृत्तिकादौ च पूर्वेण सप्तर्क्षाणि च वै व्रजेत् ।
मघादौ दक्षिणे गच्छदनुराधादि पश्चिमे ॥९
प्रशस्ता चोत्तरे यात्रा धनिष्ठादि च सप्तसु ॥१०
अश्विनी रेवती चित्रा धनिष्ठा समलङ्कृतौ ।
मृगाश्विचित्रापुष्याश्च मूला हस्ता शुभा सदा ॥
कन्याप्रदाने यात्रायां प्रतिष्ठादिषु कर्मसु ॥११
शुक्रचन्द्रौ जन्मस्थौ शुभदौ च द्वितीयके ।
शशिज्ञशुक्रजीवाश्च राशौ चाथ तृतीयके ॥१२
भौममन्दशशाङ्कार्का बुधश्चतुर्थके ।
शुक्रजीवौ पञ्चमौ च चन्द्रकेतुसमाहितौ ॥१३
मन्दार्कौ च कुजः षष्ठे गुरुचन्द्रौ च सप्तमे ।
शुक्रावष्टमश्रेष्ठौ नवमस्थो गुरुः शुभः ॥१४

अब यात्रा के लिए प्रशस्त नक्षत्रों के विषय में विभिन्न दिशाएँ बतलाई जाती है—कृत्तिकादि सात नक्षत्रों में पूर्व दिशा में यात्रा करे—मघादि सात में दक्षिण दिशा में यात्रा करे—अनुराधा आदि सात नक्षत्रों में पश्चिम में यात्रा शुभ होती है तथा धनिष्ठा आदि सात नक्षत्रों में उत्तर दिशा में यात्रा प्रशस्त होती है ॥ ९ ॥ १० ॥ अश्विनी—रेवती—चित्रा और धनिष्ठा ये नक्षत्र रम अलङ्करण क्रिया में शुभ होते हैं। मृगशिरा—अश्विनी—चित्रा—पुष्य—मूल—हस्त ये नक्षत्र कन्या के दान करने में—यात्रा में और प्रतिष्ठा आदि कर्मों के करने में सदा शुभ माने जाते हैं ॥ ११ ॥ जन्म गृह में स्थित शुक्र और चन्द्र तथा दूसरे गृह में स्थित होने पर शुभ फल देने वाले होते हैं। चन्द्र—बुध—शुक्र और गुरु तीसरे घर में स्थित होने पर शुभ फल प्रदान करने वाले हैं ॥ १२ ॥ मङ्गल शनि—चन्द्र—सूर्य और बुध चौथे घर में हों तो श्रेष्ठ हैं। शुक्र और बृहस्पति

पाँचवें घर में हों तथा चन्द्र एवं केतु से समाहित होवें तो श्रेष्ठ होते हैं ॥१३॥ शनि और सूर्य तथा मङ्गल छठे हों और गुरु चन्द्र सप्तम हो बुध और शुक्र अष्टम हो तो श्रेष्ठ कहे गये हैं। नवम घर में स्थित बृहस्पति सदा शुभ होता है ॥ १४ ॥

> अर्कार्किचन्द्रा दशम एकादशेऽखिला ग्रहा ।
> बुधोऽथ द्वादशे चैव भार्गवः सुखदो भवेत् ॥१५
> सिंहेन मकरः श्रेष्ठः कन्यया मेष उत्तमः ।
> तुलया स मीनस्तु कुम्भेन सह कर्कटः ॥१६
> धनुषा वृषभः श्रेष्ठो मिथुनेन च वृश्चिकः ।
> एतत्षडष्टकं प्रीत्यै भवत्येव न संशयः ॥१७

सूर्य और सूर्य का पुत्र शनि तथा चन्द्रमा दशम घर में एवं ग्यारहवें घर में स्थित समस्त ग्रह शुभ होते हैं। बारहवें घर में बुध तथा शुक्र सुख देने वाले होते हैं ॥१५॥ अब उच्च स्थानीय ग्रहों के विषय में बतलाते हैं—सिंह से युक्त मकर श्रेष्ठ होता है। कन्या से युक्त मेष उत्तम होता है। तुला से मीन और कुम्भ से कर्क उत्तम है ॥ १६ ॥ धन से वृषभ और मिथुन से वृश्चिक यह षडष्टक प्रीति के लिये होता है और कुछ भी संशय की बात नहीं है ॥१७॥

३२—द्वादश राशि वर्णन

> उदयात् समारभ्य राशौ भानुः स्थितो हर ।
> स्वराश्यार्धं प्रजेदह्निषड्भिः पड्भिस्तथा निशाम् ॥१
> मीने मेषे च पञ्च स्युश्चतस्रो वृषकुम्भयोः ।
> मकरे मिथुने तिस्रः पञ्च चापे च कर्कटे ॥२
> सिंहे च वृश्चिके षट् च सप्त कन्यातुले तथा ।
> एता लग्नप्रमाणेन घटिकाः परिकीर्तिताः ॥३
> रसपूर्वावसानेषु रसाब्धिपञ्चरिसागगः ।
> लङ्कोदया हि तद्वत् लग्ना मेषादयोऽथवा ॥४

मेषलग्ने भवेद् वन्ध्या वृषे भवति कामिनी ।
मिथुने सुभगा कन्या वेश्या भवति कर्कटे ॥५
सिंहे चैवाल्पपुत्रा च कन्यायां रूपसंयुता ।
तुलायां रूपमैश्वर्यं वृश्चिके कर्कशा भवेत् ॥६
सौभाग्य धनुषि स्याच्च मकरे नीचगामिनी ।
कुम्भे चैवाल्पपुत्रा स्यान्मीने वैराग्यसंयुता ॥७

श्री हरि भगवान् बोले—हे हर ! उदय काल में जिस राशि पर सूर्य स्थित होता है उस अपनी राशि से छैः राशियों दिन में और छैः राशियाँ रात्रि में वह गमन किया करता है ॥ १ ॥ इस प्रकार से छैः-छैः राशियों में गति किया करता है । इस रीति से अब भिन्न-भिन्न राशियों की लग्न घड़ियाँ बताई जाती हैं। मीन और मेष की पाँच घड़ी होती हैं—वृष और कुम्भ की चार घड़ी होती हैं—मकर और मिथुन की तीन-तीन घड़ियाँ होती हैं तथा धन एवं कर्क की पाँच घड़ी हुआ करती हैं ॥ २ ॥ सिंह और वृश्चिक की छैः घड़ी हैं तथा कन्या और तुला की सात घड़ी होती हैं । इस प्रकार से अहोरात्र में लग्न के प्रमाण से सम्पूर्ण राशियों की घटिकाएँ बताई गई हैं ॥ ३ ॥ आदि और अन्त में रस सम्बर अर्थात् छैः-छैः घड़ियों की तथा पाँच चार और तीन घड़ियों की मेष आदि राशियों की लग्न होती हैं ॥ ४ ॥ मेष लग्न में जो कन्या हो वह वन्ध्या होती है—वृष लग्न में कामिनी—मिथुन में परम सुभग और कर्क लग्न में जन्म ग्रहण करने वाली वेश्या वृत्ति वाली अल्प पुत्रों वाली होती है—कन्या लग्न में उत्पन्न कन्या रूप लावण्य से समन्वित होती है । तुला लग्न में जन्मने वाली के रूप और ऐश्वर्य दोनों ही होते हैं । वृश्चिक लग्न में समुत्पन्न कन्या बहुत ही कर्कशा होती है ॥ ६ ॥ धन लग्न में उत्पत्ति वाली कन्या सौभाग्य शालिनी होती है मकर लग्न में पैदा होने वाली कन्या नीच का गमन करने वाली होती है । कुम्भ में उत्पन्न अल्प पुत्र वाली तथा मीन लग्न में समुत्पन्न कन्या वैराग्य से संयुत होती है ॥ ७ ॥

तुलाकर्कटको मेषो मकरश्चैव राशय. ।
चरकार्य्याणि कुर्य्याच्च स्थिरकार्य्याणि चैव हि ॥८
पञ्चाननो वृष कुम्भो वृश्चिकः स्युः स्थिराणि हि ।
कन्या धनुश्च मीनश्च मिथुन द्विस्वभावत ॥६
द्विस्वभावानि कर्माणि कुर्य्यादेषु विचक्षण ।
यात्रा चरेण कर्तव्या प्रवेष्टव्य स्थिरेण तु ॥
देवस्थापनवैवाह्य द्विस्वभावेन कारयेत् ॥१०
प्रतिपच्चाथ षष्ठी च नन्दा चैकादशी स्मृता।
द्वितीया सप्तमी भद्रा द्वादशी वृषभध्वज ॥११
जयाष्टमी तृतीया च स्मृता रुद्र त्रयोदशी ।
चतुर्थी नवमी रिक्ता सा वर्ज्याश्च चतुर्दशी ।
पञ्चमी दशमी पूर्णा पूर्णिमा च शुभा स्मृता. ॥१२
चर सौम्यो गुरु क्षिप्रो मृदु शुक्रो रविध्रुव ।
शनिश्च दारुणा ज्ञेयो भौम उग्र शशी सम ॥१३

तुला—कर्क—मेष और मकर ये राशियाँ चर कार्य वाली हैं क्योंकि ये चर स्वभाव वाली हैं। इनमे चर काम ही करने चाहिए। सिंह—वृष—कुम्भ और वृश्चिक ये स्थिर राशियाँ होती हैं। इनमें स्थिर कार्य करने चाहिए। कन्या—धन—मीन और मिथुन ये द्विस्वभाव वाली राशियाँ होती हैं। इन राशियों में विचक्षण पुरुष को ऐसे ही काय करने चाहिए जो द्विभाव वाले हैं। यात्रा सर्वदा चर लग्नों में करे और गृह प्रवेश आदि काम्य स्थिर लग्नों में ही करना चाहिए। देवता की स्थापना और वैवाह्य कार्य द्वि-स्वभाव वाली लग्नों मे करने चाहिए ॥ ८॥ ६ ॥ १० ॥ अब तिथियों की शुभाशुभ सज्ञा बताते हैं—प्रतिपदा-षष्ठी और एकादशी-इन तिथियों की नन्दा सज्ञा है-द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी-इन तिथियों की हे वृषभध्वज ! भद्रा सज्ञा होती है। अष्टमी-तृतीया और त्रयोदशी हे रुद्र ! इन तिथियों को जया नाम वाली कहा जाता है। चतुर्थी-नवमी और चतुर्दशी-ये तिथियाँ रिक्ता कही जाती हैं और

ये वर्जित मानी जाती हैं अर्थात् कोई भी शुभ कार्य रिक्ता तिथियों मे नहीं किया जाता है। पञ्चमी–दशमी और पूर्णिमा ये तिथियाँ पूर्ण संज्ञा वाली होती हैं तथा परम शुभ कही गई हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ अब ग्रहों के स्वभाव और स्वरूप बताये जाते हैं—गुरु चर एवं सौम्य है। शुक्र क्षिप्र तथा मृदु होता है। रवि ध्रुव है। शनि परम दारुण जानना चाहिए। भौम उग्र होता है। चन्द्र सम है ॥ १३ ॥

> चरक्षिप्रै प्रयातव्यं प्रवेष्टव्यं मृदुध्रुवैः ।
> दारुणोग्रैश्च योद्धव्यं क्षत्रियैर्जयकाङ्क्षिभिः ॥
> नृपाभिषेकोऽग्निकार्य्यञ्च सोमवारे प्रशस्यते ॥१४
> भौमे तुले प्रमाणञ्च कुर्य्याच्चैव गृहादिकम् ।
> सैनापत्यं शौर्य्ययुद्धं शस्त्राभ्यासं कुजे स्मृतं ॥१५
> सिद्धिकार्य्यञ्च मन्त्रश्च यात्रा चैव बुधे स्मृता ।
> पठनं देवपूजा च वस्त्राद्याभरणं गुरौ ॥१६
> कन्यादानं गजारोहः शुक्रे स्यात्तामयः स्त्रियाः ।
> स्थाप्यं गृहप्रवेशश्च गजबन्धः शनौ शुभः ॥१७

चर और क्षिप्र ग्रहों के दिन प्रयाण करे और मृदु तथा ध्रुव में प्रवेश करना चाहिए। दारुण तथा उग्र में जय की आकाङ्क्षा रखने वाले क्षत्रियों को युद्ध करना चाहिए। नृप का अभिषेक का कार्य तथा अग्नि कार्य चन्द्रवार में ही परम प्रशस्त होता है ॥ १४ ॥ भौम में तुल में प्रमाण और गृहादिक का कार्य करना चाहिए। सैनापत्य सेना से सम्बन्धित कार्य, शूरतापूर्ण युद्ध और शस्त्रादि के अभ्यास का काम मङ्गल में बताया गया है। सिद्धि कार्य–मन्त्र सम्बन्धी कार्य—यात्रा बुध में करे। पठन–देवों की पूजा तथा वस्त्रादि एवं आभरण धारणादि का कार्य गुरुवार में करे ॥ १५ ॥ १६ ॥ कन्या का दान-गजपर आरोहण अर्थात् हाथी की सवारी करना—ये कार्य शुक्रवार में करे। स्त्री के गमद–स्थापना के योग्य कार्य तथा गृह प्रवेश और गजबन्ध शनिवार में शुभ होते हैं। १७ ॥

३३—पुरुष और स्त्री लक्षण ।

नरस्त्रीलक्षणं वक्ष्ये सक्षेपाच्छृणु शङ्कर ।
अस्वेदिनौ मृदुतलौ कमलोदरसन्निभौ ॥१
श्लिष्टाङ्गुली ताम्रनखौ सुगुल्फौ शिरयोज्झितौ ।
कूर्मोन्नतौ च चरणौ स्यातां नृपवरस्य हि ॥२
विरूक्षापाण्डरनखौ वक्रसर्वं च शिरोन्नतम् ।
शूर्पाकारौ च चरणौ सशुष्कौ चरणाङ्गुली ॥
दु खदारिद्र्यदौ स्यातां नात्र कार्या विचारणा ॥३
अल्परोमयुता श्रेष्ठा जङ्घा हस्तिकरोपमा ।
रोमैकैकं कूपके स्याद् भूपानान्तु महात्मनाम् ॥४
द्वे द्वे रोमे पण्डितानां श्रोत्रियाणां तथैव च ।
रोमत्रय दरिद्राणां रोगी निर्मी सन्तानुक ॥५
अल्पलिङ्गे च धनवान् स्याच्च पुत्रादिवर्जित ।
स्थूललिङ्गो दरिद्र स्याद् दु स्यैकवृषणो भवेत् ।६
विषमे स्त्रीचञ्चलो वै नृप स्याद्वृषणे समे ।
[illegible] भवेत् ॥
नर ॥७

श्री हरि भगवान् बोले—हे शङ्कर ! अब हम नर स्त्रियों के लक्षण संक्षेप से बताते हैं उनका श्रवण आप करें । जो परम श्रेष्ठ नृप होते हैं अर्थात् नृप के समकक्ष पुरुष होते हैं उनके चरण मृदु तले वाले होते हैं और उनके तलों में कभी भी पसीना नहीं होता है । इनके चरण कमल पुष्प के मध्य भाग के सदृश हुआ करते हैं । इन चरणों की अंगुलियां एक दूसरे से श्लिष्ट अर्थात् मिली हुई हुआ करती हैं । इन चरणों के नाखून ताम्र के समान होते हैं शिर से उज्झित एवं सुन्दर गुल्फों वाले होते हैं । ये चरण कूर्म के सदृश उन्नत हुआ करते हैं ॥ १ ॥ २ ॥ विशेष रूप से रूक्ष पाण्डर वर्ण के नखों वाले—शिरोन्नत वक्र—सूप के समान फैले हुए आकार वाले चरण—सशुष्क अंगुलियों वाले

चरण जिनके होते हैं ये लक्षण दु ख और दरिद्रता के देने वाले हैं—इसमें तनिक भी विचार करने की आवश्यकता नही है ॥ ३ ॥ हाथी के सूँड के समान उतार-चढाव वाली और बहुत ही कम रोमो वाली जांघ श्रेष्ठ होती हैं। महान् आत्मा वाले नृपो के कूपको म एक-एक ही रोम हुआ करता है ॥ ४ ॥ सद् एव असद् वुद्धि वाल पण्डितो के तथा श्रानियो के रोमो के छिद्रो म दो-दो रोम हुआ करते हैं। जो दरिद्र होते हैं उनके कूपको म तीन-तीन रोम होते हैं। बिना मास वाले जिनके जानु होते हैं वे रोगी हुआ करते हैं ॥ ५ ॥ स्वल्प लिङ्ग वाला पुरुष धनवान् होता है किन्तु पुत्रादि से रहित हुआ करता है। जो स्थूल लिङ्ग धारी पुरुष होता है वह दरिद्र हुआ करता है। एक ही वृषण जिमके होता है वह दु खी होता है ।६॥ वह विषम होने पर स्त्री के समान चञ्चल होता है तथा सम वृषण होने पर वह पुरुष नृप होता है। जिसके वृषण लम्बे होते हैं वह मनुष्य अल्प आयु वाला होता है, द्रव्यहीन और कुमणि होता है। पाण्डर और मलिन मणियो से मनुष्य सुखी होता है ॥७॥

नि स्वस्य शब्दमूत्रा स्युर्नृपा नि शब्दधाराय ।
भोगाढया समजठरा नि स्वा स्युघटसन्निभा ॥८
सर्पोदरा दरिद्रा स्यु रेखाभिश्चायुरुच्यते ।
ललाटे यस्य दृश्यन्त तिस्रो रेखा समाहिता ॥
सुखी पुत्रसमायुक्त स षष्टि जीवते नर ॥९
चत्वारिंशच्च वर्षाणि द्विरेखादर्शनान्नर ।
विंशत्यब्दमकरेखा आकर्णान्ता गतायुष ॥
आकर्णान्तरिता रेखास्तिस्त्रश्च स्यु शतायुष ॥१०
सप्तत्यायुर्द्विरेखा तु षष्ट्यायुस्तिसृभिर्भवत् ।
व्यक्ताव्यक्ताभी रेखाभिर्विशत्यायुर्भवेन्नर ॥११
चत्वारिंशच्च वर्षाणि हीनरेखस्तु जीवति ।
भिन्नाभिश्च रेखाभिरपमृत्युर्नरस्य हि ॥१२

त्रिशूल पट्टिश वापि ललाटे यस्य दृश्यते ।
धनपुत्रसमायुक्त स जीवेच्छरद. शतम् ॥१३

नि श्वास लेकर शब्दयुक्त मूत्र वाले नृप नि शब्द धारी होते हैं। भोगों से युक्त-समान जठर वाले-नि.स्व घट के सदृश होते हैं। सर्प के समान उदर वाले मनुष्य दरिद्र होते हैं। अब रेखाओं के द्वारा आयु बतलाई जाती है। जिसके ललाट में समाहित तीन रेखाऐं दिखलाई दिया करती हैं वह मनुष्य परम सुखी-पुत्रों से युक्त और साठ वर्ष पर्यन्त जीवित रहा करता है ॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ जिसके ललाट पर दो रेखाएं दिखलाई हैं वह चालीस वर्ष तक जीवित रहता है और केवल एक ही रेखा जिसके दिखलाई देती है वह बीस वर्ष तक ही जीवित रहा करता है। कर्णं पर्यन्त जो रेखाऐं होती है वह शतायु होता है। जिसके तीन रेखाऐं आकलन्ति होती हैं वह शतायु अर्थात् सौ वर्ष की उम्र वाला पुरुष होता है ॥ १० ॥ इसी प्रकार की यदि दो रेखाऐं हों तो सत्तर वर्ष की उम्र होती है और तीन रेखाओं से युक्त यदि ललाट होता है तो साठ वर्ष तक जीवित रहता है। जो रेखाऐं कुछ व्यक्त और कुछ अव्यक्त हो तो बीस वर्ष की आयु वाला मनुष्य होता है ॥ ११ ॥ हीन रेखा वाला मानव चालीस वर्ष तक जीवित रहता है। जिस के ललाट में भिन्न रेखाऐं होती हैं उनसे मनुष्य की अपमृत्यु होती है ॥ १२ ॥ जिस मनुष्य के ललाट में त्रिशूल और पट्टिश का चिह्न दिखलाई देते हैं वह धन तथा पुत्रों से युक्त सौ वर्ष तक जीवित रहा करता है ॥१३॥

तर्जन्या मध्यमागुल्या आयुरेखा तु मध्यत ।
सम्प्राप्ता या भवेद्व्रह्म जीवेच्छरद शतम् ॥१४
प्रथमा ज्ञानरेखा तु ह्य गुष्टादनुवर्तते ।
मध्यमा मूलगा रेखा आयूरेखा अत परम् ॥१५
कनिष्ठाया समाश्रित्य आयुरेखा समाविशेत् ।
अच्छिन्ना वा विभक्ता वा स जीवेच्छरद शतम् ॥१६

यस्य पाणितले रेखा आयुस्तस्य प्रकाशयेत् ।
शतवर्षाणि जीवच्च भोगी रुद्र न संशय ॥१७
कनिष्ठिका समाश्रित्य मध्यमायामुपागता ।
षष्टिवर्षायुष कुर्यादायूरेखा तु मानव ॥१८

हे रुद्र ! तर्जनी और मध्यमा अगुलि के मध्य से आयु की रेखा जो सम्प्राप्त हो तो वह मनुष्य सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहा करता है ॥ १४ ॥ प्रथम ज्ञान की रेखा होती है जो अँगूठे से अनुवर्त्तित होती है । मध्यमा मूल म गमन करने वाली रेखा है । इसस आगे फिर आयु की रेखा होती है ॥१५॥ कनिष्ठिका अगुलि म समाश्रित होकर आयु की रेखा समाविष्ट होती है । वह अच्छिन्न हो या विभक्त हो किन्तु वह मानव सौ वर्ष के जीवन की आयु वाला होता है ॥ १६ ॥ हे रुद्र ! जिस मनुष्य के हाथ के तल म रेखा होता है यह भी आयु को प्रकाशित किया करती है वह परम भोग करने वाला पुरुष सौ वर्ष तक जीवित रहता है इसम कुछ भी सशय नहीं है ॥ १७ ॥ कनिष्ठिका अँगुलि का समाश्रय लेकर जो मध्यमा अँगुलि म आ जाती है वह आयु को प्रकट करने वाली रेखा बतलाती है कि मनुष्य साठ वर्ष की आयु वाला होता है ॥ १८ ॥

३४—स्त्रीलक्षण ।

यस्यास्तु कुञ्चिता केशा मुखञ्च परिमण्डलम् ।
नाभिश्च दक्षिणावर्त्ता सा कन्या कुलवर्द्धिनी ॥१
या च काञ्चनवर्णाभा रक्तहस्तसरोरुहा ।
सहस्राणान्तु नारीणा भवेत्सापि पतिव्रता ॥२
वक्रकेशा च या कन्या मण्डलाक्षी च या भवेत् ।
भर्त्ता च म्रियते तस्या नियत दु खभागिनी ॥३
पूर्णचन्द्रमुखी कन्या बालसूर्यसमप्रभा ।
विशालनेत्रा बिम्बोष्ठी सा कन्या लभते सुखम् ॥४

रेखाभिर्बहुभि क्लेश स्वल्पाभिर्धनहीनता ।
रक्ताभि सुखमाप्नोति कृष्णाभि प्रेष्यता व्रजेत् ॥५
कार्य्येऽपि मन्त्री पत्नी स्यात्सखी स्यात्करणेषु च ।
स्नेहेषु भार्य्या माता स्याद् वेश्या च शयने शुभा ॥६
अकुश मण्डल चक्र यस्या पाणितले भवेत् ।
पुत्र प्रसूयते नारी नरेन्द्र लभते पतिम् ॥७

श्री हरि ने कहा—जिस कन्या के केश तो कुञ्चित (घु घराले) हो और मुख परिमण्डल अर्थात् वर्तुलाकार हो तथा नाभि दक्षिण की ओर आवर्त्त वाली हो वह कन्या कुल के बढाने वाली है ॥ १ ॥ जिस कन्या का वर्ण सुवर्ण के समान हो और हस्त रक्त कमल के सदृश हो वह सहस्रा नारियों में एक ही परम पतिव्रत धर्म वाली हुआ करती है ॥ २ ॥ जिस कन्या के टेढे-तिरछे तो केश हो और मण्डलवत् गात्र नेत्र हो उसका स्वामी शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है और वह निश्चय ही दुखो के भोगने वाली हुआ करती है ॥ ३ ॥ जो कन्या पूर्ण चन्द्रमा के तुल्य मुख वाली और प्रात कालीन सूर्य के समान प्रभा वाली हो—विशद विशाल (बडे) नेत्र हो तथा बिम्ब के फल के सदृश रक्त वर्ण के ओष्ठ हो वह कन्या परम सुखो का उपभोग किया करती है ॥ ४ ॥ बहुत-सी रेखाओ के होने से क्लेश प्राप्त होता है और अत्यन्त स्वल्प रेखाओ के होने पर धन की कमी हुआ करती है । रक्त रेखाओ से सुख प्राप्त होता है और कृष्ण वर्ण वाली रेखाओ से प्रेष्यता को प्राप्त होती है ॥ ५ ॥ कार्य के करने मे वह पत्नी मन्त्री के समान होती है और साधनो मे वह एक सखी अर्थात् मित्र के तुल्य होती है । स्नेह मे भार्या माता और शयन मे शुभ वेश्या के तुल्य होती है ॥ ६ ॥ जिसके पाणि (हाथ) तल मे अकुश—मण्डल चक्र के चिह्न होते है ऐसी स्त्री पुत्र का प्रसव किया करती है और वह नृपति को अपना स्वामी प्राप्त करती है ॥७॥

यस्यास्तु रोमशौ पार्श्वौ रोमशौ च पयोधरौ ।
उन्नतौ चाधरोष्ठौ च क्षिप्र मारयते पतिम् ॥८

यस्या पाणितले रेखा प्राकार तोरण भवेत् ।
अपि दासकुले जाता राज्ञीत्वमुपगच्छति ॥९
उद्वृत्ता कपिला यस्या रोमराजी निरन्तरम् ।
अपि राजकुले जाता दासीत्वमुपगच्छति ॥१०
यस्या अनामिकाङ्गुष्ठौ पृथिव्या नैव तिष्ठतः ।
पति मारयते क्षिप्रं स्वेच्छाचारेण वर्त्तते ॥११
यस्या गमनमात्रेण भूमिकम्प प्रजायते ।
पति मारयते क्षिप्रं म्लेच्छाचारेण वर्त्तते ॥१२
चक्षुःस्नेहेन सौभाग्य दन्तस्नेहेन भोजनम् ।
त्वच स्नेहेन शय्याश्च पादस्नेहेन वाहनम् ॥१३
स्निग्धोन्नतौ ताम्रनखौ नार्य्याश्च चरणौ शुभौ ।
मत्स्याङ्कुशाब्जचिह्नौ च चक्रलाङ्गललक्षितौ ॥
अस्वेदिनौ मृदुतलौ प्रशस्तौ चरणौ स्त्रियाः ॥१४
शुभे जङ्घे विरोमे च ऊरू हस्तिकरोपमौ ।
अश्वत्थपत्रसदृशं विपुलं गुह्यमुत्तमम् ॥१५
नाभिः प्रशस्ता गम्भीरा दक्षिणावर्त्तिका शुभा ।
अरोमा त्रिवली नार्य्या हृत्स्तनौ रोमवर्जितौ ॥१६

जिसके पार्श्व भाग रोमों वाले हों और स्तन भी रोमों से युक्त हों तथा जिसके अधरोष्ठ उन्नत हों वह कन्या शीघ्र ही अपने पति को मारने वाली होती है ॥ ८ ॥ जिस कन्या के पाणितल रेखाओं का प्राकार तोरण जैसा हो वह दास कुल में भी उत्पन्न होती हुई राज्ञी के पद को प्राप्त किया करती है ॥ ९ ॥ जिसकी रोमों की पंक्ति उद्वृत्त और कपिल होती है वह चाहे राजकुल में भी क्यों न समुत्पन्न हुई हो दासी के पद को ही प्राप्त किया करती है ॥१०॥ जिस कन्या की अनामिका अंगुलि और पैर का अंगूठा भूमि पर टिकता है वह कन्या शीघ्र ही अपने पति के मारने वाली होती है तथा स्वेच्छा चारिणी हो जाती है। जिस के गमन करने के साथ में भूमिकम्प होता है वह भी शीघ्र

पति के मारने वाली होती है और फिर वह म्लेच्छों जैसे आचार वाली हो जाया करती है ॥ ११ ॥ १२ ॥ चक्षुओं के स्नेह से सौभाग्य—दाँतों के स्नेह से भोजन—त्वचा के स्नेह से शय्या सुख और पादों के स्नेह से वाहन होता है ॥ १३ ॥ स्निग्ध एवं उन्नत—ताम्र के समान नखों वाले—मत्स्य, अंकुश, कमल के चिह्नों वाले—चक्र, लाङ्गल के चिह्नों से उपलक्षित—मृदु तलों से युक्त—प्रस्वेद से रहित नारी के पग्म शुभ एवं प्रशस्त हुआ करते हैं ॥ १४ ॥ जिन जाँघों में रोम न हों वे शुभ हैं और जो ऊरू हाथी के कर के समान हों तथा पीपल के पत्र के तुल्य विपुल उन्नत गुह्य भाग हो—नाभि दक्षिण की ओर आवर्तित होने वाली गम्भीर होती है वह शुभ मानी जाया करती है। नारी की त्रिवली जो कि उदर पर पड़ा करती है बिना रोमों वाली होनी चाहिए तथा हृदय और स्तन भी रोमों से रहित शुभ हुआ करते हैं ॥१५॥१६॥

३५ सामुद्रिक शास्त्र।

समुद्रोक्त प्रवक्ष्यामि नरस्त्रीलक्षणं शुभम्।
येन विज्ञातमात्रेण अतीतानागतात्रमा ॥१
अस्वेदिनौ मृदुतलौ कमलोदरसन्निभौ।
श्लिष्टाङ्गुली ताम्रनखौ पादावुष्णौ शिराज्झितौ ॥
कूर्मोन्नतौ गूढगुल्फौ सुपार्ष्णी नृपते स्मृतौ ॥२
शूर्पाकारौ विरूक्षौ च वक्रौ पादौ शिरालकौ।
सशुष्कौ पाण्डुरनखौ निःस्वस्य विरलाङ्गुली ॥३
मार्गायोत्कटकौ पादौ कषायसदृशौ तथा।
विच्छिन्नौ चैव वशस्य ब्रह्मघ्नौ दाडकुमसन्निभौ ॥४
युगस्यायतने तुल्या जङ्घा विरलरोमिका।
मृदुरोमा समा जङ्घा तथा करिकरप्रभा ॥
ऊरू जानवस्तुल्या नृपस्योपचिताः स्मृता ॥५
निःस्वस्य शृगालजङ्घा रोमैकैकश्च कूपके।
नृपाणां श्रोत्रियाणाञ्च द्वे द्वे श्रिये च धीमताम् ॥
त्र्याद्यैर्निःस्वा मानवा स्युर्दुःसमाजश्च निन्दिता ॥६

केशाश्चैव कुञ्चिताश्च प्रवासे म्रियते नरः ।
निर्मांसजानु सौभाग्यमल्पैर्निम्नैरत स्त्रिया ॥
विकटैश्च दरिद्रा स्यु समामै राज्यमेव च ॥७

श्री हरि भगवान् ने कहा—अब इस समुद्र के द्वारा कथित नर और स्त्री के लक्षण बताते है जिनके ज्ञात मात्र से अतीत और आगे आने वाले भावनों की पूर्ण जानकारी हो जाती है ॥१॥ अस्वेदी अर्थात् प्रस्वेद न आने वाले—कोमल तलों वाले—कमल के पुष्प के मध्य भाग के समान—मिली हुई अंगुलियों वाले—ताम्र के वर्ण के तुल्य नखों से युक्त—उष्ण—शिरोज्झित-कूर्म के समान उन्नत-गूढ गुल्फों (टकनों) वाले और सुन्दर पाष्णि भागों वाले चरण नृपति के बताये गये है अर्थात् इस प्रकार के पैर शुभ होते है ॥२॥ सूप के आकार के समान आकृति वाले-विशेष रूप से रूखे वक्र (तिरछे) शिरालक-संशुष्क—पाण्डर वर्ण के नखो से युक्त-दूर-दूर अंगुलियों वाले-मार्ग के लिये उत्कट अर्थात् उचक कर उठने वाला—कषाय के सदृश पैर वंश के विच्छेद करने वाले होते हैं और शत्रु के समान पैर ब्रह्मघ्न होते हैं। ये अशुभ पैरों के लक्षण बताये गये हैं ॥३।४॥ युग के आवर्तन म समान हों और विरल रोमों वाली हो—जो रोम हो वे भी अत्यन्त मृदु होने चाहिए और हाथी की सूंड के समान उतार चढाव की सुडौल हों—दोनों ही समान जाँघें होवें हैं यह नृपति का होना सूचित करती हैं। ऊरु और घुटने भी तुल्य हो तो नृप के लिये ही ऐसे लक्षण बताये गये हैं ॥५॥ निस्व होकर शृगाल के समान जो जघा होती हैं जिनके रोम कूपों में एक-एक ही रोम होता है-ऐसी जघा नृपों की तथा श्रोत्रियों की हुआ करती है। जो धीमान् लोग होते है उनके रोम-कूपों में दो-दो रोम होते हैं। यह भी चिह्न श्री के लिये शुभ हैं। तीन और इनसे अधिक जिनके रोम होते है वे मानव धन हीन-दुःखों के भोगने वाले और समाज में निन्दित ही हुआ करते हैं ॥ ६ ॥ जिनके कुञ्चित केश होते हैं वह मनुष्य प्रवास में मरता है। बिना मांस के जानुओं वाला सौभाग्यशाली होता है। निम्न और अल्पों में भी सौभाग्य होता है। स्त्री के विकट हो तो दरिद्रा होती है तथा समान होने पर राज्य प्राप्ति का लक्षण होता है ॥७॥

महद्भिरायुरास्यात ह्रस्वलिङ्गो धनी नरः ।
अपत्यरहितश्चैव स्थूललिङ्गो धनोज्झितः ॥८
मेढ्रे वामनते चैव सुतार्थरहितो भवेत् ।
वक्रेऽन्यथा पुत्रवान्स्याद्दारिद्र्यं विनते त्वधः ॥९
अल्पे तु तनयो लिङ्गे शिरालेऽथ सुखी नरः ।
स्थूलग्रन्थियुते लिङ्गे भवेत्पुत्रादिसंयुतः ॥१०
कोषगूढे नृपो दीर्घभुग्नैश्च धनवर्जितः ।
बलवान्युद्धशीलश्च लघुशेफः स एव च ॥११
दुर्बलस्त्वेकवृषणो विषमाभ्यां चलस्त्रियः ।
समाभ्यां क्षितिपः प्रोक्तः प्रलम्बेन शताब्दवान् ॥१२
ऊर्ध्वं द्वाभ्यां बहुस्वायुः स्क्तैर्मणिभिरीश्वरः ।
पाण्डरैर्मणिभिर्नित्यं स्त्रीसमन्विर्नं सुखभागिनः ॥१३
सशब्दनिःशब्दमूत्रा स्युर्दरिद्राश्च मानवाः ।
एकद्वित्रिचतुःपञ्चषड्भिर्धाराभिरेव च ॥१४
दक्षिणावर्तवलितमूत्राभिश्च नृपाः स्मृताः ।
विकीर्णमूत्रा निःस्वाश्च प्रधानसुतदायिका ॥१५

महान् होने से आयु बतलाई गई है। छोटी उपस्थ वाला पुरुष धनी होता है किन्तु वह सन्तति से हीन रहा करता है। जो स्थूल लिंगधारी पुरुष होता है वह धन से रहित होता है ॥ ८ ॥ बाईं ओर नत मेढ्र के होने पर अर्थात् जननेन्द्रिय वामभाग में झुकी हुई रहने पर सुत और अर्थ से हीन रहता है। अन्यथा अर्थात् दाहिनी ओर वक्र रहने पर मनुष्य पुत्र वाला होता है किन्तु यदि उपस्थ नीचे की ओर झुका हुआ हो तो वह दरिद्री रहा करता है ॥९॥ अल्प लिंग के होने पर तनय होता है और शिराल होने पर वह सुखी होता है। स्थूल और ग्रन्थि युक्त उपस्थ के होने पर मानव पुत्रादि से संयुत हुआ करता है ॥१०॥ कोषों के गूढ होने पर नृप होता है तथा दीर्घ और भुग्न होने से वह धन से रहित होता है। लघु शेफ वाला पुरुष बलवान् और युद्ध-

शील हुआ करता है ॥११॥ एक वृषण वाला पुरुष दुर्बल होता है। जिसके विषम वृषण होते हैं वह चल स्त्री वाला हुआ करता है। सम वृषणों वाला पुरुष राजा अर्थात् भूमिका स्वामी होता है। प्रलम्ब वृषण से शतायु हुआ करता है ॥१२॥ दो से ऊर्ध्व—बहुतों मे आयु और रूक्ष मणियों से ईश्वर तथा पाण्डर मणियों से नि स्व (धन हानि हीन) और मलिनों से सुख भागी होते हैं ॥१३॥ शब्द क सहित और बिना शब्द के मूत्र वाले पुरुष दरिद्र होते हैं। एक-दो-तीन-चार-पाँच और छै धाराओं से तथा दक्षिण की ओर आवृत्त से चलन वाली मूत्र धाराओ स भी नृप कहे गये हैं विकीर्ण मूत्र वाले निर्धन होते हैं। प्रधान धारा सुखदायी होती है ॥१४।१५॥

एकधाराश्च वनिता स्निग्धैर्मणिभिरुन्नतैः ।
समैः स्त्रीरत्नधनिना मध्ये निम्नैश्च कन्यका ॥१६
शुक्रैर्निःस्वा विशुष्कैश्च दुर्भगाश्च प्रकीर्तिता ।
पुष्पगन्धे नृपा शुक्रे मधुगन्धे धनं बहु ॥१७
पुत्रा शुक्रे मत्स्यगन्धे तन्नशुक्रे च कन्यकाः ।
महाभागी मांसगन्धे यज्वा स्यान्मदगन्धिनि ॥१८
दरिद्र क्षारगन्धे च दीर्घायु शीघ्रमैथुनी ।
अशीघ्रमैथुन्यल्पायु स्थूलस्फिक्स्याद्धनोज्झित ॥१९
मांसलस्फिक्सुखी स्याच्च सिंहस्फिग्भूपति स्मृत ।
भर्वत्सिहकटी राजा नि.स्व कपिकटिर्नर ॥२०
सर्पोदरा दरिद्रा स्यु पिठरैश्च घटं समा ।
धनिनो विपुलै पार्श्वैर्निःस्वा रक्तैश्च निम्नगै ॥२१

एकधारा वाली वनिता—उन्नत एवं स्निग्ध तथा सम मणियों से स्त्री रूप रत्न के धनी और मध्य म निम्ना स कन्यका होती है ॥१६॥ शुक्रों से ही नि स्व—विशेष रूप मे शुष्कों से दुर्भगा कही गई है। पुष्प के समान गन्ध वाले शुक्र (वीर्य) म नृप—मधु के तुल्य गन्ध वाले शुक्र म बहुत अधिक धन होता है ॥१७॥ मत्स्य के समान गन्ध वाले वीर्य म बहुत पुत्र और शुक्र म

ऐसा न हो तो कन्याऐं होती हैं। मांस के सदृश गन्ध होने पर वह पुरुष महान भागी होता है तथा मद के तुल्य गन्ध होने पर यज्वा होता है ॥१८॥ क्षार के समान यदि शुक्र म गंध होता है तो दीर्घ आयु और शीघ्र मैथुन वाला होता है। स्थूल स्फिक् वाला और अशीघ्र मैथुन करने वाला—अल्प आयु वाला और धन हीन होता है ॥१९॥ मांसल स्फिक् वाला सुखी होता है तथा सिंह के तुल्य स्फिक् अर्थात् कूलों वाला भूपति होता है। सिंह के तुल्य कटिवाला पुरुष राजा होता है और कपि (बन्दर) के सदृश कटि वाला मानव धन हीन हुआ करता है ॥२०॥ सप के समान उदर वाले दरिद्र हुआ करते हैं। घटों के तुल्य पिठरों से धन युक्त होते हैं। विपुल पार्श्वों से निःस्व होते हैं और निम्नगामी रक्त पार्श्वों से भी निधन होते हैं ॥२१॥

समवक्षाश्च भोगाढ्या निम्नकक्षा धनोज्झिता ।
नृपाश्चोन्नतवक्षा रुग्जिह्वा विषमकक्षका ॥२२
मत्स्योदरा बहुधना नाभिभि सुषिर स्मृता ।
विस्तीर्णाभिर्वहुलाभिर्निम्नाभि क्लेशभागिन ॥२३
वलिमध्यगता नाभि शूलबाधां करोति हि ।
वामावर्तश्च शाठ्यं वै मधा दक्षिणतस्तथा ॥२४
पार्श्वायता चिरायु स्याद् भूपरिष्टाद्धनेश्वर ।
अधो गवाढ्य कुर्याच्च नृपत्वं पद्मकर्णिका ॥२५
एकवलि शतायु स्यात्स्त्रीभोगी द्विवलि स्मृत ।
त्रिवलि क्ष्माप आचार्य ऋजुभिर्वलिभि सुखी ॥
अगम्यागामी जिह्मवलि भूपा पार्श्वैश्च मांसलै ॥२६
मृदुभि सुसमैश्चैव दक्षिणावर्त रोमभि ।
विपरीतं परप्रेष्या निर्द्रव्या सुखवर्जिता ॥२७
अनुद्धतैश्चूचुकैश्च भवन्ति सुभगा नरा ।
निधना विषमैर्दीर्घै पीनापचितकैर्नरे ॥२८

जिन मनुष्यों के वक्ष समान होते हैं वे भोगों से युक्त हुआ करते हैं

और जिनके वक्ष निम्न होते हैं वे धन से उज्झित अर्थात् हीन होते हैं। उन्नत वक्षों वाले नृप एवं विषम वक्ष वाले पुरुष कुटिल प्रकृति से युक्त होते हैं।२२। मत्स्य (मछली) के समान उदर वाले पुरुष बहुत अधिक धनी होते हैं। मत्स्य के तुल्य नाभियों से युक्त पुरुष सुखी बनाये गये हैं। विस्तीर्ण—बहुत और निम्न नाभियां से युक्त कलश के भोगने वाले होते हैं।२३। जिस नाभि के मध्य में वलि होती है वह शूल की बाधा करने वाली होती है। वाम भाग की ओर जिसका आवर्त होता है वह शाठ्य होता है तथा दक्षिणावर्त नाभि मेधा को प्रकट करती है।२४। पार्श्व में आयत चिरायु देने वाली होती है। भूयिष्ठ होने से धन का स्वामी होता है। नीचे की ओर होने वाली रोमों से सम्पन्नता प्रकट करती है तथा पद्म की कर्णिका के तुल्य नाभि नृपत्व की सूचक है।२५। एक वलि जिसमें हो वह शतायु प्रदान करने वाली है। दो वलि जिसमें हो वह पुरुष स्त्री का भोग करने वाला होता है। तीन वलि भूमिका पति एवं आचार्य होना सूचित करती है और ऋजु अर्थात् सरल वलियों से पुरुष सुखी कहा गया है। जिनकी वलि जिह्म (कुटिल) हो वह अगम्या स्त्री के गमन करने वाला होता है और मांसल पार्श्वों से युक्त शूर होते हैं।२६। मृदु और सुसमान तथा दक्षिण की ओर आवर्त वाले रोमों से युक्त भी शूर होते हैं। इनके विपरीत जिनके हैं वे परप्रेष्य—द्रव्य हीन और सुख से रहित हुआ करते हैं।२७। अनुद्धत चूचकों से मनुष्य सुभग अर्थात् अच्छे भाग वाले होते हैं। विषम-दीर्घ और पीनोन्नचितकों से मनुष्य निर्धन हुआ करते हैं।२८।

समोन्नतञ्च हृदयमकम्पं मांसलं पृथु।
नृपाणामधमानाञ्च खरंरोमशिरालकम्॥२९
अर्थवान्समवक्षाः स्यात्पीनैर्वक्षाभिरूर्जितः।
वक्षोभिर्विषमैर्निःस्वाः शस्त्रेण निधनास्तथा॥३०
विषमैर्जत्रुभिर्निःस्वा अस्थिनद्धैश्च मानवाः।
उन्नतैर्भोगिनो निम्नैर्निःस्वाः पीनैर्धनान्विताः॥३१
निःस्वश्चिपिटवक्त्रः स्यान्निःस्वः त्वग्गत सुखी।
शूरः स्याच्चलितग्रीवः नाम्ना नो मृगाण्डजः॥३२

कम्बुग्रीवस्च नृपतिर्लम्बकण्ठोऽतिभक्षक ।
अरोमशाभुग्नपृष्ठ शुभश्चाशुभमन्यथा ॥३३
कक्षाऽश्वत्थदला श्रेष्ठा सुगन्धिर्मृ गरोमिका ।
अन्यथा त्वर्थहीनाना दारिद्र्यस्य च कारणम् ॥३४
समासौ चैव भुग्नाल्पौ श्लिष्टौ च विपुलौ शुभौ ।
आजानुलम्बिनौ बाहू वृत्तौ पीनौ नृपेश्वरे ॥
निम्नदाना रोमशौ ह्रस्वौ श्रेष्ठौ करिकरप्रभौ ॥३५

नृपो का हृदय कम्प से रहित—सम एवं उन्नत होता है एवं मांसल और पृथुयी हुआ करता है। जो अधम श्रेणी के मनुष्य होते हैं उनका हृदय खर—रोमों वाला तथा शिरालक होता है ॥२६॥ समान वक्ष स्थल वाला पुरुष धर्यवान् हुआ करता है। जिसका वृक्ष स्थल पीन होता है वह ऊर्जित होता है विषम अर्थात् नतोन्नत वक्ष वाले पुरुष निःस्व अर्थात् निर्धन होते हैं तथा वे शस्त्र से भी निधन हुआ करते हैं ॥३०॥ जिनके जत्रु (हँसली) विषम होते हैं वे भी निःस्व होते हैं। अस्थिनद्ध उन्नत होने पर मनुष्य भोगी हुआ करते हैं। निम्न होने पर निधन एवं पीन होने से धन युक्त हुआ करते हैं ॥३१॥ चिपिट कण्ठ वाला पुरुष भी निःस्व होता है शिरा शुष्क गले वाला पुरुष सुखी होता है। महिष के समान ग्रीवा (गरदन) वाला मानव शूर वीर होता है और मृग के तुल्य जिसका कण्ठ होता है वह शास्त्रों को भली प्रकार जानने वाला हुआ करता है ॥३२॥ कम्बु के सदृश जिसकी ग्रीवा होती है वह नृपति का लक्षण होता है। जिसका कण्ठ लम्बा होता है वह अत्यन्त भक्षण करने वाला होता है। बिना रोमों वाला और अभुग्न पृष्ठ वाला शुभ एवं अशुभ दोनों ही हुआ करते हैं। पीपल के पत्र के तुल्य सुन्दर गन्ध वाली एवं मृग के सदृश रोमों वाली कक्षा शुभ एवं श्रेष्ठ होती है अन्यथा धन न होने के दारिद्र्य का कारण हुआ करती है ॥३३।३४॥ समान अंस (कन्धे) थोड़े से भुग्न एवं श्लिष्ट तथा विपुल शुभ हुआ करते हैं। घुटनों तक लम्बे—वृत्त एवं पीन भुजाएँ नृपेश्वर की हुआ करती हैं। जो निःस्व होते हैं उनकी बाहुएँ रोमों वाली—ह्रस्व (छोटी) होती हैं। हाथी की सूँड की प्रभा रखने वाली भुजाएँ श्रेष्ठ हुआ करती हैं ॥३५॥

हस्ताङ्गुलय एव स्युर्वायुद्वारनिभा शुभा ।
मेधाविनाञ्च सूक्ष्मा स्युर्भृत्यानां चिपिटा स्मृता ॥
स्थूलाङ्गुलीभिर्निःस्वा स्युर्नता स्युः मुक्तास्तदा ॥३६
कपितुल्यकरा निःस्वा व्याघ्रतुल्यकरेर्बलम् ।
पितृवित्तविनाशञ्च निम्नात्करतलान्नरा. ॥३७
मणिबन्धैर्निगूढैश्च सुश्लिष्टै. शुभगन्धिभि ।
नृपा हीना करच्छेदं सशब्दैर्धनवर्जिता ॥३८
सवृत्तैश्चैव निम्नैश्च धनिन परिकीर्त्तिता ।
प्रातानकरदातारा विषमैर्विषमा नरा ॥३९
करे करतलैश्चैव लाक्षाभैरीश्वरस्तनै ।
परदाररता पीतै रुक्षैर्निःस्वा नरा मता ॥४०
तुषतुल्यनखाः क्लीबाः कुटिलैः स्फुटितैर्नरा ।
निःस्वाश्च कुनखैस्तद्वद्विवर्णैः परतर्कका. ॥४१
ताम्रैर्भूपा धनाढ्याश्च अङ्गुष्ठैः सयवैस्तथा ।
अङ्गुष्ठमूलजैः पुत्री स्याद्दीर्घाङ्गुलिपर्वकः ॥४२
दीर्घायु सुभगश्चैव निधनो विरलाङ्गुलिः ।
घनाङ्गुलिश्च सधनस्तिस्रो रेखाश्च यस्य वै ॥
नृपते करतलगा मणिबन्धात्समुत्थिता ॥४३

हाथों की अँगुलियाँ जो वायु द्वार के सदृश होती है वे शुभ हुआ करती हैं। जो मेधावी पुरुष होते हैं उनकी हाथों की अगुलियाँ सूक्ष्म हुआ करती हैं और जो भृत्य श्रेणी के मानव हुआ करते हैं उनकी अँगुलियाँ चिपिटी कही गई हैं। जिनकी अँगुलियाँ स्थूल होती है वे निःस्व हुआ करते हैं और मुड़ी अंगुलियों वाले नत होते हैं ॥ ३६ ॥ बन्दर के समान करों वाले मानव निर्धन होते हैं। व्याघ्र के तुल्य हाथों वाले पुरुष बली होते हैं। निम्न (नीचे) करतल वाले मनुष्यों के पितृवित्त का विनाश हो जाया करता है ॥३७॥ सुश्लिष्ट— निगूढ और शुभ गन्ध वाले मणि बन्ध (कनिष्ठा अंगुलि पर्यन्त करक भाग का

नाम) के होने से नृप होता है। मदाच्छ कर छेदों से हीन एवं धन से वर्जित होता है ॥३८॥ मयूल और निम्न करो वाले धनी बतलाये गये हैं। प्रोत्तान करो वाले पुरुष दाता होते हैं। जिनके कर विषम होते हैं वे मनुष्य भी विषम प्रकृति वाले होते हैं ॥३९॥ लाक्षा (लाख) के समान आभा वाले जिनके कर एवं करतल होते हैं वे ईश्वर अर्थात् स्वामी हुआ करते हैं। पीत वर्ण वाले पराई स्त्रियों से रति करने वाले और रूक्षता युक्त जिनके करतल होते हैं वे मनुष्य नि स्व अर्थात् निर्धन हुआ करते हैं ॥४०॥ जिन पुरुषों के तुष के तुल्य नख होते हैं वे क्लीव अर्थात् पु स्त्व हीन हुआ करते हैं। जिनके नाखून कुटिल एवं स्फुटित होते हैं वे नि स्व होते हैं। कुनखो वाले और विवर्ण युक्त नखो वाले मनुष्य पराया तर्क करने वाले हुआ करते हैं ॥४१॥ ताम्र वर्ण के नखो वाले भूप तथा धनाढ्य होते हैं। जिनके अंगूठों म यव की रेखा होती है वे भी धन सम्पन्न होते हैं। अंगुष्ठ के मूल म यव हो तो पुत्री दीर्घाङ्गु लि पर्वो वाला पुरुष दीर्घ आयु वाला सुभग होता है। विरल अंगुलियों वाला निर्धन होता है। जिसकी अंगुलियाँ घनी होती हैं वह भी पुरुष धन-समन्वित हुआ करता है और जिसके तीन रेखाएं होती हैं वह धनी होता है ॥ ४२ ॥ नृपति की अंगुलियां करतल मे गमन करती हुई मणि बन्ध तक समुत्थित हुआ करती हैं ॥४३॥

युग्ममीनाङ्कितनरो भवेत्सत्रप्रदो नर ।
वज्राकाराश्च धनिन। मत्स्यपुच्छनिभा बुधे ॥४४
शङ्खातपत्रशिविकागजपद्मोपमा नृपे ।
कुम्भाङ्कुशपताकाभा मृणालाभा निधीश्वरे ॥४५
दामाभाश्च गवाढ्यानां स्वस्तिकाभा नृपेश्वरे ।
चक्रासितोमरधनुर्दन्ताभा नृपते करे ॥४६
उलूखलाभा यज्ञाढ्या वेदीभाश्चाग्निहोत्रिणि ।
वापीदेवकुल्याभाश्च त्रिकोणाभाश्च धार्मिके ॥४७
अङ्गुष्ठमूलगा रेखा. पुत्राश्च सुखदायका ।
प्रदेशिनीगता रेखा कनिष्ठामूलगामिनी ॥
शतायुषश्च कुर्वते छिन्नया तरते भयम् ॥४८

दा मीन की रेखाओं से युक्त मनुष्य सत्रप्रद हुआ करता है। वज्र के आकार के समान आकार की रेखाएँ धनियों के हुआ करती हैं। बुध पुरुष के मत्स्य की पूँछ के समान रेखा हुआ करती है ॥४४॥ शङ्ख—आतपत्र (छत्र)—शिबिका (पालकी)—गज और पद्म के तुल्य रेखाएँ नृप होना सूचित किया करती हैं। कुम्भ—अङ्कुश—पताका और मृणाल के सदृश आभा वाली रेखाएँ निधीश्वर के करतल में हुआ करती हैं ॥४५॥ दाम (रज्जु) की आभा वाली रेखा धनाढ्यों के होती है। स्वस्तिक (साथिया) की आभा से युक्त रेखा नृपेश्वर के करतल में हुआ करती है। चक्र—असि (खड्ग)—तोमर—धनुष और कुन्त की आभा वाली रेखाएँ राजा के करतल में होती हैं ॥४६॥ उलूखल के समान रेखा वाले पुरुष यज्ञ करने वाले होते हैं और वेदी के तुल्य रेखा अग्निहोत्री के कर में हुआ करती है। बावड़ी—देव कुल्या के सदृश रेखाएँ तथा त्रिकोण की रेखा धार्मिक पुरुष के करतल में हुआ करती हैं ॥४७॥ जिसके अंगुष्ठ के मूल में गमन करने वाली रेखा होती है उनके पुत्र परम सुख देने वाले हुआ करते हैं। कनिष्ठिका अँगुलि के मूल में गमन करने वाली प्रदेशिनी अँगुलि गत रेखा जिस पुरुष के होती है वह उस सौ वर्ष की आयु वाला किया करती है और यदि यह रेखा छिन्न हो तो भी भयों से पार करने वाली होती है ॥४८॥

निःस्वाश्च बहुरेखाः स्युर्निर्द्रव्याश्चिबुकैः कृशैः ।
मांसलैश्च धनापेताः आरक्तैरधरैर्नृपाः ॥४९
बिम्बाधरैश्च स्फुटितै रोष्ठैरक्षैश्च खण्डितैः ।
विषमैर्धनहीनाश्च दन्ताः स्निग्धा घनाः शुभाः ॥५०
तीक्ष्णाः दन्ताः समाः श्रेष्ठा जिह्वा रक्ता समा शुभा ।
श्लक्ष्णा दीर्घा च विज्ञेया तालु श्वेतो धनक्षये ॥५१
कृष्णा च परुषा वक्त्रं सम सौम्यञ्च संवृतम् ।
भूपानाममलं श्लक्ष्णं विपरीतञ्च दुःखिनाम् ॥५२

बहुत सी रेखाएँ जो किसी के कर में हों तो वे उसे निर्धन किया करती हैं। कृश चिबुक (ठोडी) वाले पुरुष भी द्रव्यहीन होते हैं। जिनकी चिबुक

मांसल होती हैं वे मानव धन-सम्पन्न हुआ करते हैं। जिनके अधर थोड़े-थोड़े रक्तिमा लिये होते हैं वे नृप होते हैं ॥४६॥ बिम्ब के फल के समान रक्त वर्ण वाले अधर जिनके हुआ करते हैं वे भी नृप होते हैं स्फुटित—खण्डित और रूक्ष एवं विषम ओष्ठों वाले मनुष्य धन हीन हुआ करते हैं। दांत स्निग्ध और घन परम शुभ होते हैं ॥५०॥ तीक्ष्ण और समान दांत भी श्रेष्ठ होते हैं और जिह्वा रक्त वर्ण वाली एवं सम शुभ होती है। श्वेत तालु और श्लक्ष्ण एवं दीर्घ जिह्वा धन क्षय सूचित करने वाली होती है ॥५१॥ धन के क्षय सूचित करने वाली परुष (कठोर) और कृष्ण वर्ण वाली जिह्वा भी हुआ करती है। मुख सम-मसृण सौम्य होता है। भूपों का मुख अमल एवं श्लक्ष्ण होता है और जो दुखिया होते हैं उनका मुख इसके विपरीत अवस्था वाला हुआ करता है ॥५२॥

महादुःख दुर्भगाणां स्त्रीमुखं पुत्रमाप्नुयात् ।
शाठ्यानां वर्त्तुलं वक्त्रं निर्द्रव्याणाञ्च दीर्घकम् ॥५३
भीरुवक्त्रः पापकर्मा धूर्तानाश्चतुरस्रकम् ।
निम्नं वक्रमपुत्राणां कृपणानाञ्च ह्रस्वकम् ॥५४
सम्पूर्णं भोगिनां कान्तं श्मश्रु स्निग्धं शुभं मृदु ।
सहतश्चास्फुटिताग्रं रक्तश्मश्रुश्च चौरकः ॥
रक्ताल्पपरुषश्मश्रु कर्णाः स्युः पापमृत्यवः ॥५५
निर्मासैश्चिपिटैर्भोगा कृपणा ह्रस्वकर्णकाः ।
शङ्कुकर्णाश्च राजानो रोमकर्णा गतायुषः ॥५६
बृहत्कर्णाश्च धनिनो राजानः परिकीर्त्तिताः ।
कर्णौ सिराभिरनद्धश्च व्यालम्बमांसलौ नृपाः ॥५७
भोगी वै निम्नगण्डः स्यान्मन्त्री सम्पूर्णगण्डकः ।
शुकनासः सुखी स्याच्च शुष्कनासोऽतिजीवनः ॥५८
छिन्नाग्रकूपनासः स्यादगम्यागमने रतः ।
दीर्घनासे च सौभाग्यं चौरश्चाकुञ्चितेन्द्रियः ॥५९
मृत्युश्चिपिटनासः स्याद्धीनभाग्यवता भवेत् ।
स्वल्पच्छिद्रा सुपुटा च अवक्रा च नृपेश्वरे ॥६०

जो दुर्भाग्य वाले मानव होते हैं उनका मुख महा दुःख पूर्ण होता है और स्त्री—सुख पुत्र की प्राप्ति किया करता है। जो आढ्य मनुष्य होते हैं उनका मुख वर्तुलाकार (गोल) होता है और जो द्रव्य हीन मनुष्य हुआ करते हैं उनका मुख दीर्घता वाला होता है अर्थात् लम्बा होता है ॥५३॥ पाप कर्मों के करने वाला के मुख भीरुता से परिपूर्ण रहा करते हैं। धूर्तों का मुख चारों ओर की चेष्टाओं से सम्पन्न होते हैं। पुत्र रहित मानवों का मुख निम्न होता है तथा कृपणों का मुख छोटा होता है॥ ५४ ॥ सम्पूर्ण और कान्त मुख भोगी पुरुषों का होता है। श्मश्रु (दाढ़ी-मूँछ) स्निग्ध और मृदु शुभ होती हैं। जिसकी श्मश्रु महन और अस्फुटित अग्र भाग वाली हो तथा रक्त–श्मश्रु हो वह चोर होता है। जिनके रक्त-प्रलत—परुष श्मश्रु तथा कण होते हैं वे पाप मृत्यु वाले पुरुष हुआ करते हैं ॥५५॥ निर्मांस अर्थात् बिना मांस वाले–चिपिट कानों वाले पुरुष भोगी होते हैं। ह्रस्व (छोटे) कानों वाले मनुष्य कंजूस होते हैं। शङ्कु (कील) के सदृश जिनके कान होते हैं वे राजा होते हैं। जिनके कानों पर रोम होते हैं वे गतायु हुआ करते हैं। बड़े-बड़े कानों वाले मनुष्य धनी हुआ करते हैं तथा स्निग्ध–अनद्ध और व्यालम्ब कानों वाले एवं मांसल पुरुष नृप होते हैं ॥५६।५७॥ जिनके गण्ड (कपोल) निम्न होते हैं वे भोगी होते हैं और जिनके गण्ड स्थल सम्पूर्ण होते हैं वे मन्त्री पद के प्राप्त करने वाले होते हैं। शुक (तोता) के समान जिनकी नासिका होती है वे सुखी हुआ करते हैं। शुष्क नाक वाले अत्यधिक जीवन वाले हुआ करते हैं ॥५८॥ जिनकी नासिका के अग्र पुट छिन्न होते हैं वे पुरुष अगम्या (गमन न करने के योग्य) स्त्री के साथ गमन करने में रति रखने वाले हुआ करते हैं। दीर्घ नाक वाला पुरुष सौभाग्यशाली होता है और अकुञ्चित इन्द्रिय (नाक) वाला मानव चोर होता है ॥५९॥ चिपिट नासिका वाला मनुष्य मृत्यु युक्त होता है तथा हीन भाग्य वाला भी होता है। स्वल्प छिद्र वाली नासिका वाले तथा सुन्दर पुट वाले एवं अवक्र नाक वाले नृपेश्वर हुआ करते हैं ॥६०॥

क्रूरे दक्षिणवक्रा स्याद्वलिनाश्च क्षुत सकृत् ।
स्याद्विनिःस्निग्ध हनादी सानुनादश्च जीवहृत् ॥६१

वक्रान्तैं पद्मपत्राभैर्लोचनै सुखभागिन ।
मार्जारलोचनै पापा दुरात्मा मधुपिङ्गलै ॥९२
क्रूरा केकरनेत्राश्च हरिताक्षा सकल्मषा ।
जिह्माक्षलोचनै शूरा सेनान्यो गजलोचना ॥९३
गम्भीराक्षा ईश्वरा, स्युर्मन्त्रिण स्थूलचक्षुष ।
नीलोत्पलाक्षा विद्वांस सौभाग्य श्यामचक्षुषाम् ॥९४
स्यात्स्थूलतारकाक्षाणामक्षणामुत्पाटन किल ।
मण्डलाक्षाश्च पापा स्युर्निःस्वा स्युर्दीनलोचना ॥९५
त्वक् स्निग्धा विपुला भोगा महायुर्नातिनम्रता ॥९६
विशालायता सुखिनो दरिद्रा विषमभ्रुव ।
धनी दीर्घासंसक्तभ्रू बालेन्दुनतसुभ्रुव ॥९७

दक्षिण की ओर वक्र रहने वाली नासिका क्रूर पुरुष का लक्षण होता है। ध्वनियों को एक बार ही छींक होती है जो कि विनिर्दिष्ट होता है। अनुनाद के सहित और लम्बी देर वाली छींक हुआ करती है ॥ ९१ ॥ वक्र जिनका अन्त भाग हो और पद्म पत्र के समान आभा वाले जो नेत्र होते हैं वे पुरुष सुख भागी हुआ करते हैं। मार्जार (बिल्ली) की आंखों जैसी जिन मनुष्यों की आंखें होती है व पापी हुआ करते हैं। मधु के सदृश पिङ्गल वर्ण वाले नेत्र जिनके होते हैं वे दुष्ट आत्मा वाले मानव होते हैं ॥९२॥ केकर (भैंगे दिखाई देने वाले) नेत्र वाले पुरुष क्रूर स्वभाव के होते हैं। हरित नेत्र वाले मनुष्य कल्मष युक्त हुआ करते हैं। जिह्म नेत्रों वाले शूरवीर होते हैं। हाथी के समान आँखों वाले पुरुष सेनानी (सेनाधिप) हुआ करते हैं ॥९३॥ गम्भीर नेत्रों वाले ईश्वर (स्वामी) होते हैं और स्थूल चक्षुओं वाले पुरुष मन्त्री हुआ करते है। नील कमल के समान नेत्रों वाले परम बड़े विद्वान् हुआ करते हैं। श्याम वर्ण की चक्षुओं वाले पुरुषों का बहुत सौभाग्य होता है। जिनके नेत्रों में तारका स्थूल वर्ण के हो तथा आँखों का उत्पाटन हो अर्थात् उभार हो और मण्डल से युक्त नेत्र हो ऐसे पुरुष पापी निःस्व और दीन लोचनों वाले हुआ करते हैं। जिनकी त्वचा स्निग्ध होती है वे बहुत भोगों के भोगने वाले

होते हैं। जिनकी नाभि उन्नत होती है वे अल्पायु होते हैं ॥६४।६५।६६॥ विशाल और उन्नत भौंह जिन मनुष्यों की होती हैं वे संसार में सुखी होते हैं और विषम भ्रुकुटियों वाले दरिद्र होते हैं। दीर्घ समक्त भ्रू वाला और बालचन्द्र के समान भ्रू वाला पुरुष धनी हुआ करता है ॥६७॥

आढ्यो निःस्वश्च खण्डभ्रूर्मध्ये च विनतभ्रुवः ।
स्त्रीष्वगम्यास्वासक्ताः स्युः सुतार्थे परिवर्जिताः ॥६८
उन्नतैर्विपुलैः शङ्खैर्ललाटैर्विषमैस्तथा ।
निर्धना धनवन्तश्च अर्द्धेन्दुसदृशैर्नराः ॥६६
आचार्याः शुक्तिविशालैः शिरालैः पापकारिणः ।
ऊन्नताभिः शिराभिश्च स्वस्तिकाभिर्धनेश्वराः ॥७०
निम्नैर्ललाटैर्वधार्हाः क्रूरकर्मरतास्तथा ।
सवृतैश्च ललाटैश्च कृपणा उन्नतैर्नृपाः ॥७१
घनश्रुस्निग्धरुदितमदीनमशुभं नृणाम् ।
प्रचुरस्वेदिनं रूक्षं रुदितञ्च सुखावहम् ॥७२
अकम्पं हसितं श्रेष्ठं निमीलितमघावहम् ।
असकृद्धसितं दुष्टं सोन्मादस्य ह्यनेकधा ॥७३
ललाटोपसृतास्तिस्रो रेखाः स्युः शतवर्षिणाम् ।
नृपत्वं स्याच्चनसृभिरायुः पञ्चनवत्यथ ॥७४

खण्ड भ्रू वाला पुरुष आढ्य और निःस्व होता है। जिसकी भ्रू मध्य में विनत हो वह अगम्य स्त्री में आसक्त होता है और सुतार्थ परिवर्जित होता है ॥६८॥ उन्नत-विशाल-शङ्ख तथा ललाटों वाले पुरुष निर्धन होते हैं। अर्धचन्द्र के समान ललाटों वाले मनुष्य धन वाले हुआ करते हैं ॥६६॥ शुक्ति के समान विशाल ललाटों से युक्त आचार्य होते हैं। विशाल ललाट वाले पुरुष पाप कर्मों के करने वाले होते हैं। उन्नत शिराओं से समन्वित ललाटों वाले और स्वस्तिक के सदृश ललाटों वाले मनुष्य धनेश्वर हुआ करते हैं ॥७०॥ जिनके ललाट निम्न हों वे वध के योग्य होते हैं तथा क्रूर कर्म करने में रति रखने

वाले हुआ करते हैं। सवृत ललाटो वाले मनुष्य कजूस स्वभाव के होते हैं तथा उन्नत ललाट वाले नृप होते हैं ॥७१॥ बिना अश्रुओं वाला स्निग्ध रुदिन अदीन तथा मधुर होता है। जिस रुदन मे अधिक प्रस्वेद होता है और रूक्ष होता है वह रुदिन सुखा वह हुआ करता है ॥७२॥ बिना कम्प वाला हसित श्रेष्ठ माना गया है। जो निमीलित हसित होता है वह अघ के दन वाला होता है। बार-बार हँसना दोष युक्त होता है। उन्माद युक्त का हसित अनेक बार हुआ करता है ॥७३॥ ललाट पर उपसृत तीन रेखाऐ यह सूचित करती हैं कि ऐसे पुरुष सौ वर्ष पर्यन्त जीने वाले होते हैं। चार रेखाये भूपति होना प्रकट किया करती हैं और चार रेखाऐ नब्बे वर्ष की आयु बतलाया करती हैं ॥७४॥

अरेखेनायुर्नवतिर्विच्छिन्नाभिश्च पुंश्चला ।
केशान्तोपगताभिश्च अशीत्यायुर्नरा भवेत् ॥७५

पञ्चभि सप्तभि षड्भि पञ्चाशद्बहुभिस्तथा ।
चत्वारिंशच्च रक्ताभिस्त्रिंशद्भ्रू लग्न गामिभि ॥

विंशतिर्वाभिवक्राभिरायु. क्षुद्राभिरल्पकम् ॥७६
छत्राकारै शिरोभिस्तु नृप शिवमयो धनी ।

चिपिटैश्च पितुर्मृत्युर्धनाढ्य परिमण्डलै ॥
घटमूर्द्धा पापकृन्निधनाढ्य परिवर्जित ॥७७

कृष्णैराकुञ्चितै केशै स्निग्धैरेकैकसम्भवै ।
अभिन्नाग्रैश्च मृदुभिर्न चातिबहुभिर्नृपा ॥७८

बहुमूलैश्च विषमै स्थूलाग्रै कपिलैस्तथा ।
निम्नैश्चैवातिकुटिलैर्घनैरमितमूर्द्धजो ॥७९

यद्यद्गात्रं महारूक्ष शिराल मामवर्जितम् ।
तत्तस्यादशुभ सर्वं शुभ सर्वं ततोऽन्यथा ॥८०

विपुलस्त्रिषु गम्भीरो दीर्घ सूक्ष्मश्च पञ्चसु ।
षडुन्नतश्चतुर्ह्रस्वो रक्त सप्त समो नृप ॥८१

नाभि स्वरश्च बुद्धिश्च त्रय गम्भीरगोचरितम् ।
पुम स्यादविस्तीर्ण ललाट वदनमुर ॥८२

षड् वक्षदन्तनासा पटम्युमुंखकृकाटिका ।
उन्नतानि च ह्रस्वानि जङ्घा ग्रीवा च लिङ्गकम् ॥८३
पृष्ठश्चत्वारि रक्तानि करताल्वधरा नखा ।
नमान्तपादजिह्वोष्ठा पञ्च सूक्ष्माणि सन्ति वै ॥८४

अरेख ललाट से भी नब्बे ७५ की आयु प्रकट होती है। विच्छिन्न रेखाओं से मनुष्य पुश्चल होते हैं। केश न म उपगत रखाओं से अस्सी वर्ष की आयु व्यक्त होती है ॥७५॥ पाँच-छै सात से पचास वर्ष की आयु, बहुत-सी रेखाओं से चालीस साल की—वक्र रेखाओं से जो भ्रू लगन गामी हो तीस साल की आयु प्रकट होती है। बाईं ओर वक्र रहने वाली रेखाओं से बीस वर्ष की उम्र तथा क्षुद्र रखाओं से अल्प आयु प्रकट हुआ करती है॥ ७६ ॥ छत्र के समान आकार वाले सिरों से मनुष्य विषमय धनी एवं नृप होते हैं। चिपिट सिरों वाला के पिता की मृत्यु होती है और परिमण्डल सिर से मानव धनी होता है। घट के समान मूर्धा वाला पुरुष पाप में रुचि वाला होता है और धनादि से रहित होता है अर्थात् सुख प्रदायक वस्तुओं का उसे अभाव रहता है ॥७७।
कृष्ण वर्ण वाले—थोड़े कुञ्चित-स्निग्ध-एक-एक उत्पन्न जिनके अग्र भाग अभिन्न हों तथा मुलायम और अत्यन्त घने न हों ऐसे केशों वाले पुरुष नृप होते हैं ॥७८॥ बहुमूल—विषम स्थूल अग्र भाग वाले-कपिल वर्ण से युक्त—निम्न-अत्यन्त कुटिल घने तथा केशों वाले पुरुष अशुभ होते हैं। अङ्ग जो-जो भी हो वह महान् रूखा—सिराल अर्थात् जिसमें सिरायें चमक रही हों तथा मांस से रहित हो वे सभी अशुभ होते हैं। इनके विपरीत सब शुभ कहे गये हैं ।७६।
॥८०॥ तीन में विपुल-दीर्घ और गम्भीर-पाँच में सूक्ष्म-छै उन्नत-चार ह्रस्व और सात रक्त हो तो वह मनुष्य नृप होता है ॥८१॥ नाभि-स्वर और बुद्धि ये तीन गम्भीर बताये गये हैं। पुरुष का ललाट—वदन और उरस्थल विस्तीर्ण होना चाहिए ॥८२॥ नेत्र-वक्ष-दाँत—नासिका-मुख और कृकाटिका (घाँटी) ये छैं उन्नत होने चाहिए। जाँघ—ग्रीवा (गरदन) और लिङ्ग तथा पृष्ठ ये ह्रस्व होने चाहिए ॥८३॥ कर—तालु—अधर और नख ये चार रक्त वर्ण

वाले परम शुभ होते हैं। नेत्रान्त—पाद—जिह्वा—ओष्ठ ये पांच सूक्ष्म शुभ एवं प्रशस्त होते हैं ॥८४॥

दशनाङ्गुलिपर्वाणि नखकेशत्वचः शुभाः ।
दीर्घा. स्तनान्तरं बाहुदन्तलोचननासिका ॥८५
नराणां लक्षणं प्रोक्तं वदामि स्त्रीषु लक्षणम् ।
राज्ञ्याः स्निग्धौ समौ पादौ तलौ ताम्रौ नखौ तथा ॥
श्लिष्टाङ्गुली चोन्नताग्रौ ता प्राप्य नृपतिर्भवेत् ॥८६
निगूढगु फोपचितौ पद्मकान्तितलौ शुभौ ।
अस्वेदिनौ मृदुतलौ मत्स्याङ्कुशध्वजाञ्चितौ ॥
वज्राब्जहलचिह्नौ च राज्ञ्या पादौ ततोऽन्यथा ॥८७
जङ्घे च रोमरहिते सुवृत्ते विशिरे शुभे ।
अनुल्बणं सन्धिदेश सम जानुद्वय शुभम् ॥८८
ऊरू करिकराकारावरोमौ च समौ शुभौ ।
अश्वत्थपत्रसदृश विपुल गुह्यमुत्तमम् ॥८९
श्रोणीललाटक स्त्रीणा उर कूर्मोन्नत शुभम् ।
गूढो मणिश्च शुभदो नितम्बश्च गुरु शुभ ९०

दशन—अंगुलि पर्व—नख—केश—त्वचा ये दीर्घ शुभ होते हैं। स्तनों का मध्यान्तर भाग—बाहु—दन्त—लोचन और नासिका ये भी दीर्घ प्रशस्त होते हैं ॥८५॥ अब तक पुरुषों के लक्षण बताये गये हैं। इससे आगे अब स्त्रियों के लक्षण बताते हैं। रानी के पाद स्निग्ध—सम होते हैं तथा उसके पद तल और नख ताम्र वर्ण के हुआ करते हैं। अंगुलियाँ एक दूसरे से सटी हुई श्लिष्ट होती हैं तथा अग्र भाग उन्नत होता है। ऐसे लक्षणों वाली नारी को प्राप्त कर पुरुष नृपति हो जाता है ॥८६॥ रानी के चरण निगूढ गुल्फ वाले—उपचित—पद्म के समान कान्ति से युक्त तलों वाले—बिना स्वेद (पसीना) वाले—प्रशस्त शुभा-शुभ—मत्स्य, अंकुश, ध्वज, वज्र, अब्ज और हल के चिह्नों से युक्त परम शुभ हुआ करते हैं। इसके विपरीत अशुभ हैं ॥८७॥ नारी की जांघें रोमों से रहित

सुवृत्त—बिना शिराओं वाली अर्थात् जिनमें शिराएँ न चमकती हों ऐसी परम शुभ होती है। नारी का मणिबन्ध भाग उन्नत नहीं होना चाहिए। दोनों जानु (घुटने) समान हों—यह लक्षण शुभ बताया गया है ॥८८॥ नारी के ऊरु हाथी के सूँड के समान उतार-चढ़ाव वाले—बिना रोमों वाले और समान शुभ हैं। अश्वत्थ (पीपल) के पत्र के समान विपुल गुह्य भाग उत्तम बताया गया है ॥८९॥ नारियों की श्रोणी—ललाट—उरःस्थल कूर्म के समान उन्नत शुभ होता है। मणि नारियों का गूढ शुभ प्रदान करने वाला होता है तथा नारियों के नितम्ब गुरु होना ही शुभ माने गये हैं ॥९०॥

विस्तीर्णा मांसोपचिता गम्भीरा विपुला शुभा।
नाभिः प्रदक्षिणावर्त्ता मध्यं त्रिवलिशोभितम् ॥९१
अरोमशौ स्तनौ पीनौ घनावविषमौ शुभौ।
कठिना रोमशा शस्ता मृदुग्रीवा च कम्बुभा ॥९२
आरक्तावधरौ श्रेष्ठौ मांसलं वर्त्तुलं मुखम्।
कुन्दपुष्पसमा दन्ता भाषितं कोकिलासमम् ॥९३
दाक्षिण्ययुक्तमशठं हंसशब्दसुखावहम्।
नासा समा समपुटा स्त्रीणां तु रुचिरा शुभा ॥९४
नीलोत्पलनिभं चक्षुर्नासलग्नं शुभावहम्।
न पृथू बालेन्दुनिभे भ्रुवौ चाथ ललाटकम् ॥
शुभमर्द्धेन्दुसंस्थानमतुङ्गं स्यादलोमकम् ॥९५
अमांसलं कर्णयुग्मं समं मृदु समाहितम्।
स्निग्धनीलाश्च मृदवो मूर्द्धजा कुञ्चिताः शुभाः ॥९६
स्त्रीणां समं शिरः श्रेष्ठं पादे पाणितलेऽथवा।
वाजिकुञ्जरश्रीवृक्षयूपयुपयवतोमरैः ॥९७
ध्वजचामरमालाभिः शैलकुण्डलवेदिभिः।
शङ्खातपत्रपद्मैश्च मत्स्यस्वस्तिकसद्रथैः ॥
लक्षणैरङ्कुशाद्यैश्च स्त्रियः स्यू राजवल्लभाः ॥९८

विस्तीर्ण—मांस से उपचित—विपुल और गम्भीर नाभि स्त्रियों की शुभ होती है जोकि दाहिनी ओर आवर्त वाली हो और मध्य भाग त्रिवली से सुशोभित होना चाहिए ॥ ९१ ॥ नारी के स्तन रोमों से रहित—पीन—घने और अविषम शुभ होते हैं। नारी की ग्रीवा कठिन—रोमों से युक्त—कम्बु के सदृश आकार वाली मृदु प्रशस्त होती है ॥ ९२ ॥ थोड़ी-सी रक्तिमा से युक्त अधर नारी के श्रेष्ठ होते हैं। स्त्री का मुख वर्त्तुल और मांसल शुभ होता है। कुन्द की कली के समान श्वेत एवं सुन्दर नारी के दांत प्रशस्त माने गये हैं तथा नारी का भाषित कोकिला की कण्ठ ध्वनि के समान मधुर एवं श्रुति प्रिय होना ही परम शुभ बताया गया है ॥ ९३ ॥ नारी के भाषण की प्रशस्तता तभी मानी जाती है जब समस्त भाषण दाक्षिण्य से युत—शाठ्य से रहित और हंस की ध्वनि के समान सुख देने वाला हो। स्त्री की नासिका सम एवं समान पुटों वाली रुचिर और शुभ होती है ॥ ९४ ॥ नील उत्पल के सदृश नारी के नेत्र शुभावह होते हैं जो चमकदार न हों। बहुत बड़ी नहीं बल्कि बाल चन्द्र के समान भौंहें शुभ होती हैं। नारी का ललाट अर्धचन्द्र के समान संस्थान वाला जो अधिक तुङ्ग न हो और रोमों से रहित शुभ होता है ॥९५॥ नारी के दोनों कान मांसल न होकर समान—मृदु एवं समाहित होने चाहिए—ऐसे ही कान शुभ बताये गये हैं। स्त्री के केश स्निग्ध—नील—मृदुल और घुंघराले शुभ होते हैं ॥ ९६ ॥ स्त्रियों का मस्तक समश्रेष्ठ होता है। स्त्रियों के चरण और कर में अश्व—गज—श्रीवृक्ष—यूप—यव—तोमर—ध्वज—चामर—माला—शैल—कुण्डल—वेदी—शङ्ख—छत्र—पद्म—मत्स्य—स्वास्तिक सदृश और अंकुश आदि शुभ चिन्हों में से अधिकाधिक लक्षण प्राप्त हों तो ऐसी नारी राज वल्लभ होती है ॥९७॥९८॥

निगूढमणिबन्धौ च पद्मगर्भोपमौ करौ।
न निम्न नोन्नत स्त्रीणां भवेत्करतलं शुभम् ॥
रेखान्विता त्वविधवा क्रूरदारिनभोगिनी स्त्रियम् ॥९९
रेखा या मणिबन्धोत्था गता मध्यांगुलीकरे।
गता पाणितले या च योर्ध्वगा दतले स्थिता ॥

स्त्रीणां पुंसां तथा नां स्याद्राज्याय च सुखाय च ॥१००
कनिष्ठिकामूलभवा रेखा कुर्याच्छतायुषम् ।
प्रदेशिनीमध्यमाभ्यामन्तरालगता सती ॥१०१
ऊना न्यूनायुषं कुर्य्याद्रेखा चाङ्गुष्ठमूलगा ।
बृहत्य पुत्रास्ता क्षीणा प्रमदा परिकीर्तिता ॥१०२
स्वल्पायुषो बहुच्छिन्ना दीर्घाच्छिन्ना महायुष ।
गुणन्तु लक्षणं स्त्रीणां प्रोक्तन्त्वशुभं यथा ॥१०३
कनिष्ठिकाऽनामिका वा यस्या न स्पृशत महीम् ।
अङ्गुष्ठं वा गतानाम्य तर्जनी कुलटा च सा ॥१०४
ऊध्वं द्राभ्यां पिण्डिनकाभ्यां जङ्घे चातिशिरालके ।
रोमशे चातिमांसं च कुम्भाकार तथोदरम् ॥
वामावर्त्त निम्नमल्पं दुःखितानाञ्च गुह्यकम् ॥१०५
ग्रीवया ह्रस्वया निःस्वा दीर्घया च कुलक्षयं ।
पृथुलया प्रचण्डाश्च स्त्रियः स्युर्नात्र संशयः ॥१०६

नारियों के मणिबन्ध निगूढ़ शुभ है। स्त्रियों के कर पद्म के मध्य भाग के समान प्रशस्त होते हैं। स्त्रियों का करतल न अधिक निम्न और न अधिक उन्नत ही शुभ होता है। ये लक्षण नारी के रेखान्वित और अविधवा अर्थात् सौभाग्य वाली एवं सम्भोग शालिनी किया करते हैं। ६६ ॥ जो रेखा नारी के मणिबन्ध से उठकर कर की मध्यमाङ्गुलि तक जाने वाली है और ऊर्ध्व पाद तल में रेखा स्थित होती है। ऐसी रेखा स्त्रियों के कर या पाद में हो या पुरुषों के हो वह राज्य और सुख के देने वाली हुआ करती है ॥ १०० ॥ कनिष्ठिका अङ्गुलि के मूल भाग में उठी हुई रेखा शतायु बनाती है प्रदेशिनी और मध्यमा अङ्गुलियों के अन्तराल में जाने वाली रेखा शत वर्ष की आयु बनाती है और सतीत्व की सूचिका होती है ॥ १०१ ॥ कुछ कम हुई तो कुछ कम आयु बढ़ाने वाली होती है। अङ्गुष्ठ के मूल में गमन करने वाली रेखा यह बतलाती है कि उसके बहुत पुत्र होते हैं किन्तु वे प्रमदाऐं क्षीण बताई गई हैं ॥ १०२ ॥ बहुत सी छिन्न होने वाली रेखाऐं स्वल्प आयु प्रकट किया करती हैं तथा

दीर्घाच्छिन्ना रेखाऐं महासुख प्रकट करती हैं। यहाँ तक स्त्रियों के समस्त शुभ लक्षण बताये गये हैं। इन उपर्युक्त लक्षणों के जो विपरीत लक्षण नारियों के होते हैं वे अशुभ हुआ करते हैं ॥ १०३ ॥ जिस नारी की कनिष्ठिका या अनामिका पैर की अंगुलि भूमि का स्पर्श नहीं किया करती है अथवा अंगुष्ठ स्पर्श न करता हो वह मतात होकर जाने वाली होती है। जिसकी तर्जनी भूमि का स्पर्श न करे वह कुलटा नारी होती है ॥ १०४ ॥ दोनों पिण्डिकाओं (पिंडलियों) में ऊपर जिसकी जाँघें रोमों वाली एवं अत्यन्त शिरालक हों एवं घट के आकार के सदृश उदर हो—गुह्यभाग वामावर्त्त—निम्न और अल्प हो वह दुखिया होती है ॥ १०५ ॥ ह्रस्व ग्रीवावाली निःस्वा होती है और दीर्घ ग्रीवा वाली के कुल का क्षय हो जाता है। यदि ग्रीवा पृथुल हो तो वह प्रचण्ड स्वभाव की स्त्री होती है इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥ १०६ ॥

केकरे पिङ्गले नेत्रे श्यामे लोलेक्षणाऽसती ।
स्मिते कूप गण्डयोश्च सा ध्रुव व्यभिचारिणी ॥१०७
प्रलम्बिनो ललाटे तु देवर हन्ति चाङ्गना ।
उदरे श्वशुर हन्ति पति हन्ति स्फिचाद्वयो ॥१०८
या तु रोमोत्तरोष्ठी स्यान्न शुभा भर्त्तुरेव हि ।
स्तनौ सरोमावशुभौ कर्णौ च विषमौ तथा ॥१०९
कराला विषमा दन्ता क्लेशाय च भवन्ति ते ।
चौर्याय कृष्णमासाश्च दीर्घा भर्त्तुश्च मृत्यवे ॥११०
क्रव्यादरूपहंसैश्च वृकाकादिसन्निभैः ।
शिरालैर्विषमैः शुष्कैर्वित्तहीना भवन्ति हि ॥
समुन्नतोत्तरोष्ठी या कलहे स्वल्पभाषिणी ॥१११
स्त्रीषु दोषा निरुक्तास्तु यथाकारो गुणास्तत ।
नरस्योक्तलक्षणं प्रोक्त वक्ष्ये तु ज्ञानदायकम् ॥११२

जिस नारी के नेत्र केकरे (भैंडे) हों—पिङ्गल तथा श्याम वर्ण वाले हों और चञ्चल नेत्रों वाली हो वह नारी असती होती है। जब कोई नारी

हँसती या मुस्कराती है उस समय मे जिसके कपोलों मे गड्डे पड जाते हो तो वह निश्चय ही समझ लेना चाहिए कि वह व्यभिचारिणी होती है ॥ १०७ ॥ ललाट में जो प्रलम्बिनी होती है अर्थात् जिसका ललाट लम्बा होता है वह अङ्गना देवर का हनन करने वाली होती है। जिस नारी का उदर लम्बा होता है वह श्वशुर को मारने वाली होती है। ऊर्ध्व स्फिक वाली नारी पति का हनन किया करती है ॥ १०८ ॥ जिसके होंठों पर रोम होते हैं वह स्त्री अपने स्वामी के लिए शुभ नहीं हुआ करती है। रोमों से युक्त स्तन भी स्त्री के अशुभ होते है और विषम कान अशुभ हुआ करते हैं। कराल एवं विषम दाँत नारी के क्लेश के लिए ही हुआ करते है कृष्ण मांस जिस दाँतों का होता है वे चोरी के बताने वाले होते है। दीर्घ दाँतों वाली भर्त्ता की मृत्यु के लिये होती है ॥ १०९ ॥ ११० ॥ राक्षस के-से हाथ हो—वृक, काक आदि के तुल्य-शिरालः—विषम और शुष्क जिनके हाथ होते है वे वित्तहीन होती हैं। उत्तर ओष्ठ जिसके समुन्नत होते है वह कलह का रुचि और रूक्ष भाषण करने वाली होती है ॥ १११ ॥ ये विरूप स्त्रियो मे दोष हुआ करते है। जहाँ आकार सुन्दर होता है वहाँ गुण भी हुआ करते है। इस प्रकार से यहाँ तक नर और नारियों के लक्षण बताये गये है। अब ज्ञान दायक विषय बतलाया जायगा ११२

३६-पवन विजय स्वरोदय

हरे श्रुत्वा हरो गौरी देहस्थं ज्ञानमब्रवीत् ॥१
कुजो वह्नी रविः पृथ्वी शौरिराप प्रकीर्त्तितः ।
वायुसंस्थः स्थितो राहुर्दक्षरन्ध्रावभासकः ॥२
गुरुः शुक्रस्तथा सौम्यश्चन्द्रश्चैव चतुर्थकः ।
वामनाड्यान्तु मध्यस्थान् कारयेदात्मनस्तथा ॥३
यदा चार इडायुक्तस्तथा कर्म समाचरेत् ।
स्थानसेवा तथा ध्यानं वाणिज्यं राजदर्शनम् ।
अन्यानि शुभकर्माणि कारयेत् प्रयत्नतः ॥४
दक्षनाडीप्रवाहे तु शनिर्भौमश्च सैंहिकः ।
इतश्चैव तथाप्येन पापानामुदयो भवेत् ॥५

शुभाशुभविवेको हि ज्ञायते तु स्वरोदयात् ।
देहमध्ये स्थिता नाड्यो बहुरूपाः सुविस्तराः ॥६
नाभेरधस्ताद्यः स्कन्दः अङ्कुरास्तत्र निर्गताः ।
द्विसप्ततिसहस्राणि नाभिमध्ये व्यवस्थिताः ॥७
चक्रवच्च स्थितास्तास्तु सर्वाः प्राणहराः स्मृताः ॥
तासां मध्ये त्रयः श्रेष्ठा वामदक्षिणमध्यमाः ॥८

सूतजी ने कहा—हरि के कथन का श्रवण करके हर ने यो गों को देह मे स्थित ज्ञान बतला या था । कुज (भौम) वह्नि, रवि, पृथ्वी, सौरि आप कहे गये हैं । वायु में स्थित रहने वाला राहु है जो दक्षरन्ध्र प्रभावक होता है । गुरु, शुक्र तथा चतुर्थ सौम्य चन्द्र वाम नाड़ी में स्थित सब कार्य करावें और जब चार इड़ा से युक्त हों तब उस प्रकार से स्थान, सेवा, ध्यान, वाणिज्य और राजदर्शन कर्मों का समारम्भ करना चाहिए । एवं अन्य भी शुभ कार्य प्रयत्न पूर्वक करने चाहिए ॥१ से ४॥ दक्ष नाड़ी प्रवाह में शनि, भौम और सिंह का इन (सूर्य) इस प्रकार में पापों का उदय होता है ॥५॥ स्वरोदय में इस तरह शुभ एवं अशुभ का विवेक जाना जाता है । इस देह के मध्य में बहुत से रूपों वाली सुविस्तार में युक्त नाड़ियाँ स्थित रहती हैं ॥६॥ नाभि के नीचे के भाग में जो स्कन्द है वहाँ पर से अङ्कुर निर्गत होते हैं जो दो सत्तर सहस्र नाभि के मध्य में व्यवस्थित हैं । वे सब चक्र की भाँति वहाँ पर स्थित हैं और सभी प्राणों की हरण करने वाली कही गई हैं । ७॥ उन सबों के मध्य में वाम दक्षिण और मध्य में रहने वाली तीन श्रेष्ठ बताई गई हैं ॥८॥

वामा सोमात्मिका प्रोक्ता दक्षिणा रविसन्निभा ।
मध्यमा च भवेदग्निः फलदा कालरूपिणी ॥
वामा अमृतरूपा च जगदाप्यायने स्थिता ॥९
दक्षिणा रौद्रभागेन जगच्छोषयते सदा ।
द्वयोर्वहि तु मृत्युः स्यात् सर्वकार्यविनाशिनी ॥
निर्गमे तु भवेद्वामा प्रवेशे दक्षिणा स्मृता ॥१०

इडाचारे तथा सौम्य चन्द्रसूर्य्यगतस्तथा ।
वारयेत्क्रूरकर्माणि पाणे पिङ्गलसंस्थित ॥११
यात्राया सर्वकार्य्येषु विषापहरणे इडा ।
भोजने मैथुने युद्धे पिङ्गला सिद्धिदायिका ॥१२
उच्चाटमारणाद्येषु कर्मस्वेतेषु पिङ्गला ।
मैथुने चैव सग्रामे भोजने सिद्धिदायिका ॥१३
शोभनेषु च कार्य्येषु यात्राया विषकर्मणि ।
शान्तिमुक्त्यर्थसिद्धयै च इडा योज्या नराधिपे ॥१४
द्वाभ्याश्चैव प्रवाहे च क्रूरसौम्यविवर्जने ।
विपुव त तु जानीयात् सस्मरेत्तु विचक्षण ॥१५

वाम भाग मे स्थित सोम (च द्र) स्वरूपा कही गई है और दक्षिण भाग मे स्थित नाडी रवि के तुल्य होती है तथा मद मा क ल स्वरूपिणी अग्नि है जो फल देने वाला है। वामा अमृत रूप वाली होती है जो जगत् के आप्यायन करने म अर्थात् सतृप्त करने के काय क लिए स्थित होती है ॥६॥ दक्षिणा जो होती है वह रौद्र भाग से सदा इम जगत् का शोषण किया करती है। दोनो वे पार होने मे मृत्यु होती है जो कि समस्त कार्यों के विनाश करने वाली होती है। निगम करने म वामा होता है और प्रवेश करन म दक्षिणा बताई गई है। ॥१०॥ इडाचार मे जब सौम्य करे तथा च द्र सूयगत हो तब प्राणो के पिङ्गल सस्थित होने पर क्रूर कर्मों को करना चाहिए ॥११॥ यात्रा में, समस्त कार्यों में और विषा क अपहरण करने म इडा होती है तथा भोजन म मैथुन मे और युद्ध मे पिङ्गला नाडी सिद्धि क प्रदान करने वाली होती है ॥१२॥ उच्चाटन और मारण आदि कार्यों म पिङ्गला मैथुन सग्राम और भोजन मे सिद्धि प्रदायिनी होती है ॥१३॥ राजाओ के शोभन कार्यों में, यात्रा म विष कम मे शाति और उक्त अर्थो की सिद्धि के लिय इडा का योजन करना चाहिए। ॥१४॥ दोनो के प्रवाह म और क्रूर तथा सौम्य काय क विवजन में उसको विपुव जानना चाहिए तथा विचक्षण पुरुष को भली-भाँति स्मरण रखना चाहिए ॥१५॥

सौम्यादिशुभकार्य्येषु लाभादिजयजीविते ।
गमनागमने चैव वामा सर्वत्र पूजिता ॥१६
युद्धादौ भोजने घाते स्त्रीणाञ्चैव तु सगमे ।
प्रशस्ता दक्षिणा नाडी प्रवेशे क्षुद्रकर्मणि ॥१७
शुभाशुभानि कार्य्याणि लाभालाभौ जयाजयौ ।
जीवो जीवनायपृच्छेन्न सिध्यति च मध्यमा ।
वामाचारेऽथवा दक्षे प्रत्यये यत्र नायक. ॥१८
तनुस्थ पृच्छते यस्तु तत्र सिद्धिर्न सशय. ।
वंच्छन्दो वामदेवस्तु यदा वहति चात्मनि ।
तत्र भागे स्थित पृच्छेत् सिद्धिर्भवति निष्फला ॥१६
वामे वा दक्षिणे वापि यत्र सक्रमत शिवा ।
घोरे घोराणि कार्य्याणि सौम्ये वै मध्यमानि च ॥
प्रस्थिते भागतो हसे द्वास्या वै सर्ववाहिनी ॥२०
तदा मृत्यु विजानीयाद्योगी योगविशारद. ।
यत्र यत्र स्थित पृच्छेद्वामदक्षिणसमुख. ॥२१
तत्र तत्र सम दिश्याद्वातस्योदयन सदा ।
अग्रतो वामिका श्रेष्ठा पृष्ठतो दक्षिणा शुभा ।
यामेन वामिका प्रोक्ता दक्षिणे दक्षिणा शुभा ॥२२

सौम्य आदि शुभ कार्यों मे तथा लाभ आदि जय एवं जीवित में, गमन और आगमन मे सब जगह वामा ही पूजित होती है ॥१६॥ युद्ध आदि में, भोजन मे, घात मे तथा स्त्रियो के सङ्गम करने के कार्य में, प्रवेश करने में एव अन्य क्षुद्र कर्म मे दक्षिणा नाडी को प्रशस्त बताया गया है ॥१७॥ शुभ और अशुभ कार्य, लाभ–लाभ तथा अलाभ, जय और अजय एव जीव जीवन के लिये कभी कुछ भी न पूछे । वहां मध्यमा नाड़ी सिद्ध हुआ करती है । वामाचार में अथवा दक्षिणाचार में जिसमें नायक को विश्वास हो ॥१८॥ तनु मे स्थित होता हुआ जो पूछता है वहां पर सिद्धि अवश्य ही होती है—इसमे कुछ भी सशय नहीं है । जब आत्मा मे वेच्छन्द वामदेव वहन किया करता है उस

भाग मे स्थित होना हुआ पूछता है तो सम्पूर्ण सिद्धि फल रहित हो जाया करती है ॥१६॥ वाम भाग म अथवा दक्षिण भाग मे जहाँ पर शिवा सक्रमण किया करती हैं तो घोर मे घोर कार्य और सौम्य मे सौम्य कार्य करे। भाग मे हंस के प्रस्थित होने पर और दोनो से सर्व हानि हो तो उस समय मे योग वे महामन पी योगी को निश्चय ही मृत्यु जाननी चाहिए। जहा जहाँ पर वाम दक्षिण समुख स्थित होना हुआ पूछे वहाँ वहाँ पर सदा घात का उदयन सम बतावे। अग्र भाग मे वामिका श्रेष्ठ होती है और पृष्ठ भाग मे दक्षिणा सुभा हुआ करती है। वाम से वामिका कही गई है और दक्षिण मे दक्षिणा सुभ बताई गई है ॥२० स २२॥

जीवो जीवति जीवेन यच्छून्य तत् स्वरो भवेत् ।
यत्किञ्चित्कार्य्यमुद्दिष्ट जयादिशुभलक्षणम् ॥२३
तत्सर्वं पूर्णनाड्यान्तु जायते निर्विकल्पत ।
अन्यनाडयादिपर्य्यंत पक्षत्रयमुदाहृतम् ॥२४
यावत्पष्ठीन्तु पृच्छाया पूर्णाया प्रथमो जयेत् ।
रिक्तायान्तु द्वितीयस्तु कथयेत्तदशङ्कित ॥२५
वामाचारसमो वायुर्जायते कर्मसिद्धिद ।
प्रवृत्त दक्षिणे मार्गे विषमे विषमाक्षरम् ॥२६
अन्यत्र वामवाहे तु नाम वै विषमाक्षरम् ।
तदासौ जयमाप्नोति याध सग्राममध्यत ॥२७
दक्षवातप्रवाहे तु यदि नाम समाक्षरम् ।
जायते नात्र सदेहो नाडीमध्ये तु लक्षयेत् ॥२८
पिङ्गलान्तर्गते प्राणे शमनीयाहवङ्गयेत् ।
यावनाड्योदय चारस्ता दिश यावदापयेत् ॥२९
न दातु जायते सोऽपि नात्र कार्य्या विचारणा ।
अथ सग्राममध्ये तु यत्र नाडी सदा वहेत् ॥३०
सा दिशा जयमाप्नोति शून्ये भङ्ग विनिर्दिशेत् ।

जातनारे जय विद्यान्मृतके मृतमादिशेत् ।
जय पराजय चैव यो जानाति स पण्डित. ॥३१

जीव जीव से ही जीवित रहा करता है। जो शून्य है वह स्वर होता है। जय आदि का शुभ लक्षण वाला जो कुछ भी कार्य उद्दिष्ट होता है वह सभी निर्विकल्प रूप से पूर्ण नाडी मे होता है। अन्य नाडी आदि पर्यन्त तीन पक्ष बतलाये गये हैं ॥२३।२४॥ यहाँ तक पृच्छा मे पूर्णा मे प्रथम जय प्राप्त करता है और रिक्ता मे द्वितीय को अशङ्कित होता हुआ कह देवे ॥२५॥ वामाचार के समान वायु वर्म को सिद्धि देने वाली होती है। दक्षिण मार्ग के प्रवृत्त होने पर ही होता है। विषम होने से तो विषमाक्षर होता है ॥२६॥ अन्य स्थान में वाम वाह होने पर जो नाम विषम अक्षर वाला होता है तब यह योद्धा सग्राम के मध्य में जय की प्राप्ति किया करता है ॥२७॥ दक्ष वात के प्रवाह में यदि नाम मे सम अक्षर हो तो अवश्य ही होता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। नाडी के मध्य मे लक्षित करना चाहिये ॥२८॥ प्राण के पिङ्गला मे अन्तर्गत होने पर यामलोय युद्ध में जय प्राप्त करता है। जब तक नाडी का उदय हो तब तक चार होता है। जब तक उस दिशा को प्राप्त करे ॥२ ॥ इस विषय में कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिये। इसके अनन्तर सग्राम के मध्य मे जहाँ नाडी रुदा वहन करती है वही दिशा जय को प्राप्त होती है। शून्य होने पर भङ्ग का निर्देश होता है। जातचार में जय समझना चाहिए और मृतक में मृत का आदेश कर देना चाहिए। इस प्रकार से जय और पराजय को जो जानता है वह पण्डित होता है ॥३० ३१॥

वामे वा दक्षिणे वापि यत्र सञ्चरते शिवम् ।
कृत्वा तत्पादमाप्नोति यात्रा सन्तनशोभना ॥३२
शशिसूर्य्यप्रवाहे तु सति युद्ध समाचरेत् ।
तत्रस्थ. पृच्छते यस्तु स सायुर्जयते ध्र वम् ॥३३
सा दिश वहते वायुस्ता दिश यावदाजयेत् ।
जायते नात्र सन्देह इन्द्रो यद्यग्रत: स्थितः ॥३४

मेष्याद्या दश या नाड्यो दक्षिणा वामसंस्थिता ।
चरस्थिरद्विमार्गे ताभ्नादृशे तादृश क्रमात् ॥३५
निर्गमे निर्गम याति सग्रहे सग्रह विदु ।
पृच्छकस्य वच श्रुत्वा घण्टाकारेण लक्षयेत् ॥३६
वामे वा दक्षिणे वापि पञ्चतत्त्वस्थित शिवे ।
ऊर्ध्वेऽग्निरध आपश्च तिर्य्यक्सस्थः प्रभञ्जनः ।
मध्ये तु पृथिवी ज्ञेया नभ सर्वत्र सर्वदा ॥३७
ऊर्द्ध मृत्युरध शान्तिस्तिर्य्यक् चोच्चाटयेत्सुधी ।
मध्ये स्तम्भ विजानीयान्मोक्ष सर्वत्र सर्वगे ॥३८

वाम भाग मे अथवा दक्षिण भाग में जहाँ शिव सञ्चरण करते हैं वहाँ यह करके जो पाद को प्राप्त करता है वह यात्रा सन्तत शोभन अर्थात् अच्छी हुआ करती है ॥३२॥ चन्द्र और सूर्य क प्रवाह होने पर युद्ध करे। वहाँ पर स्थित जो पूछना है वह साधु निश्चय ही जय प्राप्त करता है अर्थात् विजयी होता है ॥३३॥ जिस दिशा को और वायु वहन करता है उस दिशा को तब तक निजय किया करता है। इसमे कुछ भी सन्देह नहीं है चाहे सामने इन्द्रदेव ही क्यो न खडे हों ॥३४॥ मेषी आदि जो दश नाडियाँ हैं जो कि दक्षिण एव वाम भाग मे स्थित हैं वे चर–स्थिर और द्विमार्ग में क्रम से वैसे में वैसा ही होता है। निर्गम मे निर्गम को प्राप्त करता है और सग्रह मे सग्रह जानना चाहिए। पृच्छक के वचन का श्रवण कर घण्टाकार से देखना चाहिए ॥३५॥३६॥ हे शिवे ! वाम भाग मे अथवा दक्षिण भाग मे पञ्च तत्त्व स्थित हैं। ऊर्ध्व भाग में अग्नि है, नीचे के भाग म जल है, तिर्यक् सस्थ वायु है, मध्य भाग में पृथ्वी तत्त्व है और आकाश सर्वदा सर्वत्र ही जानना चाहिए ॥३७॥ ऊर्ध्व मे मृत्यु है, अधोभाग मे शान्ति होती है–तिर्यक् मार्गो म उच्चाटन होता है–मध्य मे स्तम्भन जानना चाहिए और सर्वत्र सर्वग मे मोक्ष होता है ॥३८॥

३६—रत्नपरीक्षा—वज्रपरीक्षा

परीक्षा वच्मि रत्नाना वलो नामासुरोऽभवत् ।
इन्द्राद्या निर्जितास्तेन निर्जेतु तैर्न शक्यते ॥१

वरव्याजेन पशुता याचितः स सुरैर्मखे ।
बलो ददौ स्वपशुतामनिसत्वो मखे हृत ॥२
पशुवरप्रविशेस्स्तम्भे स्ववाक्यपाशनियन्त्रित ।
बलो लोकोपकाराय देवाना हितकाम्यया ॥३
तस्य सत्वविशुद्धस्य विशुद्धेन च कर्मणा ।
कायस्यावयवा सर्वे रत्नबीजत्वमाययु ॥४
देवानामथ यक्षाणा सिद्धाना पवनाशिनाम् ।
रत्नबीजमय ग्राह सुमहानभवत्तदा ॥५
तेषा तु पतता वेगाद्विमानेन विहायसा ।
यद्यत्पपात रत्नाना बीज क्वचन किञ्चन ॥६
महोदधौ सरिति वा पर्वते काननेऽपि वा ।
तत्तदाकरता यात स्थानमाधेयगौरवात् ॥७

सूतजी ने कहा—अब मैं रत्नों की परीक्षा बतलाता हूँ। बल नाम धारी एक असुर हुआ था। उसने इन्द्र आदि समस्त देवगणों को जीत लिया था और वह इनसे नहीं जीता जा सका था। १॥देवगणों के द्वारा यज्ञ में उस से वर के बहाने से पशुता की याचना की गई थी। बल ने अपने आपको पशुता प्राप्त करने के लिये दे दिया था और अत्यन्त सत्व वाला वह मख में मारा गया था ॥ २ ॥ अपने वचन रूपी पाश से नियन्त्रण में प्राप्त हुआ वह पशु के समान स्तम्भ में प्रवेश कर गया था। बल ने यह कार्य लोकों के उपकार के लिये और देवों के हित की कामना से ही किया था ॥३॥ सत्व से विशुद्ध उसके शरीर के समस्त अवयव रत्नों के बीजत्व को प्राप्त हो गये थे ॥४॥ इसके अनन्तर देवों के—यक्षों के—सिद्धों के और पवन के अशन करने वालों के रत्न *बीजमय ग्राह उस समय में सुमहान् हो गया था ॥५॥ आकाश मार्ग से विमान* के द्वारा उनके महान् वेग से गिरने वाले रत्नों का जो-जो भी कुछ बीज गिरा था वह समुद्र में, नदी में, पर्वत में अथवा कानन में स्थान एवं आधेय के गौरव से वहीं वह स्थान उसका आकर बन गया था ॥६॥७॥

तेषु रक्षो विषव्यालव्याधिघ्नान्यघहानि च ।
प्रादुर्भवन्ति रत्नानि तथैव विगुणानि च ॥८
वज्रमुक्ता नु मणय सपद्मरागा समरकता प्रोक्ता. ।
अपि चेन्द्रनीलमणिवरवैदूर्य्याश्च पुष्परागाश्च ॥९
कर्केतन सपुलक रुधिराख्यसमन्वित तथा स्फटिकम् ।
विद्रुममणिश्च यत्नादुद्दिष्ट सग्रहे तज्ज्ञै ॥१०
आकारवर्णौ प्रथम गुणदोषौ तत्फल परीक्ष्य च ।
मूल्यञ्च रत्नकुशलैर्विज्ञेय सर्वशास्त्राणाम् ॥११
कुलग्नेषूपजायन्ते यानि चोपहतेऽहनि ।
दोषैस्तानुपयुज्यन्त हीयन्ते गुणसम्पदा ॥१२
परीक्षापरिशुद्धाना रत्नाना पृथिवीभुजा ।
धारण सग्रहो वापि कार्य्यं श्रियमभीप्सता ॥१३
शास्त्रज्ञा कुशलाश्चापि रत्नभाज परीक्षका ।
त एव मूल्यमात्राया वेत्तार परिकीर्तिता ॥१४
महाप्रभाव विबुधैर्यस्माद्वज्रमुदाहृतम् ।
वज्रपूर्वा परीक्षेय ततोऽस्माभि प्रकीर्त्यते ॥१५

उनमें रत्न पैदा होते है और उनमे राक्षस विष—व्याल—व्याधियों के नाशक तथा अघो के हनन करने वाले भी उत्पन्न होते हैं तथा विगुण भी होते हैं ॥८॥ वज्र (हीरा), मुक्ता (मोती) पद्मराग, मरकत ये मणियाँ कही गई है । इन्द्र नीलमणि वैदूर्य पुष्पराग, कर्केतन सपुलक, रुधिराख्य समन्वित, स्फटिक, विद्रुम मणि इनके सग्रह म मणियो के ज्ञाताओ ने यत्न से कहा है ॥९ १०॥ सर्व मणियों के आकार और वर्ण फिर उनके गुण एव दोष तथा उनके फलो का परीक्षण करे । इसके पश्चात् सम्पूर्ण शास्त्रो के विद्वान् रत्नो की विद्या में परम कुशल लोगो से उनका मूल्य भी जानना चाहिए ॥११॥ बुरे लग्नो मे तथा उपहत दिन में जो रत्न उत्पन्न होते है वे दोषो से उपयुक्त हुआ करते हैं और गुणो की सम्पत्ति मे हीन होते हैं ॥१२॥ श्री की अभीप्सा रखने वाले पृथ्वी के स्वामी के द्वारा भली-भाँति परीक्षण करके परम परिशुद्ध

रत्नों का धारण करना या संग्रह करना चाहिए ॥१३॥ शास्त्रों के ज्ञाता और परम कुशल रत्नों के रखने वाले पुरुष ही इनकी परीक्षा करने वाले हुआ करते हैं और वे ही इन रत्नों की मूल्य मात्रा के जानने वाले बताये गये हैं ॥१४॥ विबुध लोगों ने महान् प्रभाव वाले वज्र (हीरा) को बतलाया है। यह वज्र परीक्षा सर्वप्रथम होती है जो कि इस समय में हमारे द्वारा परिकीर्तित की जाती है ॥१५॥

तस्यास्थिलेशो निपपात येषु भुवः प्रदेशेषु कथञ्चिदेव।
वज्राणि वज्रायुधनिर्जिगीषोर्भवन्ति नानाकृतिमन्ति तेषु ॥१६
हैममातङ्गसौराष्ट्रा पौण्ड्रकालिङ्गकोशलाः ।
वेण्वातटाः ससौवीरा वज्रस्याष्टविहारकाः ॥१७
आताम्रा हिमशैलजाश्च शशिभा वेण्वातटीयाः स्मृता
सौवीरे त्वसिताब्जमेघसदृशास्ताम्राश्च सौराष्ट्रजाः ।
कालिङ्गाः कनकावदातरुचिराः पीतप्रभाः कोशले
श्यामाः पुण्ड्रभवा मतङ्गविषये नात्यन्तपीतप्रभाः ॥१८
अत्यर्थं लघुवर्णतश्च गुणवत्पार्श्वेषु सम्यक्समम्
रेखाबिन्दुकलङ्ककाकपदकत्रासादिभिर्वर्जितम् ।
लोकेऽस्मिन्परमाणुमात्रमपि यद्वज्रं क्वचिद् दृश्यते ।
तस्मिन्देवसमाश्रया ध्रुवितया तीक्ष्णाग्रधारं यदि ॥१९
वज्रेषु वर्णयुक्त्या देवानामपि विग्रहः प्रोक्तः ।
वर्णेभ्यश्च विभागः कार्यो वर्णाश्रयादेव ॥२०
हरितश्वेतपीतपिङ्गश्यामताम्राः स्वभावतो रुचिराः ।
हरिवरुणशक्रहुतवहपितृपतिमरुतां स्वका वर्णाः ॥२१
विप्रस्य शङ्खकुमुदस्फटिकावदातः
स्यात्क्षत्रियस्य शशबभ्रुविलोचनाभः ॥
वैश्यस्य कान्तकदलीदलसन्निभाभः शूद्रस्य
धौतकरवालसमानदीप्तिः ॥२२

जिनमे भूमि के प्रदेशों मे किसी भी प्रकार से ही उसका अस्थिलेश गिर गया था उनमे वज्रायुध (इन्द्र) के त्रिदिशाप्त में अनेक आकृति वाले वज्र हुआ करते है ॥१६॥ हैम—मातङ्ग—सौराष्ट्र—पौण्ड्र—कालिङ्ग—कोशल—वेण्वातट—ससौवीर ये आठ वज्र के विहारक होते हैं ॥१७॥ हिमशैल मे समुत्पन्न वज्र (हीरा) थोडे से ताम्र वर्ण वाले हुआ करते हैं। वेण्वातटीय वज्र चन्द्रमा की सी आभा म युक्त होते हैं। सौवीर वज्र असिताब्ज एव मेघ के सदृश हुआ करते है। जो सौराष्ट्र मे समुत्पन्न वज्र होते हैं वे ताम्र वर्ण के हुआ करते है कालिङ्ग वज्र कनक के समान अवदात एव रुचिर होते हैं। कोशल देश मे उत्पन्न हुए वज्र पीत वर्ण की प्रभा से समन्वित होते हैं। पुण्ड मे जिनकी उत्पत्ति होती है वे श्याम होते हैं। मतङ्ग मे प्रभव होने वाले अत्यन्त पीत वर्णों की प्रभा से युक्त नही होते हैं ॥१८॥ बहुत ही अधिक लघु वर्ण से युक्त गुण वाला वज्र होता है जिसके पार्श्व भागो मे भली-भाँति समान रेखा—बिन्दु—कलङ्क—काक—पदक और त्रासादि से जो रहित होता है। ऐसा वज्र इस लोक मे कही पर एक परमाणु के बराबर भी दिखलाई देता है और यदि अग्रधारा जिसमे तीक्ष्ण हो तो निश्चय ही उसमे देवो का समाश्रय होता है। यह पूर्णतया सत्य बात है ॥१९॥ वज्रो मे वर्णों की युक्ति से देवो का भी विग्रह बतलाया गया है। वर्णों के आश्रय स ही वर्णों से विभाग करना चाहिए ॥२०॥ हरित्—श्वेत—पीत—पिङ्ग—श्याम और ताम्र ये वर्ण सभी स्वाभाविक रूप से ही रुचिर हुआ करते हैं। ये वर्ण हरि—वरुण—इन्द्र—अग्नि—पितृपति और मरुत् देवो के अपने वर्ण होते हैं ॥२१॥ विप्रका वर्ण शङ्ख कुमुद और स्फटिक के समान अवदात होता है। क्षत्रिय का वर्ण शश बभ्रु और विलोचन के सदृश आभा वाला होता है। वैश्य का वर्ण कान्त कदली (केला) के दल के तुल्य होता है और शूद्र का वर्ण धौत करवाल के सदृश दीप्ति से युक्त हुआ करता है ॥२२॥

द्वौ वज्रवर्णौ पृथिवीपतीना सद्भि प्रदिष्टौ न तु सार्वजन्यौ।
य स्याज्जवाविद्रुमभङ्गशोणो यो वा हरिद्रारससन्निकाश ।२३

ईशत्वात्सर्ववर्णानां गुणवत्सार्ववर्णिकम् ।
कामतो धारयेद्राजा न त्वन्योऽन्यः कथञ्चन ॥२४
अधरोत्तरवृत्तो हि यादृक्स्याद्वर्णसङ्कर ।
ततः कष्टतरो वज्रो वर्णानां सङ्करो मतः ॥२५
न च मार्गविभागमात्रवृत्त्या विदुषा वज्रपरिग्रहो विधेय ।
गुणवद्गुणसम्पदां विभूतिर्विपरीतो व्यसनोदयस्य हेतु ॥२६
एकमपि यस्य शृङ्गं विदलितमवलोक्यते विशीर्णं वा ।
गुणवदपि तन्न धार्यं श्रेयार्थिभिर्भवने ॥२७
स्फुटिताग्निविशीर्णशृङ्गदेशं मलवर्णैं पृषतैर्व्यपेतमध्यम् ।
न हि वज्रभृतोऽपि वज्रमाशु श्रियमन्याश्रयलालसां न कुर्यात् २८
यस्यैकदेशः क्षतजावभासो यद्वा भवेल्लोहितवर्णचित्रम् ।
न तत्र कुर्याद् ह्रियमाणमाशु स्वच्छन्दमृत्योरपि जीवितान्तम् ॥२९

वज्र के दो वर्ण पृथिवी पतियों के लिये सत्पुरुषों ने बतलाये हैं और ये वर्ण सब साधारण पुरुषों के लिये नहीं कहे गये हैं। एक वर्ण तो वह होता है जो जवा विद्रुम के भङ्ग के समान लाल हो और दूसरा इसके विकल्प में हरिद्रा के रस के समान होता है ॥२३॥ समस्त वर्णों का स्वामी होने के कारण सभी वर्णों के गुणों से वह युक्त होता है। इसलिये स्वेच्छा से राजा धारण कर सकता है किन्तु राजा के अतिरिक्त अन्य कोई भी वर्ण वाला किसी भी प्रकार से धारण न करे ॥२४॥ अधरोत्तर वृत्त वाला जैसा कि वर्णों की सङ्करता वाला हो। उसमें वज्र रखने या धारण करने वाला कष्टतर होता है। ऐसा वर्णों का सङ्कर माना गया है ॥२५॥ मार्ग के विभाग मात्र की वृत्ति से ही विद्वान् पुरुष को वज्र का परिग्रह कभी नहीं करना चाहिए। जो गुणों से समन्वित वज्र होता है वह गुण और सम्पद श्री की विभूति होता है। इसके विपरीत वज्र व्यसनों (कष्टों) के उदय का कारण हुआ करता है ॥२६॥ जिस वज्र का एक भी शृङ्ग दिदलित अथवा विशीर्ण यदि दिखलाई देता है तो चाहे अन्य गुणों से युक्त भी क्यों न हो उसे श्रेय के चाहने वाले पुरुषों को भवन में कभी धारण नहीं करना चाहिए ॥२७। स्फुटित अग्नि के सदृश

विदीर्ण जिस हीरा का शृङ्ग देश हो और मल वर्ण वाले पृषतों (बिन्दु रेखा) से मध्य भाग न्यपेत हो—ऐसा वज्र के धारण करने वाले का यह वज्र शीघ्र श्री नहीं करता है और उसे मन्याश्रय की लालसा भी नहीं करनी चाहिए। ॥२८॥ जिसका एक भाग क्षतजा के समान अब भासित होता है अथवा लोहित वर्ण से चिन्हित सा हो उसे शीघ्रता से ग्रहण नहीं करना चाहिए क्योंकि वह स्वच्छन्द मृत्यु के भी जो व्रत का अन्त करने वाला होता है ॥२९॥

कोटय पार्श्वानि धाराश्च षड्ष्टौ द्वादशेति च ।
उत्तुङ्गसमतीक्ष्णाग्रा वज्रस्याकरजा गुणा ॥३०
षट्कोटिशुद्धममल स्फुटतीक्ष्णधार
वर्णान्वित लघु सुपार्श्व मपेतदोषम् ।
इन्द्रायुधांशुविसृतिच्छुरितान्तरिक्षमेव विध
भुवि भवेत्सुलभ न वज्रम् ॥३१
तीक्ष्णाग्र विमलमपेतसर्वदोष धत्ते य प्रयततनु सदैव वज्रम् ।
वृद्धिस्त प्रतिदिनमेति यावदायु स्त्रीसम्पत्सुतधनधान्यगोपशूनाम् ।३२
व्यालवह्निविषव्याघ्रतस्कराम्बुभयानि च ।
दूरात्तस्य निवर्त्तन्ते कर्माण्याथर्वणानि च ॥३३
यदि वज्रमपेतसर्वदोष विभृयात्तण्डुलविंशति गुरुत्वे ।
मणिशास्त्रविदो वदन्ति तस्य द्विगुण रूपलक्षणमग्रमूल्यम् ॥३४
त्रिभागहीनार्द्ध तदर्द्ध शेष नयादश निशदतोऽर्द्ध भाग ।
अशीतिभागोऽथ शताशभाग सहस्रभागोऽल्पममानयोग ॥३५
यत्तण्डुलैर्द्वादशभि कृतस्य वज्रस्य मूल्य प्रथम प्रविष्टम् ।
द्वाभ्या क्रमाद्धानिमुपागतस्य त्वेकावमानस्य विनिश्चयोऽयम् ।३६

जिस वज्र की कोटियाँ, पार्श्व भाग और धाराऐ छै-आठ तथा बारह हो तथा उत्तुङ्ग—सम और तीक्ष्ण अग्रवाली हो य हीरे के आकर (खान) में उत्पन्न होने वाले गुण हुआ करते हैं ॥३०॥ छै कोटियों से युक्त—शुद्ध—अमल—स्फुट एव तीक्ष्ण धाराओ वाला—वर्ण से युक्त—लघु—अच्छे पार्श्व भागो वाला—सम्पूर्ण दोषो से रहित और इन्द्रायुध की किरणो की विभूति से

छुरित अन्तरिक्ष वाला इस प्रकार का वज्र (हीरा) इस भूलोक में सुलभ नहीं हुआ करता है ॥३१॥ तीक्ष्ण अग्रभाग से समन्वित—बिना मल वाला—समस्त दोषों से विवर्जित वज्र को जो कोई प्रयत शरीर वाला सर्वदा धारण किया करता है उसकी आये दिन वृद्धि होती है और जब तक जीवित रहता है उसे स्त्री—धन—सुत धन—धान्य—गो और पशुओं का पूर्ण सुख रहता है। ॥३२॥ उस पुरुष से व्याल (सर्प)—अग्नि—विष—व्याघ्र—तस्कर और जल के भय तथा आथर्वण कर्म अर्थात् मारणोच्चाटनादि कर्म दूर से ही निवृत्त हो जाया करते हैं ॥३३॥ यदि ऐसा वज्र अर्थात् हीरा जो सब प्रकार के दोषों से रहित हो और बीस तण्डुल (चावल) के बराबर गुरुत्व वाला हो उसे कोई पुरुष धारण करता है तो मणि शास्त्र के विद्वान् लोग उसका त्रिगुण रूप लक्षण और अग्र मूल्य कहा करते हैं ॥३४॥ विभाग होने का अर्थ और उसका अर्धच्छेद, त्र्यंशोदन, तीसरा अंश भाग, अशीति भाग, शताश भाग, सहस्र भाग इसका समान योग होता है ॥३५॥ बहुत बारह के द्वारा किया वज्र का मूल्य प्रथम ही बताया गया है। क्रम से दश के द्वारा हानि की उपागत एकाव मान का यह विनिश्चय होता है ॥३६॥

न चापि तण्डुलैरेव वज्राणां धारणाक्रम ।
अष्टाभि सर्षपैगौरैस्तण्डुलं परिकल्पयेत् ॥३७
यत्तु सर्वगुणैर्युक्तं वज्रं तरति वारिणि ।
रत्नवर्गे समस्तेऽपि तस्य धारणमिष्यते ॥३८
अल्पेनापि हि दोषेण लक्ष्यानक्षेण दूषितम् ।
स्वमूल्याद्दशमं भागं वज्रं लभति मानव. ॥३९
प्रकटानेकदोषस्य स्वल्पस्य महतोऽपि वा ।
स्वमूल्याच्छतशो भागो वज्रस्य न विधीयते ॥४०
स्पृष्टदोषमलङ्कारे वज्रं यद्यपि दृश्यते ।
रत्नानां परियत्स्वार्थं मूल्यं तस्य भवेल्लघु ॥४१

केवल ताण्डुलों (चावल) से ही जो गुरुत्व पहिले बताया गया है यही इस वज्र (हीरा) के धारण का क्रम नहीं होता है। बल्कि आठ सफेद सरसों

से उस तण्डुल की परिकल्पना कर लेनी चाहिए ॥३७॥ जो समस्त गुणों से युक्त वज्र जल में तैर जाया करता है और सम्पूर्ण रङ्ग वर्णों के होने पर भी उसका धारण करना अभीष्ट होता है ॥३८॥ लक्ष्य और अलक्ष्य अल्प दोष से भी दूषित अपना मूल्य से दशम भाग जहाँ प्राप्त करता है तथा प्रकट अनेक दोषों वाले छोटे अथवा बड़े का अपने मूल्य से सौवाँ भाग पक्ष का नहीं होता है ॥३९।४०॥ दोषों से स्पृष्ट वज्र यद्यपि सम्बन्धों में दिखलाई दिया करता है। किन्तु रत्नों के परिकल्पित मूल्य में उसका मूल्य थोड़ा ही होता है ॥४१॥

प्रथम गुणसम्पदाभ्युपेत प्रतिबद्धं समुपैति यच्च दोषम् ।
अलमाभरणेन तस्य राज्ञो गुणहीनाऽपि मणिर्न भूषणाय ॥४२
नार्य्या वज्रमधार्य्यं गुणवदपि सुतप्रसूतिमिच्छन्त्या ।
अन्यत्र दीर्घचिपटहस्वाद् गुणैर्विमुक्ताच्च ॥४३
अयसा पुष्परागेण तथा गोमेदकेन च ।
वैदूर्य्यस्फटिकाभ्याञ्च काचैश्चापि पृथग्विधैः ॥४४
प्रतिरूपाणि कुर्वन्ति वज्रस्य कुशला जनाः ।
परीक्षा तेषु कर्त्तव्या विद्वद्भिः सुपरीक्षकैः ।
क्षारोल्लेखनशालाभिस्तेषां कार्य्यं परीक्षणम् ॥४५
पृथिव्यां यानि रत्नानि ये चान्ये लोहधातवः ।
सर्वाणि विलिखेद्वज्रं तच्च तैर्न विलिख्यते ॥४६
गुरुता सर्वरत्नानां गौरवाधारकारणम् ।
वज्रे तां वैरीत्येन सूरयः परिचक्षते ॥४७
जातिरजाति विलिखन्ति वज्रकार्यविन्दाः ।
वज्रं वज्रं विलिखति नान्येन विलिख्यते वज्रम् ॥४८
वज्राणि मुक्तामणयो ये च केचन जातयः ।
न तेषां प्रतिबद्धानां भा भवत्यूर्ध्वगामिनी ॥४९
तिर्य्यक्क्षततत्वात्केषाञ्चित्कथञ्चिद्यदि दृश्यते ।
तिर्य्यगालिप्यमानानां सा पार्श्वेषु विहन्यते ॥५०

यद्यपि विशीर्णकोटि म बिन्दुरेखान्वितो विवर्णो वा ।
तदपि धनधान्य पुत्रान्करोति सेन्द्रायुधो वज्र ॥५१
सौदामिनीविस्फुरिताभिराम राजा यथोक्त कुलिश दधान ।
पराक्रमाक्रान्तपरप्रताप समस्तमामन्तभुव भुनक्ति ॥५२

सर्व प्रथम गुणो की सम्पदा से जो युक्त हो उसको ही ग्रहण करना उचित है । जहाँ पर दोष दिखाई देता हो उस वज्र को राजा के द्वारा आभरण के स्वरूप मे धारण नही करना चाहिए क्योंकि गुणों से हीन मणि कभी भी भूषण के लिये उपयुक्त नही हुआ करता है ॥४२॥ पुत्र के प्रसव की इच्छा वाली नारी को गुणों स युक्त ही वज्र को धारण करना चाहिए । अन्यत्र दीर्घ विपिट (चम्पल) के समान ह्रस्व और गुणो से विमुक्त अलङ्करण किया जाता है ॥४३॥ अय (लोह)—पुष्पराग—गोमेदक—वैडूर्य—स्फटक और पृथक् प्रकार के कांचो के द्वारा कुशल पुरुष वज्र के प्रतिरूप अर्थात् इमिटेशन (नकली हीरा) किया करते हैं । अतएव भली भाँति परीक्षा करने वाले रत्नशास्त्र के विद्वानो को इसका परीक्षण (जाँच) कर लेनी चाहिए । क्षारोल्लेखनशालाओं के द्वारा परीक्षण कार्य करना चाहिए ॥४४।४५॥ पृथिवी मण्डल मे जितने रत्न हैं और अन्य जो लोह धातुएं हैं वे सब वज्र के द्वारा विलिखित होते हैं किन्तु उनमें किसी के भी द्वारा वज्र विलिखित नही हुआ करता है ॥४६॥ समस्त रत्नो मे वज्र की गुरुता होती है । इस गौरव के आधार का कारण भी होता है । सूरि वृन्द वज्र मे अन्य सबसे विपरीत धर्मता बताते हैं । ॥४७॥ वज्र को कुरुविन्द आदि सजाति को विलिखित करते हैं । वज्र के द्वारा ही वज्र विलिखित होता है । अन्य किसी के भी द्वारा वज्र विलिखित नही किया जाता है ॥४८॥ वज्र—मुक्तामणि जो कोई भी जातियां हैं उनके प्रतिबद्ध करने पर उनकी भी ऊर्ध्वगामिनी नहीं होती है ॥४६॥ तिर्यक् (तिरछा) क्षत होने से यदि कुछ भी किसी प्रकार से दिखलाई देती है तो तिर्यक् आलिम्य मानों से वह पार्श्वों मे विहन्यमान हो जाता है ॥५०॥ यद्यपि विशीर्ण कोटियो वाला—बिन्दु रेखा से युक्त अथवा विवर्ण हो तोभी सेन्द्रायुध वज्र धन-धान्य और पुत्रों के करने वाला होता है । सौदामिनी (विद्युत्) की विस्फुरित से

समान सुन्दर विस्फुरण वाला हीरा को जैसा कि बताया गया है, धारण करने वाला राजा पराक्रम से आक्रान्त पर प्रभाव वाला सम्पूर्ण साथ तो श्री भू का उपभोग किया करता है ।।२१।५२।।

३८—मुक्ता परीक्षा

द्विपेन्द्रजीमूतवराहशङ्खमत्स्याहिशुक्त्युद्भववेणुजानि ।
मुक्ताफलानि प्रथितानि लोके तेषाञ्च शुक्त्युद्भवमेव भूरि ।।१
तत्रैव चैकस्य हि मूलमात्रा निविश्यते रत्नपरस्य जातु ।
वेध्यन्तु शुक्त्युद्भवमेव तेषां शेषाण्यवेध्यानि वदन्ति तज्ज्ञाः ।।२
त्वक्सारनागेन्द्रतिमिप्रसूतं यच्छङ्खजं यच्च वराहजातम् ।
प्रायोविक्तानि भवन्ति भासा शस्तानि माङ्गल्यतया तथापि ।।३
या मौक्तिकानामिह जातयोऽष्टौ प्रकीर्तिता रत्नविनिश्चयज्ञैः ।
वम्बुद्भवं तदधमं प्रदिष्टमुत्पद्यते यच्च गजेन्द्रकुम्भात् ।।४
स्वयानिमध्यच्छवितुल्यवर्णं शाङ्खं बृहत्कोणपलप्रमाणम् ।
उत्पद्यते वारणकुम्भमध्यादापीतवर्णं प्रभया विहीनम् ।।५
ये कम्बवः शाङ्खमुखावमपपीतस्य शङ्खप्रवरस्य गोत्रे ।
मतङ्गजाश्चापि विशुद्धवंश्यास्त मौक्तिकानां प्रभवा प्रदिष्टा ।
उत्पद्यते मौक्तिकमेषु वृत्तमापीतवर्णं प्रभया विहीनम् ।।६
पाठीनपृष्ठस्य समानवर्णं मीनात् सुवृत्तं लघु चातिसूक्ष्मम् ।
उत्पद्यते वारिचराननेषु मत्स्याश्च ते मध्यचरा पयोधेः ।।७

सूतजी ने कहा—मुक्ताफल अर्थात् मोती द्विपेन्द्र—जीमूत—वराह—शङ्ख—मत्स्य—अहि (सर्प) और शुक्ति से उत्पन्न तथा वेणु से जन्म ग्रहण करने वाले प्रसिद्ध हैं। उन सबमें संसार में शुक्तियों (सीपों) से उद्भव प्राप्त करने वाले मोती ही अधिक हैं ।।१।। उनमें रत्न पर एक की ही मूल मात्रा विनिवेशित की जाती है। जो सीप से समुत्पन्न मोती होते हैं उन सबमें वे ही मोती विद्ध हुआ करते हैं बाकी अन्य प्रकार से समुत्पन्न मुक्ताओं को इस शास्त्र के ज्ञाता लोग अवेध्य ही बतलाते हैं ।।२।। त्वक्सार नागेन्द्र (हाथी) तिमि (रोहू

मछली) से समुत्पन्न मोती और जो शङ्ख मे उद्भूत मोती तथा वराह से उत्पन्न होने वाला मुक्ता ये प्राय भा से विमुक्त ही होते हैं तो भी माङ्गल्यता से इनको प्रशस्त कहा जाता है ॥३॥ रत्नो के विशेष निश्चय करने के ज्ञान को रखने वाले विद्वानो ने जो मौक्तिको की आठ जातियाँ बतलाई हैं उन सबमें शङ्ख से समुत्पन्न मोती प्रथम प्रकार का बताया गया है। जो मुक्ता गजेन्द्र के कुम्भ स्थल से उत्पन्न होता है वह अपनी यानि के मध्य भाग की छवि के तुल्य वर्ण वाला होता है। शङ्ख म समुत्पन्न मोती जो है वह बृहत्कोल फल के बराबर होता है। हाथी के कुम्भ स्थल के मध्य से जो मुक्ता उत्पन्न होता है वह थोडा-सा पीत वर्ण का और प्रभा म रहित होता है ॥४।५॥ जो कम्बु से उत्पन्न होने वाले मोती हैं वे शङ्ख मुखावमपपीत शङ्खो म थेठ के गोल मे हुमा करते हैं। मतङ्ग (हाथी) से उत्पन्न भी विशुद्ध वश म होने वाले मुक्ता होते हैं। ये मौक्तिको की उत्पत्तियाँ बतला दी गई है। इनमे जो मोती उत्पन्न होता है वह वृत्ताकार वाला—थोडी सी पीतिमा वाला और प्रभा म उत्पन्न होता है ॥६॥ मीन से जो मोती उत्पन्न होता है वह मत्स्य और पाठीन (मछली) की पीठ के समान वर्ण वाला—लघु और अत्यन्त सूक्ष्म हुआ करता है। जलचरों के मुखो मे वह मोती उत्पन्न होता है। व मछलियाँ समुद्र के मध्य मे विचरण करने वाली हुआ करती हैं ॥७॥

वराहदंष्ट्राप्रभव प्रदिष्ट तस्यैव दंष्ट्राङ्कुरतुल्यवर्णम् ।
क्वचित् कथञ्चित् स भुव प्रदेशे प्रजायते शूकरवद्विशिष्ट ॥८
वर्षोपलाना समवर्णशोभ त्वक्सारपर्वप्रभव प्रदिष्टम् ।
ते वेणवो भव्यजनोपभोग्ये स्थाने प्ररोहन्ति न सार्वजन्ये ॥९
भौजङ्गम मीनविशुद्धवृत्त सस्थानताऽत्युज्ज्वलवर्णशोभम् ।
नितान्तधौतप्रविकल्पमाननिस्त्रिंशधारासमकर्णकान्ति ॥१०
प्राप्यानि रत्नानि महाप्रभाणि राज्य श्रिय वा महती दुरापाम् ।
तेजोऽन्विता पुण्यकृतो भवन्ति मुक्ताफलस्याहिशिरोभवस्य ॥११
जिज्ञासया रत्नधन विधिज्ञै शुभे मुहूर्ते प्रयतै. प्रयत्नात् ।
रक्षाविधान सुमहद्विधाय हर्म्योपरिष्ठ क्रियते यदा तद् ॥१२

तदा महादुन्दुभिमन्द्रघोषैर्विद्युल्लताविस्फुरितान्तराले; ।
पयोधरकान्तिविलम्बिनम्रैर्घनैर्घनैराश्रियतेऽन्तरिक्षम् ॥१३
न त भुजङ्गा न तु यातुधाना न व्याधयो नाप्युपसर्गदोषा. ।
हिंसन्ति यस्या हि शिर समुत्थ मुक्ताफल तिष्ठति कोपमध्ये ॥१४

वराह (शूकर) की दाढ से उत्पन्न मोती उसी की दाढ के अकुर के समान वर्ण वाला बताया गया है । कही पर किसी प्रकार से भूमण्डल के भाग मे वह शूकर की भाँति विशिष्ट उत्पन्न हुआ करता है ।।८।। वर्षा के उपलो के समान वर्षा की शोभा वाला बाँस के पर्व से प्रभव होने वाला मोती बताया गया है । वे बाँस भी सर्वसाधारण मनुष्यो के उपभोग मे आने वाले स्थान में नही हुआ करते हैं जिनके पर्वो से मोती होते हैं बल्कि परम भव्य जनों के उपभोग्य स्थान मे ही ऐसे बाँस होते हैं ।।९।। जो सर्प से उत्पन्न होने वाला मुक्ता होता है वह मीन के समान विशुद्ध वृत्त वाला होता है और सस्थान से अत्यत उज्ज्वल वर्ण की शोभा से सम्पन्न होता है । यह बहुत ही धौत और प्रविकल्पमान वज्र की धारा के तुल्य वर्ण तथा कान्तिमान् हुआ करता है ।।१०।। समस्त रत्नो को अतिक्रमण कर देने वाले ऐसे महा प्रभा मे युक्त रत्नो को प्राप्त करके राज्य और बहुत ही दुर्लभ श्री को मानव प्राप्त कर लेते हैं । सर्प के शिर मे उत्पन्न मुक्ताफल अर्थात् मणि का ऐसा अद्भुत प्रभाव होता है कि मनुष्य तेज से युक्त और परम पुण्यधारी हो जाते हैं ।।११।। ऐसे रत्न धन को प्राप्त करने के लिये बडी ही जिज्ञासा होती है और विधि के जानने वाले किसी शुभ मुहूर्त मे प्रयत्नो से युक्त होकर प्रयत्न हुआ करते है । ये लोग अपनी सुरक्षा का बडा भारी विधान पहिले कर लेते हैं जो कि हर्म्य के ऊपर उस समय में किया जाता है उस समय मे विशाल दुन्दुभियों के मन्द्र ध्वनियो से युक्त—बिजली की चमक से आकाश का अन्तराल परिपूर्ण होता है तथा पयोधरो की आकान्ति से नीचे झुके हुए एव नम्र घने मेघो से आकाश आच्छिन्न होता है ।।१२।।१३।। जिस पुरुष के कोष के मध्य मे सूर्य के शिर से समुत्पन्न मणि रहा करती है उसे भुजङ्ग—यातुधान—व्याधियाँ और अन्य कोई भी उपसर्ग दोष हिंसित नहीं किया करते हैं ।।१४।।

नाभ्येति मेघप्रभम धरित्री वियद्गतं तद्विबुधा हरन्ति ।
अचि प्रभावावृतदिग्विभागमादित्यवद् दु सविभाव्यबिम्बम् ।१५
तेजस्तिरस्कृत्य हुताशनेन्दुनक्षत्रताराप्रभवं समग्रम् ।
दिवा यथा दीप्तिकर तथैव तमोऽप्यगाढास्वपि तन्निशासु ॥१६
विचित्ररत्नद्युतिचारुतोया चतुःसमुद्रा भवनाभिरामा ।
मूल्यं न वा स्यादिति निश्चयो मे कृत्स्ना मही तस्य सुवर्णपूर्णा ।१७
हीनोऽपि यस्तल्लभते कदाचिद्विपाकयोगान्महतः शुभस्य ।
सापत्यहीना स मही समग्रा भुनक्ति तत्तिष्ठति यावदेव ॥१८
न केवलं तच्छुभकृन्नृपस्य भाग्यैः प्रजानामपि तस्य जन्म ।
तद्योजनानां परितः सहस्रं सर्वानिनर्थान् विमुखीकरोति ॥१९
नक्षत्रमालेव दिवो विशीर्णा दन्तावली तस्य महासुरस्य ।
विचित्रवर्णेषु विशुद्धवर्णा पयःसु पत्युः पयसां पपात ।।२०
सम्पूर्णचन्द्रांशुकलापकान्तेर्मणिप्रवेकस्य महागुणस्य ।
तच्छुक्तिमत्सु स्थितिमाप बीजमासन् पुराऽन्यत्र भवानि यानि ।२१

मेघ से समुत्पन्न मौक्तिक इस धरित्री तल तक आ नहीं पाता है। उसे तो देवगण आकाश में ही हरण कर लिया करते हैं। जिसकी अर्चियों की प्रभा से समस्त दिशाओं के भाग आवृत्त हुआ करते हैं। वह सूर्य के समान बड़े कष्ट से देखने के योग्य बिम्ब वाला होता है ॥१५॥ इसके तेज से अग्नि-चन्द्र-नक्षत्र ताराओं से उत्पन्न समस्त तेज भी तिरस्कृत हो जाया करता है। अन्धकार से परिपूर्ण रात्रियों में भी दिन के समान दीप्ति करने वाला हुआ करता है ॥१६॥ विविध रत्नों की द्युति से सुन्दर जल वाले भवनों में परम अभिराम चारों समुद्रों वाली और सुवर्ण से भरी पूरी यह सम्पूर्ण मही भी इस रत्न की मूल्य नहीं हो सकती है ऐसा मेरा पूर्ण निश्चय है ॥१७॥ यदि कोई हीन पुरुष भी किसी समय किसी महान् शुभ कर्म के विपाक के योग से इस महा दुर्लभ रत्न को प्राप्त कर लेता है तो वह फिर सम्पत्ति भाव से रहित इस समग्र भूमण्डल को जब तक भी यही रहता है भोगा करता है ॥१८॥ वह केवल राजा के ही शुभ करने वाला नहीं होता है बल्कि प्रजाओं के भाग्य से भी उसका जन्म

हुआ करता है। उसका ऐसा अद्भुत प्रभाव होता है कि चारों ओर सहस्रों योजन तक समस्त अनर्थों को दूर भगा दिया करता है ॥१६॥ उस महासुर की दन्तावलि आकाश में नक्षत्रों की माला के समान विशीर्ण हुई है। विविध वर्ण वाले जल के स्वामी के जल में विशुद्ध वर्ण वालो वह गिरी थी ॥२०॥ सम्पूर्ण चन्द्र के अंशु कलाप के समान कान्ति वाले—महान् गुणों से समन्वित मणियाँ में श्रेष्ठ कि बीजने शुक्ति वाला में स्थिति प्राप्त की थी पहिले भी जो मध्य भवन थे ।२१॥

यस्मिन्प्रदेशेऽम्बुनिधौ पपात सुचारुमुक्तामणिरत्नबीजम् ।
तस्मिन्पयस्तायधरावकीर्णं शुक्तौ स्थितं मौक्तिकतामवाप ॥२२
सहुलिकपारलौकिकसौराष्ट्रिकताम्रवर्णपारशवा ।
कौबेरपाण्ड्यहाटकहमका इत्याकरास्त्वष्टौ ॥२३
शुक्त युद्भवं नाति निकृष्टवर्णं प्रमाणसंस्थानगुणप्रभाभिः ।
उत्पद्यते वर्द्धनपारसीकपाषाणलताकान्तिसहलेषु ॥२४
चिन्त्या न तस्याकरजा विशेषा रूपे प्रमाणे च यतेत विद्वान् ।
न च व्यवस्थास्ति गुणागुणेषु सर्वत्र सर्वाकृतया भवन्ति ॥२५
एकस्य शुक्तिप्रभवस्य मुक्ताफलस्य शास्त्रेण समन्वितस्य ।
मूल्यं सहस्राणि तु रूपकाणां त्रिभिः शतैरप्यधिकानि पञ्च ।२६
यन्माषकार्द्धेन ततो विहीनं ततस्त्रिभागद्वयहीनमूल्यम् ।
यन्माषकास्त्रीन् बिभृयात्सहस्रे द्वे तस्य मूल्यं परमं प्रदिष्टम् ।२७
अर्द्धाधिकौ द्वौ वहतोऽस्य मूल्यं त्रिभिः शतैरप्यधिकं सहस्रम् ।
द्विमाषकोन्मापितगौरवस्य शतानि चाष्टौ कथितानि मूल्यम् ।२८

जिस प्रदेश में अम्बुनिधि में सुचारु मुक्तामणि का रत्न बीज गिरा था उसमें जल के नीचे के नग में बिखरी हुई जो शुक्ति (सीप) थी उसमें वह बीज स्थित होता हुआ मौक्तिक के स्वरूप को प्राप्त हो गया था ॥२२॥ उसके सैंहलिक, पारलौकिक, सौराष्ट्रिक, ताम्रवर्ण, पारशव, कौबेर, पाण्ड्य हाटक, हेमक ये आठ आकर हैं ॥२३॥ शुक्ति में समुत्पन्न मोती प्रमाण, संस्थान, गुण और प्रभा से अति निकृष्ट वर्ण वाला नहीं होता है। यह वर्द्धन पारसीक पाषाण

सोपानतर निहरो मे उत्पन्न होता है ॥२४॥ उनके आकार में उत्पन्न होने वाली विशेषताओं का कोई चिन्तन नहीं करना चाहिए बल्कि विद्वान् पुरुष को उसके रूप और प्रमाण मे ही यत्न करना चाहिए। इनके गुण और अगुणों की कोई विशेष व्यवस्था नहीं की गई है क्योंकि सभी जगह सब प्रकार की आकृति वाले हुआ करते हैं ॥२५॥ शुक्ति मे समुत्पन्न एक मोती जब शाण मे समुन्मित हो जावे तो उसका तीन और पाँच सौ से अधिक महस्रो रूपय मूल्य होता है ॥२६॥ जो एक उर्द के अर्ध भाग के बराबर हो या इससे भी कम हो तो वह उसके पञ्चमाग दूर से होन मूल्य वाला होता है। जो तीन मापकों के बराबर होता है उसका मूल्य दो महस्र कहा होता है—ऐसा बताया गया है ॥२७॥ दो अर्ध अधिक वहन करने वाले इसका मूल्य एक सहस्र से तीन सौ अधिक हुआ करता है। दो मापक और उन्मापन से गौरव युक्त का मूल्य आठ सौ से अधिक कहा गया है ॥२८॥

अर्द्धाधिक मापकमुन्मितस्य सपञ्चत्रिंशत्त्रितय शतानाम् ।
गुञ्जाश्च षड् धारयत शते द्वे मूल्य पर तस्य वदन्ति तज्ज्ञा ।
अध्यर्द्धमुन्मापकुन शत स्यान्मूल्य गुणैस्तस्य समन्वितस्य ॥२९
यदि षोडशभिर्भवदतूल धरण तत्प्रवदन्ति दार्विकास्यम् ।
अधिक दशभि शतश्च मूल्य समाप्नोत्यपि वालिशस्य हस्तात् ।३०
द्विगुणंदशभिर्भवेदनून धरण तद्भवक वदन्ति तज्ज्ञा ।
नवमसतिमाप्नुयात्स्वमूल्य यदि न स्याद् गुणसम्पदा विहीनम् ।३१
त्रिशता धरण पूर्ण शिक्यन्तस्येति कार्त्यते ।
चत्वारिंशद् भवेत्तस्या परो मूल्यो विनिश्चय. ॥३२
चत्वारिंशद् भवेच्छिरयो त्रिंशन्मूल्य लभेत सा ।
षष्टिनिकन्नीर्ष स्यात्तस्य मूल्य चतुर्दश ॥३३
अशीतिर्नवतिश्चैव कुप्येति परिकीर्त्तिता ।
एकादश स्यात्तत्र च तयामूल्यमनुक्रमात् ॥३४
आदाय तत्फलमेव ततोऽन्नभाण्ड अम्बीरजातरसयोजनया विरुक्षम् ।
पृष्ट ततो मृदुतनूकृतपिण्टमूलं कुर्याद्यथेष्टमनुमौक्तिकमाशुविद्धम् ।३५

आधा अधिक मापक और उन्मित मोती का मूल्य तीन सौ बीस होता है। इस विषय के ज्ञाता लोग छै गुञ्जा के प्रमाण वाले का परम मूल्य दो सौ रुपये बतलाते हैं। इसके आधे प्रमाण वाला यदि उन्मापक हो और गुणों से समन्वित हो तो उसका मूल्य एक सौ रुपये होता है ॥२९॥ यदि सोलह से से न्यून धरण हो तो उसे दारिकारत्न कहते हैं। दश से अधिक सौ रुपये भी किसी व निश (मूर्ख) के हाथ म प्राप्त हो जाता है ॥३०॥ दुगुने दश से न्यून धरण हो तो उसके ज्ञाता लोग उसे भवक कहा करते हैं। यदि यह गुणों की सम्पदा स विहीन न हो तो उसका अपना मूल्य नौ सप्तति (नौ सत्तर) प्राप्त हो जाता है। ३१॥ तीन सौ का पूर्ण धरण सिक्थ्य—यह कहा जाता है। उसका सबसे अधिक मूल्य चालीस होता है—यह बिलकुल निश्चित होता है। ॥३२॥ जो चालीस सिक्थ होता है उसका मूल्य तीस रुपये ही प्राप्त होते हैं। साठ निकर शीर्ष जो हो उसका मूल्य चौदह होता है ॥३३॥ अस्सी और नब्बे चूर्णा—यह परिकीर्तित किया गया है। इन दोनों का मूल्य एकादश और नौ अनुक्रम से होता है ॥३४॥ उन सबको लेकर अन्न के पात्र मे जम्बीर जात रस की योजना द्वारा विपक्व करे फिर कोमल तनूकृत विग्र मूलो से घर्षण करे तो प्रत्येक मौक्तिक शीघ्र ही यथेच्छया विद्ध कर लेवे। अर्थात् फिर तुरन्त ही अपनी इच्छा के अनुसार मोती वेध के योग्य हो जाता है ॥३५॥

मृल्लिप्तमत्स्यपुटमध्यगतन्तु कृत्वा पश्चात्पचेत्तनु ततश्च वितानपत्या।
दुग्धे तत. पयसि त विपचेत्सुधाया पक्व ततोऽपि पयसा शुचिचिक्कणेन।
शुद्ध ततो विमलवस्त्रनिघर्षणेन स्यान्मौक्तिक विपुलसद्गुण-
कान्तियुक्तम् ॥३६

व्याडिर्जगाद जगता हि महाप्रभावसिद्धो विदग्धहिततत्परया दयालु।
श्वेतकाचसम तार हेमाशशतयोजितम् ॥३७
रसमध्ये प्रधार्येत मौक्तिक देहभूषणम् ॥
एव हि सिहले देशे कुर्वन्ति कुशला जना ॥३८
यस्मिन्कृत्रिमसन्देह. क्वचित्द्भवति मौक्तिके।
उष्णे सलवणे स्नेहे निशा तद्वासयेज्जले ॥३९

व्रीहिभिर्मर्दनीय वा शुष्कवस्त्रोपवेष्टितम् ।
यत्तु नायाति वैवर्ण्यं विज्ञेय तदकृत्रिमम् ॥४०
सित प्रमाणवत् स्निग्ध गुरु स्वच्छ सुनिर्मलम् ।
तेजोऽधिक सुवृत्तञ्च मौक्तिक गुणवत्स्मृतम् ॥४१
प्रमाणवद् गौरवरश्मियुक्त सित सवृत्त सममूक्ष्मवेधम् ।
अकेतुरप्यानहति प्रमोद यन्मौक्तिक तद्गुणवत् प्रदिष्टम् ॥४२
एव समस्तेन गुणोदयेन यन्मौक्तिक याममुपागत स्यात् ।
न तस्य भर्तारमनर्थजात एकोऽपि कश्चित्समुपैति दोष ॥४३

मृत्तिका म लिप्त करके मत्स्य पुट मे रक्खे और फिर जितान पत्ती से थोडा पावन करे । फिर दुग्ध मे तथा इसके पश्चात् जल मे पावन करे । सुधा मे पक्व करे और फिर शुचि चिक्कण पय के साथ पकावे । इसके करने के पश्चात् स्वच्छ वस्त्र से मोतियो का विघपण करे तो वे मोती परम शुद्ध और बहुत सद्गुण एव कान्ति से युक्त हो जाते है । महा प्रभाव सिद्ध एव दयानु व्याडि ने ससार मे लोगो पर कृपा करके चतुर्थ के दिन पर ध्यान देकर ऐसा कहा था ॥३६।३७॥ स्वेत काँच के सम चाँदी और जो हेमान दाम से योजित हो ऐसे देह के भूषण मौक्तिक का रस क मध्य मे धारण करना चाहिए । इसी प्रकार से सिंहल देश मे कुशल पुरुष किया करते हैं ॥३८॥ जिस मौक्तिक मे बनावटी होने का सन्देह हो उसे उष्ण लवण सहित स्नेह म एक रात्रि जल मे वासित करे अथवा शुष्क वस्त्र म उपवेष्टित कर व्रीहियो के साथ मर्दन करे । ऐसा करने पर जिसमे कोई भी विवर्णता न आवे तो समझ लेना चाहिये कि वह अकृत्रिम अर्थात् असली मौक्तिक ही है बनावटी नहीं है ॥३९।४०॥ सित, प्रमाणवत्, स्निग्ध, गुरु, स्वच्छ, सुनिर्मल, अधिक तेज से युक्त और सुवृत्त मौक्तिक गुणों से समन्वित कहा गया है ॥४१॥ प्रमाणवत् गौरव और रश्मियो से युक्त सित, सवृत्त तथा सम एव सूक्ष्म वेध वाला जो अ ाहता है करने वाले के मन को भी प्रमोद देने वाला हो वही मोती गुण गण से समन्वित बताया गया है ॥४२॥ इस प्रकार से सम्पूर्ण गुणो के उदय से जो मौक्तिक

योग को प्राप्त हुआ हो उस मोती के स्वामी तथा धारण करने वाले को अनर्थ से समुत्पन्न कोई एक भी दोष उपस्थित नहीं होता है ॥४३॥

३६—पद्मराग परीक्षा

दिवाकरस्तस्य महामहिम्नो महासुरस्योत्तमरत्नबीजम् ।
असृग् गृहीत्वा चरितुं प्रतस्थे निस्त्रिंशनीलेन नभःस्थलेन ॥१
जेता सुराणां समरेष्वजस्रं वीर्यावलेपोद्धतमानसेन ।
लङ्काधिपेनार्द्धपथं समेत्य स्वर्भानुनेव प्रसभं निरुद्धः ॥२
तत्सिंहलीचारु नितम्बबिम्बविक्षोभितागाधमहाह्रदायाम् ।
पूगद्रुमाबद्धतटद्वयायां मुमोच सूर्यः सरिदुत्तमायाम् ॥३
ततः प्रभृति सा गङ्गा तुल्यपुण्यफलोदया ।
नाम्ना रावणगङ्गेति प्रथिमानमुपागता ॥४
ततः प्रभृत्येव च शर्वरीषु कूलानि रत्नैर्निचितानि तस्याः ।
सुवर्णनाराचशतैरिवान्तर्बहिः प्रदीप्तैर्निशितानि भान्ति ॥५
तस्यास्तटेपूज्ज्वलचारुरागा भवन्ति तोयेषु च पद्मरागाः ।
सौगन्धिकोत्था कुरुविन्दजाश्च महागुणाः स्फाटिकसम्प्रसूताः ॥६
बन्धूकगुञ्जाशकलेन्द्रगोपजवासमासृक्समवर्णशोभाः ।
भ्राजिष्णवो दाडिमबीजवर्णास्तथापरे किंशुकपुष्पभासः ॥७

सूत जी ने कहा—उस महान् महिमा से युक्त महासुर का उत्तम रत्न बीज यह दिवाकर है जो असृक् (रुधिर) ग्रहण करके निस्त्रिंश नील इस नभ स्थल के द्वारा चरण करने के लिये प्रस्थान करता था ॥ १ ॥ समरों में निरन्तर सुरों का जीतने वाले—वीर्य—पराक्रम के गर्व से उद्धत मन वाले लङ्का के स्वामी ने अर्ध पथ में आकर स्वर्भानु की ही भाँति इसे बलात् रोक दिया था ॥ २ ॥ सिंहल द्वीप की ललनाओं के अति सुन्दर नितम्ब बिम्बों में विक्षोभित और अगाध महान् ह्रद वाली—दोनों ओर के तटों पर पूगों की वृक्षावली से सुशोभित सरिताओं में परमोत्तम में सूर्य ने मोचन किया था ॥ ३ ॥ तभी से लेकर वह सरिता गङ्गा के समान पुण्यों के फलोदय वाली "रावण गङ्गा"

इस नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुई थी ॥ ४ ॥ तब से ही प्रारम्भ कर के उसके कूल रात्रियों में रहने से निश्चित रहा करते हैं। सुवर्ण नाराचशतों के समान भीतर—बाहिर से प्रदीप्तों से निशित भासित होते हैं ॥ ५ ॥ उस नदी के तटों पर और जलों में उज्ज्वल एवं सार राग वाले पद्मराग होते हैं। सौगन्धिक और कुरुविन्दज—महान् गुणों वाले तथा वे स्फटिक सम्प्रसूत होते हैं ॥ ६ ॥ बन्धूक पुष्प—गुञ्जाफल—खद्योत और जपा के समान तथा असृक् (रक्त) के समान वर्ण की शोभा वाले—भ्राजिष्णु तथा अनार के दाने के तुल्य वर्ण वाले और मध्य ढाक के पुष्प के समान दीप्ति वाले हैं ॥७॥

सिन्दूरपद्मोत्पलकुङ्कुमानां लाक्षारसस्यापि समानवर्णाः ।
सान्द्रेऽपि रागे प्रभया स्वयैव भान्ति स्वलक्ष्या स्फुटमध्यशोभाः ॥८
भानोश्च भासामनुवेधयोगमासाद्य रश्मिप्रकरेण दूरम् ।
पार्श्वानि सर्वाण्यनुरञ्जयन्ति गुणोपपन्नाः स्फटिकप्रसूताः ॥९
कुसुम्भनीलव्यतिमिश्रराग्यप्रत्युग्ररक्ताम्बुजतुल्यभासः ।
तथापरेऽस्फुटरक्तकण्टकारीपुष्पत्विषा हिङ्गुलवर्णिनश्चाऽन्ये ॥१०
चकोरपुंस्कोकिलसारसानां नेत्रावभासाश्च भवन्ति केचित् ।
अन्ये पुनः सन्ति च पुष्पिताना तुल्यत्विषः कोकनदोत्पलमालाम् ॥११
प्रभावकाः पद्मगुरुत्वयोगे प्रायः समानाः स्फटिकाङ्कुरानाम् ।
आनीलरक्तोत्पलचारुभासः सौगन्धिकाख्या मणयो भवन्ति । १२
कामं तु रागः कुरुविन्दजेषु न नैव यादृक्स्फटिकाङ्कुरेषु ।
निरर्चिषोऽन्तबहुला भवन्ति प्रभाववन्तोऽपि न ते समस्ते ॥१३
ये तु रावणगङ्गाया जायन्ते कुरुविन्दकाः ।
पद्मरागघन राग बिभ्राणाः स्फटिकाश्रिव ॥१४

सिन्दूर—पद्मोत्पल—कुङ्कुम और लाक्षारस के समान वर्ण वाले हैं। सान्द्र राग के होने पर भी अपनी ही प्रभा से स्वलक्ष्य तथा स्पष्ट मध्य की शोभा वाले होते हैं ॥ ८ ॥ दूर से ही सूर्य की दीप्ति की किरणों के समु-

दाय से अनुवेध के योग को प्राप्त कर गुणो से सम्पन्न तथा स्फटिक से समुत्पन्न समस्त पार्श्व भागों का अनुरञ्जित किया करते हैं ॥ ९ ॥ कुछ कुसुम्भ और नील के व्यतिमिश्रित राग से प्रत्यग्र रक्त कमल की तुल्य दीप्ति वाले होते हैं। अन्य महाकर कण्टकारी के पुष्प के समान कान्ति वाले हैं और कुछ हिंगुल के तुल्य कान्ति से युक्त हुआ करते हैं ॥ १० ॥ चकोर—पुंस्कोकिल और सारस के नेत्रों के समान अवभासित होने वाले कुछ हुआ करते हैं। कुछ उत्तम एवं पुष्पित शाक नद के समान कान्ति वाले होते हैं ॥ ११ ॥ प्रभाव—कठिनता—और गुरुत्व के भोग में प्राय स्फटिक से उद्भव होने वाले समान ही होते हैं। सौगन्धिकोत्थ मणियाँ थोड़ी नील—रक्तोत्पल के समान दीप्ति वाली हुआ करती है ॥ १२ ॥ जो कुरुविन्द में समुत्पन्न हैं उनमें राग यथेष्ट होता है वह स्फटिक से उद्भव प्राप्त करने वालों में जैसा होता है वैसा नहीं है। वे उन सम्पूर्णों से प्रभाव वाले होते हुए भी [illegible] वाले और अतबहुल होते हैं ॥ १३ ॥ जो रावण गङ्गा में कुछ व दक उत्पन्न होते हैं वे पद्मराग के समान घना राग धारण करने वाले और स्फटिक जैसी अर्चियों को धारण करने वाले हुआ करते हैं ॥ १४ ॥

वर्णानुयायिनस्तपा अन्ध्रदेशे तथा परे ।
न जायन्ते हि ये वेत्ति मूल्यलशमवाप्नुयु ॥१५
तथव स्फाटिकोत्थाना देशे तुम्बुरुसञ्ज्ञके ।
सधर्माण प्रजायन्त स्वल्पमूल्या हि त स्मृता ॥१६
वर्णाधिक्य गुरुत्वञ्च स्निग्धता समताच्छता ।
अर्चिष्मत्ता महत्ता च मणीना गुणसग्रह ॥१७
ये कर्कराच्छिद्रमलोपदिग्धा प्रभाविमुक्ता परुषा विवर्णा ।
न त प्रशस्ता मणयो भवन्ति समानतो जातिगुणै समस्त ॥१८
दोषोपसृष्ट मणिमप्रबोधाद्बिभर्ति य कश्चन कश्चिदेव ।
त शोकचिन्तामयमृत्युवित्तनाशादयो दोषगणा हरन्ति ॥१९
काम चारुतरा पश्च जातीना प्रतिरूपका ।
विजातय प्रयत्नेन विद्वांस्तानुपलक्षयेत् ॥२०

कलमपुरोद्भवसिंहलतुम्बुरुदेशोत्थमुक्तपाणीया ।
श्रीपूर्णकाश्च सदृशा विजातय पद्मरागाणाम् ॥२१
तुपोपसर्गात्कलमाभिधानमाताम्रभावादपि तुम्बुरुत्थम् ।
कार्ष्ण्यात्तथा सिंहलदेशजात मुक्ताभिधान नभस स्वभावात्॥२२
श्रीपूर्णक दीप्तिविनाकृतत्वाद्विजातिलिङ्गाश्रय एव भेद ।
यस्तान्त्रिका पुष्यति पद्मरागो योगात् पाणामिव पूर्णमध्य ।२३

उन्ही के जैसे वर्णो का अनुकरण करने वाले दूसरे अन्ध्र देश मे उत्पन्न नही होते हैं जो कोई मूल्य का लेश भी प्राप्त कर सकें ॥ १५ ॥ उसी प्रकार से तुम्बुरु नाम वाले देश म स्फटिक म समुत्पन्नो के समान धर्म वाले पैदा होते हैं किन्तु वे बहुत थोडी मूल्य वाले कहे गये हैं ॥ १६ ॥ मणियो की वर्ण की अधिकता—गुरुता—स्निग्धता—समता —स्वच्छता—अचियो वाली होना—महत्ता य ही गुण हैं जिनका सग्रह होना है । १७॥ जो मणियाँ कंकर—छिद्र और मल से उपादग्ध होती हैं तथा प्रभाव (जोकि मणि रत्नो का बनाया गया है) से रहित हैं—कठोर और बिना समुचित वर्ण वाली हैं वे जाति एव गुणो के पूर्ण होने पर भी प्रशस्त नही होती हैं ॥ १८ ॥ जो कोई पुरुष अज्ञान वश दोषो से उपसृष्ट मणि को धारण किया करता है उसको शोक—चिन्ता—रोग—मृत्यु —वित्तनाश आदि दोषों के समूह हरण कर लेते हैं ॥१६॥ पाँच जातियों के बराबर यथेष्ट प्रति रूपक विजातीय रत्न होते हैं । विद्वान् पुरुष को पूर्ण प्रयत्न से उनका देख लेना चाहिए ॥ २० ॥ कलशपुर मे उत्पन्न-सिंहल और तुम्बुरु देश मे समुत्पन्न—मुक्त पाणीय और श्री पूर्वक ये विजातीय रत्न पद्मरागों के सदृश ही हुआ करते हैं ॥ २१ ॥ तुपोपसर्ग से कलस नाम वाला और थोडा ताम्र भाव होने से तुम्बुरुत्थ तथा कृष्णता होने से सिंहल देश मे समुत्पन्न नभ के स्वभाव होने से मुक्ता नाम वाला है ॥ २२ ॥ दीप्ति के विनाकृत् होने से श्रीपूर्णक है और विजातीय चिह्न का आश्रय प्राप्त करना उसका भेद—होना है । जो पद्मराग तान्त्रिका का पोषण करता है तुपाओं के समान योग से पूर्ण मध्य होता है ॥ २३ ॥

स्नेहप्रदिग्ध प्रतिभाति यश्च यो वा प्रघृष्ट प्रजहाति दीप्तिम् ।
आक्रान्तमूर्द्धा च तथागुलिभ्या य कालिका पार्श्वगता बिभर्ति ।२४
सप्राप्य चाक्षिप्य यथानुवृत्ति बिभर्ति य सवगुणानतीव ।
तुल्यप्रमाणस्य च तुल्यजातेर्यो वा गुरुत्वेन भवेत् तुल्य ।
प्राप्यापि रत्नाकरजा स्वजाति लक्षेद् गुरुत्वेन गुणेन विद्वान् ।२५
अप्रणश्यति सन्देहे शाणे तु परिलेखयेत् ।
स्वजातकसमुत्थन लिखित्वापि परस्परम् ।।२६
वज्र वाकुरुवि द वा विमुच्यानन केनचित् ।
नाशक्य लेखन कर्तुं पद्मरागेन्द्रनीलयो ।।२७
जात्यस्य सर्वेऽपि मणेस्तु यादृग विजातय सन्ति समानवर्णा ।
तथापि नामाकरणार्थमेव भेदप्रकार परम प्रदिष्ट ।।२८
गुणोपपन्न न सहावबद्धो मणिन धार्यो विगुणो हि जात्य ।
न कौस्तुभेनापि सहावबद्ध विद्वान् विजाति बिभृयात्क-
दाचित् ।।२९

जो स्नेह स प्रदिग्ध प्रतीत होता है अथवा जो प्रघृष्ट होता हुआ द ति को त्याग देता है और जो अ गुलियो से आक्रा त मूर्द्धा वाला होकर पार्श्वगत कालिका का धारण कर लेता है ।। २४ ।। जो यथा अनुवृत्ति प्राप्त कर और उत्क्षिप्त होकर समस्त गु ो को अत्यथ रूप से धारण किया करता है तथा प्रमाण की समानता से तथा जाति के अनुसार जो गुरुत्व से तुल्य होता है और रत्नो के आकार म समु पन्न अपनी जाति को प्राप्त होकर भी गुरुत्व एव गुण गरिमा रखता है इन सब बातो के होने से ही विद्वान् पुरुष को देखभाल रत्न की करनी चाहिए ।। २५ ।। स दे ह के प्रणष्ट न होने पर शाण पर रखे जाने पर उस परिलक्षित करे तथा स्वजातक स समु पन्न परस्पर म लिखित करके भी देखना चाहिए । वज्र अथवा कुरुवि द हो इसका त्याग कर पद्मराग तथा इन्द्रनील पर लखन इसम यदि नहीं किया जा सकता है तो इस जाति के र न समान वण होने वाले सभी विजातीय ही होत हैं—ऐसा समझ लेना चाहिए । तथापि नाम करण करने के लिये ही यह भेदो का परम प्रकार यहाँ

बता दिया गया है ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ गुणों से उपपन्न होता हुआ भी जो महाबवद्ध हो ऐसा रत्न मणि जो जातीय विगुणता से युक्त हो कभी धारण नहीं करना चाहिए। कौस्तुभ मणि की समानता रखने वाला भी भले ही वह मणि क्यों न हो यदि विजातीय है तो विद्वान् पुरुष को कभी ऐसा रत्न धारण नहीं करना चाहिए ॥ २९ ॥

> चण्डाल एकोऽपि यथा द्विजातीन्समेत्य भूरीनपि हन्त्ययत्नात् ।
> अथो मणीन्भूरिगुणोपपन्नान्शक्नोति विप्लावयितुं विजात्यः ।३०
> सपत्नमध्येऽपि कृताधिवास प्रमादवृत्तावपि वर्त्तमानम् ।
> न पद्मरागस्य महागुणस्य भर्त्तारमापत्स्पृशतीह काचित् ॥३१
> दोषोपसर्गप्रभवाश्च ये ते नापद्रवास्म समभिद्रवन्ति ।
> गुणैः समुत्तेजितचारुराग य पद्मराग प्रयतो बिभर्ति ॥३२
> वज्रस्य तन्तण्डुलसंख्ययोक्त मूल्य समुत्पादितगौरवस्य ।
> तत्पद्मरागस्य महागुणस्य तन्मापकस्याकलितस्य मूल्यम् ॥३३
> वर्णदीप्त्युपपन्न हि मणिरत्न प्रशस्यते ।
> ताभ्यामीषदपि भ्रष्ट मणिर्मूल्यात्प्रहीयते ॥३४

जिस प्रकार से एक भी चण्डाल द्विजातियों के साथ मिलकर बहुत से उनको बिना ही किसी यत्न के द्विजातित्व से हनन कर दिया करता है उसी तरह से विजात्य मणि बहुत से गुणों से उपपन्न अनेक मणियों को विप्लावित कर सकता है ॥ ३० ॥ शत्रुओं के मध्य में अधिवास करने वाले और प्रमाद की वृत्ति में भी वर्त्तमान रहने वाले महान् गुण युक्त पद्मराग को धारण करने वाले स्वामी को कोई भी आपत्ति स्पर्श नहीं किया करती है ॥ ३१ ॥ दोषों के उपसर्ग से उत्पन्न होने वाले जो भी उपद्रव हुआ करते हैं वे उसको उपद्रुत नहीं किया करते हैं जो गुणों से समुत्तेजित सुन्दर राग वाले पद्मराग मणि को प्रयत्नशील होता हुआ धारण किया करता है ॥ ३२ ॥ जो एक तण्डुल की संख्या से वज्र का मूल्य कहा गया है वह समुत्पादित गौरव वाले तथा महान् गुणों से सम्पन्न एकमापक पद्मराग का मूल्य होता है ॥ ३३ ॥ वर्ण और दीप्ति

से उपपन्न ही मणि रत्न प्रशस्त कहा जाता है। इन दोनो गुणो से यदि थोड़ा भी हीन हो तो वह रत्न मूल्य मे हीन हो जाता है ॥ ३४ ॥

७०--मरकत परीक्षा

दानवाधिपते पित्तमादाय भुजगाधिप ।
द्विधा कुर्वन्निव व्योम सत्वरं वासुकिर्ययौ ॥१
स तदा स्वशिरोरत्नप्रभादीप्ते नभोऽम्बुधौ ।
राजतः स महानेक खण्डसेतुरिवाबभौ ॥२
तत पक्षनिपातेन सहरन्निव रोदसी ।
गरुत्मान्पन्नगेन्द्रस्य प्रहर्तुमुपचक्रमे ॥३
सहसैव मुमोच तत्फणीन्द्र. सुरसाढ्यक्तुरुस्कपादपायाम् ।
नलिकावनगन्धवासिताया वरमाणिक्यगिरेरुपत्यकायाम् ॥४
तस्य प्रपातसमनन्तरकालमेव तद्वद्वरालयमतीत्य रमासमीपे ।
स्थानं क्षितिरुपपयोनिधितारलेखं तत्प्रत्ययान्मरकताकरतां जगाम ५
तत्रैव किञ्चित्पतितस्तु पित्तादुपेत्य जग्राह ततो गरुत्मान् ।
मूर्च्छापरीतः सहसैव घोणारन्ध्रद्वयेन प्रमुमोच सर्वम् ॥६
तत्राकठोरशुककण्ठशिरीषपुष्पखद्योतपृष्ठचरशाद्वलशैवलानाम् ।
कल्हारशष्पकभुजङ्गभुजाश्च पत्रप्राप्तत्विषो मरकता शुभदा भवन्ति ७

श्री सूतजी बोले--भुजगो का स्वामी वासुकि नाग दानवो के अधिपति के पित्त को लेकर व्योम के दो भाग मानो करता हुआ शीघ्र चला गया था ॥१॥ उस समय मे वह अपने शिर के रत्न की प्रभा से प्रदीप्त नभ रूपी अम्बुधि मे पूरक महान् खण्ड सेतु की भाँति सुशोभित हुआ था ॥२॥ इसके अनन्तर गरुड पक्षो के निपात से रोदसी का संहार करते हुए की भाँति पन्नगेन्द्र के ऊपर प्रहार करने को उद्यत हुआ था ॥३॥ उस फणीन्द्र ने सहसा ही उसी सुरसादि से उक्त तुरस्क पादपो वाली--नलिका वन की गन्ध से सुवासित वरमाणिक्य गिरि की उपत्यका मे छोड दिया था ॥४॥ उसके गिरने के समनन्तर काल मे ही रमा के समीप मे उसके श्रेष्ठ आलय को अतीत कर उसी के समान भूमि

के उपपयोनिधि के तट की लेखा काला उसके प्रत्यय से वह स्थान मरकत मणि की खान बन गया था ॥५॥ वहाँ पर ही गुरुत्मान् ने आकर उन गिरते हुए पित्त से कुछ थोड़ा सा भाग ग्रहण कर लिया था। मूर्च्छा से परीत होकर उसने तुरन्त ही नासिका के दोनों नथुनों से उस सबको त्याग दिया था ॥६॥ वहाँ पर अकठोर शुक कण्ठ–शिरीष पुष्प—खद्योत–पृष्ठ–चर—शाद्वल–शैवल–कह्लार–शष्पक–और भुजङ्ग भुज के पत्रों की कान्ति प्राप्त करने वाले शुभ देने वाले मरकत मणि रत्न होते हैं ॥७॥

तद्यत्र भोगीन्द्रभुजाभियुक्त पपात पित्त दितिजाधिपस्य ।
तस्याकरस्यातितरा स देशो दु खोपलभ्यश्च गुणैश्च युक्तः ॥८
तस्मिन्मरकतस्थाने यत्किञ्चिदुपजायते ।
तत्सर्वं विषरोगाणा प्रशमाय प्रकीर्त्यते ॥९
सर्वमन्त्रौषधिगणैर्यन्न शक्य चिकित्सितुम् ।
महाहिदष्टाप्रभव विष तत् तेन शाम्यति ॥१०
अन्यदप्याकरे तत्र यद्दोषैरपवर्जितम् ।
जायते तत्पवित्राणामुत्तम परिकीर्तितम् ॥११
अत्यन्तहरितवर्णं कोमलमर्चिर्विभेदजटिलञ्च ।
काञ्चनचूर्णस्यान्त पूर्णमिव लक्ष्यते यच्च ॥१२
युक्त सस्थानगुणं समराग गौरवेण ।
सवितु. करसस्पर्शाच्छुरयति सर्वाश्रम दीप्तया ॥१३
हित्वा च हरितभाव यस्यान्तर्विनिहिता भवेद्दीप्ति ।
अचिरप्रभाप्रभाहतशाद्वलसमन्विता भाति ॥१४

वह जहाँ पर भोगीन्द्र भुजा से अभियुक्त दिति के पुत्रों के अधिप का पित्त गिरा था वह देश भाग उसके आकर का बहुत अधिक बड़ा स्थान है किन्तु वह देश गुणों से युक्त और बहुत दुःखों से उपलब्ध करने के योग्य होता है ॥८॥ उस मरकतों के आकर के स्थान में जो कुछ भी उत्पन्न होता है वह सभी कुछ विष रोगों के प्रशमन के लिये कहा जाता है ॥९॥ अन्य समस्त औषधियों और मन्त्रों के समूह भी जिसे अच्छा नहीं कर सकते हैं वहाँ की

उत्पन्न वस्तुएं महान् विषैले सर्प की दाढ़ से उत्पन्न विष को प्रशमित कर दिया करती है ॥१०॥ उस आकर में अन्य जो कुछ भी दोषों से रहित उत्पन्न होता है वह सम्पूर्ण पवित्रों में भी परम पवित्र होता है—ऐसा कीर्तित किया गया है ॥११॥ मरकत हरे रंग वाला—कोमल—पंक्तियों के विभेद से जटिल अर्थात् जिसमें बहुत पंक्तियाँ गुंथी पड़ती हों। जो मध्य में काञ्चन चूर्ण से पूर्ण दिखलाई देता है। गरुत्मान के गुणों से युक्त और गौरव से समान राग वाला तथा जो सूर्य की किरणों के संस्पर्श होने से दीप्ति के द्वारा सम्पूर्ण आश्रम को छुरित कर देता है—जो हरित भाव का त्याग कर अन्दर में छिपी हुई दीप्ति को प्रकट करता है और रुचिर प्रभा से प्रभाहृत शाद्वल (कोमल एवं हरी घासों) से मर्मावत भासित होता है वह मरकत रत्न होता है ॥१२ से१४॥

यच्च मनसः प्रसादं विदधाति निरीक्षितमनिमाधम् ।
तन्मरकतं महागुणमिति रत्नविदां मनोवृत्तिः ॥१५
वर्णस्यातिबहुत्वाद्यस्यान्तः स्वच्छकिरणपो(?)भासम् ।
सान्द्रस्निग्धविशुद्धं कोमलवर्हिप्रभादिसमकान्ति ॥१६
वर्णोज्ज्वलया कान्त्या सान्द्राकारा विभासया भाति ।
तदपि न गुणवत् सज्ञामाप्नोति यादृशी पूर्वम् ॥१७
पवनकठोरमलिनं रूक्षं पाषाणकर्करापेतम् ।
दिग्धञ्च शिलाजतुना मरकतमवविधं विगुणम् ॥१८
यत्सम्मिश्रेपितं रत्नमन्यं मरकताङ्कुलेत् ।
अ यस्माभिर्नेत् तद्धार्यं कर्तव्यं वा कथञ्चन ॥१९
भल्लातकीपुत्रिका च तद्वर्णसमयोगतः ।
संयोमरकतस्यैते लक्षणीया विजातयः ॥२०
क्षौमेण वाससा मृष्टा दीप्तिं त्यजति पुत्रिका ।
लाघवेनैव कानस्य शक्यया कर्तुं विभावना ॥२१

जो देखने भर से ही अत्यधिक मन के अन्दर प्रसन्नता उत्पन्न करता है वह मरकत मणि महान् गुणों वाला होता है—ऐसा रत्न शास्त्र के विद्वानों के मनका विचार है ॥१५॥ वर्ण के अत्यधिक होने से जिसका अन्तर्भाग स्वच्छ

किरणों का परिधान हो जाता है और जो सान्द्र–स्निग्ध और विशुद्ध एवं कोमल बर्हि तथा प्रभादि से समान कान्ति वाला है—जो उज्ज्वल वर्ण वाली कान्ति से सान्द्र आकार वाला है और विशेष दीप्ति से शोभा देता है वह मरकत भी पुण्य वाला होने की संज्ञा को प्राप्त नहीं किया करता है जैसा कि पहिले बतलाया हुआ मरकत उत्तम होता है ॥१६।१७॥ शबल(चित्र विचित्र वर्ण वाला) कठोर–मलिन–रूक्ष और पाषाण कर्कर से युक्त तथा शिलाजीत से दिग्ध जो मरकत होता है वह विगुण हुआ करता है ॥१८॥ जो सन्धि से शेथिर मरकत से अन्य रत्न होता है उसे श्रेय चाहने वाले लोकों को धारण नहीं करना चाहिए और ऐसे रत्न को कभी खरीदना भी नहीं चाहिए ॥१९॥ भल्लातकी पुत्रिका और उसके वर्ण के समयोग से मरकत मणि के ये विजातीय लक्षण जान लेने चाहिए ॥२०॥ जो पुत्रिका है वह यदि क्षौम वस्त्र से मृष्ट की जावे तो अपनी दीप्ति को त्याग देता है। कांच के लाघव से ही उसकी विभावना की जा सकती है ॥२१॥

कस्यचिदनेकरूपैर्मरकतमनुगच्छतोऽपि गुणवर्णैः ।
भल्लातकस्यानिलैर्वैषम्यमुपैति वर्णस्य ॥२२
वज्राणि मुक्ताः सन्त्यन्ये ये च केचिद्विजातय ।
तेषा नाप्रतिबद्धाना भा भवत्यूर्ध्वगामिनी ॥२३
ऋजुत्वाच्चैव केषाञ्चित् कथाञ्चिदुपजायते ।
तिर्य्यगालोच्यमानानां मद्यश्चैव प्रणश्यति ॥२४
स्नानाचमनजप्येषु रक्षामन्त्रक्रियाविधौ ।
ददद्भिर्गोहिरण्यानि कुर्वद्भि साधनानि च ॥२५
देवपैत्रातिथेयेषु गुरुसपूजनेषु च ।
बाध्यमानेषु विविधैर्दोषजातैर्विषोद्भवै ॥२६
दोषैर्हीन गुणैर्युक्त काञ्चनप्रतियोजितम् ।
सग्रामे विचरद्भिश्च धार्य्यं मरकत बुधैः ॥२७
तुलया पद्मरागस्य यन्मूल्यमुपजायते ।
लभतेऽभ्यधिक तस्माद्गुणैर्मरकत युतम् ॥२८

तथा च पद्मरागाणां दोषैर्मूल्यं प्रहीयते ।
ततोऽप्यधिका हानिर्दोषैर्मरकते भवेत् ॥२६

मरकत मणि का अनुकरण करने वाले किसी के अनेक रूपों वाले भल्लातक के धनिल गुण वर्णों से वर्ण की विषमता को प्राप्त होते हैं ॥२२॥ जो वज्र (हीरे) और मुक्ता (मोती) कोई विजातीय होते हैं यद्यपि वह उनकी दीप्ति ऊर्ध्वगामिनी हुआ करती है ॥ २३ ॥ कुछ ऐसे होते हैं कि उन्हें सीधा रक्खा जावे तो किसी तरह से उनकी दीप्ति उत्पन्न होती है और यदि तिरछा करके देखे जावे तो वह तुरन्त ही नष्ट हो जाया करती है ॥ २४ ॥ स्नान—प्राचमन—जाप—रक्षा मन्त्र की क्रिया विधि में गो और सुवर्ण का दान करने वालों तथा साधनों को करने वालों के द्वारा देव—पित्र—धानिधेय—गुरुनपूजन एवं विषोद्भव अनेक दोषों से वाध्यमान होने में समस्त दोषों से रहित—गुणों से समन्वित तथा सुवर्णालङ्कार में प्रति योजित मरकत मणि को संग्राम में विचारण करने वाले बुधों के द्वारा धारण करना चाहिए ॥२५।२६।२७॥ गुणों से पद्म राग मणि का जो मूल्य होता है उनसे अधिक मूल्य गुणों से युक्त मरकत मणि का होता है ॥२८॥ पद्मराग मणियों का मूल्य दोषों के होने से कम हो जाया करता है किन्तु यदि मरकत मणि में दोष हो तो केवल मूल्य की ही कमी नहीं होती बल्कि उससे भी कहीं अधिक हानि हो जाया करती है ॥२६॥

४१—इन्द्रनील परीक्षा

तत्रैव सिंहलवधूकरपल्लवाग्रव्यालूनबालवल्लीकुसुमप्रवाले ।
देशे पपात दितिजस्य नितान्तकान्त प्रोत्फुल्लनीरजसमद्युति नेत्रयुग्मम् ॥१॥

तत्प्रत्ययादुभयशोभनवीचिभासा विस्तारिणी जलनिधेरुपकच्छभूमिः ।
प्रोद्भिन्नकेतकवलप्रतिवद्धलेखा सान्द्रेन्द्रनीलमणिरत्नवती विभाति ॥२

तत्रासिताब्जहलभृङ्गसमानि भृङ्गनादर्शायुधाङ्गहरकण्ठकषायपुष्पैः ।
शुद्धैस्तरैश्च कुसुमैर्गिरिकर्णिकायास्तस्माद्भवन्ति मणयः सदृशावभासाः ॥३॥

अन्ये प्रसन्नपयस. पयसा निधातुरम्बुत्विष. शिखिगणप्रतिमास्तथान्ये ।
नीलोरसप्रभवबुद्बुदभाश्च केचित्केचित्तथा समदकोकिलकण्ठभास ॥४

एकप्रकारा विस्पष्टवर्णशोभावभासिन ।
जायन्ते मणयस्तस्मिन्निन्द्रनीला महागुणा ॥५
मृत्पाषाणशिलारन्ध्रकर्कराश्राससंयुता ।
अभ्रिकापटलच्छायावर्णदोषैश्च दूषिता ॥६
तत एव हि जायन्ते मणयस्तत्र भूरय ।
शास्त्रसम्बोधितधियस्तान्प्रशसन्ति सूरय ॥७
धार्यमाणस्य ये दृष्टा पद्मरागमणेर्गुणा ।
धारणादिन्द्रनीलस्य तानेवाप्नोति मानव ॥८

सूतजी ने कहा—वहाँ पर ही सिंहल देश की वधू के कर-पल्लव द्वारा व्यासून की बाल लवली कुसुम का प्रवाल जिस देश मे है उस देश मे दितिज (महासुर) के परमन्त सुन्दर विकसित कमल के समान द्युति वाले दोनो नेत्रों का जोडा गिरा था ॥१॥ उसके प्रत्यय से दोनों शोभा युक्त वीचियों की भा (दीप्ति) वाली—विस्तार से युक्त जलनिधि की उपकच्छ भूमि जोकि प्रोद्भिन्न (विकसित) केतक दल से प्रतिबद्ध लेखा वाली थी और सान्द्र इन्द्र नील मणि रत्नों से समन्वित शोभित होती है ॥ २ ॥ वहाँ पर प्रमित कमल और बहल भृङ्गों के समान तथा भृङ्ग—शार्ङ्ग युषाङ्ग—हरकण्ठ (शिव की गरदन)—श्याम पुष्प—कुसुमेतर गिरि कर्णिका के कुसुमो के सदृश भासित मणियाँ उस देश मे समुत्पन्न होती हैं ॥ ३ ॥ अन्य पयोनिधि के प्रसन्न पय के समान हैं—कुछ अम्बु के तुल्य कान्ति वाली है तथा दूसरी मणियाँ मयूरों के समूह के समान प्रतिमा वाली होती हैं। कुछ नीली रस से समुत्पन्न बुद्बुदों के तुल्य भा वाली है और कुछ मद से युक्त कोकिल के कण्ठ की दीप्ति के समान दीप्ति वाली होती है ॥४॥ उन मणियों मे एक ऐसे प्रकार वाली मणियाँ होती हैं जो विशेष रूप से स्पष्ट वर्ण तथा शोभा से अवभासित हुआ करती हैं। उसमे इन्द्र नील मणियाँ महान् गुणों से युक्त होती हैं ॥५॥ ये मणियाँ मृत्तिका—पाषाण—शिला—रन्ध्र-शर्करा त्रास से युक्त और अभ्रिका पटल के छाया और वर्ण

दोषों से दूषित होती हैं ॥६॥ वहाँ पर सभी से बहुत सी मणियाँ उत्पन्न होती हैं। शास्त्रों के द्वारा भली भाँति व धित बुद्धि वाले विद्वान् पुरुष उनकी प्रशंसा किया करते हैं ॥७॥ पद्मराग मणि के धारण करने पर जो गुण देखे गये हैं उन्हीं गुणों को इन्द्रनील मणि के धारण करने से मानव प्राप्त किया करता है ॥ ८ ॥

यथा च पद्मरागाणां जातकत्रितय भवेत् ।
इन्द्रनीलेष्वपि तथा द्रष्टव्यमविशेषत ॥९
परीक्षा प्रत्ययैर्यैश्च पद्मराग परीक्ष्यते ।
तत्रैव प्रत्यया दृष्टा इन्द्रनीलमणेरपि ॥१०
यावन्त चक्रमेदग्नि पद्मरागोपयोगत ।
इन्द्रनीलमणिस्तमात्क्रमेत सुमहत्तरम् ॥११
तथापि न परीक्षार्थं गुणानामभिवृद्धये ।
मणिरत्नौ समाधेय कथञ्चिदपि कश्चन ॥१२
अग्निमात्रापरिज्ञाने दाहदोषैश्च दूषित ।
सोऽनर्थाय भवेद्भर्तुं कर्तुं कारयितुस्तथा ॥१३

जिस तरह से पद्मरागों के तीन जातक होते हैं उसी भाँति इन्द्र नीलों में भी बिना किसी विशेषता के देखने योग्य होते है ॥ ९ ॥ प्रत्ययों से परीक्षा पद्मराग की होती है और जिनके द्वारा वह परीक्षित होता है वहीं इन्द्र नील मणियों में भी वेही प्रत्यय देखे गये हैं ॥१०॥ पद्मराग के उपयोग से जितना अग्नि अक्रामित होता है इन्द्र नील मणि उससे सुमहत्तर क्रमित किया करता है ॥११॥ तो भी जाँच के लिए और गुणों की अभिवृद्धि के लिए कोई भी किसी भी प्रकार से मणि को अग्नि में समाहित न करे ॥१२॥ अग्नि मात्रा के परिज्ञान में दाह के दोषों से दूषित वह मणि धारण करने वाले स्वामी को, करने वाले को और कराने वाले को अनर्थ के लिए ही होती है अर्थात् अनर्थ वाली हो जाती है ॥१३॥

काचोत्पलकरवीरसस्फटिकाद्या इह बुधै सवैदूर्या. ।
कथिता विजातय इमे सदृशा मणिनेन्द्रनीलेन ॥१४

गुरुभावकठिनभावावेतेषां नित्यमेव विज्ञेयौ ।
काचाद्यथावदुत्तरविवर्द्धमानौ विशेषेण ॥१५
इन्द्रनीलो यथा कश्चिद् बिभर्त्याताम्रवर्णताम् ।
रक्षणीयो तथा ताम्रो करवीरोत्पलावुभौ ॥१६
यस्य मध्यगता भाति नीलस्येन्द्रायुधप्रभा ।
तमिन्द्रनीलमित्याहुर्महार्हं भुवि दुर्लभम् ॥१७
यस्य वर्णस्य भूयस्त्वात्क्षीरं शतगुणं स्थितं ।
नीलतां तन्नयेत्सर्वं महानीलः स उच्यते ॥१८
यत्पद्मरागस्य महागुणस्य मूल्यं भवन्माषसमन्वितस्य ।
तदिन्द्रनीलस्य महागुणस्य वर्णस्य संख्याकुलितस्य मूल्यम् ॥१९

काचोत्पल–करवीर–स्फटिक आदि तथा वैदूर्य बुधों के द्वारा लोक में ये इन्द्र नील मणि के सदृश विजातीय कहे गये हैं ॥१४॥ इनका गुरुभाव और कठिन भाव नित्य ही जान लेने योग्य है काच में यथावत् विशेष रूप से उत्तर विवर्द्धमान होते हैं ॥ १५ ॥ जैसे इन्द्रनील थोड़ा सा ताम्र वर्णता को धारण करता है उसी भाँति करवीरोत्पल दोनों ताम्रों की रक्षा करनी चाहिए ॥१६॥ जिसके मध्य में रहने वाली नील की इन्द्रायुध प्रभा शोभा देती है उस इन्द्र-नील को बहुत अधिक मूल्य वाला और लोक में दुर्लभ कहा गया है ॥ १७ ॥ जिसके वर्णों की अधिकता होने से सौगुने क्षीर में समास्थित होकर उस समस्त क्षीर को नीलता प्रदान कर देता है वह महानील कहा जाता है ॥ १८ ॥ जो माष समन्वित पद्मराग का जिसमें महान् गुण हो, मूल्य होता है वह महान् गुण से युक्त वर्ण की संख्या से आकुलित इन्द्रनील का मूल्य होता है ॥१९॥

४२—वैदूर्य परीक्षा

वैदूर्यपुष्परागाणां कर्कतनभीष्मकयोः ।
परीक्षां ब्रह्मणा प्रोक्ता व्यासेन कथिता द्विज ॥१
कल्पान्तकालक्षुभिताम्बुराशेर्निर्ह्रादकल्पाद्दितिजस्य नादात् ।
वैदूर्यमुत्पन्नमनेकवर्णं शोभाभिरामद्युतिवर्णबीजम् ॥२

अविदूरे विदूरस्य गिरेरुत्तुङ्गरोधस ।
कामभूतिकसीमानमनु तस्याकरो भवेत् ॥३
तस्य नादसमुत्थत्वादाकर सुमहागुण ।
अभूदुत्तरितो लोके लोकत्रयविभूषण ॥४
तस्यैव दानवपतेर्निनदानुरूपा प्रावृट्पयोदवरदर्शितचारुरूपाः ।
वैदूर्यरत्नमणयो विविधावभासास्तस्मात्स्फुलिङ्गनिवहा इव सबभूवु ५

पद्मरागमुपादाय मणिवर्णा हि ये क्षितौ ।
सर्वांस्ता-वर्णशोभाभिर्वैदूर्यमनुगच्छति ॥६
तेषा प्रधान शिखिकण्ठनील यद्वा भवेद् वेणुदलप्रकाशम् ।
चाषाग्रपक्षप्रतिमश्रियो ये न ते प्रशस्ता मणिशास्त्रविद्भि ॥७

सूतजी ने कहा—हे द्विज ! वैदूर्य—पुष्पराग—कर्केतन और भीष्मक की परीक्षा ब्रह्माजी के द्वारा प्राप्त है और उस फिर व्यास महर्षि ने कहा है ॥१॥ दितिज (महासुर) के नाद से कल्प के अन्त तक के समय में क्षुभित जो अम्बुराशि (समुद्र) उसके निर्ह्राद स्वर से अनेक वर्णों वाला वैदूर्य रत्न जोकि शोभा—अभिरामता-द्युति और वर्ण का बीज है समुत्पन्न हुआ था ॥२॥ उत्तुङ्ग रोधस वाले विदूर गिरि के निकट ही में काम भूतिक सीमा के पीछे उसका आकर होता है ॥३॥ उसके नाद से समुत्थ होने के कारण सुमहान् गुणों वाला लोक में उत्तरित और तीनों लोकों का भूषण आकर हुआ था ॥४॥ उस दानवों के स्वामी के नाद के अनुरूप वर्षा के समय में मेघों के श्रेष्ठ दर्शित सुन्दर रूप वाले अनेक प्रकार की दीप्ति से युक्त वैदूर्य रत्न मणियाँ उससे स्फुलिङ्गों के समूहों की भाँति उत्पन्न हुए थे ॥५॥ पद्मराग का उपादान करके भूमण्डल में जो मणियों में वर्ण विद्यमान हैं उन सबको वर्णों की शोभाओं से वैदूर्य अनुगमन किया करता है ॥६॥ उन वर्णों में शिखि (मयूर) के कण्ठ के समान नील वर्ण प्रधान है। अथवा वेणु के दल के समान प्रकाश वाला प्रधान होता है। जो चाषाग्र के पक्षों की प्रतिमा की भी जो श्री वाले हैं उन्हें मणियों के शास्त्र के ज्ञाताओं ने प्रशस्त नहीं बताया है ॥७॥

गुणवान्वैदूर्य्यमणिर्योजयति स्वामिनं वरभाग्यैः ।
दोषैर्युक्तो दोषैस्तस्माद्यत्नात्परीक्षेत ॥८
गिरिकाचशिशुपालौ काचस्फटिकाश्च धूम्रनिर्भिन्ना ।
वैदूर्य्यमणेरेते विजातयः सन्निभाः सन्ति ॥९
लिङ्गाभावात्काचं लघुभावाच्छैशुपालकं विद्यात् ।
गिरिकाचमदीप्तित्वात्स्फटिकं वर्णोज्ज्वलत्वेन ॥१०
यदिन्द्रनीलस्य महागुणस्य सुवर्णसंख्याकलितस्य मूल्यम् ।
तदेव वैदूर्य्यमणेः प्रदिष्टं पलद्वयोन्मापितगौरवस्य ॥११
जात्यस्य सर्वेऽपि मणेस्तु यादृग्विजातयः सन्ति समानवर्णाः ।
तथापि नामाकरणानुमेयभेदप्रकारः परमः प्रदिष्टः ॥१२

जो गुणों से सम्पन्न वैदूर्य मणि होता है वह अपने स्वामी को श्रेष्ठ भाग्यों से योजित किया करता है। जो दोषों से युक्त होता है वह अनेक दोषों से स्वामी को दूषित कर देता है। अतएव यत्न पूर्वक परीक्षा अवश्य करनी चाहिए ॥८॥ गिरि काच—शिशुपाल—काच स्फटिक और धूम्र निर्भिन्न ये इतने वैदूर्य मणि के सदृश विजातीय रत्न हुआ करते हैं ॥९॥ लिङ्ग के अभाव रहने से काच का तथा लघुभाव होने से शैशुपालक का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। दीप्ति रहित होने से गिरि काचको और वर्ण की उज्ज्वलता होने से स्फटिक की पहिचान लेना चाहिए ॥१०॥ जो महान् गुणों से युक्त सुवर्ण सङ्ख्याकलित का मूल्य होता है वही पलद्वय से उन्मापित गौरव वाले वैदूर्य मणि का मूल्य बताया गया है ॥११॥ जात्य मणि के सभी समान वर्ण वाले जैसे विजातीय रत्न होते हैं तो भी नामाकरण से अनुमान करने के योग्य भेदों का प्रकार बहुत अच्छा बताया गया है ॥१२॥

सुखोपलक्ष्यश्च सदा विचार्य्यो ह्ययं प्रभेदो विदुषा नरेण ।
स्नेहप्रभेदो लघुता मृदुत्वं विजातलिङ्गं खलु सार्वजन्यम् ॥१३
कुशलाकुशलैः प्रयुज्यमाना प्रतिबद्धाः प्रतिसत्क्रियाप्रयोगैः ।
गुणदोषसमुद्भवं लभन्ते मणयोऽर्थान्तरमूल्यमेव भिन्नाः ॥१४

क्रमशः समतीनवर्त्तमाना प्रतिबद्धा मणिबन्धकैर यत्नात् ।
यदि नाम भवन्ति दोषहीना मणयः षड्गुणम प्लुवन्ति मूल्यम् ॥१५
आकरात्समतीतानामुदधेस्तीरसन्निधौ ।
मूल्यमेतन्मणीनान्तु न सर्वत्र महीतल ॥१६
सुवर्णो मनुना यस्तु प्रोक्त षाडशमाषक ।
तस्य सप्तमो भाग सञ्ज्ञारूप करिष्यति ॥१७
माणश्चतुर्मायमाना माषक पञ्चकृष्णल ।
पलस्य दशमो भागो धरणं परिकीर्त्तित ॥१८
इति मणिविधि प्रोक्ता रत्नाना मूल्यनिश्चये ॥१९

विद्वान् पुरुष के द्वारा सुख पूर्वक देखने के योग्य यह प्रभेद सदा ही विचार करने के योग्य होता है—स्नेह प्रभेद—मधुरा—मृदुता और सब साधारण में होने वाला विजाति चिह्न ॥१३॥ कुशल और अकुशलों के द्वारा द्वारा प्रकृष्ट रूप स पूर्वमाण तथा प्रति सक्रिया के प्रयोगों मे प्रतिबद्ध मणियाँ गुणों और दोषों के समुद्भव को प्राप्त किया करती हैं और पर्यान्तर मूल्य ही से भिन्न होती हैं ॥ १४ ॥ क्रम से समतीत वर्त्तमान वाली और यत्न पूर्वक मणि बन्धक के द्वारा प्रतिबद्ध मणियाँ यदि दोषों से हीन हो जाती है तो फिर वे छैगुनी कीमत को प्राप्त होती हैं ॥१५॥ सागर के तट के समीप में आकर (खान) से समतीत (निकली हुई) मणियों का मूल्य भूमण्डल मे सर्वत्र निश्चय ही नहीं हुआ करता है ॥१६॥ षोडश माषा सुवर्ण मनु के द्वारा कहा गया है उसका सातवाँ भाग सज्ञा के स्वरूप को करता ॥१७॥ चार माष मान वाला और पाँच माषक कृष्णल तथा पलका दशम भाग धरण परिकीर्तित किया गया है ॥१८॥ यही रत्नो के मूल्य के निश्चय करने में मणियों की विधि बताई गई है ॥१९॥

४३—अन्य रत्न परीक्षा

पतितायां हिमाद्रौ तु त्वचस्तस्य सुरद्विष ।
प्रादुर्भवन्ति ताभ्यस्तु पुष्परागा महागुणा ॥१

आपीतपाण्डुरुचिरं पाषाणं पद्मरागसञ्ज्ञकं ।
कौरुण्डकनामा स्यात्स एव यदि लोहितस्तु पीतः ॥२
आलोहितस्तु पीतः स्वच्छः कापायकः स एवोक्तः ।
आनीलशुक्लवर्णः स्निग्धः सोमानकः सगुणः ॥३
अत्यन्तलोहितो यः स एव खलु पद्मरागसञ्ज्ञः स्यात् ।
यदि चेन्द्रनीलसञ्ज्ञः स एव कथितः सुनीलः सन् ॥४
मूल्यं वैदूर्यमणेरिव गदितं ह्यस्य रत्नशास्त्रविदा ।
धारणफलञ्च तद्वत्किन्तु स्त्रीणां सुतप्रदो भवति ॥५

अब अन्य रत्नों की परीक्षा के विषय में बतलाया जाता है। सूतजी —उस महासुर की त्वचा जब हिमाद्रि में गिरि तो उससे महान् गुणों वाले राग रत्नों का प्रादुर्भाव होता है ॥१॥ आपीत पाण्डु और सु दर वर्ण वाला राग सज्ञा वाला पाषाण कौरुण्डक नाम वाला होता है। वह ही यदि लोहित पीत होता है। आलोहित पीत और स्वच्छ वह ही कापायक कहा गया है नील शुक्ल वर्ण वाला गुणो से युक्त एवं स्निग्ध सोमानक कहा जाता है २।३॥ जो बहुत ही अधिक लोहित होता है तो वही पद्मराग की सज्ञा वाला ता है। और इन्द्रनील की सज्ञा वाला हो तो वह ही सुनील ऐसा कहा गया । रत्न शास्त्र के विद्वानो के द्वारा इसका मूल्य वैदूर्य मणि का जैसा ही कहा या है तथा इसके धारण करने का फल भी उसी के समान होता है किन्तु स्त्रियों को यह सुत के प्रदान करने वाला होता है ॥४।५॥

वायुर्नखान्दैत्यपतेगृहीत्वा चिक्षेप सत्पद्मवनेषु हृष्टः ।
तत प्रसूतं पवनोपपन्नं कर्केतनं पूज्यतमं पृथिव्याम् ॥६
वर्णेन तद् रुधिरसोममधुप्रकाशमाताम्रपीतदहनोज्ज्वलितं विभाति ।
नीलं पुनः खलु सितं परुषं विभिन्नं व्याध्यादिदोषकरणं न च तद्विभाति ॥७॥
स्निग्धा विशुद्धा समरागिणश्च आपीतवर्णा गुरवो विचित्राः ।
त्रासव्रणव्यालविवर्जिताश्च कर्केतनास्ते परमं पवित्राः ॥८

ही वपु को धारण किया करते हैं ॥११॥ यदि कर्केतन परीक्षित वर्ण एवं रूप वाला है तो वह प्रत्यग्र—भास्कर दिवाकर के समान प्रकाश वाला होता है। उस उत्तम कर्केतन का मणि शास्त्र के विद्वान् महिमा से तुलित का मूल्य तुल्य कहते हैं ॥१२॥

हिमवत्युत्तरे देशे वीर्य्यं पतितं सुरद्विपस्तस्य ।
सम्प्राप्तमुत्तमानामाकरतां भीष्मरत्नानाम् ॥१३
शुक्ला शङ्खाब्जनिभा स्योनाकसन्निभाः प्रभावन्त ।
प्रभवन्ति ततस्तरुणा वज्रनिभा भीष्मपाषाणाः ॥१४
हेमादिप्रतिबद्धा शुद्धमपि शुद्धया विधत्ते य ।
भीष्ममणिं ग्रीवादिषु सम्पद सर्वदा लभते ॥१५
निरीक्ष्य पलायन्ते ये समरण्यनिवासिनः समीपेऽपि ।
द्वीपिवृकशरभकुञ्जरसिंहव्याघ्रादयो हिंस्रा ॥१६
तस्योन्कलभकृतिनोर्भयं नचास्तीशमुपहसन्ति ।
भीष्ममणिगुंणयुक्तो सम्यक्प्राप्ताङ्गुलीयकलत्वम् ॥१७
पितृतर्पणापि पितृणा तृप्तिर्बहुवार्षिकी भवति ।
शाम्यन्त्युद्भूतान्यपि सर्पाण्डजाखुवृश्चिक विषाणि ।
सलिलाग्निर्वैरितस्करभयानि भीमानि नश्यन्ति ॥१८
शैवलवलाहकाभं परुषं पीतप्रभं प्रभाहीनम् ।
मलिनद्युति च विवर्णं दूरात्परिवर्जयेत्प्राज्ञ. ॥१९
मूल्यं प्रकल्प्यमेषा विबुधवरैर्देशकालविज्ञानात् ।
दूरे भूताना बहु किञ्चिन्निकटप्रसूतानाम् ॥२०

सूतजी ने कहा—हिमवान् के उत्तर देश में उस महासुर का वीर्य पतित हुआ था और वह वीर्य उत्तम भीष्म रत्नों की आकरता को प्राप्त हुआ था ॥१३॥ वहाँ पर भीष्म पाषाण शुक्ल—शङ्ख और कमल के तुल्य—स्योनाक के सदृश प्रभा वाले—वज्र के समान और तरुण उत्पन्न होते हैं ॥ १४ ॥ सुवर्ण आदि से प्रतिबद्ध शुद्ध विधि से शुद्ध किया हुआ भीष्ममणि को जो ग्री वादादि अङ्गों में धारण करता है वह सर्वदा सम्पदा को प्राप्त किया करता है ॥१५॥

सूतजी कहते हैं—परम पुण्य क्षेत्र पर्वतों में—स्थानान्तरों में तथा उत्तर देश में रहने वाली नदियों में और पवित्र प्रदेश में दानव-पति का भली भाँति पूजन करके भुजगों के द्वारा प्रकाश में नसरों को सस्थापित किया था ।।२१। दशार्णवा मदवमेकल कालगादि में गुञ्जा—प्रञ्जन-शहद और मृणाल के समान वर्ण वाले तथा गन्धर्व-अग्नि-कदली के सदृश अवभासित होने वाले वे प्रशस्त पुलक समुत्पन्न हुए थे ।। २२ ।। शङ्ख-अब्ज-भृङ्ग और अर्क के तुल्य विचित्र भग वाले और सूत्रों से व्यपेत परम पवित्र होते हैं। माङ्गल्य से समन्वित—बहुत भक्तियों से चित्रित वे पुलक वृद्धि के प्रदान करने वाले होते हैं ।।२३।। कौआ-कुत्ता-रासभ-शृगाल-वृक-से उग्र रूप वाले गिद्धों से जोकि मास एवं रुधिर से आर्द्र मुख हैं इनसे समुपेत रत्न मृत्यु प्रद होते हैं और विद्वान् पुरुष को उन्हें त्याग ही देना चाहिए। इनके एक पल का मूल्य पाँच सौ रुपये कहा गया है ।। २४ ।। सूतजी ने कहा—दानव का यथेप्सित हुतभुक् का रूप लेकर कुछ हीनादि भूमियों में नमदा में डाल दिया था ।।२५।। वहाँ पर इन्द्र गोप के समान सुन्दर-शुक के मुख के सदृश वर्ण वाला—प्रकट पीन समान मास—अनेक प्रकार का विहित रुधिर सज्ञक रत्न का उद्धरण कर उसका सब समान ही मध्यम में इन्द्र के समान पाण्डर अत्यन्त विशुद्ध वर्ण वाला और इन्द्रनील के तुल्य-तुल में पटल होता है। यह परम ऐश्वर्य एव भृत्य के जनन करने वाला है-ऐसा कहा गया है। वह ही जब पक्व होता है तो निश्चय ही मुरवज्र के तुल्य वर्ण वाला हो जाता है ।।२६।२७।।

कावेरविन्ध्ययवनचीननेपालभूमिषु ।
लाङ्गली व्यकिरन्मेदो दानवस्य प्रयत्नत ।।२८
आकाशशुद्ध तैलाख्यमुत्पन्न स्फटिक तत. ।
मृणालशङ्खधवल किञ्चिद्वर्णान्तरान्वितम् ।।२९
न तत्तुल्य हि रत्नञ्च सर्वथा पापनाशनम् ।
संस्कृत शिल्पिना सद्यो मूल्य किञ्चिल्लभेन्नत ।।३०
आदाय शेषस्तस्यान्त्र बलस्य केरलादिषु ।
चिक्षेप तत्र जायन्ते विद्रुमा. सुमहागुणाः ।।३१

सेवनात्कृतपिण्डाना पापजित्कामद नृणाम् ।
वाराणसी पर तीर्थं विश्वेशो यत्र केशव. ॥३
कुरुक्षेत्र पर तीर्थं दानाद्यं र्भुक्तिमुक्तिदम् ।
प्रभास परम तीर्थं सोमनाथो हि तत्र च ॥४
द्वारका च पुरी रम्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिका ।
प्राची सरस्वती पुण्या सप्तसारस्वत परम् ॥५
केदार सर्वपापघ्न शम्भलग्राम उत्तमम् ।
नारायण महातीर्थं मुक्त्यै वदरिकाश्रमम् ॥६
श्वेतद्वीप पुरी माया नैमिष पुष्कर परम् ।
अयोध्या चार्य्यतीर्थन्तु चित्रकूटश्च गोमती ॥७

सूतजी ने कहा—अब हम समस्त तीर्थों को बतलाते हैं । गगा उन समस्त तीर्थों में उत्तम से भी उत्तम तीर्थ है । यह गगा सर्वत्र ही सुलभ होती है केवल यह तीन स्थानो मे दुलभ हुआ करती है ॥१॥ वे तीन स्थान हैं—हरिद्वार—प्रयाग और गगा-सागर सगम । प्रयाग परम तीर्थ है जो मृत पुरुषो को मुक्ति एव भुक्ति प्रदान करने वाला होता है ।२॥ वाराणसी भी परम तीर्थ है जहा विश्व के नाथ केशव विद्यमान रहते हैं । इसके सेवन करने से तथा यहाँ पिण्ड-दान करने से प्राणी पापो पर विजय प्राप्त कर लेता है और यह मानवो की अभीष्ट कामनाओ को देने वाला है ॥३॥ कुरुक्षेत्र भी एक परमोत्तम तीर्थ है । यहाँ दान आदि देने पर इनके द्वारा मनुष्य भुक्ति एव मुक्ति दोनो की प्राप्ति किया करता है । प्रभास क्षेत्र अति श्रेष्ठ तीर्थ है । वहा पर भगवान् सोमनाथ विराजते हैं ॥ ४ ॥ द्वारकापुरी परम सुन्दर है जो भोग और मोक्ष को प्रदान करने वाली है । प्राची सरस्वती पुण्या है और सप्त सारस्वत परम तीर्थ है ॥५॥ केदार तीर्थ समस्त प्रकार के पापो का हनन करने वाला है तथा शम्भल ग्राम अति उत्तम है । नारायण महान् तीर्थ हैं । मुक्ति के प्राप्त करने के लिए वदरिकाश्रम है ॥ ६ ॥ श्वेतद्वीप—मायापुरी—नैमिष और पुष्कर परम तीर्थ हैं । अयोध्या आर्यों का श्रेष्ठ तीर्थ है । चित्रकूट—गोमती तीर्थ हैं ॥७॥

पर सविता देव—शिव—गणेश—साक्षात् शक्ति देवी और भगवान् हरि सन्थित रहा करते है ॥ १२ ॥ इन उपर्युक्त तीर्थों में तथा जो नहीं बताये गये हैं ऐसे अन्य तीर्थों में किया हुआ स्नान—दान—जाप—तप—पूजा—श्राद्ध और पिण्ड-दान आदि सभी सत्कर्म अक्षय हो जाया करते हैं ॥१३॥ शालग्राम का अचन सभी कुछ प्रदान करने वाला है। पशुपति का परम तीर्थ है। गौ का मुख वाराह—भाण्डीर—स्वामी संज्ञा वाला है। लोह दण्ड में महा विष्णु है तथा मन्दार में मधुसूदन हैं। कामाख्या काम रूप एक महान् तीर्थ है जहाँ पर भगवती कामाख्या विराजमान रहती है। पुण्ड्र वर्द्धनक तीर्थ है जहाँ पर स्वामि कार्त्तिकेय विद्यमान है ॥१४।१५॥

विरजस्तु महातीर्थं तीर्थं श्रीपुरुषोत्तमम् ।
महेन्द्रपर्वतस्तीर्थं कावेरी च नदी परा ॥१६
गोदावरी महातीर्थं पयोष्णी वरदा नदी ।
विन्ध्य पापहरं तीर्थं नर्मदाभेद उत्तमः ॥१७
गोकर्णं परमं तीर्थं तीर्थं माहिष्मती पुरी ।
कालञ्जरं महातीर्थं शुक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥१८
कृते शौचे मुक्तिदश्च शार्ङ्गधारी तदन्तिके ।
विरजं सर्वदं तीर्थं स्वर्णाक्षं तीर्थमुत्तमम् ॥१९
नन्दितीर्थं मुक्तिदञ्च कोटितीर्थफलप्रदम् ।
नासिक्यञ्च महातीर्थं गोवर्द्धनमतः परम् ॥२०
कृष्णा वेणी भीमरथा गण्डकी या त्विरावती ।
तीर्थं विन्दुसरः पुण्यं विष्णुपादोदकं परम् ॥२१

विरज महान् तीर्थ है और श्री पुरुषोत्तम तीर्थ है। महेन्द्र पर्वत भी तीर्थ है तथा कावेरी परम नदी है। गोदावरी नदी भी महान् तीर्थ स्वरूपा है और पयोष्णी वर देने वाली नदी है। विन्ध्य पापों के हरण करने वाला तीर्थ है तथा नर्मदा भेद उत्तम है ॥१६।१७॥ गोकर्ण परमोत्तम तीर्थ है और माहिष्मती पुरी तीर्थ है। कालञ्जर महान् तीर्थ है तथा सर्वोत्तम शुक्रतीर्थ है ॥१८॥ ये सम्पूर्ण प्रकार के पापों से शुद्ध करके मुक्ति प्रदान करने वाले हैं।

उनके पास में ही शार्ङ्गधारी तीर्थ है। विरज नामधारी तीर्थ सभी कुछ देने वाला है। स्वर्णाक्षि अति उत्तम तीर्थ है ॥ १९ ॥ नन्दि तीर्थ मुक्तिदायक है और करोडों तीर्थों के फलों का देने वाला है। नासिक्य महातीर्थ है। इसके भी परतीर्थ गोवर्द्धन है। कृष्णा, वेणी, भीमरथा, गण्डकी और इरावती ये सभी तीर्थ हैं। विन्दुसर परम पवित्र तीर्थ है तथा विष्णुपादोदक परम तीर्थ है ॥२०।२१॥

ब्रह्मध्यानं परं तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ।
दमस्तीर्थं तु परमं भावशुद्धिः परस्तथा ॥२२
ज्ञानह्रदे ध्यानजले रागद्वेषमलापहे ।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम् ॥२३
इदं तीर्थमिदं नेति ये नरा भेददर्शिनः ।
तेषां विधीयते तीर्थगमनं तत्फलञ्च यत् ॥
सर्वं ब्रह्मेति योऽवैति नातीर्थं तस्य किञ्चन ॥२४
एतेषु स्नानदानानि श्राद्धं पिण्डमथाक्षयम् ।
सर्वा नद्यः सर्वशैला तीर्थं देवादिसेवितम् ॥२५
श्रीरङ्गश्च हरेस्तीर्थं तापी श्रेष्ठा महानदी ।
सप्तगोदावरं तीर्थं तीर्थं कोणगिरिः परम् ॥२६
महालक्ष्मीपत्र देवी प्रणीता परमा नदी ।
सह्याद्रौ देवदेवेश एकवीरः सुरेश्वरी ॥२७
गङ्गाद्वारे कुशावर्ते विन्ध्यके नीलपर्वते ।
स्नात्वा कनखले तीर्थे स भवेन्न पुनर्भवे ॥२८
एतान्यन्यानि तीर्थानि स्नानाद्यैः सर्वदानि हि ।
श्रुत्वाऽब्रवीद् हरेर्ब्रह्मा व्यासं दक्षादिसंयुतम् ॥२९
एतान्युक्त्वा च तीर्थानि पुनस्तीर्थोत्तमोत्तमम् ।
गयाख्यं प्राह सर्वेषामक्षय ब्रह्मलोकदम् ॥३०

ब्रह्मध्यान अर्थात् नितान्त एकान्त स्थल में एकाग्र मन से ब्रह्म का ध्यान करना सबमें उत्तम एवं श्रेष्ठ तीर्थ है। अपनी समस्त इन्द्रियों पर पूर्ण निय

ग्रहण कर लेना भी तीर्थ के समान है । इन्द्रियों का दमन करना परमतीर्थ है तथा अपनी भावनाओं की शुद्धि कर लेना भर के समान है ॥ २२ ॥ ज्ञानरूपी ह्रद में और राग तथा द्वेष के मल का अपहरण करने वाले ध्यान रूपी जल में जो नित्य प्रति इस मानस तीर्थ में स्नान करता है वह मनुष्य परमगति को प्राप्त हो जाता है ॥ २३ ॥ यह तो तीर्थ है और यह तीर्थ स्थान नहीं है जो मनुष्य इस प्रकार से भेद के दर्शन वाले हैं उनको ही तीर्थों के गमन करने का विधान है और उनको ही तीर्थों का फल भी प्राप्त होता है जोकि ऊपर में बतलाया गया है । जो सभी को ब्रह्ममय ही मानता है उस की दृष्टि तथा बुद्धि में अतीर्थ कुछ भी नहीं है ॥२४॥ इन तीर्थों में किए हुए स्नान—दान—श्राद्ध और पिण्ड सब अक्षय हो जाते हैं । समस्त नदियाँ और सम्पूर्ण शैल देवादि से सेवित हैं और तीर्थ स्वरूप हैं ॥२५॥ श्री रंग हरि का तीर्थ है । तापी महानदी श्रेष्ठ है । सप्त गोदावर तीर्थ है और कोणगिरि परम तीर्थ है ॥ २६ ॥ जहाँ पर महालक्ष्मी देवी है वहाँ पर परमा प्रणीता नदी है । सह्याद्रि में देवदेवेश एक वीर हैं और पुरन्दरी है ॥२७॥ गङ्गाद्वार में—कुशावर्त्त में—विन्ध्यक में और नील पर्वत में तथा कनखल तीर्थ में जो स्नान किया जाता है वह स्नान करने वाला इस संसार में पुनर्जन्म ग्रहण नहीं करता है ॥ २८ ॥ सूतजी ने कहा—मैंने उपर्युक्त तीर्थ तथा अन्य तीर्थ जिनका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया है, इनमें स्नानादि के द्वारा सभी कुछ प्राप्त हो जाता है । यह वृत्तान्त श्री हरि भगवान् से श्रवण करके ब्रह्माजी दक्षादि से संयुत व्यासजी से बोले—इन समस्त तीर्थों को कहकर फिर तीर्थों में परम श्रेष्ठ गया नामक तीर्थ के विषय में कहा था जोकि सबसे अक्षय है और ब्रह्मलोक को प्रदान कराने वाला है ॥२९॥३०॥

४५—गया माहात्म्य

सारात्सारतरं व्यास गयामाहात्म्यमुत्तमम् ।
प्रवक्ष्यामि समासेन भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु ॥१
गयासुरोऽभवत् पूर्वं वीर्य्यवान् परमः स च ।
तपस्तप्यन्महाघोरं सर्वभूतोपतापनम् ॥२

यत्र श्राद्ध पिण्डदान स्नानादि कुरुते नर ।
स स्वर्गं ब्रह्मलोकञ्च गच्छेन्न नरकं नर. ॥८
गयातीर्थे पर ज्ञात्वा याग चक्रे पितामह ।
ब्राह्मणान्पूजयामास ऋात्विगर्थमुपागतान् ॥६
महानदी रसवहा सृष्ट्वा वाप्यादिक तथा ।
भक्ष्यभोज्यफलादींश्च कामधेनु तथासृजत् ॥
पञ्चक्रोश गयाक्षेत्र ब्राह्मणेभ्यो ददौ प्रभु ॥१०
धर्मयागेषु लोभात् प्रतिगृह्य धनादिकम् ।
स्थिता विप्रास्तदा शप्ता गयाया ब्राह्मणास्तत ॥११
माभूत्त्रैपुरुषी विद्या मास्त्वत्रैपुरुष धनम् ।
युष्माक स्याद्वारिवहा नदी पाषाणपर्वत ॥१२
शप्तैस्तु प्रार्थितो ब्रह्माऽनुग्रह कृतवान् प्रभुः ।
लोका पुण्या गयाया हि श्राद्धिना ब्रह्मलोकगा ॥
युष्मान् ये पूजयिष्यन्ति तैरह पूजित सदा ॥१३
ब्रह्मज्ञान गयाश्राद्ध गोगृह मरण तथा ।
वास पुंसा कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा ॥१४

जो मनुष्य यहाँ पर यज्ञ—श्राद्ध—पिण्डदान और स्नान आदि किया करता है वह मनुष्य स्वर्ग और ब्रह्मलोक चला जाता है और फिर नरक में कभी नहीं जाया करता है ॥ ८ ॥ पितामह ने इस गया तीर्थ में स्नान करके याग किया था। जो ब्राह्मण ऋत्विक के कार्य के लिये आये थे उन सब का पूजन किया था ॥ ६ ॥ रस का वहन करने वाली महानदी की रचना करके वापी आदि का सृजन किया था तथा भक्ष्य—भोज्य फलादि को एवं कामधेनु को सृजा था। प्रभु ने पाँच कोश के विस्तार वाला गया तीर्थ ब्राह्मणों को दे दिया था ॥ १० ॥ धर्म के भोगों में लालच से धनादि का प्रतिग्रह लेकर वहाँ स्थित रहा करते थे। तब से गया में विप्र शप्त हो गये हैं ॥ ११ ॥ उन विप्रों को ऐसा शाप था कि तीन पीढ़ियों तक विद्या नहीं होगी—और तीन पुरुषों तक लगातार धन—वैभव भी नहीं रहेगा। तुम्हारी यह जल का वहन करती रहने वाली नदी है और पाषाण पर्वत है। इस प्रकार से जब शाप दिया गया

पञ्चक्रोश गयाक्षेत्र क्रोशमेक गयाशिर: ।
तत्र पिण्डप्रदानेन पितृणा परमा गति. ॥
गयागमनमात्रेण पितृणामनृणो भवेत् ॥३
गयायां पितृरूपेण देवदेवो जनार्द न ।
त दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्ष मुच्यते वै ऋणत्रयात् ॥४
रथमार्गं गयातीर्थे दृष्ट्वा रुद्र पदाधिके ।
कालेश्वरञ्च केदार पितृणामनृणो भवेत् ॥५
दृष्ट्वा पितामह देव सर्वपापै प्रमुच्यते ।
लाक त्वनामय याति दृष्ट्वा च प्रपितामहम् ॥६
तथा गदाधर देव माधव पुरुषात्तमम् ।
त प्रणम्य प्रयत्नेन न भूया जायते नर ॥७

ब्रह्मा जी ने कहा—कीकटो मे गया पुण्य स्थल है । राजगृह वन परम पुण्य स्वरूप है । नदियो मे पुन पुन धारण विषय पुण्यमय है ॥ १ ॥ पूर्व पश्चिम मे मृत्यु पृष्ठ है और दक्षिणोत्तर म ढाई कोश पर्यन्त गया का मान बताया गया है ॥ २ ॥ पाँच कोश तक गया क्षेत्र है और एक कोश गया का शिर है । वहाँ पर पिण्ड प्रदान करने से पितरो की परम गति होती है । केवल गया मे गमन करने ही से पितरों के ऋण मे मनुष्य उऋण हो जाया करता है ॥ ३ ॥ गया मे पितृ रूप से देवो के भी देव भगवान् जनार्दन स्थित है । पुण्डरीकाक्ष उनको देखकर ही कि गया में आगए है उन्हें तीनो ऋणों से मुक्त कर दिया करते हैं अथवा पुण्डरीकाक्ष का वहाँ दर्शन प्राप्त करते ही वह तीनो ऋणो से छुटकारा पा जाता है ॥ ४ ॥ गया तीर्थ मे रथ के मार्ग की ओर पदाधिक पर रुद्र को—कालेश्वर और केदार को देख कर अर्थात् इन सब का दर्शन प्राप्त कर मनुष्य पितरो के ऋण मे उरिण हो जाता है ॥ ५ ॥ पितामह देव का दर्शन करके मानव समस्त प्रकार के पापो से छुटकारा प्राप्त कर लेता है । प्रपितामह का दर्शन कर निरामय लोक की प्राप्ति करता है ।६। तथा गदाधर देव—पुरुषो मे उत्तम माधव को प्रयत्न पूर्वक प्रणाम करके मनुष्य फिर इस संसार मे जन्म नहीं ग्रहण करता है ॥७॥

नाश कर दिया करता है ॥ १३ ॥ स्वर्ग द्वार के ईश्वर का दर्शन करके मनुष्य भव-बन्धन से मुक्त हो जाता है । रामेश्वर और गदा लोक का दर्शन प्राप्त कर मनुष्य स्वर्ग की प्राप्ति करता है ॥१४॥

ब्रह्मेश्वरं तथा दृष्ट्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
मुण्डपृष्ठे महाचण्डी दृष्ट्वा कामानवाप्नुयात् ॥१५
फल्ग्वीशं फल्गुचण्डीञ्च गौरीं दृष्ट्वा च मङ्गलाम् ।
गोमेक गोपतिं देव पितॄणामनृणो भवत् ॥१६
मङ्गारेशञ्च सिद्धेशं गयादित्यं गजं तथा ।
मार्कण्डेयेश्वरं दृष्ट्वा पितृणामनृणो भवेत् ॥१७
फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् ।
एतेन किं न पर्याप्तं नृणां सुकृतिकारिणाम् ॥
ब्रह्मलोकं प्रयान्तीह पुरुषानेकविंशतिम् ॥१८
पृथिव्यां यानि तीर्थानि ये समुद्राः सरांसि च ।
फल्गुतीर्थं गमिष्यन्ति वारमेकं दिने दिने ॥१६
पृथिव्याञ्च गया पुण्या गयायाञ्च गयाशिरः ।
श्रेष्ठं तथा फल्गुतीर्थं तन्मुखञ्च सुरस्य हि ॥२०
उदीचि कनकानद्या नाभितीर्थन्तु मध्यतः ।
पुण्यं ब्रह्मसदस्तीर्थं स्नानात्स्याद्ब्रह्मलोकदं ॥२१

(तथा ब्रह्मेश्वर का दर्शन कर ब्रह्म हत्या से मुक्ति पा जाता है । मुण्ड पृष्ठ पर महा चण्डी का दर्शन कर मनुष्य अपनी समस्त कामनाओं की प्राप्ति करता है ॥ १५ ॥ फल्गु के स्वामी और फल्गु की चण्डी तथा मङ्गला गौरी-गोपति—गोपति देव का दर्शन करके पितरों के ऋण से उरिण हो जाता है । ॥ १६ ॥ मङ्गारेश—सिद्धेश—गयादित्य—गज—मार्कण्डेयेश्वर का दर्शन करने से मनुष्य पितृगण के ऋण से मुक्त हो जाया करता है ॥ १७ ॥ फल्गु नदी में स्नान करके तथा गदाधर देव का दर्शन करके इतने ही से क्या पर्याप्त नहीं होता ? जो मनुष्य सुकृत करने वाले हैं उनको इतना ही सब

देता है ॥२३॥ ब्रह्मतीर्थ में—रामतीर्थ में—प्राग्नेय में और सोमतीर्थ में तथा रामह्रद में श्राद्ध करने वाला व्यक्ति अपने पितृ कुल को ब्रह्मलोक में प्राप्त करा दिया करता है ॥२४॥ उत्तर मानस में श्राद्ध करने वाला मानव फिर इस लोक में जननी के जठर निवास की पीड़ा प्राप्त नहीं करता है। दक्षिण मानस में श्राद्ध विधान को साङ्ग सम्पन्न करने वाला व्यक्ति अपने पितरों को ब्रह्मलोक में ले जाया करता है ॥२५॥ कूट में भीष्म तर्पण करने वाला अपने पितरों का उद्धार कर देता है। गृध्रेश्वर में श्राद्ध करने वाला पितरों के ऋण से उऋण हो जाता है ॥२६॥ धेनुकारण्य में श्राद्धकर्त्ता पितृगण को ब्रह्मलोक में पहुचा देता है। तिल और धेनुका दान करने वाला धेनुका दर्शन करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२७॥ ऐन्द्र—नरतीर्थ वासव तथा वैष्णव में एवं महानदी में श्राद्ध करने वाला पितरों को ब्रह्मलोक में प्राप्त करा दिया करता है ॥ २८ ॥

गायत्रे चैव सावित्रे तीर्थे सारस्वते तथा।
स्नानसन्ध्यातर्पणकृत् श्राद्धी चैकोत्तरं शतम् ॥
पितृणां तु कुलं ब्रह्मलोकं नयति मानवः ॥२६
ब्रह्मयोनिं विनिर्गच्छेत्प्रयतः पितृमानसः ।
तर्पयित्वा पितॄन् देवान् विशेद्योनिसङ्कटे ॥३०
तर्पणे काकजङ्घाया पितृणां तृप्तिरक्षया ।
धर्मारण्ये मतङ्गस्य वाप्यां श्राद्धी दिवं व्रजेत् ॥३१
धर्मयूपे च कूपे च पितृणामनृणो भवेत् ।
प्रमाणं देवताः सन्तु लोकपालाश्च साक्षिणः ॥
मयाऽऽगत्य मतङ्गेऽस्मिन्पितृणां निष्कृतिः कृता ॥३२
रामतीर्थे नरः स्नात्वा श्राद्धं कृत्वा प्रभासके ।
शिलायां प्रेतभावात्स्युर्मुक्ता पितृगणाः किल ॥३३
श्राद्धकृच्च स्वपृष्ठाया त्रिःसप्तकुलमुद्धरेत् ।
श्राद्धकृन्मुण्डपृष्ठादौ ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ॥३४

धर्मारण्यं धर्मपृष्ठं धेनुकारण्यमेव च ।
दृष्ट्वैतानि पितृश्चार्घ्य वंशान्विंशतिमुद्धरेत् ॥३९
ब्रह्मारण्य मधनद्या पश्चिमे भाग उच्यते ।
पूर्वं ब्रह्मसदो भागो नागाद्रिर्भरताश्रम. ॥४०
भरतस्याश्रमे श्राद्धी मतङ्गस्य पदे भवेत् ।
गयाशीर्षाद्दक्षिणतो महानद्याश्च पश्चिम ॥४१
तत्स्मृतश्चम्पकवनं तत्र पाण्डुशिलास्ति हि ।
श्राद्धी तत्र तृतीयायां निश्चिरायाश्च मण्डले ॥
महाह्रदे च कौशिक्यामक्षय फलमाप्नुयात् ॥४२

जनार्दन के हाथ मे मनुष्य अपना पिण्ड देवे और प्रार्थना करे कि हे जनार्दन देव ! यह पिंड मैंने आपके हाथ मे दिया है । अब परलोक जाने पर लोक जाने पर मुझे आप अक्षय मोक्ष प्रदान करे । ऐसा करने वाला मानव अपने पितरो के सहित निश्चित रूप से ब्रह्मलोक की प्राप्ति किया करता है ॥३६।३७॥ गया मे ब्राह्मण धर्म पृष्ठ पर सर मे—गया के तीर्थ मे—अक्षय वट मे पितरो को पिंड देने वाला अक्षय पुण्य—फल को प्राप्त करता है ॥३८॥ धर्मारण्य-धर्म पृष्ठ और धेनुकारण्य इनका दर्शन करके पितरो को अर्घ्य देने वाला पुरुष अपने बीस वंशो का उद्धार करता है ॥३९॥ ब्रह्मारण्य मध नदी का पश्चिम भाग कहा जाता है और पूर्व मे ब्रह्मसद भाग है तथा नागाद्रि और भरताश्रम है ॥ ४० ॥ भरत के आश्रम मे श्राद्ध करने वाला मतंग के पद मे होता है । गया शीर्ष से दक्षिण मे और महानदी के पश्चिम में वहां पर चम्पक वन बताया गया है । वहाँ पर पाण्डु शिला है । वहां श्राद्ध करने वाला तृतीया मे और निश्चिरा के मडल मे तथा महाह्रद मे एव कौशिकी में श्राद्ध-कर्त्ता अक्षय फल का भागी होता है ॥४१।४२॥

वैतरण्याश्चोत्तरतस्तृतीयाख्यो जलाशयः ।
पदानि तत्र क्रौञ्चस्य श्राद्धी स्वर्गं नयेत्पितृन् ॥४३
क्रौञ्चपादादुत्तरतो निश्चिराख्यो जलाशयः ।

करना तीनों लोकों में महान् दुर्लभ है ॥ ४८ ॥ महाह्लद में—कौशिकी में और विशेषतया मूल क्षेत्र में—गृध्र कूट की गुहा में किया हुआ श्राद्ध सात महा फल वाला होता है ॥४९॥

यत्र माहेश्वरी धारा श्राद्धी तत्रानृणो भवेत् ।
पुण्या विशालामासाद्य नदी त्रैलोक्यविश्रुताम् ॥
अग्निष्टोममवाप्नोति श्राद्धी प्रायाद्दिव नर ॥५०
श्राद्धी सोमपदे स्नात्वा वाजपेयफल लभेत् ।
रविपादे पिण्डदानात्पतितोद्धारण भवेत् ॥५१
यो गयास्थो ददात्यन्न पितरस्तेन पुत्रिण. ।
काक्षन्ते पितर पुत्रान् नरकाद् भयभीरव ॥५२
गया यास्यति य कश्चित्सोऽस्मान् सन्तारयिष्यति ।
गयाप्राप्त सुत दृष्ट्वा पितृणामुत्सवो भवेत् ॥५३
पद्भ्यामपि जल स्पृष्ट्वा अस्मभ्य किल दास्यति ।
आत्मजो वा तथान्यो वा गयाकूपे यदा तदा ॥५४
यन्नाम्ना पातयेत् पिण्ड त नयेद् ब्रह्म शाश्वतम् ।
पुण्डरीक विष्णुलोक प्राप्नुयात्कोटितीर्थग ॥५५
या सा वैतरणी नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।
साऽवतीर्णा गयाक्षेत्रे पितृणा तारणाय हि ॥५६

जहाँ पर माहेश्वरी धारा है वहाँ श्राद्ध करने वाला उरिण हो जाया करता है। परम पुण्यमयी और त्रैलोक्य में परम प्रसिद्ध विशाला नदी को प्राप्त करके श्राद्ध करने वाला मनुष्य अग्निष्टोम याग का फल प्राप्त करता है और फिर वह दिवलोक को चला जाता है ॥५०॥ सोमपद में स्नान करके श्राद्ध के विधान को साङ्ग सम्पन्न करने वाला पुरुष वाजपेय यज्ञ का फल पा जाता है। रविपाद में पिंडों के प्रदान करने से पतितों का उद्धार होता है ॥ ५१ ॥ जो गया में स्थित होकर अन्न का दान करता है उसी पुत्र से पितृगण पुत्र वाले होते हैं। पितर लोग नरक से भय भीरु होते हुए ऐसे पुत्रों की इच्छा किया करते हैं ॥५२॥ पितृगण सोचा करते हैं कि हमारे पुत्रादि में से जो कोई भी

चाहिए जो ब्रह्म के द्वारा प्रकल्पित किये हुए हैं।।५८।। जो विप्र ब्रह्म प्रकल्पित हैं उनका ब्रह्म सद्स्थान है। ब्रह्म प्रकल्पित स्थान है और विप्र भी ब्रह्म प्रकल्पित हैं। पूजित पितृगणों के साथ समस्त देवगण पूजित किये गये हैं ।।५९।। गया वासी विप्रों को विधि–विधान से हव्य–कव्यों के द्वारा तृप्त करना चाहिए गया में देह परित्याग करने में स्व न किया जाता है ।।६०।। परमोत्तम गया क्षेत्र में जो वृष का उत्सर्ग करता है वह अग्निष्टोम के फल को प्राप्त करता है–इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं है ।।६१।। महान् बुद्धिमान् पुरुष को अपना भी तिलों के बिना गया में पिंडों का निर्वपन करे और मनुष्य औरों का भी करे ।।६२।। जितने भी ज्ञाति वाले–बान्धव और सुहृद्गण रितर हैं हे व्यास देव ! उन सबके लिये विधान के साथ गया की भूमि में पिंड देना चाहिए ।।६३।।

रामतीर्थे नर स्नात्वा गोशतस्याप्नुयात्फलम् ।
मतङ्गवाप्यां स्नात्वा च गोसहस्रफलं लभेत् ।।६४
निश्चिरासङ्गमे स्नात्वा ब्रह्मलोकं नयेत् पितृन् ।
वसिष्ठस्याश्रमे स्नात्वा वाजपेयञ्च विन्दति ।।
महाकोश्या समावासादश्वमेधफलं लभेत ।।६५
पितामहस्य सरस प्रसूता लोकपावनी ।
समीपे त्वग्निधारेति विश्रुता कपिला हि सा ।।
अग्निष्टोमफलं श्राद्धी स्नात्वाऽत्र कृतकृत्यता ।।६६
श्राद्धी कुमारधारायामश्वमेधफलं लभेत् ।
कुमारमभिगम्याथ महामुक्तिमवाप्नुयात् ।।६७
सोमकुण्डे नरः स्नात्वा सोमलोकञ्च गच्छति ।
सवर्त्तस्य नरो वाप्या सुभगः स्यात्तु पिण्डद. ।।६८
धौतपापो नरो याति प्रेतकुण्डे च पिण्डदः ।
देवनद्यां लेहिहाने मथने जानुगर्तके ।।६९
एवमादिषु तीर्थेषु पिण्डदस्तारयेत् पितृन् ।
नत्वा देव वसिष्ठेश प्रभूतमृणसञ्चयम् ।।७०

वर्जयित्वा कुरुक्षेत्र विशाला विरजा गयाम् ।
दिवा च सर्वदा रात्रौ गयायां श्राद्धकृद्भवेत् ॥४
वाराणस्यां कृत श्राद्ध तीर्थे शोणनदे तथा ।
पुन पुनर्महानद्यां श्राद्धी स्वर्ग पितृन्नयेत् ॥५
उत्तर मानस गत्वा सिद्धि प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ।
तस्मिन्निवर्त्तयेद् श्राद्ध स्नानञ्च व निवर्त्तयेत् ॥
कामान्स लभते दिव्यान्मोक्षोपायञ्च सर्वश ॥६
दक्षिण मानस गत्वा मौनी पिण्डादि कारयत् ।
ऋणत्रयापाकरण लभेद्दक्षिणमानसे ॥७

(ब्रह्माजी ने कहा—गया को जाने क लिये उद्यत पुरुष पहिले विधान से श्राद्ध करे और फिर कापट घन करक ग्राम की भी प्रदक्षिणा करे ॥१॥ इसके अनन्तर अन्य ग्राम म जाकर श्राद्ध मे शेष का भ जन कर और फिर प्रदक्षिणा करके प्रतिग्रह म रहित होता हुआ आगे जाना चाहिए ॥२॥ गृह से चलने वाले क जो कि गया के प्रति गमन करता है पितर लोग एक–एक पद (कदम) पर स्वग क समारोहण करन क सोपान (सीढी) पर ऊपर चढा करत हैं। गया क्षेत्र को मान द ले या मुण्डन और उपवास समस्त माग म आने वाले तीर्थो में होना चाहिए क्योकि यही शास्त्रीय विधान है ॥३॥ कुरुक्षेत्र और विशाला विरजा गया को छोड कर सर्वदा दिन म और गया में रात्रि म श्राद्ध करने वाला होवे ॥ ४ ॥ वाराणसी में तथा शोणनद मे किया हुआ श्राद्ध तथा महानदी म पुन पुन श्राद्ध करने वाला अपने पितृगण को स्वर्ग मे प्राप्त करा देता है ॥५॥ उत्तर मानस में जाकर परमोत्तम सिद्धि को प्राप्त करता है। उसम ही श्राद्ध का निवर्तन करे और उसी म स्नान–क्रिया को पूर्ण करना चाहिए। ऐसा पुरुष अपनी परम दिव्य कामनाओ को प्राप्त करता है और सभी मोक्ष के उपाय का भी लाभ करता है ॥ ६ ॥ दक्षिण मानस म पहुँच कर मौन धारण कर पिण्डदान आदि करे–करावे । दक्षिण मानस में जाकर यह करने से तीनो प्रकार के ऋणों का अपाकरण करता है ॥७॥

नरक से छुटकारा पा जाता है ॥१३॥ फल्गुतीर्थ में मनुष्य स्नान करके गदाधर देव का दर्शन करे तो तुरन्त ही अपने आपका और दश पहिले तथा दश आगे आने वाले कुलों का उद्धार कर देता है ॥१४॥

प्रथमे हि विधि प्रोक्तो द्वितीयदिवसे व्रजेत् ।
धर्मारण्य मतङ्गस्य वाप्यां पिण्डादिकृतद्भवेत् ॥१५
धर्मारण्य समासाद्य वाजपेयफलं लभेत् ।
राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं स्याद् ब्रह्मतीर्थके ॥१६
श्राद्धं पिण्डोदकं कार्यं मध्ये वै यूपयूपयोः ।
कूपोदकेन तत्कार्यं पितृणां दत्तमक्षयम् ॥१७
तृतीयेऽह्नि ब्रह्मसदो गत्वा स्नात्वाऽथ तर्पणम् ।
कृत्वा श्राद्धादिकं पिण्डं मध्ये वै यूपकूपयोः ॥१८
गोप्रचारसमीपस्था आब्रह्म ब्रह्मकल्पिता ।
तेषां सेवनमात्रेण पितरो मोक्षगामिनः ॥
यूपं प्रदक्षिणीकृत्य वाजपेयफलं लभेत् ॥१९
फल्गुतीर्थे चतुर्थेऽह्नि स्नात्वा दवादितर्पणम् ।
कृत्वा श्राद्धं गयाशीर्षे देवरुद्रपदादिषु ॥२०
पिण्डान्देहि मुखे व्यास पञ्चाग्नौ च पदत्रये ।
सूर्येन्दुकार्तिकेयेषु कृतं श्राद्धं तथाऽक्षयम् ॥
श्राद्धं तु नवदैवत्यं कुर्याद् द्वादशदैवतम् ॥२१

प्रथम दिवस की विधि बतलादी गई है अब दूसरे दिन में गमन करे। धर्मारण्य और मतङ्ग की वापी में पिंडों का प्रदान करने वाला होवे ॥१५॥ धर्मारण्य को प्राप्त कर वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त करना है। ब्रह्मतीर्थ में पिंडदान एवं स्नानादि करने से राजसूय और अश्वमेध दोनों यज्ञों के फलों की प्राप्ति किया करता है ॥१६॥ यूप यूप के मध्य में श्राद्ध एवं पिंडोदक कार्य करना चाहिए। कूपोदक से यह सब करना चाहिए। इससे पितरों को दिया हुआ अक्षय होता है ॥१७॥ अब तीसरे दिन में ब्रह्मसद में जाकर स्नान करे तथा तर्पण करे। यूप और कूप के मध्य में पिंड और श्राद्धादि करके गो प्रचार

श्राद्ध करके मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥ २४ ॥ गया शिर में शमी के पत्र के प्रमाण वाला पिंड देना चाहिए। इससे पितरगण देवत्व को प्राप्त हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए ॥ २५ ॥ मुण्ड पृष्ठ में धीमान् महादेव ने पद न्यस्त किया है। वहाँ पर अल्प तप से ही महान् पुण्य की प्राप्ति होती है ॥ २६ ॥ गया शीर्ष में जो पिंड नाम के द्वारा जिनको निर्वपन करता है उसके पितर जो नरक में स्थित हों वे दिवलोक को चले जाते हैं और जो स्वर्गवास करने वाले हैं वे मोक्ष की प्राप्ति कर लिया करते हैं ।२७। अब पाँचवाँ दिन का कृत्य बतलाया जाता है। पाँचवे दिन में गदालोल में स्नान कर और फिर वट के नीचे पितरों का पिंडदान करना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य अपने समस्त कुल को तार दिया करता है ॥२८॥

वटमूल समासाद्य शाकेनाप्युदकेन च।
एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता ॥२९
कृते श्राद्धेऽक्षयवटं दृष्ट्वा च प्रपितामहम्।
अक्षयाँल्लभते लोकान्कुलानामुद्धरेच्छतम् ॥३०
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्।
यजेद्वा अश्वमेधेन नील वा वृषमुत्सृजेत् ॥३१
प्रेतं कश्चित्समुद्दिश्य वणिजं कश्चिदब्रवीत्।
मम नाम्ना गयाशीर्षे पिण्डनिर्वपनं कुरु ॥
प्रेतभावाद्विमुक्तः स्यात्त्वमरो दातुरेव च ॥३२
श्रुत्वा वणिग्गयाशीर्षे प्रेतराजाय पिण्डकम्।
प्रददावनुजैः सार्द्धं स्वपितृभ्यस्ततो ददौ ॥३३
सर्वे मुक्ता विशालोऽपि सपुत्रोऽभूच्च पिण्डदः।
विशालायां विशालोऽभूद्राजपुत्रोऽब्रवीद् द्विजान् ॥३४
कथं पुत्रादयः स्युर्मे विप्राश्चाचुर्विशालकम्।
गयायां पिण्डदानेन तव सर्वं भविष्यति ॥
विशालोऽपि गयाशीर्षे पिण्डदोऽभूच्च पुत्रवान् ॥३५

येषा दाहो न क्रियते येऽग्निदग्धास्तथापरे ।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम् ॥४१
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामह ।
माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही ॥४२
तथा मातामहश्चैव प्रमातामह एव च ।
वृद्धप्रमातामहश्चाथ मातामही तत परम् ॥४३
प्रमातामही च तथा वृद्धप्रमातामहीति वै ।
अन्येषाञ्चैव पिण्डोऽयमक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥४४

आकाश में विशालक ने सित–रक्त और कृष्ण वर्ण वाले पुरुष को देखा था । उसने पूछा था— आप कौन हैं तब उन में से एक सित जो था वह बोला ॥३६॥ मैं सित तेरा पिता हूँ और इस शुभ कर्म से इन्द्रलोक को प्राप्त हो गया हूँ । हे पुत्र ! मेरे पिता रक्त वर्ण वाले हैं । यह ब्रह्म हत्यारे और अधिक पाप करने वाले हैं ॥ ३७ ॥ यह कृष्ण वर्ण वाले पितामह हैं । इसने ऋषियों को घातित किया था । ये दोनों अवीचि नरक में प्राप्त थे । अब हे पिंड देने वाले ! ये मुक्त होकर नारकीय यातना से छूट गये हैं ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर हम सभी मुक्त होकर अब उत्तम स्वर्गलोक में जा रहे हैं । वह विशाल भी परम कृतकृत्य होकर राज्य के सुख भोग कर दिवलोक को चला गया था ॥३९॥ वहाँ पिंडदान करने के समय में प्रार्थना करे कि जो हमारे कुल में ऐसे पितृगण हों जिनकी पिंडोदक क्रिया लुप्त होगई हो अर्थात् कोई भी पिंड तथा उदक देने वाला न रहा हो तथा जो चूड़ा संस्कार रहित हों—और जो गर्भ से ही निर्गत मृत होगए हों—जो ऐसे हों कि दाह ही न किया जाता हो—जो अग्नि से दग्ध होकर मृत हुए हों तथा अन्य भी जो कोई हों वे सभी भूमि में दिये हुए उदक से तृप्त हों और तृप्त होकर परम गति को प्राप्त होवें ॥४०॥४१॥ पिता पितामह तथा प्रपितामह, माता पितामही तथा प्रपितामही एवं मातामह–प्रमातामह और वृद्ध प्रमातामह एवं मातामही—प्रमातामही और वृद्ध प्रमातामही तथा अन्य जो भी कोई हों उन सबके लिये यह पिंड अक्षय होवे —यह कहकर पिंड-दान करना चाहिए ॥४२॥४३॥४४॥

इन्द्रो विपश्चिद्देवानां तद्रिपुः पुरुकुत्सरः ।
जघान हस्तिरूपेण भगवान्मधुसूदनः ॥८
गौतमस्य मनोः पुत्रा जाजश्च परशुस्तथा ।
विनीतश्च सुकेतुश्च सुमित्रः सुबलः शुचिः ।
देवो देवावृधो रुद्र महोत्साहाजितस्तथा ॥९
रथौजा ऊर्ध्वबाहुश्च शरणश्चानघो मुनिः ।
सुतपाः शङ्कुरित्येते ऋषयः सप्त कीर्त्तिताः ॥१०
वशवर्त्ति स्वधामान शिवा सत्या प्रतर्दना ।
पञ्च देवगणाः प्रोक्ताः सर्वे द्वादशकास्तु ते ॥११
इन्द्रः स्वशान्तिस्तच्छत्रुः प्रलम्बो नाम दानवः ।
मत्स्यरूपी हरिर्विष्णुस्तं जघान च दानवम् ॥१२
तामसस्य मनोः पुत्रा जानुजङ्घोऽथ निर्भयः ।
नवख्यातिर्नयश्चैव प्रियभृत्या विनिक्षिपः ॥१३
हुङ्ककृर्धिः प्रस्तलाक्षः कृतबन्धुः कृतस्तथा ।
ज्योतिर्धामा पृष्टकाव्यश्च नश्च तारिन्हेमको ॥१४
मुनयः कीर्त्तिताः सप्त सुरागाः स्वधियस्तथा ।
हरयो देवतानाञ्च चत्वारः पञ्चविंशकाः ॥१५

देवो का इन्द्र विपश्चिद् था और उसका शत्रु पुरुकुत्सर था । भगवान् मधु सूदन ने हस्ती के रूप से उसका हनन किया था ॥८॥ गौतम मनु के पुत्र जाज—परशु—विनीत—सुकेतु—सुमित्र—सुबल—शुचि—देव—देवावृध तथा महोत्साहाजित रुद्र थे ॥९॥ उस मन्वन्तर मे रथौजा, ऊर्ध्व बाहु, शरण, अनघ, मुनि, सुतपा, और शङ्कु ये सप्तर्षि बताये गये हैं ॥१०॥ वशवर्त्ति—स्वधामान—शिवा—स त्य और प्रतर्दन ये पाँच देवगण कीर्त्तित किये गये हैं वे सब द्वादशक थे ॥ ११ ॥ स्वशान्ति नामक इन्द्र था और उसका शत्रु प्रलम्ब नामधारी दानव था । उस दानव को मत्स्य का स्वरूप धारण करने वाले हरि विष्णु ने हनन किया था ॥१२॥ तामस नामक मनु के पुत्र जानुजङ्घ—निर्भय—नवख्याति—नय—प्रियभृत्य विनिक्षिप—हुङ्ककृधि—प्रस्तलाक्ष—कृतबन्धु—कृत थे और ज्योतिर्धामा—पृष्ट

काव्य-चैत्र-ज्योतिर्ग्नि-हमव ये सात मुनि बताये गये है । सुरागा और स्वधिय हरि थे तथा देवताओं के चार पञ्च विशक गुण हुए थे ॥१३,१४,१५॥

गण इन्द्र शिबिस्तस्य शत्रुर्भीमरथा स्मृता ।
हरिणा कूर्मरूपेण हतो भीमरथोऽसुर ॥१६
रैवतस्य मनो पुत्रा महाप्राणश्च साधव ।
वनबन्धुर्निरमित्र प्रत्यङ्ग परहा शुचि ॥१७
दृढव्रत केतुशृङ्ग ऋषयस्तस्य वर्ण्यते ।
देवश्रीर्वेदबाहुश्च ऊर्ध्वबाहुस्तथैव च ॥
हिरण्यरोमा पर्जन्य सत्यनामा स्वधाम च ॥१८
अभूतरजश्चैवैक स्तथा देवाश्वमेधस ।
वैकुण्ठश्चामृतश्चैव चत्वारो देवतागणा ॥१९
गणे चतुर्दश सुरा विभुरिन्द्र प्रतापवान् ।
शान्तशत्रुर्हतो दैत्या हसरूपेण विष्णुना ॥२०
चाक्षुषस्य मनो पुत्रा ऊरु पूरुर्महाबल ।
शतद्युम्नस्तपस्वी च सत्यबाहु कृतिस्तथा ॥२१
अग्निष्णुरतिरात्रश्च सुद्युम्नश्च तथा नर ।
हविष्मान्सुतनु श्रीमान्स्वधामा विरजस्तथा ॥
अभिमान सहिष्णुश्च मधुश्री ऋषय स्मृता ॥२२

उनका इन्द्र शिवि था और उसका शत्रु भीमरथ कहे गये हैं । भगवान् हरि ने कूर्मावतार धारण कर भीम रथ असुर का वध किया था ॥१६॥ रैवत मनु के पुत्र-महाप्राण साधव-वनबन्धु-निरमित्र—प्रत्यङ्ग—पराहा-शुचि-दृढ़ व्रत और केतुशृङ्ग हुए थे । अब उस मन्वन्तर के ऋषि वर्णित किये जाते हैं-देव श्री-वेदबाहु—ऊर्ध्व बाहु-हिरण्य रोमा-पर्जन्य-सत्य नामा और स्वधाम थे ॥१७।१८॥ अभूत रज-देवाश्वमेध-वैकुण्ठ और अमृत ये चार देवो के गण थे । इस गण मे चौदह सुर थे । उनका प्रतापव द् विभु इन्द्र हुआ था । उसका शत्रु शान्तासुर हुआ था जिस दैत्य का हस रूप धारी भगवान् विष्णु ने हनन किया था ॥१६।२०॥ अब चाक्षुष मन्वन्तर को बतलाते हैं । चाक्षुष मनु के

पुत्र ऊरु—पूरु—महाबल—शतद्युम्न—तपस्वी—सत्य बाहु—कृति—अग्निधृष्णु—अतिरात्र—सुद्युम्न तथा नर थे हुए थे। हविष्म नृ—सुतनु—श्रीमान्—स्वधामा—विरज—अभिमान—सहिष्णु और मधु भी ऋषिगण बताये गये हैं ॥२१।२२॥

आर्य्या प्रसूता भाव्यश्च लेखाश्च पृथुकास्तथा ।
अष्टकस्य गणाः पञ्च तथा प्रोक्ता दिवौकसाम् ॥२३
इन्द्रो मनोजव शत्रुर्महाकालो महाभुज ।
अश्वरूपेण स हतो हरिणा लोकधारिणा ॥२४
मनोर्वैवस्वतस्यैते पुत्रा विष्णुपरायणाः ।
इक्ष्वाकुश्च नाभाख्यो विष्टि सर्जातिरेव च ॥२५
हविष्यन्तस्तथा पांशुर्नभो नेदिष्ट एव च ।
करूपश्च पृषध्रश्च सुद्युम्नश्च मनो सुता ॥२६
अत्रिर्वसिष्ठो भगवाञ्जामदग्निश्च कश्यपः ।
गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ सप्तम ॥२७
तथा ह्यौकोनपञ्चाशन्मरुत परिकीर्त्तिता ।
६ आदित्या वसव साध्या गणा द्वादशकास्त्रय ॥२८

आर्य्या—प्रसूता—भाव्य—लेखा और पृथुक ये देवों के अष्टक के पाँच गण कहे गये हैं। उनका इन्द्र मनोजव था और इन्द्र का शत्रु महा भुज महा काल हुआ था। उसका वध लोकों के धारण करने वाले भगवान् हरि ने अश्व का स्वरूप धारण करके किया था ॥२३.२४॥ अब वैवस्वत मन्वन्तर को बतलाया जाता है—वैवस्वत मनु के पुत्र सब विष्णु परायण हुए थे। उनके नाम ये हैं—इक्ष्वाकु—नाभाख्य—विष्टि—सर्जाति—हविष्यन्त—पांशु—नभ—नेदिष्ट—करूप पृषध्र—सुद्युम्न हैं ॥२५।२६॥ अत्रि—वसिष्ठ—भगवान् जामदग्नि—कश्यप—गौतम भरद्वाज और विश्वामित्र ये उस मन्वन्तर के साथ ऋषि हैं ॥२७॥ उसमें उन-चास मरुद्गण कहे गये हैं। आदित्य—वसु और साध्य ये तीन द्वादशक गण थे। तथा एकादश रुद्र हुए थे और अष्ट वसु थे। दो अश्विनीकुमार विनिर्दिष्ट किये गये हैं तथा दस विश्वेदेवा हैं ॥२८॥

एकादश तथा रुद्रा वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिता ।
द्वावश्विनौ विनिर्दिष्टौ विश्वेदेवास्तथा दश ॥
दशैवाङ्गिरसो देवा नव देवगणास्तथा ॥२६
तेजस्वी नाम वै शक्रो हिरण्याक्षो रिपु स्मृत. ।
हतो वाराहरूपेण हिरण्याक्षोऽथ विष्णुना ॥३०
वक्ष्ये मनोर्भविष्यस्य सावर्णाख्यस्य वै सुतान् ।
विजयश्चार्ववीरश्च निर्देह सत्यवाक्कृतिः ॥
वरिष्ठश्च गरिष्ठश्च वाच सगतिरेव च ॥३१
अश्वत्थामा कृपा व्यासो गालवो दीप्तिमानथ ।
ऋष्यशृङ्गस्तथा राम ऋषय सप्त कीर्तिता ॥३२
सुतपा अमृताभाश्च मुख्याश्चापि तथा सुरा ।
तेषा गणस्तु देवाना एकैको विंशक स्मृत ॥३३
विरोचनसुतस्तेषा बलिरिन्द्रो भविष्यति ।
दत्त्वेमा याचमानाय विष्णवे य पदत्रयम् ॥
ऋद्धमिन्द्रपद हित्वा तत सिद्धिमवाप्स्यति ॥३४
वारुणेर्दक्षसावर्णेर्नवमस्य सुतान् शृणु ।
धृष्टिकेतुर्दीप्तिकेतु पञ्चहस्तो निराकृति ॥
पृथुश्रवा बृहद्द्युम्न ऋचीकी बृहतो गुण ॥३५
मेधातिथिर्द्युतिश्चैव सवलो वसुरेव च ।
ज्योतिष्मान्हव्यकव्यौ च ऋषयो विभुरीश्वर ॥३६
परो मरीचिर्गर्भश्च स्वधर्माणश्च ते त्रय ।
देवदानु. कालकाक्षस्तद्धन्ता पद्मनाभक ॥३७

दस अङ्गिरस देव हैं तथा नौ देवगण हैं ॥२६॥ तेजस्वी नाम वाला इन्द्र हुआ था और उसका शत्रु हिरण्य का नामधारी दैत्य था। उस दैत्य का भगवान् विष्णु ने वराह अवतार लेकर वध किया था ॥३०॥ अब सावर्ण्य नाम धारी भविष्य मनु के विषय में बतलायेंगे। सावर्ण्य मनु के पुत्र विजय—अर्ववीर—निर्देह—सत्य वाक्-कृति—वरिष्ठ—गरिष्ठ—वाच और सगति थे ॥३१॥ अश्व-

श्यामा—कुर—श्याम—गालव—दीप्तिमान्—श्रृष्य शृङ्ग—राम थे इस मन्वन्तर के सात ऋषि हैं ।।३२।। सुतपा—अमृताभा और मुख्या ये उन देवों के गण हैं जो एकैक विशक कहा गया है । उनका इन्द्र विरोचन का पुत्र बलि होगा जिसने भूमि के तीन पैड की याचना करने वाले वामन स्वरूपधारी विष्णु को देकर और जो इस श्रेष्ठ इन्द्र पद का त्याग करके सिद्धि की प्राप्ति करेगा ।।३३।३४।। अब इसके अनन्तर वारुणि दक्ष सावर्णि नवम के पुत्रा को सुनो—धृष्टकेतु—दीप्ति केतु—पञ्च हस्त—निराकृति—पृथुश्रवा—बृहद् द्युम्न—ऋचीक—बृहतो गुण—मेधातिथि—द्युति—सबल और वसु थे । ज्योतिष्मान्—हव्य—कव्य—विप्र और ईश्वर ये ऋषिगण हुए थे । पर-मरीचि—गभ और स्वधर्मा ये तीन थे । देवों का शत्रु कालक संज्ञा वाला है । उसका हनन करने वाले पद्म नाम हुए हैं ।।३५।३६।३७।।

धर्मपुत्रस्य पुत्रास्तु दशमस्य मनो श्रृणु ।
सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्च भूरिश्रेयश्च वीर्य्यवान् ।।३८
शतानीको निरमित्रो वृषसेनो जयद्रथ ।
भूरिद्युम्न सुवर्चाश्च शान्तिरिन्द्र प्रतापवान् ।।३९
अयोमूर्त्तिर्हविष्माश्च सुकृतश्चाव्ययस्तथा ।
नाभागोऽप्रतिमश्चैव सौरभा ऋषयस्तथा ।।४०
प्राणाख्या शतसंख्यास्तु देवतानां गणास्तदा ।
बलिमद्युक्त हरिश्च गदया घातयिष्यति ।।४१
रुद्रपुत्रस्य ते पुत्रान् वक्ष्याम्येकादशस्य तु ।
सर्वत्रय सुशर्मा च देवानीक पुरुर्गुरु ।।४२
क्षेत्रवर्णो दृढेपुश्च आर्द्रक पुत्रकस्तथा ।
हविष्मांश्च हविष्यश्च वरुणो विश्वविस्तरो ।।४३
विष्णुश्चैवाग्नितेजाश्च ऋषय सप्त कीर्त्तिता ।
विहङ्गमा कामगमा निर्माणरुचयस्तथा ।।४४
एकैकस्त्रिंशकास्तेषा गणश्चेन्द्रश्च वै वृष ।
दशग्रीवो रिपुस्तस्य श्रीरूपी घातयिष्यति ।।४५

शुचिरिन्द्रो महादैत्यो रिपुहन्ता हरिः स्वयम् ।
एको देवश्चतुर्द्धा तु व्यासरूपेण विष्णुना ॥५६
कृतस्तत पुराणानि विद्याश्चाष्टादशैव तु ।
अङ्गानि चतुरो वेदा मीमासा न्यायविस्तर ॥६०
पुराण धर्मशास्त्रञ्च आयुर्वेदार्थशास्त्रकम् ।
धनुर्वेदश्च गान्धर्वो विद्या ह्यष्टादशैव ता. ॥६१

भौत्य चतुर्दश मनु के पुत्रो के नाम ये हैं—ऊरु-गभीर-धृष्ट—तपस्वी-ग्राह-अभिमानी—प्रवीर-जिष्णु—सक्रन्दन—तेजस्वी-दुर्लभ ॥५६॥ अग्निध्र-अग्नि बाहु—मागध—शुचि—अजित-मुक्त और शुक्र ये चौदहवें मनु के सात ऋषि हैं । चाक्षुष—कर्मनिष्ठ—पवित्र—भ्राजिन और वाचा वृद्धा ये पाँच देवो के गण हैं जो कि सप्तक बताये गये हैं ॥५७।५८॥ उन देवताओं के इन्द्र का नाम शुचि है । उसका शत्रु महा दैत्य है जिसके हनन करने वाले स्वय भगवान् हरि हैं । एक ही देव है । वही चार रूप से विद्यमान है । व्यास के रूप वाले विष्णु ने फिर समस्त पुराणों की रचना की है । अठारह विद्या—चार वेद—उन वेदो के छै अङ्ग शास्त्र—मीमासा—न्याय शास्त्र का विस्तार-पुराण-धर्म-शास्त्र-आयुर्वेद-अर्थशास्त्र—धनुर्वेद-गान्धर्व वेद ये ही सब अष्टादश विद्याऐं कही जाती हैं । इन सबकी रचना विष्णु ने व्यासदेव के स्वरूप मे होकर की हैं ॥५६।६०।६१॥

४६—पित्राख्यान-पितृस्तोत्र

हरिर्मन्वन्तराण्याह ब्रह्मादिभ्यो हराय च ।
मार्कण्डेय पितृस्तोत्र क्रौञ्चुकि प्राह तच्छृणु ॥१
रुचि प्रजापति पूर्व निर्ममो निरहङ्कृति ।
यत्रास्तमितमायी च चचार पृथिवीमिमाम् ॥२
अनग्निमनिकेत तमेकाहारमनाश्रमम् ।
विमुक्तसङ्ग त दृष्ट्वा प्रोचु स्वपितरो मुनिम् ॥३
वत्स कस्मात्त्वया पुण्यो न कृतो दारसग्रह ।
स्वर्गापवर्गसेतुत्वाद्बन्धस्तेनामिष विना ॥४

गृही समस्तदेवाना पितृणाञ्च तथार्हणम् ।
ऋषीणामर्थिनाञ्चैव कुर्वंल्लोकानवाप्नुयात् ॥५
स्वाहोच्चारणतो देवान्स्वधोच्चरणत पितृन् ।
विभजत्यन्नदानेन भृत्याद्यानतिथीनपि ॥६
सत्व दैवादृणाद्बन्धमिमस्मदृणादपि ।
अवाप्तोऽसि मनुष्यर्षे भूतेभ्यश्च दिने दिने ॥७
अनुत्पाद्य सुतान्देवानसन्तर्प्य च पितृ स्तथा ।
अकृत्वा च कथ मौण्ड्य स्वर्गति गन्तुमिच्छसि ॥८
क्लेशबोधैकक पुत्र अन्यायेन भवेत्तव ।
मृतस्य नरक त्यक्त्वा क्लेश एवान्यजन्मनि ॥९

सूतजी ने कहा—भगवान् श्री हरि ने ब्रह्मा आदि के लिए और हर के लिए चौदह मन्वन्तरो का सविस्तार वर्णन किया था। मार्कण्डेय महर्षि ने क्रौष्टुकी से पितृस्तोत्र कहा था उस तुम अब श्रवण करो। मार्कण्डेय मुनि ने कहा था—पहिले रुचि नामधारी प्रजापति था जो बिल्कुल निर्मम और बिना अहङ्कार वाला था। जहाँ पर अत्यमित माया वाला होकर वह इस भूमण्डल मे विचरण किया करता था ॥१।२॥ अनग्नि—बिना निकेत वाला—एक ही बार आहार करने वाला और आश्रम रहित एव विमुक्त सङ्ग उसको देखकर स्व-पितरो ने मुनि से पूछा था। पितृगण ने कहा—हे वत्स! तुम ने पुण्य क्यो नही किया और दारा का सग्रह भी किस कारण से नही किया है? अर्थात् विवाह क्यो नही किया है? दारपरिग्रह तो स्वर्ग और अपवर्ग का हेतु होता है। आमिष के बिना उसमे बन्ध होता है ॥३।४॥ गृहस्थ आश्रम मे रहने वाला व्यक्ति समस्त देवो का पितरो का—ऋषियो का और अर्थियो का अर्चन—सत्कार करता हुआ उत्तम लोको की प्राप्ति किया करता है ॥५॥ "स्वाहा"—इस शब्द के उच्चारण से देवो को—"स्वधा"—इस शब्द के उच्चारण करने से पितृ-गण को और अन्न के दान देने से भृत्यादि को तथा अतिथियो को गृही सत्व को विभाजित किया करता है। वह तू दैव ऋण से और हमारे भी ऋण से इस बन्धन को प्राप्त हुआ भी मनुष्य—ऋषि और भूतो के लिये आये दिन सुखी

को उत्पन्न न करके देवो और पितरों का तर्पण न करके तू कैसे मोहवश स्वर्गति को प्राप्त करना चाहता है ? अनेक योग से एक ही पुत्र तेरे अन्यथा यदि होवे तो मृत के नरक को त्याग कर अन्य जन्म में पलना ही होगा ॥६।७।८।६॥

परिग्रहोऽस्ति दुःखाय पापायाधोगतेस्तथा ।
भवत्यतो मया पूर्वं न कृता दारसंग्रहः ॥१०
आत्मनः सत्यतापाय क्रियते क्षणमन्वहम् ।
स्वमुक्तिहेतुर्न भवत्यसावपि परिग्रहात् ॥११
प्रक्षाल्यतेऽनुदिवसं य आत्मा निष्परिग्रहः ।
ममत्वपङ्कदिग्धोऽपि विद्याम्भोभिरहं हि तत् ॥१२
अनेकभवसम्भूतकर्मपङ्काङ्कितो बुधैः ।
आत्मा ज्ञानजलैस्ताभ्यः प्रक्षाल्य नियतेन्द्रियैः ॥१३
युक्तं प्रक्षालनं कर्तुमात्मनाऽपि यतेन्द्रियः ।
किन्तु नापायमार्गोऽयं यतस्त्वं पुत्र वर्त्तसे ॥१४

रुचि ने कहा—इस संसार में जो भी कुछ परिग्रह होता है वह अत्यन्त दुःख के लिए ही हुआ करता है। परिग्रह पाप और अधोगति के करने के लिए होता है। इसीलिए मैंने दाराओं का संग्रह नहीं किया है॥ १० ॥ आत्मा के त्राण का उपाय मैं क्षण प्रतिक्षण में किया करता हूँ। यह परिग्रह से स्वमुक्ति का हेतु नहीं होता है ॥११॥ जो निष्परिग्रह होकर अनुदिन आत्मा का प्रक्षालन करता है। विद्यामृत से ममत्व के पङ्क से दिग्ध भी वह अनश्वर होता है ॥१२॥ अनेक जन्मों में होने वाले कर्मों के पङ्क से अङ्कित आत्मा को नियत इन्द्रियों वाले बुधजन ज्ञानजल के जल से प्रक्षालित किया करते हैं ॥१३॥ तब यह सुन कर पितरगण बोले—हे पुत्र! यत इन्द्रियों वालों के द्वारा अपनी अनेक जन्मों में पङ्काङ्कित आत्मा का प्रक्षालन करलेना बहुत युक्त है किन्तु यह तुम्हारे लिये कोई उपाय का मार्ग नहीं है जिस पर तुम चल रहे हो ॥१४॥

पञ्चयज्ञैस्त्वपापानैरशुभं नुदतस्तव ।
कर्माभिर्यधिरहिर्न पूर्वकर्म शुभाशुभम् ॥१५

एवं न बाधा भवति कुर्वतः करणात्मकम् ।
न च बन्धाय तत्कर्म भवत्यनतिमन्निभम् ॥१६
पूर्वकर्म कृतं भोगैः क्षीयते ह्यनिश तथा ।
सुखदु खात्मकैर्वत्स पुण्यापुण्यात्मक नृणाम् ॥१७
एव प्रक्षाल्यते प्राज्ञैरात्मा बन्धाच्च रक्ष्यते ।
रक्ष्यश्च स्वविवेकैन पापपङ्केन दह्यते ॥१८
अविद्या पच्यते वेदे कर्ममार्गा पितामहा ।
तत्कथ कर्मणो मार्गे भवन्तो योजयन्ति माम् ॥१९
अविद्या सर्वमेवैतत्कर्मणैतन्मृषा वच ।
किन्तु विद्यापरिख्यातौ हेतु कर्म न सशय ॥२०
विहिताकरणानर्थो न सद्भि क्रियते तु य. ।
सयमो मुक्तये योऽन्य प्रत्युताधःगतिप्रद ॥२१

पाँच यज्ञो मे—तप और दानो मे अशुभ कर्म का नोदन करने वाले तुम्हारा पूर्व कम शुभाशुभ फलो की अभिसन्धि से रहित है। इस प्रकार से करणात्मक कर्म करते हुए को बाधा नही होती है और वह कर्म बन्ध के लिये भी नही होता है क्योकि वह अनति सन्निभ होता है जो पूर्व कर्म है वह निरन्तर भोगो के द्वारा क्षीण होता है। हे वत्स ! मनुष्यो के पुण्यापुण्या मक कम सुख एव दु ख स्वरूप भोगो स क्षीयमाण हो जाते है। इसी प्रकार से प्राज्ञ पुरुषो के आत्मा—प्रक्षालित किया जाता है और बन्ध म रक्षित किया जाया करता है। और अपने विवेक से ही रक्षा करने के योग्य है जो कि पाप के पङ्क से दह्यमान नही होता है ॥१५ से १८॥ रुचि ने कहा—हे पिता महो ! आप तो कर्म मार्ग वाले है। वेद मे इस अविद्या का पाचन किया जाता है। यह सभी जानते हुए आप मुझे पुनः कर्म मार्ग मे क्यो योजित कर रहे हैं ? पितृगण बोले—यह सम्पूर्ण अविद्या ही है। यह कर्म से है—यह कहना मिथ्या वचन है किन्तु विद्या परिख्याति मे कर्म हेतु है इसमे कोई भी सशय नहीं है॥ १९।२० ॥ सत्पुरुषो के द्वारा विहित के न करने का अनर्थ जो नहीं किया जाता है वह

सयम मुक्ति के लिए होता है बल्कि अन्य जो है वह अधोगति के प्रदान करने वाला है ॥२१॥

प्रक्षालयामीति भावान्यदेतन्मन्यते वरम् ।
विहिताकरणोद्भूतै पापैस्त्वमसि दह्यसे ॥२२
अविद्याऽप्युपकाराय विषवज्जायते नृणाम् ।
अनुष्ठानाभ्युपायेन बन्धयोग्यापि नो हि सा ॥२३
तस्माद्वत्स कुरुष्व त्व विधिवद्दारसग्रहम् ।
आजन्म विफल तेऽस्तु असम्प्राप्यान्यलौकिकम् ॥२४
वृद्धाऽह साम्प्रत को मे पितर सम्प्रदास्यति ।
भार्य्यान्तिथा दरिद्रस्य दुष्करो दारसग्रह ॥२५
अस्माक पतन वत्स भवतश्चाप्यधोगति ।
नून भावि भवित्री च नाभिनन्दसि नो वच ॥२६
इत्युक्त्वा पितरस्तस्य पश्यतो मुनिसत्तम ।
बभूवु सहसाऽदृश्या दीपा वातहता इव ॥२७
मुनि ऋौत्सु क्ये प्राह मार्कण्डेयो महातपा ।
रुचिवृत्तान्तमखिल पितृसवादलक्षणम् ॥२८

मैं भावो का प्रक्षालन कर रहा हूँ—यहाँ जो तुम श्रेष्ठ मानते हो वह तुम विहित कर्म के न करने से समुत्पन्न पापो से दग्ध हो रहे हो ॥२२॥ अविद्या भी मनुष्यो को विष की भाँति उपकार के लिये होती है । वह अविद्या अनुष्ठान के अभ्युपाय से बन्ध के योग्य भी नही हैं ॥२३॥ इससे हे वत्स ! तुम विधि पूर्वक दारा का सग्रह करो । आजन्म अन्य लौकिक को सम्प्राप्त न करके तेरा जन्म विफल होवे ॥२४ । इसके पश्चात् रुचि ने कहा—हे पितृवृन्द ! मैं तो इस समय वृद्ध हो गया हू अब मुझे कौन भार्या प्रदान करेगा । मुझ जैसे दरिद्री को इस समय दार सग्रह करना अत्यन्त कठिन कार्य है ॥२५॥ तब पितरो ने कहा—हे वत्स ! तुम हमारे वचन को नही स्वीकार कर रहे हो तथा हमारे भावि एव भविष्य जो[illegible] भी [illegible] नहीं करते हो ।

इससे हम लोगों का तो पतन होगा और तुम्हारी भी अधोगति हो जायगी ॥२६॥ हे मुनि सत्तम! इसके पितृगण इतना कह कर उसके देखते देखते ही वात से बुझे दीपों की भाँति सहसा अदृश्य हो गये थे ॥२७॥ महान् तपस्वी मार्कण्डेय मुनि ने क्रौष्टुकि से कहा था यह सम्पूर्ण रुचि का वृत्तान्त और उसके साथ होने वाला पितरों के साथ सम्वाद है ॥२८॥

५०-पित्राख्यान—पितृस्तोत्र (२)

पृष्टः क्रौष्टुकिनोवाच मार्कण्डेयः पुनश्च तम् ।
स तेन पितृवाक्येन भृशमुद्विग्नमानसः ॥१
कन्याभिलाषी विप्रर्षिः परिबभ्राम मेदिनीम् ।
कन्यामलभमानोऽसौ पितृवाक्येन दीपितः ॥
चिन्तामवाप महतीमतीवोद्विग्नमानसः ॥२
किं करोमि क्व गच्छामि कथं मे दारसंग्रहः ।
क्षिप्रं भवेन्मत्पितॄणां ममाभ्युदयकारकम् ॥३
इति चिन्तयतस्तस्य मतिर्जाता महात्मनः ।
तपसाऽऽराधयाम्येनं ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥४
ततो वर्षशतं दिव्यं तपस्तेपे महात्मना ।
तत्र स्थितश्चिरं कालं वनेषु नियमस्थितः ॥
ध्यानासक्तः स तदा परं नियममास्थितः ॥५
ततः प्रदर्शयामास ब्रह्मा लोकपितामहः ।
उवाच च प्रसन्नोऽस्मीत्युच्यतामभिवाञ्छितम् ॥६
ततोऽसौ प्रणिपत्याह ब्रह्माणं जगतो गतिम् ।
पितॄणां वचनात्तेन यत्कर्तुमभिवाञ्छितम् ॥७

सूतजी ने कहा—क्रौष्टुकि के द्वारा पूछे गये मार्कण्डेय मुनि ने पुनः उनसे कहा कि वह रुचि उन पितरों के वचन से बहुत ही अधिक उद्विग्न मन वाला हो गया था ॥१॥ अब तो वह रुचि किसी कन्या प्राप्त करने की इच्छा वाला होकर सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल में भ्रमण करने लगा था। उसे जब कहीं

नमस्येऽहं पितृन्मर्त्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा ।
श्राद्धेषु श्रद्धयाभीष्टलोकपुष्टिप्रदायिनः ॥१७

नमस्येऽहं पितृन्विप्रैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा ।
वाञ्छिताभीष्टलाभाय प्राजापत्यप्रदायिन ॥१८

नमस्येऽहं पितृन्ये वै तर्प्यन्तेऽरण्यवासिभिः ।
वन्यै श्राद्धैर्यताहारैस्तपोनिर्धूतकल्मषै ॥१९

नमस्येऽहं पितृन्विप्रैर्नैष्ठिकैर्धर्मचारिभिः ।
ये संयतात्मभिर्नित्य सन्तर्प्यन्ते समाधिभि २०

नमस्येऽहं पितृन्श्राद्धै राजन्यास्तर्पयन्ति यान् ।
कव्यैरशेषैर्विधिवल्लोकद्वयफलप्रदान् ॥२१

मैं अपने पितरों को नमस्कार करता हूँ जिनको स्वर्ग में सिद्ध लोग श्राद्धों में समस्त दिव्य और परमोत्तम उपहारों के द्वारा सन्तृप्त किया करते हैं ॥१५॥ मैं अपने पितृगण की सेवा में प्रणाम करता हूँ जोकि दिविलोक में तन्मयता के साथ परा आत्यन्तिकी ऋद्धि की इच्छा करने वाले गुह्यकों के द्वारा भक्ति भाव से समर्चित किये जाते है ॥१६॥ मैं अपने पितरों को प्रणाम करता हूँ जो सदा इस भूमण्डल में मनुष्यों के द्वारा बड़ी श्रद्धा से अभीष्ट लोक और पुष्टि के प्रदान करने वाले श्राद्धों में पूजित किये जाते हैं ॥१७॥ मैं अपने पितृ-गण को प्रणाम करता हूँ जो पितरगण सर्वदा इस मही मण्डल में आचार्यत्व के प्रदान करने वाले हैं और वाञ्छित अभीष्ट लाभ के देने वाले हैं विप्रों के द्वारा समर्चित हुआ करते हैं ॥१८॥ मैं अपने पितृदेवों की सेवा में प्रणाम करता हूँ जो वो वन में निवास करने वाले-तपस्या से निर्धूत कल्मष वाले और आहार वाले मनुष्य श्राद्धों के द्वारा सदा तृप्त किया करते है ॥१९॥ मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूँ जो धर्मचारी-संयत आत्मा वाले नैष्ठिक विप्रों के द्वारा नित्य ही समाधियों के द्वारा सन्तृप्त किये जाया करते हैं ॥२०॥ मैं उन पितृ देवों को नमस्कार करता हूँ जिनको क्षत्रिय लोग लोक द्वार के फलों को देने वाले होने के कारण विधि पूर्वक सम्पूर्ण श्राद्धों में कव्यों के द्वारा तृप्त करते हैं ॥२१॥

नमस्येऽहं पितृन्वैश्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा।
स्वकर्माभिरतैर्नित्य पुष्पधूपान्नवारिभि ॥२२
नमस्येऽहं पितृन्श्राद्धे शूद्रैरपि च भक्तिन।
सन्त्यार्यन्ते जगत्कृत्स्न नाम्ना ख्याता सुकालिन ॥२३
नमस्येऽहं पितृन्श्राद्धे पाताले ये महासुरैं।
सन्त्यर्प्यन्ते सुधाहारास्त्यक्तदम्भमदै सदा ॥२४
नमस्येऽहं पितृन्श्राद्धैरर्च्यन्ते ये रसातले।
भोगैरशेषैर्विधिवन्नागै कामानभीप्सुभि ॥२५
नमस्येऽहं पितृन्श्राद्धै सर्पै सन्तर्पितान्सदा।
तत्रैव विधिवन्मन्त्रभोगसम्पत्समन्विते ॥२६
पितृन्नमस्ये निवसन्ति साक्षाद्ये देवलोकेऽथ महीतले वा।
तथाऽन्तरिक्षे च सुरारिपूज्यास्ते मे प्रतीच्छन्तु मनोपनीतम् ॥२७
पितृन्नमस्ये परमार्थभूता ये वै विमाने निवसन्त्यमूर्ता।
यजन्ति यानस्तमलैर्मनोभिर्योगीश्वरा क्लेशविमुक्तिहेतून् ॥२८

मैं अपने पूज्य पितरो की सेवा मे अभिवादन करता हूं जिनकी इस मही मण्डल मे सदा अपने कर्मों मे निरत पुष्प धूप—अन्न और जल के द्वारा वैश्यो से समर्चना की जाती है ॥२२॥ मैं पितरो को नमस्कार करता हू जो नाम से सम्पूर्ण जगत् मे सुकाली स्यात है शूद्रो के द्वारा भी श्रद्धा मे भक्ति–भाव से सन्तृप्त किये जाते हैं ॥२३॥ मैं पितरो को प्रणाम करता हू जो सुधाहार श्राद्ध मे पाताल लोक में मद और दम्भ का त्याग करने वाले महासुरो के द्वारा भली भाँति सन्तृप्त किये जाया करते है ॥२४॥ मैं अपने पितृगण को नमस्कार करता हू जिनकी पूजा एव सन्तृप्ति कामनाओ के चाहने वाले समस्त भोग और नागो के द्वारा विधि पूर्वक रसातल मे श्राद्धो के माध्यम से की जाया करती है ।२५। मैं पितरो को प्रणाम करता हूं जो सर्प श्राद्धो के माध्यम से सर्पों के द्वारा सन्तर्पित है। वे सर्प वहां पर विधिवत् मन्त्र—भोग और सम्पदा से समन्वित है। २६॥ मैं उन पितृगणो को नमस्कार करता हू जो साक्षात् देवलोक मे—महीतल मे तथा अन्तरिक्ष मे निवास किया करते हैं। वे सुरारि के पूज्य हैं और

वे मेरे मनोवांछित को प्रदान करें ॥२७॥ मैं पितृगणों को प्रणाम करता हूँ जो परमार्थ स्वरूप एवं मूर्त्त रूप वाले विमान में निवास किया करते हैं और जिनको क्लेशों की मुक्ति के कारण भूतों को योगीश्वर गण निरस्त मल वाले मनों से यजन किया करते हैं । २८॥

> पितॄन्नमस्ये दिवि ये च मूर्त्ता स्वधाभुज काम्यफलाभिसन्धौ ।
> प्रदानशक्ता सकलेप्सितानां विमुक्तिदा येऽनभिसंहितेषु ॥२६
> तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितर समस्ता इच्छावतां ये प्रदिशन्ति कामान् ।
> सुरत्वमिन्द्रत्वमितोऽधिकं वा गजाश्वरत्नानि महागृहाणि ॥३०
> सोमस्य ये रश्मिषु येऽर्कबिम्बे शुक्ले विमाने च सदा वसन्ति ।
> तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैर्गन्धादिना पुष्टिमितो व्रजन्तु ॥३१
> येषां हुतेऽग्नौ हविषा च तृप्तिर्ये भुञ्जते विप्रशरीरसंस्था ।
> ये पिण्डदानेन मुदं प्रयान्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैः ।३२
> ये खड्गमांसेन सुरैरभीष्टै कृष्णैस्तिलैर्दिव्यमनोहरैश्च ।
> कालेन शाकेन महर्षिवर्य्यै सम्प्रीणितास्ते मुदमत्र यान्तु ॥३३
> कव्यान्यशेषाणि च यान्यभीष्टान्यतीव तेषां मम पूजितानाम् ।
> तेषाञ्च सान्निध्यमिहास्तु पुष्पगन्धाम्बुभोज्येषु मया कृतेषु ॥३४
> दिने दिने ये प्रतिगृह्णतेऽर्चां मासान्तपूज्या भुवि येऽष्टकासु ।
> ये वत्सरान्तेऽभ्युदये च पूज्याः प्रयान्तु ते मे पितरोऽत्र तुष्टिम् ३५

मैं पितरों को नमस्कार करता हूँ जो दिवलोक में मूर्त्त रूप वाले हैं और काम्य फल की अभिसन्धि में स्वधा का योग करने वाले हैं तथा समस्त अभीष्टों के प्रदान करने में समर्थ हैं एवं जो किसी फल की आकाङ्क्षा नहीं हैं उनको विमुक्ति प्रदान करने वाले हैं ॥२६॥ इच्छा रखने वालों की कामनाओं को जो पूर्ण किया करते हैं वे समस्त पितृगण इसमें तृप्ति लाभ करें । सुरत्व प्राप्त करने की—इन्द्र के पद पाने की या इससे भी अधिक कोई पद पाने की अभिलाषा हो और गज—अश्व—रत्न एवं महान् गृह पाने की कामना हो पितृगण सभी को पूर्ण किया करते हैं ॥३०॥ जो चन्द्रमा की रश्मियों में—

सूर्य के बिम्ब में—शुक्ल विमान में सदा निवास किया करते हैं वे पितरगण इसमे तृप्त होवे और अन्न—जल तथा गन्ध आदि के द्वारा पुष्टि को प्राप्त होवे ॥३१॥ अग्नि मे हवि मे हवन करने पर जिनकी तृप्ति होती है और जो विप्रों के शरीर मे सन्थित होते हुए भोजन करते हैं। जो पिण्डदान से प्रसन्नता प्राप्त करते हैं वे पितरगण यहां अन्न और जल से तृप्ति प्राप्त करे ॥३२॥ जो खड्ग मांस से देवो के द्वारा अभीष्ट दिव्य एवं मनोहर कृष्ण तिलों से तथा महर्षि वर्यों के द्वारा तत्कालीन शाक से प्रीणित होते हैं वे यहां पर मोद को प्राप्त करे ॥ ३३ ॥ कव्यान्न में शेष जो मेरे पूजित वर्यों को अतीव अभीष्ट हों उन सबका सान्निध्य मेरे द्वारा किये गये यहाँ पर पुष्प गन्ध जल भोज्या में हो जावे ॥३४॥ जो प्रतिदिन अर्चा का ग्रहण करते हैं और जो अष्टकाओं में भूमण्डल में मासान्त में पूज्य होते हैं और जो वत्सर के अन्त में और अभ्युदय के अवसर पर पूजा करने के योग्य होते हैं वे मेरे पितृगण यहां पर सब तुष्टि को प्राप्त करें ॥३५॥

पूज्या द्विजानां कुमुदेन्दुभासो ये क्षत्रियाणां ज्वलनार्कवर्णा ।
तथा विशां ये कनकावदाता नीलीप्रभा शूद्रजनस्य ये च ॥३६
तेऽस्मिन्समस्ता मम पुष्पगन्धधूपाम्बुभोज्यादिनिवेदनेन ।
तथाऽग्निहोमेन च यान्ति तृप्तिं सदा पितृभ्यः प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥३७
ये देवपूर्वाण्यभितृप्तिहेतोरश्नन्ति कव्यानि शुभाहृतानि ।
तृप्ताश्च ये भूतिसृजो भवन्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥३८
रक्षांसि भूतान्यसुरांस्तथोग्रान्निर्नाशयन्तु त्वशिवं प्रजानाम् ।
आद्याः सुराणाममरेशपूज्यास्तृप्यन्तु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥३९
अग्निष्वात्ता बर्हिषद आज्यपाः सोमपास्तथा ।
व्रजन्तु तृप्तिं श्राद्धेऽस्मिन्पितरस्तर्पिता मया ॥४०
अग्निष्वात्ताः पितृगणाः प्राचीं रक्षन्तु मे दिशम् ।
तथा बर्हिषदः पान्तु याम्यां मे पितरः सदा ॥
प्रतीचीमाज्यपास्तद्वदुदीचीमपि सोमपाः ॥४१

रक्षोभूतपिशाचेभ्यस्तथैवासुरदोषत ।
सर्वत पितरो रक्षा कुर्वन्तु मम नित्यश. ।।४२

द्विजो के जो कुमुद और चन्द्र की आभा के समान आभा वाले पूज्य हैं जो क्षत्रियो के अग्नि और सूर्य के तुल्य वर्ण वाले है तथा वैश्यो के सुवर्ण के समान अवदात है और शूद्रो के जो नीली की प्रभा के तुल्य प्रभा वाले है वे समस्त पितृगण इसमे मेरे द्वारा निवेदित किये पुष्प—गन्ध—धूप—जल और भोजनीय पदार्थ से तृप्ति को प्राप्त होवे तथा जो अग्निहोम से तृप्ति को प्राप्त किया करते है उन पितरो को मैं सदा प्रणाम करता हूँ ।। ३६।३७ ।। जो देव पूव अभि तृप्ति प्राप्त करने के लिए शुभ एव आहुत कव्यो का प्रदान किया करते है जो भूति के सृजन करने वाले तृप्त हैं वे यहाँ पर भी तृप्त हो जावे । मैं उनके समक्ष मे प्रणत होता हूँ ।।३८।। जो पितृगण है वे राक्षस—भूत तथा अन्य उग्र असुरो का एव प्रजाओ के अशुभ हैं उसका नाश कर देवे । जो सुरो मे सब प्रथम हैं और देवेश के द्वारा पूजा के योग्य है वे पितर इसमे तृप्ति का लाभ करें। मैं उनको प्रणाम करता हू ।।३६।। अग्निस्वात्त—बर्हिषद—आज्यप तथा सोमपान करने वाले है वे समस्त पितर मेरे द्वारा इस श्राद्ध मे तर्पित होते हुए परम तृप्ति को प्राप्त होवें ।।४०।। अग्निष्वात्त पितृगण मेरी प्राची दिशा की रक्षा करे । बर्हिषद पितृगण सदा मेरी याम्य दिशा की रक्षा करे । आज्य (घृत) का पान करने वाले पितृगण प्रतीची दिशा और सोमपान करने वाले उदीची दिशा म रक्षा करे ।।४१।। पितरगण सर्वदा नित्य ही राक्षस—भूत—पिशाचो स तथा असुरों के किये हुए दोषों से मेरी रक्षा करें ।।४२।।

विश्वो विश्वभुगाराध्यो धर्मो धन्य शुभानन ।
भूतिदो भूतिकृद्‌भूति पितृणा ये गणा नव ।।४३
कल्याण कल्यद कर्ता कल्य कल्यतराश्रय ।
कल्यताहतुरनघ षडिमे ते गणा स्मृता ।।४४
वरो वरेण्यो वरदस्तुष्टिद पुष्टिदस्तथा ।
विश्वपाता तथा धाता सप्तैव च गणा स्मृता ।।४५

महान्महात्मा महितो महिमावान्महाबलः ।
गणाः पञ्च तथैवैते पितृणां पापनाशनाः ॥४६
सुखदो धनदश्चान्यो धर्मदोऽन्यश्च भूतिदः ।
पितृणां कथ्यते चैव तथा गणचतुष्टयम् ॥४७
एकत्रिंशत्पितृगणा यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ।
त एवात्र पितृगणास्तुष्यन्तु च मदाहितम् ॥४८
एवन्तु स्तुवतस्तस्य तेजसो राशिरुच्छ्रितः ।
प्रादुर्बभूव सहसा गगनव्याप्तिकारकः ॥४९
तद् दृष्ट्वा सुमहत्तेजः समाच्छाद्य स्थितं जगत् ।
जानुभ्यामवनीं गत्वा रुचिः स्तोत्रमिदं जगौ ॥५०

विश्व–विश्व भुक्—आराध्य–धर्म–धन्य—शुभानन–भूतिद—भूति कृत और भूति ये पितरों के नौ गण हैं ॥ ४३ ॥ कल्याण–कल्यद–कर्त्ता—कल्य–कल्यतराश्रय–कल्यता हेतु और अनघ ये छै गण कहे गये हैं ॥४४॥ वर—वरेण्य–वरद–तुष्टिद–पुष्टिद–विश्व पाता और धाता ये सात गण कहे गये हैं ॥ ४५ ॥ महान्–महात्मा–महित–महिमावान्–महाबल ये पापों के नाश करने वाले पितरों के उसी प्रकार से पाँच गण हैं ॥ ४६ ॥ सुखद–धनद–अन्य धर्मद और अन्य भूतिद ये उसी भाँति पितरों के चार गण कहे जाते हैं ॥४७॥ इस प्रकार से इकत्तीस पितृगण हैं जिनके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है। वे सभी यहाँ मेरे निवेदित श्राद्ध में पितृगण तृप्ति को प्राप्त होवें ॥४८॥ मार्कण्डेय जी बोले—इस प्रकार से स्तवन करते हुए उसकी तेज की राशि उत्थित हुई और तुरन्त ही गगन में व्याप्ति करने वाली वह प्रादुर्भूत हुई थी ॥४९॥ उस सुमहान् तेज को देखकर जो कि सम्पूर्ण जगत् को समाच्छादित कर स्थित था, घुटनों के बल से भूमि पर स्थित होकर रुचि ने इस स्तोत्र का गायन किया था ॥ ५० ॥

अर्चितानाममूर्त्तानां पितृणां दीप्ततेजसाम् ।
नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां दिव्यचक्षुषाम् ॥५१

इन्द्रादीनाञ्च नेतारो दक्षमारीचयोस्तथा ।
सप्तर्षीणां तथान्येषां तान्नमस्यामि कामदान् ॥५२
मन्वादीनाञ्च नेतार सूर्याचन्द्रमसोस्तथा ।
तान्नमस्याम्यहं सर्वान्पितृनप्युद्दधार सः ॥५३
नक्षत्राणां ग्रहाणाञ्च वाय्वग्न्योनभसस्तथा ।
द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलि ॥५४
प्रजापते कश्यपाय सोमाय वरुणाय च ।
योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृताञ्जलि ॥५५
नमो गणेभ्यः सप्तभ्यस्तथा लोकेषु सप्तसु ।
स्वायम्भुवे नमस्यामि ब्रह्मणे योगचक्षुषे ॥५६
सोमाधारान्पितृगणान्योगमूर्त्तिधरास्तथा ।
नमस्यामि तथा सोमं पितरं जगतामहम् ॥५७

रुचि ने कहा—अर्चित एवं अमूर्त तथा दीप्त तेज वाले—ध्यानी और दिव्य चक्षुओं वाले उन पितृगणों को मैं सदा नमस्कार करता हूँ ॥५१॥ इन्द्र आदि देवों के नेता—दक्ष और मारीच के नेता—महर्षियों के तथा अन्यों के नेता उन कामनाओं के देने वाले को मैं नमस्कार करता हूँ । ५२॥ मनु आदि के नेता तथा सूर्य और चन्द्र के नायक मैं उन सब पितृगण को नमस्कार करता हूँ । उसने समस्त पितरों का उद्धार किया था ॥५३॥ नक्षत्रों—ग्रहों का नेता—वायु और अग्नि का नेता—नभ का एवं द्यावा पृथिवी के नेता उनको मैं कृताञ्जलि होकर प्रणाम करता हूँ ॥५४॥ प्रजापति कश्यप—सोम—वरुण और योगेश्वरों के लिए मैं सदा हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ ॥ ५५ ॥ सात लोकों में सात गणों के लिए नमस्कार है । स्वायम्भू के लिए नमस्कार है और योगचक्षु वाले ब्रह्मा के लिए नमस्कार है ॥५६॥ सोमाधार तथा योग मूर्तिधर पितृगणों को एवं जगतों के पिता सोम को मैं नमस्कार करता हूँ ॥५७॥

अग्निरूपांस्तथैवान्यान्नमस्यामि पितॄनहम् ।
अग्निसोममयं विश्वं यत एतदशेषतः ॥५८

ये च तेजसि ये चैते सोमसूर्य्याग्निमूर्त्तयः ।
जगत्स्वरूपिणश्चैव तथा ब्रह्मस्वरूपिणः ॥५६
तेभ्योऽखिलेभ्यो योगिभ्यः पितृभ्यो यतमानसः ।
नमो नमो नमस्तेऽस्तु प्रसीदन्तु स्वधाभुजः ॥६०
एवस्तुतास्ततस्तेन तेजसो मुनिसत्तमाः ।
निश्चक्रमुस्ते पितरो भासयन्तो दिशो दश ॥६१
निवेदनञ्च यत्तेन पुष्पगन्धानुलेपनम् ।
तद्भूषितानथ स तान्ददृशे पुरतः स्थितान् ॥६२
प्रणिपत्य रुचिर्भक्त्या पुनरेव कृताञ्जलिः ।
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यमित्याह पृथगादृतः ॥६३
ततः प्रसन्नाः पितरस्तमूचुर्मुनिसत्तमम् ।
वरं वृणीष्वेति स तानुवाचानतकन्धरः ॥६४

अग्नि रूप अन्य पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ जिनसे यह सम्पूर्ण विश्व अग्नि सोममय है ॥५८॥ और जो ये तेज में हैं तथा जो ये सोम-सूर्य और अग्नि की मूर्ति वाले हैं। इस सम्पूर्ण जगत् के स्वरूप वाले हैं तथा ब्रह्म के स्वरूप वाले हैं उन समस्त योगी पितरों को दत्तचित्त होकर मेरा बारम्बार नमस्कार है मेरा आपके लिये प्रणाम है। सब स्वधा भोजी मेरे ऊपर प्रसन्न होवे ॥५९।६०॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर इस प्रकार से उसके द्वारा स्तवन किये गये तेज स्वरूप मुनि सत्तम वे पितृगण दशों दिशाओं को भासित करते हुए निकले थे ॥ ६१ ॥ उसके द्वारा जो भी कुछ पुष्प-गन्ध और अनुलेपन निवेदित किया गया था उन सबसे विभूषित उनको सामने स्थित उसने देखा था ॥६२॥ रुचि ने फिर हाथ जोड़कर उनको प्रणाम किया और बहुत ही भक्ति के भाव से प्रणिपात किया था। रुचि ने "आपको नमस्कार है—आपको नमस्कार है"—ऐसा पृथक् रूप से आदर के साथ कहा था ॥६३॥ इसके अनन्तर पितरगण उस पर बहुत प्रसन्न हुए और मुनि श्रेष्ठ से बोले—तुम अपना अभीष्ट वरदान माँग लो। इसे सुनकर अपनी गरदन नीचे झुकाकर उनसे कहा—॥६४॥

प्रजाना सर्गकर्त्तुं त्वमादिष्ट ब्रह्मणा मम ।
सोऽहं पत्नीमभीप्सामि धन्या दिव्या प्रजावतीम् ॥६५
अत्रैव सद्य पत्नी ते भवत्वतिमनोरमा ।
तस्याञ्च पुत्रो भविता भवतो मुनिसत्तम ॥६६
मन्वन्तराधिपो धीमास्तन्नाम्नैवोपलक्षित ।
रुचे रौच्य इति ख्याति प्रयास्यति जगत्त्रये ॥६७
तस्यापि बहव पुत्रा महाबलपराक्रमाः ।
भविष्यन्ति महात्मान पृथिवीपरिपालका ॥६८
त्वञ्च प्रजापतिर्भूत्वा प्रजा सृष्ट्वा चतुर्विधा ।
क्षीणाधिकारो धर्मज्ञस्तत सिद्धिमवाप्स्यसि ॥६९
स्तोत्रेणानेन च नरो योऽस्मांस्तोष्यति भक्तित ।
तस्य तुष्टा वय भोगानात्मज ध्यानमुत्तमम् ॥७०

रुचि ने कहा—प्रजाओ के सर्ग को करने के लिए ब्रह्माजी ने मुझे आदेश प्रदान किया है। इसलिये मैं प्रजा का सृजन करने के लिए परमदिव्य धन्य और प्रजाओं वाली पत्नी चाहता हू ।।६५।। पितृगण ने कहा—यहाँ पर ही तुरन्त ही अत्यन्त मनोरमा आपकी पत्नी हो जावेगी। हे मुनियो मे परम श्रेष्ठ ! उस पत्नी मे तुम्हारे एक पुत्र होगा ।।६६।। वह मन्वन्तर का स्वामी—परम बुद्धिमान् और उसी नाम से उपलक्षित रुचि का रौच्य इस ख्याति को तीनो जगत् मे प्राप्त करेगा ।।६७।। इसके भी बहुत-से पुत्र होंगे जो महान् बल और पराक्रम वाले होंगे और महान् आत्मा वाले तथा पृथ्वी के परिपालन करने वाले होंगे ।।६८।। और तुम प्रजापति होकर चार प्रकार की प्रजा का सृजन करके क्षीण अधिकार वाले होते हुए धर्म के ज्ञाता हो जाओगे और इसके अनन्तर परम सिद्धि की प्राप्ति करोगे ।।६९।। इस स्तोत्र से जो मनुष्य हमारी भक्ति के सहित स्तुति करेगा उस पर हम परम सन्तुष्ट होते हैं और उसे समस्त भोग-पुत्र तथा उत्तम ध्यान प्रदान किया करते हैं ।।७०।।

आयुरारोग्यमर्थञ्च पुत्र पौत्रादिक तथा ।
वाञ्छद्भि सतत स्तव्या स्तोत्रेणानेन वै यत ॥७१

श्राद्धेषु य इमं भक्त्या अस्मत्प्रीतिकरं स्तवम् ।
पठिष्यति द्विजाग्र्याणां भुञ्जतां पुरतः स्थितः ॥७२
स्तोत्रश्रवणसम्प्रीत्या सन्निधाने परे कृते ।
अस्माभिरक्षयं श्राद्धं तद्भविष्यत्यसंशयं ॥७३
यद्यप्यश्रोत्रियं श्राद्धं यद्यप्युपहतं भवेत् ।
अन्यायोपात्तवित्तेन यदि वा कृतमन्यथा ॥७४
अश्राद्धार्हैरुपहृतैरुपहारैस्तथा कृतं ।
अकालेऽप्यथवा देशे विधिहीनमथापि वा ॥७५
अश्रद्धया वा पुरुषैर्दम्भमाश्रित्य यत्कृतम् ।
अस्माकं तृप्तये श्राद्धं तथाप्येतदुदीरणात् ॥७६
यत्रैतत्पठ्यते श्राद्धे स्तोत्रमस्मत्सुखावहम् ।
अस्माकं जायते तृप्तिस्तत्र द्वादशवार्षिकी ॥७७

जो आयु–आरोग्य–अर्थ और पुत्र–पौत्रादिक के प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हैं उन्हें इस स्तोत्र से निरन्तर हमारी स्तुति करनी चाहिए ॥७१॥ श्राद्धों में जो इस हमारी प्रीति के समुत्पन्न करने वाले स्तव का भक्ति भाव के साथ पाठ करेगा जबकि श्राद्ध के समय में ब्राह्मण लोग भोजन कर रहे होवें। उनके समक्ष में स्थित होकर हमको पढ़ेगा तो इस स्तोत्र के श्रवण की प्रीति से हमारे द्वारा सन्निधान को किये जाने पर वह श्राद्ध अक्षय हो जायगा–इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥७२।७३॥ यद्यपि श्रोत्रिय विप्रों से रहित श्राद्ध हो–यद्यपि उपहत और अन्याय से प्राप्त किये हुए धन से किया गया हो जिसका कि विधान नहीं है–श्राद्ध के अयोग्य एवं उपहृत उपहारों से किया गया हो और अकाल एवं प्रदेश में विधान से रहित किया गया हो–बिना श्राद्ध के दम्भ का आश्रय लेकर पुरुषों के द्वारा किया गया हो किन्तु यदि इस स्तव का पाठ किया जावे तो वह भी हमारी परम प्रीति के लिए हो जाता है ॥७४।७५।७६॥ जिस श्राद्ध में हमारे सुख के देने वाले इस स्तव का पाठ किया जाता है तो हमको बारह वर्ष के लिए इससे परम प्रीति एवं तृप्ति हो जाया करती है ॥७७॥

हेमन्ते द्वादशाब्दानि तृप्तिमेतत्प्रयच्छति ।
शिशिरे द्विगुणाब्दानि तृप्तिं स्तोत्रमिदं शुभम् ॥७८
वसन्ते षोडशसमास्तृप्तये श्राद्धकर्मणि ।
ग्रीष्मे च षोडशैवेतत्पठितं तृप्तिकारकम् ७९
विकलेऽपि कृते श्राद्धे स्तोत्रेणानेन साधिते ।
वर्षासु तृप्तिरस्माकमक्षया जायते रुचे ॥८०
शरत्कालेऽपि पठितं श्राद्धकाले प्रयच्छति ।
अस्माकमेतत्पुरुषैस्तृप्तिं पञ्चदशाब्दिकीम् ॥८१
यस्मिन्गेहे च लिखितमेतत्तिष्ठति नित्यदा ।
सन्निधानं कृतं श्राद्धं तत्रास्माकं भविष्यति । ८२
तस्मादेतत्त्वया श्राद्धे विप्राणां भुञ्जतां पुरः ।
श्रावणीयं महाभाग अस्माकं पुष्टिकारकम् ॥८३

यदि इस प्रकार से इस स्तोत्र के पाठ के साथ हेमन्त ऋतु में श्राद्ध करे तो बारह वर्ष तक के लिए तृप्ति होती है । शिशिर ऋतु में किये गये ऐसे श्राद्ध से इससे भी दुगुनी तृप्ति अर्थात् चौबीस वर्ष तक के लिए होती है । ऐसा यह परम शुभ स्तोत्र है ॥७८॥ बसन्त ऋतु में सोलह वर्ष के लिए इस श्राद्ध कर्म से तृप्ति होती है । ग्रीष्म ऋतु में भी सोलह वर्ष की तृप्ति इस स्तोत्र के पठन करने से समुत्पन्न होती है ॥७९॥ श्राद्ध चाहे विकल भी किया गया हो किन्तु इस स्तोत्र से यदि वह साधित किया जावे तो हे रुचे ! वर्षा ऋतु में किये गये श्राद्ध में हम लोगों की तृप्ति अक्षय होती है ॥८०॥ शरत् ऋतु में किये गये श्राद्ध के समय में इस स्तोत्र के द्वारा हमारी पन्द्रह वर्ष के लिए तृप्ति होती है ॥८१॥ जिस घर में यह लिखा हुआ स्तोत्र नित्य ही विद्यमान रहा करता है तो श्राद्ध के सन्निधान करने पर वह हमारे लिये ही हो जायगा ॥८२॥ इसलिये हे महाभाग ! तुमको श्राद्ध के समय में विप्रों के भोजन करने के अवसर पर उनके समक्ष में इस स्तोत्र को श्रवण कराना चाहिए । इससे हमको परम पुष्टि होती है ॥८३॥

ततस्तस्मान्नदीमध्यात्समुत्तस्थौ मनोरमा ।
प्रम्लोचा नाम तन्वङ्गी तत्समीपे वराप्सरा ॥८४
सा चोवाच महात्मानं रुचिं सुमधुराक्षरम् ।
प्रसादयामास भूयः प्रम्लोचा च वराप्सरा ॥८५
अतीवरूपिणी कन्या मत्प्रसादाद्वराङ्गना ।
जाता वरुणपुत्रेण पुष्करेण महात्मना ॥८६
तां गृहाण मया दत्तां भार्य्यार्थे वरवर्णिनीम् ।
मनुर्महामतिस्तस्यां समुत्पत्स्यति ते सुत ॥८७
तथेति तेन साप्युक्ता तस्मात्तोयात्सुपुष्पतीम् ।
उद्धार तत कन्यां मालिनी नाम नामतः ॥८८
नद्याश्च पुलिने तस्मिन्स मुनिर्मुनिसत्तमाः ।
जग्राह पाणिं विधिवत्समानीय महामुनिः ॥८९
तस्यां तस्य सुतो जज्ञे महावीर्य्यो महाद्युतिः ।
रुचे रौच्य इति ख्यातो यो मया पूर्वमीरितः ॥९०

श्री मार्कण्डेय महामुनि ने कहा — इसके अनन्तर उस नदी के मध्य भाग में परम सुन्दरी प्रम्लोचा नाम वाली एक तन्वङ्गी उत्पन्न हुई जोकि एक बहुत ही श्रेष्ठ अप्सरा थी। वह उसके समीप में आई और उस महान् आत्मा वाले रुचि से अत्यन्त मधुर अक्षरों में बोली तथा उस प्रम्लोचा अप्सरा ने उसको प्रसन्न कर दिया था ॥८४।८५॥ उसने कहा कि वरुण के पुत्र पुष्कर के द्वारा मेरी कृपा से मनोहर रूप वाली तथा परम श्रेष्ठ अङ्गों वाली कन्या उत्पन्न हुई है उसे मैं आपकी सेवा में समर्पित करती हूँ आप उसे अपनी भार्या के रूप में वर वर्णिनी को ग्रहण कीजिए। उसमें महान् मति वाले मनु आपके पुत्र समुत्पन्न होंगे ॥८६।८७॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—ऐसा ही होगा—इस तरह से रुचि ने उसके कथन को स्वीकार कर लिया तो फिर उस जल में से एक परम सुन्दरी मालिनी नाम वाली कन्या को उसने निकाला था ॥८८॥ हे मुनि सत्तमो! उसी नदी के पुलिन में उस मुनि ने उसे लाकर विधिपूर्वक उसका पाणिग्रहण किया था ॥८९॥ फिर उसमें उत्पन्न एक महान् वीर्य वाला तथा अत्यन्त द्युति

से सम्पन्न पुत्र हुआ था जोकि रुचि का पुत्र रौच्य—इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था जैसा कि हमने पहिले ही आपको बतला दिया है ॥६०॥

५१—हरिध्यान माहात्म्य

स्वायम्भुवाद्या मुनयो हरिं ध्यायन्ति कर्मणा ।
॥१

आकाशेन विहीनं वै तेजसा परिवर्जितम् ॥२
उदकेन विहीनं वै तद्धर्मपरिवर्जितम् ।
पृथिवीरहितञ्चैव सर्वभूतविवर्जितम् ॥३
भूताध्यक्षं तथा बुद्धं नियन्तारं प्रभुं विभुम् ।
चैतन्यरूपतारूपं सर्वाध्यक्षं निरञ्जनम् ॥४
मुक्तसङ्गं महेशानं सर्वदेवप्रपूजितम् ।
तेजोरूपममत्वञ्च तपसा परिवर्जितम् ॥५
रहितं रजसा नित्यं व्यतिरिक्तं गुणैस्त्रिभिः ।
सर्वरूपविहीनं वै कर्तृत्वादिविवर्जितम् ॥६
वासनारहितं शुद्धं सर्वदोषविवर्जितम् ।
पिपासावर्जितं तद्वच्छोकमोहविवर्जितम् ॥७

सूतजी ने कहा—व्रत—आचार—अर्चना—ध्यान—स्तुति और जाप्य में तत्पर स्वायम्भुव आदि मुनिगण कर्म के द्वारा भगवान् श्री हरि का ध्यान करते हैं। वह हरि देह—इन्द्रिय—मन—बुद्धि—प्राण और अहङ्कार से वर्जित हैं। पृथ्वी से रहित हैं, आकाश से हीन और तेज से विहीन हैं। जल से रहित और उसके धर्म से परिवर्जित हैं एवं समस्त भूतों से रहित हैं ॥१।२।३॥ श्री हरि समस्त भूतों के अध्यक्ष—बुद्ध—नियन्ता—प्रभु—विभु—चैतन्य रूपता के रूप वाले—सबके अधिपति और निरञ्जन हैं ॥४॥ मुक्त सङ्ग वाले—महेशान और समस्त देवों के द्वारा प्रपूजित हैं। श्री हरि तेजो रूप वाले—ममत्व और तप से परिवर्जित हैं ॥५॥ रजोगुण से रहित और तीनों गुणों से व्यतिरिक्त हैं। सब

प्रकार के रूपों से विहीन और हरि भगवान् कर्त्तृत्व आदि से विवर्जित हैं ॥६॥ वे वासना से रहित हैं, शुद्ध हैं, सम्पूर्ण दोषों से विवर्जित—प्यास से रहित और तत्तत् शोक से वर्जित हैं ॥७॥

जरामरणहीनं वै कूटस्थं मोहवर्जितम् ।
उत्पत्तिरहितश्चैव प्रलयेन विवर्जितम् ॥८
सर्वाचारहीनं सत्यं निष्कलं परमेश्वरम् ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिवर्जितं नामवर्जितम् ॥९
अध्यक्षं जाग्रदादीनां शान्तरूपं सुरेश्वरम् ।
जाग्रदादिस्थितं नित्यं कार्यकारणवर्जितम् ॥१०
सर्वंदृष्टं तथा मूर्त्तं सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं परम् ।
ज्ञानदृक्श्रोत्रविज्ञानं परमानन्दरूपकम् ॥११
विश्वेन रहितं तद्वत्तैजसेन विवर्जितम् ।
प्राज्ञेन रहितश्चैव तुरीयं परमाक्षरम् ॥१२
सर्वगोप्तृ सर्वहन्तृ सर्वभूतात्मरूपि च ।
बुद्धिधर्मविहीनं च निराधारं शिवं हरिम् ॥१३

भगवान् हरि जरा (वृद्धावस्था) और मरण से रहित—कूटस्थ—मोह से वर्जित—उत्पत्ति से रहित और प्रलय से वर्जित है ॥८॥ सम्पूर्ण आचारों से हीन सत्यस्वरूप—निष्कल परम ईश्वर नाम से हीन और जाग्रति, स्वप्न तथा सुषुप्ति की अवस्थाओं से वर्जित हैं अर्थात् जाग्रति आदि कोई भी अवस्था उनमें नहीं होती है ॥९॥ जाग्रद् आदि के अध्यक्ष है—शान्त स्वरूप हैं और सुरों के ईश्वर है—जाग्रत् आदि में स्थित—नित्य—कार्य और कारण से वर्जित हैं ॥१०॥ भगवान् सर्व दृष्ट—मूर्त्त सूक्ष्म तथा परम सूक्ष्मतर है। ज्ञान—दृक् और श्रोत्र के विज्ञान वाले—परम आनन्द के स्वरूप से समन्वित हैं ॥११॥ वे हरि विश्व से रहित और तैजस से विवर्जित—प्राज्ञ से रहित एवं तुरीय तथा परमाक्षर हैं ॥१२॥ सबके गोप्ता—सभी के हन्ता और समस्त भूतों के आत्मरूपी—बुद्धि, धर्म से विहीन—निराधार—शिव और हरि हैं ॥१३॥

विक्रियारहितश्चैव वेदान्तैर्वेद्यमेव च ।
वेदरूप पर भूतमिन्द्रियेभ्य पर शुभम् ॥१४
शब्देन वर्जितश्चैव रसेन च विवर्जितम् ।
स्पर्शेन रहित देव रूपमात्रविवर्जितम् ॥१५
रूपेण रहितश्चैव गन्धेन परिवर्जितम् ।
अनादि ब्रह्मरन्ध्रान्तमह ब्रह्मास्मि केवलम् ॥१६
एव ज्ञात्वा महादेव ध्यान कुर्य्याज्जितेन्द्रिय. ।
ध्यान य कुरुते ह्येव स भवेद् ब्रह्म मानव ॥१७
इति ध्यान समाख्यातमीश्वरस्य मया तव ।
अधुना कथयाम्यन्यत्किं तद् ब्रूहि वृषध्वज ॥१८

भगवान् समस्त प्रकार की विक्रियाओ से रहित हैं तथा वेदान्तो के द्वारा जानने के योग्य हैं–हरि वेदों के स्वरूप वाले–पर भूत–इन्द्रियो की पहुच से पर एव शुभ स्वरूप वाले हैं । वे शब्द से–रस से–स्पर्श से रहित देव हैं । केवल रूप से रहित हैं ॥१४।१५॥ रूप–गन्ध से परिवर्जित हैं–अनादि हैं–ब्रह्म रन्ध्र के अन्त और मह केवल ब्रह्म हू—ऐसे स्वरूप वाले है ॥१६॥ हे महादेव ! जितेन्द्रिय पुरुष को इस रीति से भगवान् श्री हरि का ज्ञान एव ध्यान करना चाहिए । जो इस विधि से ध्यान किया जाता है वह मनुष्य ब्रह्म ही हो जाता है । मैंने यह ईश्वर का ध्यान करने का प्रकार सम्पूर्ण तुमको बतला दिया है । अब आगे यह बतलाओ हे वृषध्वज ! मैं आपको क्या बताऊँ ? ॥१७।१८॥

५२ —विष्णुध्यान माहात्म्य

विष्णोर्ध्यानं पुनर्ब्रूहि शङ्खचक्रगदाधर ।
येन विज्ञानमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नर ॥१
प्रवक्ष्यामि हरेर्ध्यान मायातन्त्रविमर्दनम् ।
मूर्त्तामूर्त्तादिभेदेन तद्ध्यान द्विविध हर ॥२
अमूर्त रुद्र कथित हन्त मूर्त्त ब्रवीम्यहम् ।
सूर्य्यकादिप्रनीराशो जिष्णुर्भ्राजिष्णुरेव तु ॥३

कुन्दगोक्षीरधवलो हरिर्ध्येयो मुमुक्षुभि ।
विशालेन सुसौम्येन शङ्खेन च समन्वित ॥४
सहस्रादित्यतुल्येन ज्वालामालोग्ररूपिणा ।
चक्रेण चान्वित शान्तो गदाहस्त शुभानन ॥५
किरीटेन महार्हेण रत्नप्रज्वलितेन च ।
सायुध सर्वगो देव सरोरुहधरस्तथा ॥६
वनमालाधर शुभ्र समासा हेमभूषण ।
सुवस्त्र शुद्धदेहश्च सुकरण पद्मसंस्थित ॥७

श्री रुद्र ने कहा—हे शङ्ख चक्र और गदा के धारण करने वाले ! आप भगवान् विष्णु के ध्यान करने की विधि पुन बतलाइये जिसके विज्ञान मात्र से ही मनुष्य कृतकृत्य हो जाया करता है ॥१॥ श्री हरि ने कहा—अब मैं हरि के ध्यान को तुम्हे बतलाता हूँ जो ध्यान इस माया तन्त्र का विमर्दन करने वाला है । हे हर ! वह हरि का ध्यान मूर्त्त ध्यान एव अमूर्त्त ध्यान इन भेदो से दो प्रकार का होता है ॥२॥ हे रुद्र ! जो अमूर्त्त ध्यान होता है वह तो मैंने अभी तुमको बतला ही दिया है । अब मैं भगवान् हरि के मूर्त्त ध्यान का बतलाता हूँ । उसका श्रवण करो । करोड़ो सूर्यों के समान प्रकाश वाले—जिष्णु और हरि भ्राजिष्णु होते हैं ॥३॥ कुन्द के पुष्प और गाय के दुग्ध के समान धवल वर्ण वाले हरि का ध्यान मुक्ति की इच्छा करने वालो को करना चाहिए । हरि का स्वरूप विशाल एव परम सौम्य शङ्ख से समन्वित है ॥ ४ ॥ भगवान् हरि सहस्रो सूर्यों के तुल्य ज्वालाओ की मालाओ से उग्र रूप वाले चक्र से समन्वित हैं । हरि का स्वरूप परम शान्त है । उनका आनन परम शुभ है और गदा हाथो मे धारण किये हुए है ॥ ५ ॥ रत्नों की प्रभा से अतीव जाज्वल्यमान महान् कीमती किरीट से सुशोभित है । भगवान् हरि का स्वरूप आयुधो से युक्त सर्वत्र गमनशील और कमल के धारण करने वाला है ॥६॥ वनमाला धारी—शुभ्र-समान अंसो से युक्त और सुवर्ण के भूषणों से शोभित श्री हरि हैं । पद्मासन पर विराजमान परम सुन्दर वस्त्रो का धारण किये हुए—शुद्ध देह वाले और सुन्दर कानो वाला श्री हरि का स्वरूप है ॥७॥

हिरण्मयशरीरश्च चारुहारी शुभाङ्गद.।
केयूरेण समायुक्तो वनमालासमन्वित. ॥८
श्रीवत्सकौस्तुभयुतो लक्ष्मीवन्द्येक्षणान्वित ।
अणिमादिगुणैर्युक्त सृष्टिसंहारकारक ॥९
मुनिध्येयोऽसुरध्येयो देवध्येयोऽतिसुन्दर ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तभूतजातहृदि स्थित ॥१०
सनातनोऽव्ययो मेध्य सर्वानुग्रहकृत्प्रभु ।
नारायणो महादेवः स्फुरन्मकरकुण्डल ॥११
सन्तापनाशनोऽभ्यर्च्यो मङ्गल्यो दुष्टनाशन ।
सर्वात्मा सर्वरूपश्च सर्वगो ग्रहनाशन ॥१२
चार्वङ्गरीयसयुक्त सुदीप्तनख एव च ।
शरण्य सुखकारी च सौम्यरूपो महेश्वर ॥१३
सर्वालङ्कारसयुक्तश्चारुचन्दनचर्चित ।
सर्वदेवसमायुक्त सर्वदेवप्रियङ्कर ॥१४

श्री हरि का सम्पूर्ण शरीर हिरण्य मय है—सुन्दर हार के धारण करने वाले एव शुभ अङ्गदो के पहिनने वाले हैं। आप केयूर से समायुक्त और वनमाला से सुभूषित हैं ॥ ८ ॥ श्री वत्स एव कौस्तुभ मणि से युक्त हैं तथा महा लक्ष्मी के वन्दना करने के योग्य नेत्रो से समन्वित हैं अर्थात् लक्ष्मी के द्वारा दर्शनीय हैं। अणिमा—महिमा आदि गुणो से युक्त तथा सृष्टि के संहार करने वाले हैं ॥ ९ ॥ भगवान् श्री हरि का मूर्त्त स्वरूप महामुनियो के द्वारा ध्यान करने के योग्य है—असुरो के द्वारा भी ध्यान के योग्य हैं और देवो के द्वारा भी ध्येय है। भगवान् का स्वरूप अतीव सुन्दर है और ब्रह्मा से आदि लेकर स्तम्ब पर्यन्त भूमात्र के हृदय में विराजमान रहने वाले हैं ॥१०॥ वे सब पर अनुग्रह करने वाले प्रभु हैं—परम पवित्र एव सनातन अर्थात् सदा सर्वदा से चले आये सनातन अव्यय हैं। नारायण महान् देव और दीप्तिमान् मकर के तुल्य कुण्डलो वाले हैं ॥११॥ श्री हरि का मूर्त्त स्वरूप सन्तापो का नाश करने वाला है अर्थात् उनके स्वरूप के ध्यान मात्र से ही सब प्रकार के ताप नष्ट हो जाया

करते हैं। अभ्यर्चना करने के योग्य हैं। परम मङ्गल प्रदान करने वाला तथा दुष्टों का नाश करने वाला उनका स्वरूप होता है। सबकी आत्मा अर्थात् सबमें अन्तर्यामी रूप से विराजमान—सबमें गमनशील—सर्व स्वरूप और उनका मूर्त्त रूप ग्रहों को नष्ट करने वाला है ॥ १२ ॥ भगवान् श्री हरि अपने हाथों की अँगुलियों में अतीव सुन्दर अँगूठियाँ धारण की हुई हैं—उनके नख सुदीप्ति से से समन्वित हैं—शरणागति में प्राप्त होने वाले की रक्षा करने वाले—सुख करने वाले—सौम्य स्वरूप से युक्त और महान् ईश्वर हैं ॥ १३ ॥ समस्त प्रकार के सुन्दर अलङ्कारों से भूषित—चारु चन्दन से चर्चित—सम्पूर्ण देवों से समायुक्त और सब देवों के प्रिय करने वाले हैं ॥१४॥

सर्वलोकहितैषी च सर्वेश सर्वभावन ।
आदित्यमण्डले सस्थो ह्यग्निस्थो वारिसस्थित ॥१५
वासुदेवो जगद्धाता ध्येयो विष्णुर्मुमुक्षिभि ।
वासुदेवोऽहमस्मीति आत्मा ध्येयो हरिर्हरि ॥१६
ध्यायन्त्येवञ्च ये विष्णु ते यान्ति परमा गतिम् ।
याज्ञवल्क्य. पुरा ह्येव ध्यात्वा विष्णु सुरेश्वरम् ॥
धर्मोपदेशकर्त्तृत्व सम्प्राप्यागात्पर पदम् ॥१७
तस्मात्त्वमपि देवेश विष्णु चिन्तय शङ्कर ।
विष्णुध्यान पठेद्यस्तु प्राप्नोति परमा गतिम् ॥१८

सब लोकों के हित सम्पादन करने वाले—सभी के स्वामी—सबके भावन (प्रिय)—सूर्य मण्डल में सस्थित—अग्नि में स्थित और जल में विराज-हैं ॥१५॥ वासुदेव प्रभु सम्पूर्ण जगत् का ध्यान रखने वाले—सबके ध्यान करने के योग्य—मुक्ति की चाहना करने वालों के विष्णु हैं। मैं ही वासुदेव हरि हू—इस प्रकार से हरि भगवान् का आत्मरूप से ध्यान करना चाहिए ॥१६॥ जो लोग इस उक्त स्वरूप वाले विष्णु भगवान् का इस रीति से ध्यान किया करते हैं वे परमोत्तम गति को प्राप्त होते हैं। याज्ञवल्क्य मुनि ने पहिले इस प्रकार से सुरेश्वर विष्णु का ध्यान किया था, अतएव धर्मों का उपदेश करके परम पद को

है—ऐसा समझना चाहिए । पुराण—न्याय—मीमांसा अर्थ से मिश्रित धर्म-शास्त्र-वेद समस्त चौदह विद्याओं और धर्म का स्थान होते हैं । इन धर्म शास्त्रों के वक्ता मनु—विष्णु—यम—अङ्गिरा—वसिष्ठ—दक्ष—शातातप—पराशर—आपस्तम्ब—उशना—व्यास—कात्यायन—बृहस्पति— गौतम—शङ्ख—लिखित—हारीत—अत्रि—ये स्मृति हैं अर्थात् इन सबकी निर्मित स्मृतियाँ हैं । ये सब विष्णु के समान ही आराधना करने के योग्य धर्मों के उपदेश करने वाले हुए हैं ॥३।४।५।६॥ देश-काल—उपाय से एवं श्रद्धा से समन्वित द्रव्य जो पात्र में प्रदान किया जाता है यह सम्पूर्ण धर्म का लक्षण होता है ॥७॥

इष्टाचारो दमोऽहिंसा दानं स्वाध्यायकर्म च ।
अयश्च परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ॥८
चत्वारो वेदधर्मज्ञा पर्षत्त्रैविद्यमेव वा ।
सब्रूते यत्स्वधर्मः स्याद्वेवाराध्यात्मवित्तम ॥९
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयो द्विजा ।
निषेकाद्या श्मशानान्तास्तेषां वै मन्त्रतः क्रिया ॥१०
गर्भाधानमृतौ पुंसः सवनं स्पन्दनात्पुरा ।
षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तः प्रसवो जातकर्म च ॥११
अहन्येकादशे नाम चतुर्थे मासि निष्क्रमः ।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूडा कुर्याद्यथाकुलम् ॥१२
एवमेनः शमं याति बीजगर्भसमुद्भवम् ।
तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहश्च समन्त्रकः ॥१३

अभीष्ट आचार का होना—दम—अहिंसा—दान—स्वाध्याय कर्म और योग द्वारा से आत्म दर्शन करना यह ही परम धर्म है ॥८॥ वेदों के धर्मों को जानने वाले चार होते हैं । दूसरे त्रैविद्य के ज्ञाता हैं । वेदों का आराधन करके आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने वाला सब्रत में अपना धर्म होता है ॥९॥ ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण होते हैं किन्तु इनमें द्विज कहे जाने वाले तीन ही हुआ करते हैं । इनकी निषेक से आदि लेकर श्मशान के अन्त तक समस्त क्रियाएं मन्त्रों से ही हुआ करती हैं ॥१०॥ ऋतुकाल में गर्भाधान संस्कार—

का मत है तथा वृद्ध का मत है कि वैश्यो में कुल रीति की जो भी पद्धति श्रो उसी समय करावे ॥१॥ गुरु शिष्य का उपनयन करके फिर महा व्याहृतियो के सहित इस शिष्य को वेदो का अध्यापन करे और शौच तथा आचारो की शिक्षा भी देवे ॥ २ ॥ दिन मे और दोनों सन्ध्याओं के समयो मे कानपर ब्रह्म सूत्र (जनेऊ) चढाकर उत्तर की ओर मुख करके मूत्र तथा पुरीष का त्याग करना चाहिए। और यदि रात्रि मे मलमूत्र का उत्सर्ग करना हो तो दक्षिण की दिशा की ओर मुख करके करे ॥३॥ मलमूत्र त्याग करके अपने शिश्न को पकड़े हुए उठे और महान् व्रत वाले पुरुष को मिट्टी से उद्धृत जल के द्वारा दुर्गन्ध लेप के नाश करने वाली शुद्धि करनी चाहिए ॥४॥ अन्तर्जानु होकर पवित्र स्थल में बैठकर उत्तर दिशा की ओर मुख करके अथवा पूर्व की ओर मुख करके द्विज को ब्राह्म तीर्थ मे नित्य उपस्पर्शन करना चाहिए ॥५॥ कनिष्ठिका—देशिनी—अंगुष्ठ मूल और कर (हाथ) का अग्र भाग ये क्रम से प्रजापति–पितृ–ब्रह्म और दैव तीर्थ होते हैं ॥६॥ फेन और बुलबुलो से रहित प्रकृति मे स्थित रहने वाले जलों से उपस्पर्शन करना चाहिए। तीन बार जल का आचमन करके और जलों से मुखो को दो बार उन्माज्जित करे ॥७॥

हृत्कण्ठतालुगाभिस्तु यथासंख्य द्विजातय. ।
शुध्येरन्स्त्री च शूद्रश्च सकृत्स्पृष्टाभिरन्तत ॥८
स्नान तद्वर्तमन्त्रैर्मार्जनं प्राणसंयमः ।
सूर्य्यस्य चाप्युपस्थान गायत्र्याः प्रत्यह जपः ॥९
गायत्रीं शिरसा सार्द्धं जपेद् व्याहृतिपूर्विकाम् ।
प्रतिप्रणवसयुक्तां त्रिवार प्राणसयमः ॥१०
प्राणायामस्य सशुद्धिस्त्र्यचा नद्दं वतेन तु ।
जपन्नासीत सावित्री प्रत्यगातारकोदयात् ॥११
सन्ध्या प्राक्प्रातरेवं हि तिष्ठन्नासूर्यदर्शनात् ।
अग्निकार्य्यं तत. कुर्य्यात्सन्ध्ययोरुभयोरपि ॥१२
ततोऽभिवादयेद्वृद्धानसावहमिति ब्रुवन् ।
गुरुञ्चाप्युपासीत स्वाध्यायार्थं समाहितः ॥१३

उपनीय ददात्येनमाचार्य्यः स प्रकीत्तितः ।
एकदेश उपाध्याय ऋत्विग्यज्ञकृदुच्यते ॥२०
एते मान्या यथापूर्वमेभ्यो माता गरीयसी ।
प्रतिवेद ब्रह्मचर्य्यं द्वादशाब्दानि पञ्च वा ॥२१
ग्रहणान्तिकमित्येके केशान्तश्चैव षोडश. ।
आषोडशाद् द्विविंशाच्च चतुर्विंशाच्च वत्सरात् ॥२२
ब्रह्मक्षत्रविशां काल उपनायनिकः परः ।
अत ऊर्ध्वं पतन्त्येते सर्वधर्मविवर्जिता. ॥
सावित्रीपतिता व्रात्या व्रात्यस्तोमादृते क्रतो ॥२३

ब्रह्मचर्य दशा मे स्थित होकर अध्ययन के समय मे दण्ड–अजिन (मृग चर्म-छाला)—उपवीत और मेखला धारण करे । धारम वृत्ति के लिये अर्थात् शरीर पोषण के वास्ते द्विजों के भिक्षा करे जोकि अनिन्दित अर्थात् प्रशस्त हो ॥१५॥ छन्दोपलक्षित ब्राह्मण–क्षत्रिय और वैश्य यथाक्रम आदि—मध्य और अवसान मे भिक्षाचर्या करें ॥१६॥ अग्नि–कार्य पूर्ण करके गुरु की आज्ञा प्राप्त कर विनीत भाव से भोजन करे । भोजन के पूर्व आपोशन क्रिया करे अर्थात् आचमन करे और फिर अन्न का सत्कार करके उसको और से कोई भी कुत्सा का भाव न रखते हुए भोजन करना चाहिए ॥१७॥ ब्रह्मचर्य व्रत मे समास्थित होकर अनापत्ति काल मे अनेक अन्न का भोजन करे । श्राद्ध मे ब्राह्मण व्रत को पीड़ित न करते हुए इच्छापूर्वक भोजन करे ॥ १८ ॥ मधु–मांस तथा स्त्रिय इत्यादि का परिवर्जन करना चाहिए । वह गुरु है जो समस्त क्रिया करके इसको वेद का ज्ञान प्रदान करता है ॥१९॥ जो उपनयन करके उपदेश दिया करता है वह इसका आचार्य कहा गया है । जो एक देश का ही उपदेश करता है वह उपाध्याय कहा जाता है और यज्ञ करने वाला ऋत्विक् कहा जाया करता है ॥२०॥ ये सब ही मान्य होते हैं किन्तु पूर्व क्रम से इनकी मान्यता अधिक और फिर न्यून हुआ करती है किन्तु माता इन सबसे विशेष मान्य होती है । प्रत्येक वेद के अध्ययन के लिए बारह अथवा पाँच वर्ष हुआ करते हैं ॥२१॥ कुछ लोग ग्रहणान्तिक समय कहते हैं और केशान्त षोडश कहते हैं। सोलह से लेकर

करने वाला है ।।२४।२५।। द्विज को मधु-पय से देवों का तर्पण करना चाहिए। घृत और मधु से उसे प्रतिदिन पितरों का सन्तर्पण करना चाहिए। वह अनुदिन ऋचाओं का अध्ययन करता है ।।२६।। द्विज को यजुर्वेद और सामवेद पढना चाहिए और इसी भांति अथर्वाङ्गिरस का भी अध्ययन करे। वह वह अनुदिन घृतामृत से पितरों और देवों का तर्पण करे ।। २७ ।। वेदों के वाक्य—पुराण और नाराशंसी गाथाएँ—इतिहास तथा वेदों का अनुदिन भरसक जो अध्ययन करता है वह पितरों और देवों को क्षीर-ओदन आदि से सन्तृप्त किया करता है वे जब पूर्ण तथा सन्तृप्त होते हैं तो फिर इसको भी शुभ कामनाओं के फलों से सन्तुष्ट किया करते हैं ।।२८।२९।। जिस-जिस क्रतु का यह अध्ययन करता है उसी-उसी क्रतु के करने का फल इसे प्राप्त हुआ करता है। स्वाध्याय के फल का सेवन करने वाला द्विज भूमिदान और तप के फल को प्राप्त किया करता है ।।३०।। नैष्ठिक ब्रह्मचारी को अपने आचार्य की सन्निधि में ही वास करना चाहिए। अभाव में शिष्य का आचार्य-भाव आचार्य के पुत्र-पत्नी और वैश्वानरमें भी होना चाहिए। इस विधि से विजित इन्द्रियों वालों को देह का सावन करना चाहिए वह फिर ब्रह्मलोक की प्राप्ति किया करता है और इस भूमण्डल में दूसरा जन्म ग्रहण नहीं करता है। अर्थात् उसका आवागमन के बन्धन से छुटकारा ही हो जाया करता है ।।३१।३२।।

५५-गृहस्थ धर्म निर्णय

शृण्वन्तु मुनयो धर्मान्गृहस्थस्य यतव्रताः।
गुरवे च धनं दत्त्वा स्नायीत च तदनुज्ञया ।।१
समापितब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत्।
अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम् ।।२
अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम्।
पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा ।।३
द्विपञ्चनरविख्यातात् श्रोत्रियाणां महाकुलात्।
सवर्णः श्रोत्रियो विद्वान्वरो दोषान्वितो न च ।।४

इत्युक्त्वा चरता धर्मं सह या दीयतेऽर्थिने ।
सकाय पावयेत्तज्ज षड्वश्यानात्मना सह ॥६
आसुरो द्रविणादानाद् गान्धर्व समयान्मिथ ।
राक्षसो युद्धहरणात् पैशाच कन्यकाच्छलात् ॥१०
चत्वारो ब्राह्मणस्याद्यास्तथा गान्धर्वराक्षसौ ।
राज्ञस्तथासुरो वैश्ये शूद्रे चान्त्यस्तु गर्हित ॥११
पाणिर्ग्राह्य सवर्णासु गृह्णीत क्षत्रिया शरम् ।
वैश्या प्रतोदमादद्याद्वेदने चाग्रजन्मन ॥१२
पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा ।
कन्याप्रद पूर्वनाशे प्रकृतिस्थ पर पर ॥१३
अप्रयच्छन्समाप्नोति भ्रूणहत्या मृतावृतौ ।
एषामभावे दातृणा कन्या कुर्य्यात्स्वयवरम् ॥१४

आर्ष विवाह वह है जिसमे गो युग को लेकर कन्या दी जाती है । यज्ञ में स्थित ऋत्विज के लिए जहाँ कन्या का दान होता है वह दैव विवाह कहलाता है । दैव विवाह से समुत्पन्न बालक चौदह पुरुषों को और आर्ष विवाह से उत्पन्न सुत छैं पुरुषो को पुनीत करता है ॥८॥ धर्म का आचरण करो—यह कहकर जो किसी अर्थी को कन्या दी जाती है उस विवाहित स्त्री से उत्पन्न होने वाला अपने साथ छैं वश मे हुए पुरुषो को पवित्र किया करता है ॥६॥ धन देकर जो विवाह किया जाता है वह आसुर विवाह होता है । आपस मे ही वचन बद्ध होकर जो स्त्री पुरुष विवाह कर लेते हैं वह गान्धर्व विवाह होता है युद्ध मे जीत कर जो कन्या का हरण किया जाता है और उसे पत्नी बना लेते हैं वह राक्षस विवाह होता है । छल से कन्या को लाकर विवाह कर लेना पैशाच विवाह कहा जाता है ॥१०॥११॥ आदि के चार विवाह ब्राह्मण के लिए बताये गये हैं । गान्धर्व और राक्षस ये दो विवाह क्षत्रिय के होते हैं । आसुर विवाह वैश्य का और पैशाचिक विवाह शूद्र का है जोकि बहुत निन्दित होता है ॥१२॥ सवर्णा स्त्रियों का पाणि (हाथ) का ग्रहण करना चाहिए । क्षत्रिया शर का ग्रहण करे तथा वैश्या प्रतोद का ग्रहण करे और अग्र जन्मा के वेदन

जिसके कोई भी पुत्र न होता हो या हुआ ही न हो उसका गुरु गं की आज्ञा पाकर देवर सगोत्र या कोई भी सपिण्ड व्यक्ति घृत से अभ्यक्त होकर केवल पुत्र की कामना से ऋतु समय मे गमन करे ॥१६॥ जब तक उसको गर्भ धारण न हो तब तक ही उसका गमन करे। अन्यथा गमन करने में तो पतित हो जायगा। इस प्रकार से समुत्पन्न पुत्र क्षेत्रज का होता है ॥१७॥ अधिकार करने वाली—मलिन—पिण्डमात्र के उपसेवन करने वाली—परिभूत और व्यभिचारिणी स्त्री को अध शय्या कर देनी चाहिए ॥१८॥ उन स्त्रियों को सोम ने शुद्धि दी है और गन्धर्व ने शुभ वाणी प्रदान की है। पावक सर्वदा मेध्य होना है इसलिए योषित का भी मेध्य होता है ॥१६॥ व्यभिचार के विना जो स्त्री अशुद्धि से गर्भ का त्याग कर देती है। उनके गर्भ भर्त्ता के वध में तथा महान् पातक मे—सुरापी—व्याधित—द्वेष्ट्री—प्रियम्वदा विहरण करने के योग्य है। अन्यथा इसका मरण करना चाहिए। नहीं तो वह ऋषिगण कहते हैं कि महान् पाप होता है ॥२०।२१॥

> यत्राविरोधी दम्पत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्द्धते।
> मृते जीवति या पत्यौ या नान्यमुपगच्छति ॥२२
> सेह कीर्त्तिमवाप्नोति मोदते चोमया सह।
> शुद्धा त्यजस्तृतीयाश्च दद्यादाभरण स्त्रियाः ॥२३
> स्त्रीभिर्भर्त्तु वच कार्य्यमेष धर्म पर स्त्रियाः।
> षोडशर्त्तु निशा. स्त्रीणा तासु युग्मासु सविशेत् ॥२४
> ब्रह्मचारी च पर्वण्याद्याश्चतस्रस्तु वर्जयेत्।
> एव गच्छन्स्त्रिय कामान्मघा मूलश्च वर्जयेत् ॥२५
> लक्षण्य जनयेदेव पुत्र रोगविवर्जितम्।
> यथाकामी भवेद्वापि स्त्रीणा स्मरमनुस्मरन् ॥२६
> स्वदारनिरतश्चैव स्त्रियो रक्ष्या यतस्तत.।
> भर्त्तृभ्रातृपितृज्ञातिश्वश्रूश्वशुरदेवरैः ॥२७
> बन्धुभिश्च स्त्रिय. पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
> सयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ्मुखी ॥२८

आहारेद्विधिवद्दारानग्निश्चैवाविलम्बितः ।
हित्वा भर्तुर्दिवं गच्छेदिह कीर्तिरवाप्य च ॥३३

स्त्रियों को अपने सास–श्वसुर की चरणों की वन्दना सदा करनी चाहिए। जो प्रोषित भर्तृका स्त्री हो अर्थात् जिसका पति परदेश निवासी हो उसे कोई भी क्रीड़ा—शारीरिक सत्कार अर्थात् शरीर को वेश–भूषा से सुसज्जित करना–समाज मे सम्मिलित होना—उत्सवों का देखना—हास्य करना—दूसरों के घर पर जाना आदि का त्याग कर देना चाहिए। कन्या की रक्षा बचपन में पिता और यौवन में उसकी सुरक्षा पति को करनी चाहिए ॥२६।३०॥ वार्द्धक्य की अवस्था मे उसकी रक्षा पुत्र को करनी चाहिए। पुत्र न हो तो ज्ञाति के लोग उसकी रक्षा करें। पति के बिना स्त्री को कहीं भी दिन या रात्रि में नहीं रहना चाहिए ॥३१॥ सर्वदा जो ज्येष्ठा स्त्री हो उसी को धार्मिक विधि से साथ मे नियुक्त करे और कनिष्ठा को कभी न करे। पातिव्रत वाली अर्थात् सच्चरित्रा स्त्री का दाह अग्निहोत्र के द्वारा करे ॥३२॥ विधिवत् विलम्ब न करके दाराओं और अग्निका आहरण करे भर्ता को हित्वा स्त्री यहाँ यश पाकर दिवलोक मे जाती है ॥३३॥

५६—द्रव्य शुद्धि

द्रव्यशुद्धि प्रवक्ष्यामि तां निबोधत सत्तमाः ।
सौवर्णराजताब्जानां शङ्खरज्ज्वादिचर्मणाम् ॥
पाषाणानाञ्चासनानाञ्च वारिणा शुद्धिरिष्यते ॥१
उष्णाद्भिः स्रुक्स्रुवयोर्धान्यानां प्रोक्षणेन च ।
तक्षणाद् दारुशृङ्गादेर्यज्ञपात्रस्य मार्जनात् ॥२
सोष्णैरुदकगोमूत्रैः शुद्ध्यत्याविककौषिकम् ।
भैक्ष्य योषिन्मुखं पण्यन्पुनः पाकान्महीमयम् ॥३
गोघ्रातेऽन्ने तथा केशमक्षिकाकीटदूषिते ।
भस्मक्षेपाद्विशुद्धिः स्याद् भूशुद्धिर्मार्जनादिना ॥४

अमेध्य (अपवित्र) और अक्त अर्थात् तैलादि से युक्त पात्र एव पदार्थ की शुद्धि मिट्टी एव जल से करे जब तक कि उस पर जो गन्ध तथा लेपन है वह न छूट जावे । जो एक गौ की तृपा शान्त करदे उतना जल शुद्ध होता है और जो जल स्वाभाविक रूप से भूमिगत होता है वह भी शुद्ध होता है ॥६॥ कुत्ता–चण्डाल और क्रव्याद आदि व द्वारा निपातित मांस, रश्मि, अग्नि–रज की छाया—गौ–वसुधा—घोडा और बकरी के मुख की बूंदे एव मल की बूंदे सदा मेध्य होती हैं । स्नान करके—पान करके—छींक लेकर—सोकर–खाकर और गली मे चल–फिर कर आचान्त होकर भी पुन आचमन करना चाहिए अन्य वस्त्र का परिधान करके—क्षुत और निष्ठीवन करने पर–स्वाप मे—परिधान मे तथा अश्रुपातन मे इन पांच कर्मों में आचमन न करे केवल दक्षिण श्रवण का स्पर्श कर लेवे । ब्राह्मण के दक्षिण कर्ण मे अग्नि आदि देवगण सर्वदा निवास किया करते है । अतएव उसके स्पर्श मात्र से ही शुद्धि का विधान बनाया गया है ॥७।८।९।१०॥

५७—श्राद्धविधि

अथ श्राद्धविधि वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम् ।
अमावस्याष्टकावृद्धिकृष्णपक्षायनद्वयम् ॥१
द्रव्य ब्राह्मणसम्पत्तिर्विषुवत्सूर्य्यसक्रम ।
व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहण चन्द्रसूर्य्ययो ।
श्राद्ध प्रति रुचिश्चैव श्राद्धकाल प्रकीर्त्तित. ॥२
अग्र्यो य सर्वदेवेपु श्रोत्रियो वेदविद्युवा ।
तिथिज्ञाने च कुशल. त्रिमधुस्त्रिसवर्णिक. ॥३
स्वस्रीयऋत्विग्जामाताचार्य्यश्वशुरमातुला ।
त्रिणाचिकेतदौहित्रशिष्यसम्बन्धिबान्धवा ॥४
कर्मनिष्ठा द्विजा केचित्पञ्चाग्निब्रह्मचारिण ।
पितृमातृपराश्चैव ब्राह्मणा श्राद्धदेवता. ॥५
रोगी हीनातिरिक्ताङ्ग काण· पौनर्भवस्तथा ।
अवकीर्णादयो ये च ये चाचारविवर्जिता. ॥६

या दिव्या इति मन्त्रेण हस्तेष्वेव विनिक्षिपेत् ।
गन्धं तथोदकश्चैव धूपादींश्च पवित्रकम् ॥१२
अपसव्य ततः कृत्वा पितृणामप्रदक्षिणम् ।
द्विगुणांस्तु कुशान्दत्वा उशन्तस्त्वेत्यृचा पितॄन् ॥१३
आवाह्य तदनुज्ञातैर्जपेदायान्तु नस्ततः ।
यवार्थस्तु तिलैः कार्य्यः कुर्य्यादर्घ्यादि पूर्ववत् ॥१४

श्राद्ध के दिन पूर्वाह्न मे आचान्त होते हुए उन्हें आसनों पर उपविष्ट कराना चाहिए । उनसे प्रार्थना करे कि आपको दैव-पित्र्य कर्म के लिये आमन्त्रित किया है । अपने प्रदेशो मे प्राप्त कराने की शक्ति नही है ।।८।। दो को पूर्व में दैव कर्म के लिये—उत्तर दिशा मे पित्र्य कर्म के लिये तीन को—इस तरह दोनो को पृथक् रक्खे । इसी रीति से माता महादिक के लिये भी करे । अथवा वैश्वदेविक मन्त्र का प्रयोग करे ।।९।। फिर इसके अनन्तर हस्त-प्रक्षालन देकर विष्टर के लिये कुशाओ को देवे । फिर उनके द्वारा अनुज्ञा प्राप्त कर महान् ऋचा से विश्वेदेवाओ का आवाहन करे ।।१०।। यवो के द्वारा पवित्रों के सहित पात्र में अन्न का विकरण करे । "शन्नो देवी"—इस मन्त्र से पय का क्षेपण कर "यवोऽसीति"—मन्त्र से यवो का विकरण करे । "या दिव्या"—इस मन्त्र के द्वारा उनके हाथो मे ही गन्ध-उदक-धूप और पवित्रक आदि को विनिक्षिप्त करना चाहिए ।।११।१२।। इसके अनन्तर अपसव्य होकर पितरो के अप्रदक्षिण मे द्विगुण कुशाओं के देकर "उशन्तस्त्वा"-इस मन्त्र से पितृगण का आवाहन करे । फिर उनसे अनुज्ञात होकर "आयान्तु नस्तत"—इस मन्त्र का जाप करे यवार्थ तिलो के द्वारा करना चाहिए । फिर पूर्व की भाँति अर्घ्य आदि करे ।।१३।१४।।

दत्त्वार्घ्यं संश्रवं ह्येषां पात्रे कृत्वा विधानत. ।
पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यधः ॥१५
अग्नौ करिष्ये आदाय पृच्छत्यन्नं घृतप्लुतम् ।
सव्याहृतिञ्च गायत्री मधुवातेत्यृचस्तथा ॥१६

वाच्यतामित्यनुज्ञातः पितृभ्यश्च स्वधोच्यताम् ।
विप्रैरस्तु स्वधेत्युक्तो भूमौ सिञ्चेत्ततो जलम् ॥२२
प्रीयन्तामिति चोहैव विश्वेदेवा जल ददत् ।
दातारो नोऽभिवर्द्धन्ता वेदा सन्ततिरेव च ॥२३
श्रद्धा च नो माव्यगमद्बहु देयञ्च नाऽस्त्विति ।
इत्युक्तोऽपि प्रिय वाच प्रणिपत्य विसर्जयत् ॥२४
वाजे वाजे इति प्रीत्या पितृपूर्व विसर्जनम् ।
यस्मिस्ते सश्रवा पूर्वमर्घ्यपात्रे निपातिता ॥
पितृपात्र तदुत्तान कृत्वा विप्रान्विसर्जयत् ॥२५
प्रदक्षिणमनुस्तुत्य भुञ्जीत पितृशेपितम् ।
ब्रह्मचारी भवेत्तत्र रजनी भार्यया सह ॥२६
एव सदक्षिण कुर्य्याद् द्वौ नान्दीमुखानपि ।
यजेत्तदधिककर्न्धुमिश्रा पिण्डा य० श्रिता ॥२७
एकोद्दिष्ट दैवहीन एकार्घ्यैकपवित्रकम् ।
आवाहनाग्नीकरणरहित ह्यपसव्यवत् ॥२८
उपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने विप्रान्विसर्जयेत् ।
अभिरम्यता प्रब्रूयात्प्रोचुस्तेभिरता. स्वह ॥२९
गन्धोदकतिलैर्मिश्र कुर्य्यात्पात्रचतुष्टयम् ।
अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्र प्रसेचयेत् ॥३०
ये समाना इति द्वाभ्या शेप पूर्ववदाचरेत् ।
एतत्सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्ट स्त्रिया अपि ॥३१

स्वधा का वाचन करो—इस प्रकार से उनकी अनुज्ञा प्राप्त कर पितृ-गण के लिये स्वधा का वाचन करना चाहिए। विप्रो के द्वारा 'स्वधा होवे'—ऐसा कहने पर उस जल को भूमि पर सिञ्चित कर देवे ॥२२॥ जल देता हुआ विश्वेदेवा प्रसन्न होवें—यह बोले। हमारे दाता—वेद-स्याति बढ़ें। हमारी श्रद्धा का लोप न होवे और हमको देय होवे—इस प्रकार से प्रिय वचन कहकर उनको प्रणिपात करके फिर विसर्जित करे। "वाजे-वाजे"—इस का उच्चारण करते

अश्वानायुश्च विधिवद्यः श्राद्ध सम्प्रतीच्छति ॥२७
कृत्तिकादिभरण्यन्त स कामी प्राप्नुयादिमान् ।
वस्त्राढ्याः प्रीणयन्त्येव नव श्राद्धकृत द्विजा ॥२८
आयु प्रजा धन विद्या स्वर्गमोक्षसुखानि च ।
प्रयच्छति तथा राज्य प्रीत्या नित्य पितामह ॥३९

सपिण्डी करण के पीछे जिसका सवत्सर से होवे उसका भी सोद कुम्भ मन्न द्विज को सवत्सर म दे देना चाहिए और पिंडो को गो—अजा तथा विप्रो को दे देवे अथवा अग्नि या जल म दे दना चाहिए ॥३२॥ हविष्यान्न से मास मे—पायस से वत्सर मे पितामह सन्तुष्ट होते हैं। मत्स्यादि के आमिष के यथाक्रम मास वृद्धि मे देन पर भी उन्हे परम सन्तोष हुआ करता है ॥३३।३४॥ त्रयोदशी मे और मघा मे अर्घ्य देवे। इस प्रकार से प्रतिपदा प्रभृति में श्राद्ध दाता कन्यादि की प्राप्ति करता है—इसम सशय नही है ॥३५॥ जिनका निहनन शस्त्र से हुआ हो उनको श्राद्ध चतुर्दशी तिथि मे दिया जाता है। जो विधि-विधान के साथ श्र द्ध देता है उसे स्वर्ग—अपत्य योग—शौर्य—क्षेम—बल—अरोगिता यश—वीतशोकता—परमगति—धन—विद्या—वाक्‌सिद्धि—कुप्य—गौ—अजाविक—अश्व आयु आदि की प्राप्ति होती है ॥३६।३७॥ कृत्तिका से आदि लेकर भरणी के अन्त तक कामना वाला इन उक्त पदार्थो को प्राप्त किया करता है। नव श्राद्ध करने वाले पर वस्त्रो से आढ्य द्विज परम प्रसन्न होते हैं। पितामह प्रीति से नित्य आयु—प्रजा—धन—विद्या—स्वर्ग—मोक्ष—सुख तथा राज्य को प्रदान किया करते हैं ॥३८।३९॥

५८ विनायकोपसृष्ट लक्षण

विनायकोपसृष्टस्य लक्षणानि निबोधत ।
स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थं जल मुण्डाश्च पश्यति ॥१
विमना विफलारम्भ. ससीदत्यनिमित्ततः ।
राजा राज्य कुमारी च पति पुत्रश्च गुर्विणी ॥२
नाप्नुयात्स्नपनन तस्य पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् ।

यत्ते केशेषु दौर्भाग्य सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि ।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोर्नाश तद्यातु ते सदा ॥८
स्नातस्य सार्षप तैल श्रवणे मस्तके तथा ।
जुहुयान्मूर्द्धनि कुशान्माज्यान्सपरिगृह्य च ॥६
मित सयमितश्चैव तथा शालकटङ्कट ।
कूष्माण्ड राजपुत्राश्च अन्त स्वाहासमन्वितै ॥१०
सद्यश्चतुष्पथे भूमौ कुशानास्तीर्य सर्वश ।
कृताकृत तथा चव तण्डुलौदनमेव च ॥११
पुष्प चित्र सुगन्धश्च सुराञ्च निविधामपि ।
दधिपायसमन्नञ्च धृतञ्च गुडमादकम् ॥१२
एतान्सर्वानुपाकृत्य भूमौ कृत्वा तत शिव ।
अम्बिकामुपतिष्ठेत्त दद्यादन्न कृताञ्जलि ॥१३
दूर्वासिपपुष्पैश्च पुनर्जन्मभिरन्तत ।
कृतस्वस्त्ययनश्चैव प्रार्थयदम्बिका सतीम् ॥१४
रूप देहि यशो देहि भाग्य भवति देहि मे ।
पुत्रान्देहि श्रिय देहि सर्वान्कामाश्च देहि मे ॥१५
ब्राह्मणास्तोपयेत्पश्चाच्छुक्लवस्त्रानुलेपन ।
वस्त्रयुग्म गुरोर्दद्यात्सपूज्यश्च ग्रहस्तथा ॥१६

जो तेरे केशो म—सीमन्त मे और मूर्द्धा म दौर्भाग्य है तथा ललाट मे—कानो मे और नत्रो म दौर्भाग्य है वह सदा नाश को प्राप्त होवे ॥८॥ जब स्नान कर लेवे तो उस नहाय हुए के श्रवण मे तथा मस्तक में और मूर्द्धा मे घृत सहित कुशाओ को ग्रहण कर सरसो के तैल की आहुतियाँ देवे ॥६॥ मित और सयमित हो शाल कटङ्कटों से युक्त कूष्माण्ड तथा अन्त मे स्वाहा से समन्वित राज पुत्रो को सद्य से चतुष्पथ पर भूमि म सब और कुशाओ को आस्तृत करे। कृत कृत तण्डुल और ओदन—पुष्प—चित्र—सुगन्ध और तीनो प्रकार की सुरा—दधि—पायस—अन्न —घृत—गुड मोदक इन समस्त वस्तुओ को उपाकृत करके भूमि मे रक्खे और इसके अनन्तर शिव एव अम्बिका का उप-

सित-कृष्ण-कृष्ण ये क्रम से वर्ण हैं। हे मुनिगण! इनको समझलो ॥४॥ इन ग्रहों में द्रव्यों से विधान के साथ स्नपन करावे तथा होम करावे। सुवर्ण का दान करे। वस्त्र और कुसुमों को देवे ॥५॥ गन्ध आदि वलय देवे। गूगल की धूप देनी चाहिए। वहाँ पर ग्रह याग में अग्नि प्रत्यधि दैवत मन्त्रों के द्वारा यह सब कृत्य पूर्ण करने चाहिए ॥६॥ 'आकृष्णेन-इम-देवा-अग्निमूर्धादिव- ककुत् उद्बुध्य स्व'—इन ऋचाओं से क्रम नुसार हवन करना चाहिए ॥७॥

बृहस्पते परिदीयेति अन्नात्परिश्रुतारसम्।
शन्नोदेवी कयानश्च केतुं कृण्वन्निति क्रमात् ॥८
अर्क पलाश खदिरस्त्वपामार्गोऽथ पिप्पल।
औदुम्बर शमी दूर्वा कुशाश्च समिध क्रमात् ॥
होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना चैव समन्वित ॥९
गुडौदनो पायसञ्च हविष्य क्षीरषष्टिकम्।
दध्योदन हवि पूपान्मांस चित्रान्नमेव च ॥१०
दद्याद् द्विज क्रमादेतान्ग्रहेभ्यो भोजन तत।
धेनु शङ्खस्तथानड्वान्हेमवासा हयस्तथा ॥११
कृष्णा गौरायस छाग एता वै दक्षिणा क्रमात्।
ग्रहा पूज्या सदा यस्माद्वाञ्छापि प्राप्यते फलम् ॥१२

'बृहस्पते परिदीय'—इससे अन्नात्परि श्रुतारसम्—शन्नोदेवी—कयानश्च केतु कृण्वन्'—इनसे क्रम पूर्वक आहुतियाँ देवे ॥ ८ ॥ अर्क (आक)—पलाश (ढाक)—खदिर—अपामार्ग—पीपल—गूलर—शमी (छोंकर)—दूर्वा (दूभ) और कुशा ये इनके हवन करने के लिए क्रम से समिधाएँ होती है। मधु (शहद) और सर्पि (घृत) से जोकि दधि (दही) से समन्वित हो हवन करे ॥९॥ गुड़-ओदन-पायस ये हविष्य हैं। और षष्टिक—दधि—ओदन ये हवि है। पूप (पूआ) आमिष-चित्रान्न यह भोजन द्विज को ग्रहों के लिए देना चाहिए। फिर विप्रों को ग्रहों की सन्तुष्टि के लिए दक्षिणा देवे। दक्षिणा क्रम से धेनु-शङ्ख-अन-ड्वान्-हेम-वस्त्र-अश्व-श्यामा गौ-आयस छाग यह होती हैं। इस प्रकार से

स्नान-सन्ध्या करे और कभी किसी का प्रतिग्रह ग्रहण न करे ॥ ३ ॥ निरन्तर वेदादि निगमों का स्वाध्याय करे । ध्यान के स्वभाव वाला बने । समस्त प्राणी-मात्र के हित-सम्पादन के कार्य में रति रक्खे । दिन के अथवा मास के मध्य में स्वार्थ का परिग्रह करना चाहिए ॥४॥ बिना किसी वस्तु का आश्रय लेकर भूमि में शयन करे और फल की आकाङ्क्षा से रहित होकर कर्म करना चाहिए । ग्रीष्म ऋतु में पञ्च अग्नि तपे और वर्षा ऋतु में स्थण्डिल शायी रहे ॥५॥ हेमन्त में गीले वस्त्र धारण कर प्रतिदिन योग का अभ्यास करे । सर्वदा क्रोध रहित-परितोष से सम्पन्न रहे । समस्तों को भी ऐसा ही रक्खे और अपने आपको भी ऐसा रक्खे ॥६॥

भिक्षोर्धर्मं प्रवक्ष्यामि त निबोधत सत्तमा ।
वनान्निवृत्य कृत्वेष्टिं सर्ववेदप्रदक्षिणाम् ॥७
प्राजापत्यं तदन्तेऽपि अग्निमारोप्य चात्मनि ।
सर्वभूतहित शान्तस्त्रिदण्डी सकमण्डलु ॥
सर्वाशां परित्यज्य भिक्षार्थी ग्राममाश्रयेत् ॥८
अप्रमत्तश्चरेद् भैक्ष्यं सायाह्ने नाभिलक्षित ।
वाहितभिक्षुर्कंग्रामे यात्रामात्रमलोलुप ॥९
भवेत्परमहंसो वा एकदण्डी यमादित. ।
सिद्धयोगस्त्यजन्देहममृतत्वमिहाप्नुयात् ॥१०
योगमभ्यस्य मितभुक्परा सिद्धिमवाप्नुयात् ।
दाताऽतिथिप्रियो ज्ञानी गृही श्राद्धेऽपि मुच्यते ॥११

याज्ञवल्क्य मुनि कहते हैं—अब भिक्षु के धर्म को बताता हूँ—हे सत्तमो ! उसे समझो । वानप्रस्थाश्रम में रहकर वन से निवृत्त होवे । इष्टि करके समस्त वेदों की प्रदक्षिणा करे । इसके अन्त में प्राजापत्य करे और अपनी आत्मा में अग्नि का आरोपण करे । सब भूतों के हित में रत होते हुए शान्ति धारण कर तीन दण्ड धारण करे और कमण्डलु का ग्रहण करे ॥७।८॥ समस्त प्रकार के आशाओं का परित्याग कर भिक्षा का अर्थी होकर ग्राम का आश्रय ग्रहण करना चाहिये । अप्रमत्त होकर भिक्षाचरण करे और सायाह्न में अभिलक्षित न होवे ।

है ॥३॥ तैल का हरण करने वाला तैल पीने वाला—दुर्गन्ध युक्त मुख वाला—सूचक होता है। ऐसे पुरुष समस्त शुभ लक्षणों से भ्रष्ट—दरिद्र और पुरुषों में अधम होते हैं और जन्म ग्रहण किया करते हैं। शुभ लक्षणों से उत्पन्न धन धान्य से समन्वित हुआ करते हैं ॥४॥

६२—प्रेत शौच वर्णन

प्रेतशौच प्रवक्ष्यामि मच्छृणुध्व यतव्रता ।
ऊनद्विवर्षं निखनेन्न कुर्यादुदक तत ॥१
आश्मशानादनुव्राह्य इतरैर्ज्ञातिभिर्युत ।
यमसूक्त तथा जप्य जपद्भिर्लौकिकाग्निना ॥
स दग्धव्य उपेतश्चेदाहिताग्न्यावृतार्थवत् ॥२
सप्तमाद्दशमाद्वापि ज्ञातयाऽभ्युपयान्त्यप ।
अपन सोशुचदघमनेन पितृदिङमुखा ॥३
एव मातामहाचार्यपत्नीनाञ्चोदकक्रिया ।
कामोदका सखिपुत्रस्वस्रीयश्वशुरत्विजा ॥
नामगोत्रेण ह्युदक सकृत्सिञ्चन्ति वाग्यता ॥४
पाषण्डपतितानां तु न कुर्युरुदकक्रिया ।
ब्रह्मचारिणो व्रात्या याश्चिन्न कामगास्तथा ॥५
सुरापा स्वात्मघातिन्या न शौचोदकभाजना ।
ततो न रोदितव्य हि त्वनित्या जीवसस्थिति ॥६
क्रिया कार्य्या यथाशक्ति ततो गच्छेद् गृहान् प्रति ।
विदार्य्य निम्बपत्राणि नियतो द्वारि वेश्मन ॥७

याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा—हे यत व्रत वालो। अब हम प्रेत के कारण होने वाले आशौच के विषय में आपको बतलाते हैं उसको आप लोग श्रवण करें—जो दो वर्ष से कम हो उसका निखनन करे अर्थात् भूमि में गाड़ देवे और फिर उदक क्रिया न करे। श्मशान तक अनुव्राहित करके इतर ज्ञातियों के सहित यम सूक्त का जप करना चाहिए। इस प्रकार से जाप करने वालों के

ऊनद्विवर्षे उभयो. सूतक मातुरेव हि ॥
अन्तरा जन्ममरणे शेषाहोभिर्विशुध्यति ॥१३
दशद्वादशवर्णाना तथा पञ्चदशैव च ।
त्रिशद्दिनानि च तथा भवति प्रेतसूतकम् ॥१४

आचमन करके इसके अनन्तर अग्नि–उदक–गोमय (गोबर) और गौर सर्षप (सरसों) का प्रवेश करे । समन्मन पत्थर पर करके धीरे पद रखे ।८। इस प्रकार से प्रवेशन आदि कर्म करे । प्रेत के सस्पर्श से और देखने वालो की उसी समय शुद्धि होती है और दूसरो की स्नान–प्रयम से शुद्धि हो जाती है ॥९॥ खरीद कर लाये हुए तथा कही न प्राप्त हुए भोजन को करने वाले वे पृथक्-पृथक् भूमि पर ही शयन करे । यज्ञ करने वाले पुरुष को प्रेत के लिये तीन दिन तक अन्न पिंड देना चाहिए ॥ १० ॥ एक दिन आकाश मे जल तथा मृण्मय पात्र मे क्षीर स्थापित करे । श्रुति प्रतिपादित वैतानोपासना की क्रिया करनी चाहिए ।११। जिनके दांत पैदा न हुए हों उनकी जन्म से दांत उगने तक सद्य शुद्धि हो जाती है । चूड़ा कर्म होने तक एक निशा की अशुद्धि रहती है । व्रतादेश होने के पूर्व तक तीन रात्रिका आशौच मृतक का होता है । इससे ऊपर दश रात्रि तक अशौच रहा करता है ॥१२॥ तीन रात्रि अथवा दश रात्रि शव से सम्बन्धित अशौच हुआ करता है । दो वर्ष स कम का दोनो मे (जन्म-मरण मे) केवल माता को ही सूतक होता है । जन्म-मरण के अन्तर मे शेष दिनो मे विशुद्धि होती है ॥१३॥ वर्णों का आशौच क्रम से दश–बारह–पन्द्रह और तीस दिन का प्रेत सूतक होता है । अर्थात् ब्राह्मण को दश दिन का—क्षत्रिय को बारह दिन का—वैश्य को पन्द्रह दिन का और शूद्र को तीस दिन का सूतक-शौच होता है ॥१४॥

अहस्त्वदत्तकन्यासु बालेषु च विशोधनम् ।
गुर्वन्तेवास्यनूचानमातुलश्रोत्रियेषु च ॥१५
अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च ।
नीरसे राजनि तथा तदह. शुद्धिकारकम् ॥१६

लवणादि न विक्रीयात् तथा चापद् गतो द्विजः।
कुर्यात् कृष्यादिकं तद्वद्विक्रेया हयास्तथा ॥२४
बुभुक्षितस्त्र्यह स्थित्वा दृष्ट्वा वृत्तिविवर्जितम्।
राजा धर्मान्प्रकुर्वीत वृत्ति विप्रादिकस्य च ॥२५

द्विज को यदि निर्वाह न होता है तथा आपत्ति काल उपस्थित हो जावे तो उसे क्षत्रिय के अथवा वैश्य के कर्म से जीवन-निर्वाह कर लेना चाहिए। वैश्य की वृत्ति का आश्रय भी लेवे तो फल-सोम-क्षौम-वीरुद्-दधि-क्षीर-घृत—जल—तिल—ओदन—रस-क्षार-मधु—लाक्षायुत-हवि-वस्त्र-उपलासव पुष्प-शाक—मृद—चर्म—पादुका—एणत्व—कौषेय—लवण-मांस-पिण्याक-मूल और गन्धो का विक्रय कभी नही करना चाहिए। इनका विक्रय धर्मार्थ है जोकि तिल धान्य से सयुत है। आपद्गत होने पर भी द्विज को लवण आदि का विक्रय कभी नही करना चाहिए। कृषि आदि का कार्य ही करना चाहिए। अश्वो का भी विक्रय नही करे। तीन दिन तक बुभुक्षित रहकर स्थित हो तो उसे देखकर जोकि वृत्ति से वर्जित है राजा को धर्म करना चाहिए और विप्रादि की वृत्ति की व्यवस्था करे ॥२१ से २५॥

६३-पराशरोक्त धर्म कीर्तन

पराशरोऽब्रवीद् व्यास धर्मं वर्णाश्रमादिकम्।
कल्पे कल्पे क्षयोत्पत्ति क्षीयन्ते न ह्यजादय. ॥१
श्रुतिः स्मृति. सदाचारो य कश्चिद् वेदकर्तृक.।
वेदाः स्मृता. ब्राह्मणादौ धर्मा मन्वादिभि सदा ॥२
दान कलियुगे धर्म. कर्त्तारश्च कलौ त्यजेत्।
पापकृत्यं तु तत्रैव शाप फलति वर्षत ॥३
आचारात्प्राप्नुयात्सर्वं षट् कर्माणि दिने दिने।
सन्ध्या स्नान जपो होमो देवातिथ्यादिपूजनम् ॥४
अपूर्व. सुव्रती विप्रो ह्यपूर्वा यतयस्तदा।

कर्षका: क्षत्रविट्शूद्रा खल्वदत्त्वा तु चौरका ।
दिनत्रयेण शुध्येत ब्राह्मण: प्रेतसूतके ॥९
क्षत्री दशाहाद्दंस्यस्तु द्वादशान्मासि शूद्रक: ।
याति विप्रो दशाहात्तु क्षत्रो द्वादशकाद्दिनात् ॥१०
पञ्चदशाहाद्दंश्यस्तु शूद्रो मासेन शुध्यति ।
एकपिण्डास्तु दायादा पृथग्भावनिकेतना: ॥११
जन्मना च विपत्तौ च भवेत्तेषाञ्च सूतकम् ।
चतुर्थे दशरात्रस्य षण्निशा पुंसि पञ्चमे ॥१२
षष्ठे चतुरहाच्छुद्धि सप्तमे च दिनत्रयम् ।
देशान्तरे मृते वाले सद्य शुद्धिर्यतो मृते ॥१३
अजातदन्ता ये वाला ये च गर्भाद्विनि सृता ।
न तेषामग्निसस्कारो न पिण्ड नोदकक्रिया ॥१४

सूना यज्ञ से समान्वित होता हुआ तिल और घृत का विक्रय कभी न । राजा को छठवाँ भाग और देवताओ को बीसवाँ भाग देवे । तेतीसवाँ भाग विप्रो को देवे तो कृषि के कर्म को करने वाला व्यक्ति कभी भी पाप से लिप्त नही होता है ॥८॥ जो क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र कर्षक है और वे दान नही करते है तो चोर होते है । ब्राह्मण प्रेत सूतक मे तीन दिन मे शुद्ध हो जाता है ॥९॥ क्षत्रिय दश दिन में—वैश्य वारह दिन मे और शूद्र एक मास मे प्रेत सूतक मे शुद्ध हुआ करता है । विप्र दश दिन मे—क्षत्रिय बारह दिन में—वैश्य पन्द्रह दिन मे और शूद्र एक मास मे शुद्ध होता है । एक पिंड वाले दायाद जिनके भाव और निकेतन पृथक् हो उनको जन्म और मरण मे सूतक सबको होता है । चौथी पीढ़ी तक दश रात्रिका—पांचवी पीढ़ी मे छै रात्रिका—छठवी पीढ़ी मे चार दिन का और सातवीं पीढ़ी में तीन दिन मे शुद्धि होती है । देशान्तर मे मरने पर और बालक के मरने पर सद्य शुद्धि हो जाती है ॥१०॥ ॥११॥१२॥१३॥ अजात दन्त जो बालक है और जो गर्भ से निकले हुए बालक है उनका अग्नि सस्कार नही होता है—न उनका पिंडदान होता है और न उनके लिए जल क्रिया ही होती है ॥१४॥

सङ्कल्पित कृत्य है उसका अन्य वर्जन किया जाता है ॥ २० ॥ यह सूतकी सूत और जातक से शुद्ध होता है। गो ग्रहादि मे विपन्नो का केवल एक रात्रि का सूतक होता है ॥२१॥

अनाथप्रेतवहनात् प्राणायामेन शुध्यति ।
प्रेतशूद्रस्य वहनात्त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥२२
आत्मघातिविपाद्वन्धकृमिदष्टे न सस्कृति ।
गोहतकृमिदष्टञ्च स्पृष्ट्वा कृच्छ्रेण शुध्यति ॥२३
अदुष्टा पतिता भार्या यौवने य परित्यजेत् ।
सप्तजन्म भवेत् स्त्रीत्व वैधव्यञ्च पुन पुन ॥२४
बालहत्या त्वगमनाहतो च स्त्री तु सूकरी ।
अगम्या व्रतकारिण्यो भ्रष्टपानोदकक्रिया ॥२५
औरस क्षेत्रज: पुन पितृजो पिण्डदो पितु ।
परिवित्तेस्तु कृच्छ्र स्यात्कन्याया कृच्छ्रमेव च ॥२६
अतिकृच्छ्र चरेद् दाता होता चान्द्रायणञ्चरेत् ।
कुब्जवामनपण्डेषु गद्गदेषु जडेषु च ॥
जात्यन्धवधिरे मूके न दाप परिवेदने ॥२७
नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे वा पतिते पतौ ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणा पतिरन्यो विधीयते ॥२८

कोई अनाथ प्रेत हो और उसका वहन श्मशान तक किया जावे तो केवल प्राणायाम करने से ही शुद्धि हो जाया करती है। प्रेत शूद्र के वहन करने से तीन रात्रि मे अशुचिता दूर होती है ॥२२॥ आत्मघात करने वाले—विष से—बन्ध मे—कृमि के द्वारा दष्ट हो जाने से जो मृत्यु होती है उसका संस्कार नहीं होता है। गो से हत और कृमि से दष्ट का स्पर्श करके कृच्छ्र व्रत से शुद्धि होती है ॥ २३ ॥ जो दोषो मे रहित अपनी भार्या को यौवनावस्था मे ही परित्यक्त कर देता है उनको सात जन्म तक स्त्री की योनि प्राप्त हुआ करती है और बारम्बार वह विधवा भी होती है ॥२४॥ बालह या और अनुगमन मे

पूर्वंक स्वाग्नि से दाह करे ॥२६। ३०॥ यदि किसी की प्रवास मे मृत्यु हो जावे तो उसका पुत्तल कुशो से बना कर फिर उसका दाह करे। कृष्णाजिनमे छै सौ पलाशओ का समास्तरण करे। शिश्न म शमी को और वृषण मे अरणि का विनिक्षिप्त करे। दक्षिण हस्त मे कुण्ड तथा वाम हस्त मे उपभृत— पार्श्व मे उलूखल और पृष्ठ म मुसल का दाह करे। ऊरुओ मे दृषद (पत्थर) और मुख मे तण्डुल—घृत और तिलो का निक्षेप करे ॥३१॥३२॥३३॥ श्रोत्र मे प्रोक्षणी देवे और चक्षुओ मे आज्य स्थाली देवे। कान—नेत्र—मुख और घ्राण मे सुवर्ण के टुकडे क्षिप्त करने चाहिए ॥३४॥ अग्नि होत्र के उपकरण से ब्रह्मलोक की गति वाला होता है। "असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा"— इसमे एक बार आहुति देवे ॥३५॥ हस—सारस—क्रौञ्च—चक्र वाक— कुक्कुट—मयूर और मेष के घात करने वाला पुरुष एक रात्रि मे शुद्ध होता है ॥३६॥ समस्त प्रकार क पक्षियो का हनन करने पर एक अहोरात्र में शुद्धि हुआ करती है। सब तरह के चतुष्पदो का हनन करने पर एक अहोरात्र तक उपोषित रहे और जप करे तो शुद्धि होती है ॥३७॥

६४—नीतिसार कथन

नीतिसार प्रवक्ष्यामि ग्रर्थशास्त्रादिसश्रितम्।
राजादिभ्यो हित पुण्यमायु स्वर्गादिदायकम् ॥१
सद्भि सङ्ग प्रकुर्वीत सिद्धिकाम सदा नर।
नासद्भिरिहलोकाय परलोकाय वा हितम् ॥२
वर्जयेत्क्षुद्रसवाद दुष्टस्य चैव दर्शनम्।
विरोध सह मित्रेण सप्रीति शत्रुसेविना ॥३
मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभरणेन च।
दुष्टाना सम्प्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति ॥४
ब्राह्मण बालिश क्षत्रमयोद्धार विश जडम्।
शूद्रमक्षरसयुक्त दूरत परिवर्जयेत् ॥५
कालेन रिपुणा सन्धि काले मित्रेण विग्रह।
कार्य्यकारणमाश्रित्य काल क्षिपति पण्डित. ॥६

उत्तमैं सह साङ्गत्य पण्डितैं सह सत्कथाम् ।
अलुब्धैं सह मित्रत्व कुर्वाणो नावसीदति ॥१२
परदार परार्थञ्च परिहास परस्त्रिया ।
परवेमनि वामञ्च न कुर्वीत कदाचन ॥१३
परोऽपि हितवान् वन्धुर्बन्धुरप्यस्तिाहि पर ।
अहितो देहजा व्याधिर्हितमारण्यमौषधम् ॥१४

काल म ही वीय चरण करता है और काल मे ही गर्भ की वृद्धि होती है। काल सृष्टि का जनन किया करता है और फिर सृष्टि का सहार भी काल ही कर देता है ॥८॥ यह काल बहुत ही सूक्ष्म गति वाला है और नित्य ही दो प्रकार से प्रतीत हुआ करता है—एक इसका स्थूल सग्रह चार होता है और दूसरा सूक्ष्मा चारान्तर होता है ॥९॥ देव गुरु बृहस्पति ने सुरेन्द्र को इस नीति के सार को बतलाया था जिससे इन्द्र सर्वज्ञ होगया था और समस्त दैत्यो का हनन करके उसने दिवलोक की प्राप्ति की थी ॥१०॥ राजर्षि और ब्राह्मणो के द्वारा देवो तथा विप्रादि का पूजन करना चाहिए। अश्वमेध का यजन करना चाहिये। इससे महान् पातको का पापो का क्षय हो जाता है॥ ११ ॥ उत्तम पुरुषों के साथ सङ्गति और पण्डित पुरुषो के साथ सत्कथा तथा जो लोभी कथित न हो उनके साथ मित्रता करते हुए पुरुष को दुःख नही होता है ॥१२॥ पराई स्त्री—पराया धन—पराई स्त्री से परिहास तथा पराय घर मे निवास कभी भी नही करना चाहिए ॥ १३ ॥ पर पुरुष भी हित सम्पादन करने वाला होता है और बन्धु भी परम अहित करने वाला पराया बन जाया करता है जिस तरह देह मे ही जन्म लेने वाली व्याधि अहित होती है और जङ्गल में उत्पन्न बूटी औषध का काम किया करती है ॥१४॥

स वन्धुर्यो हिते युक्तः स पिता यस्तु पोपकः ।
तन्मित्र यत्र विश्वासः स देशो यत्र जीव्यते ॥१५
स भृत्यो यो विधेयस्तु तद्बीज यत् प्ररोहति ।
स भार्या या प्रिय ब्रूते स पुत्रो यस्तु जीवति ॥१६

और समस्त प्रकार के सौभाग्यों का वर्द्धन करने वाली जिस मानव को ऐसी भार्या हो वह साक्षात् देवेन्द्र ही है मनुष्य उसे कभी भी नहीं समझना चाहिए १९।२०।२१॥

यस्य भार्य्या विरूपाक्षी कश्मला कलहप्रिया ।
उत्तरोत्तरवादास्या सा जरा न जरा जरा ॥२२
यस्य भार्य्याश्रितान्यत्र परवेश्माभिकाङ्क्षिणी ।
कुक्रियात्यक्तलज्जा च सा जरा न जरा जरा ॥२३
यस्य भार्य्या गुणज्ञा च भर्त्तारमनुगामिनी ।
अल्पेऽल्पेन तु सन्तुष्टा सा प्रिया न प्रिया प्रिया ॥२४
दुष्टा भार्य्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः ।
ससर्पे गृहे वासो मृत्युरेव न संशय ॥२५
त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम् ।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम् ॥२६
व्याली कण्ठप्रदेशादपि च फणभृतो भीषणा या च रौद्री ।
या कृष्णा व्याकुलाङ्गी रुधिरनयनसव्याकुला व्याघ्रकल्पा ।
क्रोधे चैवोग्रवक्त्रा स्फुरदनलशिखा काकजिह्वा कराला
सेव्या न स्त्री विदग्धा परपुरगमना भ्रान्तचित्ता विरक्ता ॥२७
भुजङ्गमे वेश्मनि दृष्टिदष्टे व्याधौ चिकित्साविनिवर्त्तिते च ।
देहे च वाल्यादिवयोऽन्विते च कालावृतोऽप्यो लभते धृतिं क. २८

जिसकी भार्या विरूप नेत्रों वाली कश्मला और कलह से प्यार करने वाली और जिसके मुख में उत्तरोत्तर वाद-विवाद बना रहता हो वह भार्या मूर्तिमती जरा (वृद्धता) है और जरा जरा नहीं है ॥ २२ ॥ जिसकी भार्या किसी अन्य पुरुष के आश्रित रहने वाली और सदा दूसरे के घर की ही आकांक्षा रखती है—जिसकी बुरी क्रियाऐं हों और जो लज्जा को त्याग देने वाली हो वह भार्या ही वस्तुतः जरा है अर्थात् वृद्धत्व देने वाली होती है और जो दर-असल जरा है उसे जरा नहीं कहना चाहिए ॥ २३ ॥ जिसकी भार्या गुणों की ज्ञाता हो और अपने स्वामी की सर्वदा अनुगामिनी रहा करती हो तथा अल्प में

अर्थेन किं कृपणहस्तगतेन पुंसा ज्ञानेन किं बहुशठाकुलसङ्कुलेन ।
रूपेण किं गुणपराक्रमवर्जितेन मित्रेण किं व्यसनकालपराङ्मुखेन ॥६
अदृष्टपूर्वा बहव सहाया. सर्वे पदस्थस्य भवन्ति मित्रा ।
अर्थविहीनस्य पदच्युतस्य भवत्यकाले स्वजनोऽपि शत्रुः ॥७

सूतजी ने कहा—इस संसार मे मनुष्य को आपत्ति काल यदि कभी आ जावे तो उसके लिये धन की रक्षा करनी चाहिए । तात्पर्य यह है कि मुसीबत के समय मे काम देने को धन अवश्य ही बचा कर सुरक्षित रक्खे । धन के द्वारा स्त्रियो की रक्षा करे अर्थात् दारा की रक्षा करना अधिक महत्त्व वाला है । धन और दारा—इन दोनो से सदा अपने आपकी रक्षा करे । इन दोनों मे प्रमुख स्वात्म-संरक्षण होता है ॥ १ ॥ यदि किसी एक का विनाश होकर पूरे कुल का संरक्षण होता हो तो उस सम्पूर्ण कुल की सुरक्षा के लिये एक का त्याग कर देना चाहिए और पूरे ग्राम की रक्षा के लिये कुल को त्याग देवे । जनपद की रक्षा हो तो एक ग्राम का कुछ भी ध्यान नहीं करना चाहिये । इस प्रकार से बड़े की सुरक्षा मे छोटे का त्याग बताया गया है किन्तु अपनी आत्मा का महत्त्व सबसे अधिक है आत्म-रक्षा के लिये तो सम्पूर्ण पृथ्वी को भी त्याग देना चाहिए ॥ २ ॥ दुष्ट चरित्रो वाले घर मे तो नरक का निवास ही अधिक अच्छा है क्योंकि नरक के निवास से तो क्रमश पापो का क्षय होता है और कुगृह के निवास मे तो उल्टा पाप बढ़ना ही है वहाँ क्षीण होने का कोई अवसर ही नहीं है ॥ ३ ॥ बुद्धिमान् पुरुष एक पैर से चलता है तो एक से स्थित रहा करता है । जब तक अगले दूसरे स्थान को भली भाँति परीक्षण कर देख न लेवे तब तक पहिले स्थान को नहीं छोड़ना चाहिए ॥४॥ असत् वृत्त (चरित्र) वाले देश का त्याग कर देवे और जिस जगह के निवास करने मे उपद्रव हो उसे भी त्याग देना चाहिए । जो कंजूस स्वभाव वाला राजा हो उसे छोड़ देवे तथा माया से परिपूर्ण रहने वाले मित्र का त्याग कर देवे ॥ ५ ॥ उस धन से क्या लाभ है जो किसी कृपण (कंजूस) के हाथो मे पहुँच गया हो । वह ज्ञान भी व्यर्थ ही होता है जो बहुत-से शठो से आकुल एवं संकुल रहता हो । ऐसा रूप लावण्य भी किस प्रयोजन का है जिस सौन्दर्य के साथ गुण और पराक्रम

समय में प्रतिथि–प्रियता जाती जाती है ॥८॥ जिस वृक्ष के समस्त फल क्षीण हो जाते हैं तो फिर उसे पक्षीगण छोड दिया करते हैं। सरोवर के जल सूख जाने पर उसे सारस पक्षी छोड़कर अन्यत्र चले जाया करते हैं। जिस व्यक्ति के पास धन नही रहता है तो उससे गणिका फिर प्रेम न कर उसे त्याग देती है,जो राजा नीति–नियमादि से सब तरह भ्रष्ट हो जाता है तो मन्त्रिगण उसका त्याग कर दिया करते हैं। जो पुष्प वासी और मलिन हो जाता है भ्रमर (भौंरा) उसका त्याग कर देता है। जिस जङ्गल के भाग मे दावानल से दाह होगया है उसे मृग त्याग देते हैं। सभी प्राणी कार्यवश होकर ही रमण करते हैं नही तो यहाँ कोई भी किसी का प्यारा नही होता है ॥ ९ ॥ जो लालची हो उसे कुछ धन देकर सन्तुष्ट करे अर्थ से अपने वश मे करना चाहिए। जो श्लाघनीय गुणो से समन्वित हो उसे हाथ जोडकर सन्तुष्ट कर लेवे। जो मूर्ख हो उसको उसके से ही आचार और अभिलापा के अनुवर्त्तन से सन्तुष्ट करे। जो पण्डित पुरुष हो उसके समक्ष में यथातथ (बिल्कुल सत्य) कथन कर सन्तुष्ट करे ॥१०॥ सद्-भावना से देवता–सत्पुरुष और द्विज सन्तुष्ट हुआ करते हैं। इतर लोग खाना–पीना देने से सन्तुष्ट होते हैं किन्तु पण्डित लोग मान देने से ही सन्तुष्ट एव वशीभूत हो जाया करते हैं ॥११॥ जो उत्तम है उसको प्रणिपात के द्वारा और शठ पुरुष को भेद के द्वारा योजित करना चाहिए। जो नीच हो उसे कुछ थोड़ा-बहुत देकर तथा समान को तुल्य पराक्रम के द्वारा योजित करे ॥१२॥ जिस–जिस का जो भाव हो उसी—उस भाव को बोलते हुए उसके अन्त स्तल मे भली भाँति प्रवेश करके मेधावी पुरुष शीघ्र ही उसे अपने वशीभूत कर लिया करता है ॥१३॥ नदियों का—नख रखने वाले जन्तुओं का—जिनके सींग हो उनका–हाथों मे हथियार रखने वालो का—स्त्रियों का और राज कुल के लोगो का कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए ॥१४॥

> अर्थनाश मनस्ताप गृहे दुश्चरितानि च ।
> वञ्चनञ्चापमानञ्च मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥१५
> हीनदुर्जनससर्गमत्यन्तविरहादरः ।
> स्नेहोऽन्यगेहवानञ्च नारीसच्चीलनाशनम् ॥१६

कोई भी नही है ॥१८॥ सुहृद्–स्वजन और जिसका बन्धु नहीं है और जिसके आत्मा म बुद्धि नहीं है—जिस कर्म के सिद्ध होने पर भी कोई फलोदय नही है तथा विपत्ति में महान् दु ख है उसे बुध पुरुष कैसे करेगा ॥१९॥ जिस देश म कोई भी सम्मान नही होता है—न किसी प्रकार की प्रीति है और न कोई बान्धव ही हैं । जहाँ न किसी विद्या का ही आगम है उस देश का परित्याग ही कर देना चाहिए ॥ २० ॥ जिस धन का राजाओं के द्वारा लिये जाने का कोई भय नही है और न चोरों से डर है तथा मृतक को भी जो नही छोडता है उस धन का अर्जन करो ॥२१॥

यदर्जित प्राणहरं परिश्रमैं मृतस्य त वै विभजन्ति रिक्थिन ॥
कृतश्च यद् दुष्कृतमर्थलिप्सया तदेव दोषापहृतस्य यौतुकम् ॥२२
सञ्चित निहित द्रव्य परामृष्य मुहुर्मुहु ।
आखोरिव कदर्य्यस्य धन दु खाय केवलम् ॥२३
नग्ना व्यसनिनो रूक्षा कपालाङ्कितपाणय ।
दर्शयन्तीह लोकस्य अदातु फलमीदृशम् ॥२४
शिक्षयन्ति च याचन्ति देहीति कृपणा जना ।
अवस्थेयमदानस्य माभूदेव भवानपि ॥२५
सञ्चित क्रतुशतैर्न युज्यते याचित गुणवते न दीयते ।
तत् कदर्य्यपरिरक्षित धन चोरपार्थिवगृहे प्रयुज्यते ॥२६
न देवेभ्यो न विप्रेभ्यो बन्धुभ्यो नैव चात्मनि ।
कदर्य्यस्य धन याति अग्नितस्करराजसु ॥२७
अतिक्लेशेन येऽप्यर्था धर्मस्यातिक्रमेण च ।
अरेर्वा प्रणिपातेन माभूवस्ते कदाचन ॥२८

जो प्राणों का हरण करने वाले घोर तथा महा घोर परिश्रमों के द्वारा अर्जित किया गया है और मृत्यु के पश्चात् दायाद भाग जो भी वारिस हों उस का परस्पर में विभाग कर लिया करते हैं । ऐसे अर्थ के प्राप्त करने की चाह से जो दुष्कृत किया है वह ही दोषों से अपहृत प्राणी का यौतुक (विवाह का धन)

स्त्रीणां द्विगुण आहार प्रज्ञा चैव चतुर्गुणा ।
षड्गुणो व्यवसायश्च कामश्चाष्टगुण स्मृत ॥३३
न स्वप्नेन जयेन्निद्रा न कामेन स्त्रिय जयेत् ।
न चेन्धनैर्जयेद्वह्नि न मद्येन तृषा जयेत् ॥३४
समांसैर्भोजनै स्निग्धैर्मद्यै र्गन्धविलेपनै ।
वस्त्रैर्मनोरमैर्माल्यै काम स्त्रीषु विजृम्भते ॥३५

पढी हुई विद्या का घात अभ्यास न करने से होता है । बुरे वस्त्रो के धारण करने से श्री का घात होता है । किये हुए भोजन के जीर्ण हो जाने से व्याधियो का घात होता है । शत्रु का घात प्रपञ्चता होती है ॥ २६ ॥ तस्कर का वध दण्ड है—कुमित्र का वध अल्प भाषण है— नारियों का दण्ड यही है कि इनकी शय्या पृथक् कर देवे । ब्राह्मण का दण्ड उसको निमन्त्रण का न देना ही होता है ॥ ३० ॥ दुर्जन–शिल्पी–दास–दुष्ट–पटह और स्त्री ये ताडित होकर मार्दव (मुलायमी) को प्राप्त हुआ करते हैं ये सत्कार के पात्र नहीं होते हैं ॥३१॥ कहीं कार्य करने के लिए भेजने पर भृत्यों के कौशल एवं उनकी कार्य क्षमता का ज्ञान होता है । जब कोई व्यसन (दु ख) प्राप्त हो तो बान्धवों की बन्धु भावना का सही ज्ञान हो जाता है । आपत्ति के समय मे मित्र की मित्रता का ठीक ज्ञान होता है और वैभव के कम हो जाने पर भी बराबर साथ देती है या नहीं—इस तरह भार्या की जाँच होती है ॥३२॥ पुरुषों से स्त्रियो का दुगुना आहार होता है और प्रज्ञा चौगुनी होती है—व्यवसाय छै गुना होता है तथा काम आठ गुना हुआ करता है ॥ ३३ ॥ स्वप्न के द्वारा निद्रा पर जय प्राप्त न करे और काम के द्वारा स्त्री पर विजय न करे । वह्नि के ऊपर विजय ईधन डालकर नहीं करे और मद्य पान करके तृषा को कभी विजित करने का प्रयास नहीं करना चाहिए ॥३४॥ आमिष से युक्त भोजन—स्निग्ध पदार्थ—मद्य–गन्ध युक्त विलेपन–सुन्दर वस्त्र–मन को रमण कराने वाले माल्य—इनसे स्त्रियो मे कामवासना विजृम्भित (उत्तेजित) होती है ॥३५॥

ब्रह्मचर्येऽपि वक्तव्य प्राप्त मन्मथचेष्टितम् ।
दृष्ट्वा हि पुरुष दृष्ट्वा योनि प्रक्लिद्यते स्त्रिया ॥३६

वामलोचना नारियाँ पुरुषों के अभिगमन करने से कभी तृप्त नहीं हुआ करती हैं चाहे जितना भी अधिक उनके साथ रमण पुरुष करते रहा करें वे फिर भी अतृप्त ही रहती हैं ॥ ४० ॥ मिष्ट-इष्ट-प्रियवादी और सुत तथा सुत-जीवित एव वर इनसे कभी किसी को तृप्ति नहीं होती है ॥४१॥ राजा कभी भी धन के संचय से तृप्त एव सन्तुष्ट नहीं होता है चाहे कितना ही अधिकाधिक धन का वैभव क्यों न हो जावे। सागर कभी जल से तृप्ति को प्राप्त नहीं हुआ है। यद्यपि उसमें अपरिमित जल रहा करता है। पण्डित भाषण से कभी तृप्त नहीं हुआ करते हैं और नेत्र नृप के दर्शन करने से कभी तृप्ति का लाभ नहीं किया करते हैं—यही इच्छा रहती है कि अभी और अधिक देखन रहें ॥४२॥

स्वकर्मधर्मार्जितजीविताना शास्त्रेषु दारेषु सदा रतानाम् ।
जितेन्द्रियाणामतिथिप्रियाणा गृहेऽपि मोक्ष पुरुषोत्तमानाम् ॥४३
वास प्रासादपृष्ठेषु स्वर्ग स्याच्छुभकर्मणा ॥४४
न दानेन न मानेन नार्जवेन न सेवया ।
न शस्त्रेण न शास्त्रेण सर्वथा विषमा स्त्रिय ॥४५
शनैर्विद्या शनैरर्थां शनै पर्वतमारुहेत् ।
शनै कामश्च धर्मश्च पञ्चैतानि शनै शनै ॥४६
शाश्वत देवपूजादि विप्रदानञ्च शाश्वतम् ।
शाश्वत सगुणा विद्या सुहृन्मित्रञ्च शाश्वतम् ॥४७
ये बालभावान्न पठन्ति विद्या ये यौवनस्था ह्यधनात्मदारा ।
ते शोचनीया इह जीवलोके मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥४८
पठने भोजने चिन्ता न कुर्याच्छिद्रात्मसेवक. ।
सुदूरमपि विद्यार्थी व्रजेद् गरुडवेगवान् ॥४९

जो ऐसे उत्तम पुरुष हैं जिनका कि जीवन निर्वाह अपने कर्म और धर्म के द्वारा उपार्जित धन से होता है और जो शास्त्रों मे तथा अपनी पत्नी मे ही सदा रति रखने वाले हैं—जिनका समस्त इन्द्रियों पर पूर्णतया नियन्त्रण है और जो सर्वदा अतिथियों से प्रीति रखकर उनका सत्कार किया करते हैं उनका मोक्ष

जो बाल भाव में विद्या का पठन नहीं करते हैं और कामातुर होते हुए यौवन में वित्त का नष्ट किया करते हैं वे वृद्धावस्था में परिभूयमान होते हुए शिशिर ऋतु में एक कमलिनी के कमलों की भाँति सदह्यमान होते हैं ॥५०॥ तर्क प्रतिष्ठा से रहित होता है और तर्क की कुछ भी प्रतिष्ठा नहीं है। श्रुतियाँ भी विभिन्न रूप वाली भिन्न भिन्न हैं। ऐसा कोई भी ऋषि नहीं है जिसका मत भिन्न न हो अर्थात् सभी ऋषियों के मतों में विभिन्नता है। एक मतता नहीं है। ऐसी दशा में धर्म का तत्त्व गुहा में छिपा हुआ है अर्थात् क्या धर्म का स्वरूप है और कौन सा धर्म है—यह जान लेना बहुत ही कठिन है। अतएव महान् पुरुषों ने जो मार्ग अपनाया है और वे जिस गतिविधि में चलते गये हैं वही मार्ग हमको भी अपनाना चाहिए। इसी में श्रेय होगा ॥५१॥ आकृति-इङ्गित गति-चेष्टा-भाषण—नेत्र और मुख के विकारों में अन्तर्गत मन लक्षित होता है ॥५२॥ पण्डित पुरुष बिना कुछ कहने पर भी तात्पर्य को समझ लिया करते हैं क्योंकि दूसरे के इङ्गित से ही जान प्राप्त कर लेना बुद्धि का फल हुआ करता है जो बात उदीरित अर्थात् मुख से कही गई है उसको तो पशु भी ग्रहण कर लिया करता है जिसमें कुछ भी बुद्धि नहीं होती है। अश्व और हाथी भी देशित आदेश का वहन किया करते हैं ॥५३॥ जो अर्थ से भ्रष्ट हो जाता है वह तीर्थ-यात्रा को चला जावे—सत्य से जो भ्रष्ट हो उसे रौरव नरक में जाना होता है—योग से भ्रष्ट सत्य-धृति को ग्रहण करे और राज्य से भ्रष्ट मृगया करने जाता है ॥५४॥

६६—नीतिसार कथन (३)

यो ध्रुवाणि परित्यज्य ह्यध्रुवाणि निषेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव च ॥१
वाग्यन्त्रहीनस्य नरस्य विद्या शस्त्रं तथा कापुरुषस्य हस्ते।
न तुष्टिमुत्पादयते शरीरे अन्धस्य दारा इव दर्शनीया ॥२
भोज्यं भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वरा स्त्रियः।
विभवो दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम् ॥३

कभी भी विवाह नहीं करना चाहिए ॥ ६ ॥ उस सर्प में भी क्या लाभ है जिसकी सङ्गति अनर्थ में होती है। जिसकी शक्ति है कि सर्प की शिखा में समुत्पन्न मणि को ग्रहण करे ॥६॥ दुष्ट कुल में भी हित का ग्रहण कर लेना चाहिए और बालक के मुख से निकला हुआ भी शुभ 'पत का प्राप्त कर लेवे अपवित्र स्थान में भी गिरे हुए सुवर्ण को ले लेवे तथा स्त्री रूपी रत्न को दुष्कुल से भी ग्रहण कर लेना चाहिए ॥७॥

विषादप्यमृत ग्राह्य अमेध्यादपि काञ्चनम् ।
नीचादप्युत्तमा विद्या स्त्रीरत्न दुष्कुलादपि ॥८
न राज्ञा सह मित्रत्व न सर्पो निर्विष क्वचित् ।
न कुल निर्मल तत्र स्त्रीजनो यत्र जायते ॥९
कुले नियोजयेद्भक्ति पुत्र विद्यासु याजयेत् ।
व्यसने याजयेच्छत्रुमिष्ट धर्मे नियोजयेत् ॥१०
स्थानेष्वेव प्रयोक्तव्या भृत्याश्चाभरणानि च ।
न हि चूडामणि पादे शोभते वै कदाचन ॥११
चूडामणि समुद्रोऽग्निर्घण्टा चाखण्डमम्बरम् ।
अथवा पृथिवीपालो मूर्ध्नि पादे प्रमादत ॥१२
कुसुमस्तवकस्येव द्वे गती तु मनस्विन ।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकाना शीर्यते पतितो वने ॥१३
कर्णभूषणसग्रहणोचितो यदि मणिस्तु पदे प्रतिवध्यते ।
कि मणिर्न हि शोभते ततो भवति योजयितुर्वचनीयता ॥१४

विष से भी अमृत के तत्त्व को प्राप्त कर लेना चाहिए और अमेध्य स्थान से भी सुवर्ण को ग्रहण कर लेने पर नीच पुरुष से भी उत्तम विद्या और दुष्ट कुल से भी स्त्री रत्न को ले लेवे ॥८॥ राजा के साथ मित्रता का भाव नहीं होता है—सर्प कहीं भी विष रहित नहीं हुआ करता है जिस कुल में स्त्री रत्न समुत्पन्न हुआ करता है वह कुल कभी भी निर्मल नहीं होता है ॥९॥ कुल को भक्ति में नियोजित करे—पुत्र को विद्या में नियोजित करे—शत्रु को व्यसन में

अश्व–वारण–लोह–काष्ठ–पाष ण वस्त्र–नारी–पुरुष और तोय–इनका अन्तर बहुत बड़ा अन्तर होता है ॥१५॥ कदाचित भी धैर्य वृत्ति वाले का समस्त गुणों का प्रभाव नहीं किया जा सकता है। खल के द्वारा नीचे की ओर की हुई अग्नि की भी शिखा कभी भी नीचे को नहीं जाया करती है ॥१६॥ अच्छी जाति का घोड़ा कभी कशा (चाबुक) का आघात सहन नहीं किया करता है और सिंह अपने समक्ष में हाथी की गर्जना को नहीं सहा करता है अथवा वीर पुरुष शत्रु के द्वारा किये हुए भीम ध्वनि को कभी नहीं सहता है॥ १७ ॥ यदि भाग्य वश वैभव से रहित होकर शीघ्र ही प्रच्युत हो जावे तो भी स्वाभिमानी पुरुष कभी खलजन की सेवा करना और नीच के पास जाने की इच्छा नहीं किया करता है। परन्तु भूख से पीड़ित भी सिंह कभी खल के काय में तृण को ग्रहण नहीं करता है और वह प्राय हाथि के उष्ण रुधिर का ही पान करके क्षुधा का शमन करता है ॥१८॥ जो एक बार दुष्ट मित्र के साथ सन्धान करने की इच्छा करता है वह अश्वतरी (खिच्चरी) के गर्भ की भांति मृत्यु का ही ग्रहण किया करता है ॥ १९ ॥ क्रूर मनुष्यों के द्वारा शत्रु की सन्तति जो प्रिय बोलने वाली है कभी उपेक्षित नहीं करनी चाहिए क्योंकि समय उपस्थित होने पर वही विपत्ति के करने वाली और विष दारुण पात्र हो जाया करती है ॥२०॥ उपकार करने के द्वारा शत्रु को अपने काबू में करके फिर उसी के द्वारा अन्य शत्रु का उद्धार करना चाहिए जिस तरह पैर में लगे हुए एक काँटे को निकाल कर दूर फेंकने के लिए एक अन्य काँटे को हाथ में लिया जाया करता है ॥२१॥

अपकारपरे नित्य चिन्तयेन्न कदाचन ।
स्वयमेव पतिष्यन्ति कूलजाता इव द्रुमा ॥२२
अनर्था ह्यर्थरूपाश्च अर्थाश्चानर्थरूपिण ।
भवन्ति ते विनाशाय दैवायत्तस्य वै सदा ॥२३
कार्यकालोचिताऽऽपा मति सञ्जायते हि वै ।
मानुषेषु देवेषु पुंस मरन जायते ॥२४

धनप्रयोगकार्येषु तथा विद्यागमेषु च ।
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सदैव हि ॥२५
धनिनः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः ।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न कुर्यात्तत्र संस्थितिम् ॥२६
लोकयात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्यं दानशीलता ।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवसं वसेत् ॥२७
कालविच्छ्रोत्रियो राजा नदी साधुश्च पञ्चमः ।
एते यत्र न विद्यन्ते तत्र वासं न कारयेत् ॥२८
नैकत्र परिनिष्ठाऽस्ति ज्ञानस्य किल शौनक ।
सर्वं सर्वं न जानाति सर्वज्ञो नास्ति कुत्रचित् ॥२९
न सर्वविक्त्वश्चिदिहास्ति लोके नात्यन्तमूर्खो भुवि चापि कश्चित् ।
ज्ञानेन नीचोत्तममध्यमेन यो यं विजानाति स तेन विद्वान् ॥३०

पराये अपकार करने में कभी निरत नहीं करना चाहिए जो वृक्ष नदी के तट पर खड़े हुए हैं वे तो स्वयमेव ही एक दिन गिर जाँयगे ॥ २२ ॥ भाग्य से उस में उसके अर्थ अनर्थ स्वरूप और अनर्थ अर्थ स्वरूप विनाश के लिये सदा हो जाया करते हैं। जिस समय में दैव सानुकूल होता है तो उस वक्त कर्म काल में समुचित पापों से रहित मति समुद्यत हो जाती है इसी प्रकार से दैव के अनुकूल होने पर सभी जगह पुरुष को हुआ करता है ॥२३ ॥२४॥ धन के प्रयोग करने के कार्यों में और विद्या के आगम के यों में-आहार और व्यवहार में मनुष्य को सदा ही लज्जा के त्याग कर देने वाला रहना चाहिए ॥२५॥ जिस स्थान पर धन-सम्पन्न पुरुष-श्रोत्रिय-राजा-नदी और पाँचवाँ वैद्य नहीं हो वहाँ संस्थिति कभी भी नहीं करनी चाहिए ॥२६॥ लोक-यात्रा-भय—लज्जा—दाक्षिण्य और दान शीलता ये पाँच जहाँ पर विद्यमान नहीं हो वहा पर तो एक दिन भी निवास नहीं करना चाहिए ॥ २७ ॥ समय का ज्ञाता ज्योतिषी-श्रोत्रिय-राजा-नदी और साधु ये पाँच जिस स्थान में विद्यमान नहीं हो वहाँ वास नहीं करना चाहिए ॥२८॥ हे शौनक ! एक ही में ज्ञान की परनिष्ठा नहीं होती है। सभी बातें सब ही पुरुष नहीं जाना करते हैं

क्योंकि सर्वज्ञ (सब कुछ का ज्ञाता) कहीं पर भी नहीं है ॥२६॥ इस भूलोक में कोई भी सबका ज्ञाता नहीं है। और इस भूमण्डल में अत्यन्त मूर्ख भी कोई नहीं होता है। जो जिसको नीच-मध्यम और उत्तम ज्ञान के द्वारा जानता है उसी से वह विद्वान् होता है ॥३०॥

६७—राजा और भृत्य लक्षण (१)

पार्थिवस्य तु वक्ष्यामि भृत्यानाञ्चैव लक्षणम् ।
सर्वाणि हि महीपाल. सम्यङ् नित्य परीक्षयेत् ॥१
राज्य पालयते नित्य सत्यधर्मपरायण: ।
निर्जित्य परसैन्यानि क्षिति धर्मेण पालयेत् ॥२
पुष्पात्पुष्प विचिन्वीयान्मूलच्छेद न कारयेत् ।
मालाकार इवारण्ये न यथाङ्गारकारक: ॥३
दोग्धार: क्षीरभुञ्जाना विकृत तन्न भुञ्जते ।
परराष्ट्र महीपालैर्भोक्तव्य न च दूषयेत् ॥४
योधश्छिद्रत्वात्तु यो धेन्वा. क्षीरार्थी लभते पय: ।
एव राष्ट्र प्रयोगेण पीड्यमान न वर्जयेत् ॥५
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पृथिवीमनुपालयेत् ।
पालकस्य भवेद्भूमि: कीर्त्तिरायुर्यशो बलम् ॥६
अभ्यर्च्य विष्णु धर्मात्मा गोब्राह्मणहिते रत: ।
प्रजा: पालयितु शक्त: पार्थिवो विजितेन्द्रिय: ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अब मैं तुम्हारे सामने राजा के भृत्यों के लक्षणों के विषय मे बतलाता हूँ। एक महीपाल को नित्य ही इन सबकी भली भाँति परीक्षा करनी चाहिए ॥१॥ सत्य और धर्म में तत्पर रहता हुआ राजा नित्य राज्य का पालन करता है शत्रुओं की सेनाओं के ऊपर विजय प्राप्त करके इस भूमि का धर्म पूर्वक पालन करे ॥ २ ॥ कुसुम वाटिका में मालाकार एक-एक पुष्प को चुनता है और मूल का कभी मरण में अङ्गार कारक की भाँति उच्छेद नहीं करता है ॥ ३ ॥ दोग्धागण जो क्षीर का उपभोग करते हैं वे विकृत को

सभी न ो भागो ह । म ोराजा स द्वरा भ पगाय राष्ट्र का उपभोग करना चाहिए किन्तु उसका कभी दूषन नहीं करना चाहिए ॥ ४ ॥ जो धेनु का ऊर (धन) को न ो देखता है वही क्षीर के चाहने वाला दूध का प्राप्त किया करता है। इसी प्रकार स पीड्यमान राष्ट्र को प्रयोग म र्जित न करे ॥ ५ ॥ इस कारण स यत्न समस्त प्रज ना क द्वारा पृथिवी का अनुपालन राजा को करना उचित है। पालन करने वाले का भूति होती है और साथ ही कीर्ति–आयु–यश और बल भी हुआ करते हैं ॥६॥ धर्मात्मा को भगवान् विष्णु की अर्च ना करने वाला भी और प्र ासा के ि न–रत्न दान म सबका रति रखने वाला होता चा हि । अपनी इन्द्रियों को जीत लेने वाला राजा हो प्रजा का पालन करने म समर्थ हुआ करता है ॥७॥

ए श्वर्यमध्रुव प्राप्य राजा धर्मं मतिश्चरत् ।
क्षणात विभवा नश्येन्नात्म यत्त धनादिकम् ॥८
सत्यं मनोरमा रामा म म रम्या विभूतय ।
कि तु व वनितापाङ्गभङ्गोलोल हि जीवितम् ॥९
व्याघ्रीव तिष्ठति जरा प्रति तर्जय ती
रोगाश्च शत्रव इव प्रभवन्ति गात्र ।
आयु परिस्त्रवति भिन्नघटादिवाम्भो
लोक न चात्महितमाचरतीह कश्चित् ॥१०
नि शक कि मनुष्या कुरुत परहित युक्तमग्रे हित
य मादध्व कामिनीभिमदनशरहता म दम दातिहृष्ट्या ।
मा पाप सकुरुध्व द्विजहरिपरमा सभजध्व सदय
आयुर्निश्यमति स्खलति जलघटीभूतमृ युच्छलेन ॥११
मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतेषु य पश्यति स पण्डित ॥१२
एतदर्थ हि विप्रेन्द्रा राज्यमिच्छन्ति भूभृत ।
यत्पा सकलार्थेषु सो न प्रतिहन्यते ॥१३

एतदर्थं हि कुर्वन्ति राजानो धनसञ्चयम् ।
रक्षयित्वा तु चात्मानं यद्धनं तद् द्विजातये ॥१४

यह सासारिक ऐश्वर्य अध्रुव (अनिश्चित) हुआ करता है। इसको प्राप्त करके राजा को धर्म में अपनी मति लगानी चाहिए। जो अपने अधीनता में रहने वाला ध्यात्रिक वैभव है वह जब समय आ जाता है तो एक ही क्षण में नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥ ये मन को रमण कराने वाले काम सत्य हैं और ये मुग्ध विभूतियाँ भी सत्य हैं किन्तु यह मानवीय जीवन वनिता के अपाङ्ग (कटाक्ष) की भङ्गी (वैचित्र्य) की भाँति अत्यन्त चञ्चल है ॥ ९ ॥ यह जरा (वृद्धावस्था) एक व्याघ्री की भाँति तर्जना करती हुई सामने स्थित रहा करती है और अनेक प्रकार के रोग इस मानव शरीर में शत्रुओं की तरह समुत्पन्न हो जाया करते हैं। यह मनुष्य की आयु प्रतिक्षण फूटे हुए घड़े से जल की भाँति परिस्राव करती चली जाया करती है किन्तु बड़ा ही आश्चर्य का विषय है कि लोगों में कोई भी अपने आत्मा के हित का कुछ भी समाचरण नहीं किया करता है ॥१०॥ हे मानवो! आप लोग कैसे निःशङ्क की भाँति हो रहे हो? दूसरों की भलाई का कार्य अवश्य करो और सबसे पहिले अपना आत्म-हित करना चाहिए। तुम लोग जो कामिनियों के द्वारा कामदेव के बाणों से हत होते हुए मन्द से भी मन्द दृष्टि से मोह प्राप्त करते हो—यह पाप मत करो। सर्वदा प्रसन्न और हरि भगवान् में परायण होते हुए उनका भजन करो। यह आयु निःशेष हो रही है और जल घटी भूत मृत्यु के बहाने से स्खलित हो रही है ॥११॥ सर्वदा पराई स्त्रियों को अपनी माता के समान देखना चाहिए और दूसरे के धन को एक मिट्टी के ढेले के समान ही समझना चाहिए। समस्त प्राणिमात्र को अपनी आत्मा के समान जो देखता है वही वास्तव में सच्चा पण्डित है ॥१२॥ हे विप्रेन्द्रो! राजा लोग इसीलिये राज्य की कामना किया करते हैं कि समस्त कार्यों में इनके वचन का प्रतिघात न होवे ॥१३॥ इसीलिये राजा लोग इस विशाल धन की राशि का सञ्चय किया करते हैं कि अपनी आत्मा की रक्षा करके वह सम्पूर्ण धन द्विजातियों के हित में लगे ॥१४॥

ओंकारशब्दो विप्राणां येन राष्ट्रं प्रवर्द्धते ।
स राजा वर्द्धते योगाद्व्याधिभिश्च न बध्यते ॥१५
असमर्थाश्च कुर्वन्ति मुनयो द्रव्यसञ्चयम् ।
किं पुनस्तु महीपाल पुत्रवत्पालयन्प्रजाः ॥१६
यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवा ।
यस्यार्थाः स पुमाल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डित ॥१७
त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं पुत्राश्च दाराश्च सुहृज्जनाश्च ।
ते चार्थवन्तं पुनराश्रयन्ति अर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः ॥१८
अन्धो हि राजा भवति यस्तु शास्त्रविवर्जितः ।
अन्धः पश्यति चारेण शास्त्रहीनो न पश्यति ॥१९
यस्य पुत्राश्च भृत्याश्च मन्त्रिणश्च पुरोहिताः ।
इन्द्रियाणि प्रसुप्तानि तस्य राज्यं चिरं न हि ॥२०
येनार्जितास्त्रयोऽप्येते पुत्रा भृत्याश्च बान्धवाः ।
जिता तेन समं भूपैश्चतुरब्धिर्वसुन्धरा ॥२१

विप्रों का ओंकार शब्द है जिसके द्वारा राष्ट्र की प्रवृद्धि हुआ करती है। वह राजा योग से वृद्धिशील होता है और व्याधियों से भी कभी बद्ध नहीं होता है ॥१५॥ असमर्थ मुनिगण ही द्रव्य का सञ्चय किया करते हैं। राजा फिर किस लिये होता है जोकि अपनी प्रजा का पुत्र की भाँति पालन करता है ॥१६॥ इस संसार में धन का बड़ा ही महत्त्व लोग माना करते हैं जिसके पास धन होता है उसी के लोग मित्र हुआ करते हैं और जिसके अधीन धन है उसी के बान्धव गण साथी रहा करते हैं। जिसके पास धन है वह ही इस लोक में एक सम्भ्रान्त पुरुष माना जाता है और धनी पुरुष को महा पण्डित अर्थात् ज्ञाता समझा करते हैं ॥१७॥ जो धन से विहीन हो जाते हैं उन्हें सासारिक मित्र छोड़ दिया करते हैं मित्र ही नहीं धनहीन व्यक्ति को उसके पुत्र—दारा और सुहृज्जन भी त्याग दिया करते हैं और वे सब फिर अर्थ सम्पन्न का आश्रय ले लिया करते हैं। इस लोक में एक मात्र अर्थ ही पुरुष का बन्धु और सभी कुछ है ॥१८॥ जो शास्त्रीय ज्ञान से रहित है वह राजा वास्तव

में अन्धा ही होता है। अन्धा तो चार के द्वारा ही देखा करता है क्योंकि जो शास्त्र से हीन होता है वह कभी देखा नहीं करता है ॥१९॥ जिस राजा के पुत्र–भृत्य—मन्त्रिगण—पुरोहित और इन्द्रियाँ प्रसुप्त हैं उसका राज्य अधिक समय तक नहीं टिकता है ॥२०॥ जिसने पुत्र—भृत्य और बान्धव इन तीनों को अर्जित कर लिया है उसने समस्त राजाओं सहित चारों समुद्रों से युक्त सम्पूर्ण वसुन्धरा को ही जीत लिया है अर्थात् वह समस्त भूमण्डल का अधीश्वर होता है ॥२१॥

लङ्घयेच्छास्त्रयुक्तानि हेतुयुक्तानि यानि च।
स हि नरपतिर्वै राजा इह लोके परत्र च ॥२२
मनस्ताप न कुर्वीत आपद प्राप्य पार्थिव।
समबुद्धि प्रसन्नात्मा सुखदुःखे समो भवेत् ॥२३
धीरा कष्टमनुप्राप्य न भवन्ति विषादिन।
प्रविश्य वदन राहो किं नोदेति पुन शशी ॥२४
धिविधस्शरीरसुखलालितमानवेषु
मा खेदयेद्धनकृशा हि शरीरमेव।
सहारका ह्यधनपाण्डुसुता श्रुता हि
दुःख विहाय पुनरेव सुख प्रपन्ना ॥२५
गन्धर्वविद्यामालोक्य वाद्य च गणिकागणा।
धनुर्वेदार्थशास्त्राणि लोके रक्षेत भूपति ॥२६
कारणेन विना भृत्ये यस्तु कुप्यति पार्थिव।
स गृह्णाति विषोन्माद कृष्णसर्पविसर्जितम् ॥२७
चापलाद्वारयेद् दृष्टि मिथ्यावाक्यञ्च वारयेत्।
मानवे श्रोत्रिये चैव भृत्यवर्गे सदैव हि ॥२८

जो हेतुओं से युक्त और शास्त्रों के समस्त विषयों का लङ्घन किया करता है वह राजा इस लोक और परलोक दोनों से नष्ट हो जाया करता है ॥२२॥ राजा को आपत्ति आजाने पर मन में ताप नहीं करना चाहिए। राजा को तो सुख-दुःख में समान—सम बुद्धि वाला और प्रसन्न आत्मा वाला

रहना चाहिए ॥२३॥ धीर पुरुष बहु प्रयास करके भी कभी विषाद से युक्त नहीं हुआ करते हैं । क्या चन्द्रमा राहु के मुख में प्रवेश करके भी पुनः समुदित नहीं हुआ करता है ? ॥२४॥ शारीरिक सुख से लालित मनुष्यों के लिये पुनः पुनः धिक्कार है । धन से इस शरीर पर कभी भी खेद मत करो । आपने भली भाँति श्रवण किया है कि पाण्डु के पुत्र युधिष्ठिर आदि सभी के सहित बिना धन वाले होकर वन में रहे थे और फिर उस सम्पूर्ण दुःख का त्याग कर सुख से सम्पन्न हो गये थे ॥२५॥ नलिकास्त्रों का गण गन्धर्व विद्या और वाद्य शास्त्र देखता है और उसकी रक्षा करता है । राजा को लोक में धनु वेद और अर्थ शास्त्र की रक्षा करनी चाहिए ॥२६॥ जो राजा बिना ही किसी कारण के अपने हृदय पर कुपित होता है वह दुर्मद सूर्य के द्वारा विसर्जित विषोन्माद को ग्रहण करता है ॥२७॥ अपनी दृष्टि की चपलता से वारित करना चाहिए अर्थात् चञ्चल दृष्टि कभी न रखे । मिथ्या से युक्त वाद को भी वारित करे । मानव मात्र में—श्रोत्रिय में और सदा ही भृत्य वर्ग में चपल-दृष्टि और मिथ्या वचन का प्रयोग नहीं करे ॥२८॥

> लीला करोति यो राजा भृत्यस्वजनगर्वितः ।
> शासने सर्वदा क्षिप्रं रिपुभिः परिभूयते ॥२९
> हुँकारं भृकुटी नैव सदा कुर्वीत पार्थिवः ।
> विना दण्डेन यो भृत्यान्राजाऽधर्मेण शास्ति च ॥
> लीलासुखानि भोग्यानि त्यजेदिह महीपतिः ॥३०
> सुखप्रवृत्तं साध्यन्ते सत्रवो विग्रहे स्थितैः ॥३१
> उद्योग साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः ।
> षट् विधेयस्य उत्साहस्तस्य देवोऽपि शङ्कते ॥३२
> उद्योगेन कृतं कार्यं सिद्धिर्यस्य न विद्यते ।
> दैवं तस्य प्रमाणं हि कर्त्तव्यं पौरुषं सदा ॥३३

जो राजा अपने जन और भृत्यों के समुदाय पर अत्यन्त गर्वित होकर लीला किया करता है अर्थात् उपभोगों की मौज में फँसा रहता है वह राजा

शीघ्र ही अपने शासन में सर्वदा शत्रुओं के द्वारा परिभूत हो जाया करता है ॥२६॥ जो पार्थिव सदा हुङ्कार और भृकुटि टेढ़ी नहीं करता है। दोष के बिना भृत्यों पर धर्म से शासन किया करता है। लीला से सुख और भोग वहाँ त्याग देने चाहिए ॥३०॥ कुल-प्रवृत्त निग्रह में स्थितों के द्वारा शत्रुगण साध्य हुआ करते हैं ॥३१॥ उद्योग—साहस—धैर्य—बुद्धि—शक्ति—पराक्रम—इन छैं का विधेय जो होता है उसको उत्साह होता है और उससे देव भी शङ्कित रहा करते हैं ॥३२॥ उद्योग के द्वारा कार्य्य के करने पर जिसको सिद्धि नहीं होवे। इसका प्रमाण दैव होता है। अतएव निश्चय रूप से सदा पौरुष करना चाहिए ॥३३॥

६८-राजा और भृत्य लक्षण (२)

भृत्या बहुविधा ज्ञेया उत्तमाधममध्यमा।
नियोक्तव्या यथार्हेषु त्रिविधेष्वेव कर्मसु ॥१
भृत्ये परीक्षण वक्ष्ये यस्य यस्य हि ये गुणाः।
तमिम सम्प्रवक्ष्यामि यद्यदा कथितानि च ॥२
यथा चतुर्भिः कनक परीक्ष्यते निघर्षणच्छेदनतापताडनैः।
तथा चतुर्भिर्भृतक परीक्षयेद् व्रतेन शीलेन कुलेन कर्मणा ॥३
कुलशीलगुणोपेत सत्यधर्मपरायण।
रूपवान्सुप्रसन्नश्च कोषाध्यक्षो विधीयते ॥४
मूल्यरूपपरीक्षाकृद्भवेद्रत्नपरीक्षकः।
बलाबलपरिज्ञाता सेनाध्यक्षो विधीयते ॥५
इङ्गिताकारतत्त्वज्ञो बलवान्प्रियदर्शनः।
अप्रमादी प्रमाथी च प्रतीहार स उच्यते ॥६
मेधावी वाक्पटु प्राज्ञ सत्यवादी जितेन्द्रिय।
सर्वशास्त्रसमालोकी ह्येष साधुः स लेखक ॥७

सूतजी ने कहा—भृत्य भी बहुत प्रकार के होते हैं उन्हें जान लेना चाहिए। भृत्य उत्तम-मध्यम और अधम होते हैं। इसलिये इनको तीन तरह के

कर्मों में जो जिस कर्म के योग्य हो उसे वहो पर नियुक्त करना चाहिए ॥१॥ अब मैं भृत्य के विषय मे उनका परीक्षण बतलाऊँगा । जिस-जिस भृत्य के जो गुण होते हैं । उसको मैं अब बताता हूँ जो जब-तब कहे गये हैं ॥२॥ जिस तरह से सुवर्ण की चार प्रकार से परीक्षा की जाती है। सुवर्ण का निघर्षण छेदन—तापन और ताडन ये चार परीक्षण के प्रकार हुआ करते हैं। इसी प्रकार भृत्य की भी श्रुत—शील-कुल और कर्म इन चार रीतियो से परीक्षा करनी चाहिए ॥३॥ जो भृत्य कुल और शील के गुणों से युक्त हो तथा सत्य एवं धर्म में परायण हो—रूप वाला और सुप्रसन्न हो ऐसे भृत्य को कोष का अध्यक्ष बनाना चाहिए ॥ ४ ॥ मूल्य और रूप की परीक्षा करने वाला तथा रत्नों की परीक्षा करने वाला और बल तथा अबल के परिज्ञाता को सेनाध्यक्ष किया जाता है ॥५॥ इङ्गित और आकृति के तत्त्व का ज्ञान रखने वाला—बल वाला—देखने में प्रिय लगने वाला—प्रमाद न करने वाला और प्रयत्नशील व्यक्ति को प्रतीहार के पद पर नियुक्त करना कहा जाता है ॥ ६ ॥ मेधावी—बोलने में पटु—प्राज्ञ—सत्य बोलने वाला—जितेन्द्रिय और समस्त शास्त्रों को देख लेने वाला एवं साधु वृत्ति वाले पुरुष को लेखक के पद पर नियुक्त करे ॥७॥

बुद्धिमान्मतिमांश्चैव परचित्तोपलक्षक ।
क्रूरो यथोक्तवादी च एष दूतो विधीयते ॥८
समस्तस्मृतिशास्त्रज्ञ. पण्डितोऽथ जितेन्द्रिय. ।
शौर्य्यवीर्य्यगुणोपेतो धर्माध्यक्षो विधीयते ॥६
पितृपैतामहा दक्ष शास्त्रज्ञ सत्यवाचक: ।
शुचिश्च कठिनश्चैव सूपकार स उच्यते ॥१०
आयुर्वेदकृताभ्यास सर्वेषा प्रियदर्शन. ।
आयु शीलगुणोपेतो वैद्य एष विधीयते ॥११
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो जपहोमपरायण ।
आशीर्वादपरो नित्यमेव राजपुरोहित. ॥१२
लेखक पाठकश्चैव गणक प्रतिबोधक ।
आलस्ययुक्तश्चेद्राजा कर्मणो वर्जयेत्सदा ॥१३

द्विजिह्वमुद्वेगकरं क्रूरमेकान्तदारुणम् ।
खलस्याहेश्च वदनमपकाराय केवलम् ॥१४

बुद्धिमान् और मति-सम्पन्न—दूसरे के चित्त का अभिप्राय जान लेने वाला—क्रूर तथा जो भी कहा जावे उसे ठीक वैसा ही कह देने वाला जो भृत्य हो उसे दूत के कर्म में नियुक्त करना चाहिए ॥८॥ समस्त शास्त्र और स्मृतियों का ज्ञाता—पण्डित इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने वाला—शूरता तथा बहादुरी के गुणों से युक्त धर्माध्यक्ष नियुक्त करना चाहिए ॥९॥ बापदादाओं से चले आने वाला—परम दक्ष—शास्त्र का ज्ञाता—सत्य बोलने वाला—परम पवित्र—कठिन जो भृत्य हो उसे सूपकार अर्थात् रसोइया के पद पर नियुक्त करना चाहिए ॥१०॥ आयुर्वेद शास्त्र में अभ्यास करने वाला—सबको देखने में परम प्रिय लगने वाला और जो आयु एवं शील के गुणों से युक्त हो उसे वैद्य नियुक्त करे ॥११॥ वेदों तथा वेदों के सम्पूर्ण अङ्ग शास्त्रों के तत्त्वों का ज्ञाता—जप एवं होम में परायण रहने वाला और आशीर्वाद देने में निरत तत्पर हो उसे राजा का पुरोहित नियुक्त करे। तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के गुण राज-पुरोहित में होने चाहिए ॥१२॥ लेखक-पाठक-गणक और प्रतिबोधक यदि आलस्य से युक्त हो तो राजा को चाहिए उसे कर्म से सदा वर्जित कर देवे ॥ १३ ॥ दो जिह्वा वाला—हृदय में उद्वेग उत्पन्न कर देने वाला—क्रूर—पूर्ण दारुण खल तथा सर्प का मुख जैसा होता है जोकि सर्वदा केवल अपकार के ही लिये हुआ करता है ॥१४॥

दुर्जन. परिहर्त्तव्यो विद्ययाऽलङ्कृतोऽपि सन् ।
मणिना भूषित. सर्प. किमसौ न भयङ्कर· ॥१५
अकारणाविष्कृतकोपधारिणः खलाद्भयं कस्य न नाथ जायते ।
विषं महाहेर्विषमस्य दुर्वचः सुदुःसहं सन्निपतेत्सदा मुखे ॥१६
तुल्यार्थं तुल्यसामर्थ्यं मर्मज्ञं व्यवसायिनम् ।
अर्द्धराज्यहरं भृत्यं यो हन्यात्स न हन्यते ॥१७
शूरत्वयुक्ता मृदुमन्दवाक्या जितेन्द्रिया सत्यपराक्रमाश्च ।
प्रागेव पश्चाद्विपरीतरूपा ये ते तु भृत्या न हिता भवन्ति ॥१८

निरालस्या सुसन्तुष्टा सुस्वप्ना प्रतिबोधका ।
सुखदुःखसमा धीरा भृत्या लोकेषु दुर्लभा ॥१६
क्षान्तिसत्यविहीनश्च क्रूरबुद्धिश्च निन्दकः ।
दाम्भिकः पेटुकश्चैव शठश्च स्पृहयाऽन्वितः ॥
अशक्तो भयभीतश्च राज्ञा त्यक्तव्य एव स ॥२०
सुसन्धानानि चास्त्राणि शस्त्राणि विविधानि च ।
दुर्गे प्रवेशितव्यानि ततः शत्रुं निपातयेत् ॥२१

जो दुर्जन है वह चाहे कितना ही विद्वान् हो उसका तो परिहार ही कर देना चाहिए। मणि से विभूषित रहने वाला सर्प क्या भयङ्कर नहीं होता है ? दुर्जन तो विद्यालङ्कृत होकर भी परम भयानक ही हुआ करता है ॥१५॥ बिना ही किसी उचित कारण के कोप को प्रकट करके उसे धारण करने वाले खल पुरुष से किस को भय उत्पन्न नहीं होता है ? अर्थात् ऐसे खल से भी सभी भयभीत होते हैं। महा सर्प बड़ा विषम होता है जिसका विष भी परम उग्र होता है और खल के मुख से सदा ऐसे बुरे वचन निकला करते जो दुःसह होते हैं अर्थात् मर्म भेदी और हृदय विदारक होते है ॥ १६ ॥ तुल्य अर्थ वाले-समान सामर्थ्य वाले-मर्म (रहस्य) के ज्ञाता-व्यवसायी तथा आधे राज्य का हरण करने वाले भृत्य को जो हनन कर देता है वह फिर नहीं मारा जाता है ॥१७॥ दाक्ष्य से युक्त-मृदु और मन्द वचन बोलने वाले-जितेन्द्रिय-सत्य पराक्रम वाले प्रथम ही और पीछे से विपरीत स्वरूप वाले जो भृत्य होते हैं वे हित करने वाले नहीं हुआ करते हैं ॥१८॥ बिना आलस्य वाले—परम सन्तोषी—सुन्दर निद्रा लेने वाले—प्रतिबोधक-सुख और दुःख में समय में समान रूप से रहने वाले तथा धैर्यशाली भृत्य संसार में बहुत दुर्लभ हुआ करते हैं ॥१६॥ क्षान्ति और सत्य से रहित-क्रूर बुद्धि वाला—निन्दा करने वाला-दम्भ रखने वाला—पेटुक अर्थात् केवल अपने उदर के भरते रहने की चिन्ता करने वाला—शठ-स्पृहा से समन्वित—शक्ति हीन और भय से सर्वदा डरा हुआ जो भृत्य हो उसे राजा को त्याग देना चाहिए ॥२०॥ भली भाँति सन्धान किये हुए अस्त्र और

अनेक प्रकार के शस्त्र अपने दुर्ग में प्रविष्ट करके रखने चाहिए। इसके अनन्तर शत्रु का निपातन करे ॥२१॥

षण्मासमथ वर्षं वा सन्धि कुर्यान्निराधिप. ।
पश्यन्सज्जितमात्मान पुन शत्रु निपातयेत् ॥२२
मूर्खान्नियोजयेद्यस्तु नयाऽयेते महीपते ।
अयशश्चार्थनाशश्च नरके चैव पातनम् ॥२३
यत्किञ्चित्कुरुते कर्म शुभ वा यदि वाऽशुभम् ।
तेन सवद्धते राजा सूक्ष्मतो भृत्यकार्यत ॥२४
तस्माद् भूमीश्वर प्राज्ञ धर्मकामार्थसाधने ।
नियोजयेद्धि सतत गोब्राह्मणहिताय वा ॥२५

छं माम अथवा एक वर्ष तक राजा की सन्धि करनी चाहिए। जब यह देख लेवे कि अब अपने आपको पूर्णतया सुसज्जित कर लिया है तब शत्रु का निपातन करना चाहिए ।२२॥ जो राजा मूर्खों को अनुचित नीति से विभिन्न पदों पर नियुक्तियाँ कर देता है उस राजा को अयश–अर्थनाश और नरक–पतन ये तीनो परिणाम अवश्य ही हुआ करते हैं ॥२३॥ राजा जो भी कुछ शुभ या अशुभ कर्म करता है उसमे भृत्यो के ही कार्य से सूक्ष्मतया राजा बढ़ा करता है इस कारण से भूमीश्वर को धर्म–काम और अर्थ के साधन में प्राज्ञ–पुरुषो की ही नियुक्तियाँ करनी चाहिए और निरन्तर यह भी ध्यान रखना चाहिए कि गौ तथा ब्राह्मणो का हित होना रहे ॥२४।२५॥

६६—नीति शास्त्र कथन (२)

गुणवन्तं नियुञ्जीत गुणहीनं विवर्जयेत् ।
पण्डितस्य गुणा: सर्वे मूर्खे दोषाश्च केवला: ॥१
सद्भिरासीत सतत सद्भि कुर्वीत सङ्गतिम् ।
सद्भिर्विवाद मैत्रीञ्च नासद्भि किञ्चिदाचरेत् ।।२
पण्डितैश्च विनीतैश्च धर्मज्ञै सत्यवादिभि ।
बन्धनस्थोऽपि तिष्ठेत न तु राज्ये खलै. सह ॥३

सावशेषाणि कार्य्याणि कुर्वं नर्थेश्च युज्यते ।
तस्मात्सर्वाणि कार्य्याणि सावशेषाणि कारयेत् ॥४

मधुहेव दुहेद्राष्ट्रं कुसुमञ्च न पातयेत् ।
वत्सापेक्षी दुहेत्क्षीरं भूमिं गाञ्चैव पार्थिव ॥५

यथा क्रमेण पुष्पेभ्यश्चिनुते मधु षट्पदः ।
तथा वित्तमुपादाय राजा कुर्वीत सञ्चयम् ॥६

वल्मीकं मधुजालञ्च शुक्लपक्षे तु चन्द्रमा ।
राजद्रव्यञ्च भैक्ष्यञ्च स्तोकस्तोकेन वर्द्धते ॥७

सूतजी बोले—राजा को सर्वदा गुणवान् का ही निषेवन करना उचित है। जो गुणों से (जोकि अभी ऊपर बताये गये हैं) रहित पुरुष है उसका वर्जन कर देना चाहिए। सद्-असत् के विवेक की बुद्धि रखने वाले पण्डित में सभी गुण हुआ करते हैं और मूर्ख में केवल दोष ही रहते हैं ॥१॥ निरन्तर सत्पुरुषों के साथ सङ्गति करे और सत्पुरुषों के साथ ही अपनी उठक-बैठक भी रक्खे। सत्पुरुषों के साथ विवाद और मैत्री भी करनी चाहिए। जो असत्पुरुष हैं उनके साथ तो उपर्युक्त कुछ भी कार्य न करे ॥२॥ पण्डित कुटुम्ब-विनीतजन धर्म के ज्ञाता और सत्यवादी पुरुषों के साथ बन्धन में स्थित होकर भी अवस्थित रहे और खलों के साथ राज्य में भी कभी नहीं रहना चाहिए क्योंकि खल सङ्ग का परिणाम सर्वदा बुरा ही होता है ॥३॥ समस्त कार्यों को सावशेष करके ही मनुष्य अर्थों से युक्त हुआ करता है। इस कारण से समस्त कार्यों को सावशेष ही करना चाहिए ॥४॥ मधुहा (भौंरा) की तरह राष्ट्र का दोहन करे और कुसुम का पातन कभी न करे। अर्थात् राष्ट्र से करों के स्वरूप में इस प्रकार से धन का सञ्चय करे जो उसके स्वरूप को कोई दाग न लगे और वह उसी का त्यों सुन्दर कुसुम की भाँति सुखी सुशोभित बना रहे। जो वत्स की अपेक्षा रखने वाला है गौ से क्षीर का जिस तरह दोहन किया करता है वैसे ही भूमि का दोहन राजा को करना चाहिए ॥ ५ ॥ जिस क्रम से भ्रमर पुष्पों से मधु को चुना करता है उसी भाँति राजा को प्रजा से वित्त ग्रहण कर सञ्चय

करें ॥ ६ ॥ वल्मीक-मधु का जाल और शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा तथा राजा का द्रव्य और भैक्ष्य थोड़ा-थोड़ा करके ही बढ़ा करते हैं ॥७॥

अञ्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा वल्मीकस्य तु सञ्चयम् ।
अवन्ध्यं दिवसं कुर्य्याद्दानाध्ययनकर्मसु ॥८
वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः ।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्त्तते निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥६
सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।
मृजया रक्ष्यते पात्रं कुलं शीलेन रक्ष्यते ॥१०
वरं विन्ध्याटव्यां निवसनमभुक्तस्य मरणं
वरं सर्पाकीर्णे शयनमथ कूपे निपतनम् ।
वरं भ्रान्तावर्त्ते सभयजलमध्ये प्रविशनं
न तु स्वीये पक्षे तु धनमणु देहीति कथनम् ॥११
भाग्यक्षयेषु क्षीयन्ते नोपभोगेन सम्पदः ।
पूर्वार्जिते हि सुकृते न नश्यन्ति कदाचन ॥१२
विप्राणां भूषणं विद्या पृथिव्या भूषणं नृपः ।
नभसो भूषणं चन्द्रः शीलं सर्वस्य भूषणम् ॥१३
एते ते चन्द्रतुल्याः क्षितिपतितनया भीमसेनार्जुनाद्याः
शूराः सत्यप्रतिज्ञा दिनकरवपुषः केशवेनोपगूढाः ।
ते वै दुष्टग्रहस्थाः कृपणवशगता भैक्ष्यचर्य्यां प्रयाताः
को वा कस्मिन्समर्थो भवति विधिवशाद् भ्रामयेत्कर्मरेखा ॥१४

अञ्जन का क्षय और वल्मीक का सञ्चय देखकर—दान और अध्ययन कर्मों में दिवस को अवन्ध्य करे ॥ ८ ॥ जो राग से युक्त चित्त वाले पुरुष हैं वे यदि वन में भी जाकर निवास क्यों न करें वहाँ पर भी उनको दोष उत्पन्न हो जाया करते हैं और राग से निवृत्ति करके पाँचों इन्द्रियों का निग्रह रूपी तप करते हुए घर में रहते हैं—यह भी एक महान उनकी तपश्चर्या ही है। जो सर्वदा अकुत्सित अर्थात् परम प्रशस्त कर्म में प्रवृत्ति रखता है उसे निवृत्त राग

वाले पुरुष के लिए गृह ही तपोवन के तुल्य होता है। राग से निवृत्ति और सत्कर्म ही मुख्यतया लक्ष्य है ॥६॥ सत्य म धर्म की रक्षा की जाती है और योग से विद्या की सुरक्षा होती है। मार्जन करने से पात्र की रक्षा तथा शील वृत्ति से कुल की सुरक्षा हुआ करती है ॥ १० ॥ विन्ध्य के जंगल में निवास करना—भोजन न प्राप्त होने पर भूख से मृत्यु का प्राप्त बन जाना—सर्पों से घिरे हुए स्थल में शयन करना तथा कूप म निपात करना—भयंकर आवर्तों से युक्त मय सहित जल के मध्य में प्रवेश कर जाना अधिक श्रेष्ठ है किन्तु अपने पक्ष वाले लोगों के समक्ष में जाकर थोड़ा-सा धन मुझे दो-इस तरह याचना करके अपना अपमानित बान्धवों के मध्य म जीवन रखना अच्छा नहीं है ॥११॥ भाग्य के नाश होने से ही सम्पदाओं का क्षय हुआ करता है उपभोग करने से कभी भी सम्पत्ति का नाश नहीं होता है। यदि पूर्व जन्म का अर्जित सुकृत विद्यमान है तो सम्पत्ति का कभी भी नाश नहीं होता है ॥ १२ ॥ विप्रों का भूषण केवल एक विद्या ही होती है—पृथिवी का भूषण नृप है—आकाश का आभरण चन्द्रमा है और शील सबका भूषण हुआ करता है अतएव शील वृत्त का सबसे अधिक महत्त्व होता है ॥ १३ ॥ वे सब चन्द्रमा के समान परमोज्ज्वल एवं सुन्दर राजा के पुत्र भीमसेन और अर्जुन आदि अत्यधिक शूरवीर-सत्य प्रतिज्ञा वाले—दिनकर के वपु वाले और साक्षात् केशव भगवान् के द्वारा उप गूढ़ भी थे किन्तु दुष्ट ग्रहों के फेर में अवस्थित होकर ऐसे कापथ्य के वश में स्थित होगये थे भिक्षा वृत्ति भी उन्हें करनी पड़ी थी। इसलिये यही ज्ञात होता है कि किस दशा म कौन समर्थ हो सकता है। यह कर्मों की रेखा विधि के वश से अच्छे अच्छों को भी भ्रमित करा दिया करती है भाग्य सर्वोपरि और सबसे प्रबल हुआ करता है। इसके आगे किसी का भी कुछ वश नहीं चलता है—यह परम सिद्धान्त है ॥१४॥

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासङ्कटे।
रुद्रो येन कपालपाणिपुरतो भिक्षाटनं कारित
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥१५

दाता बलिर्याचनको मुरारिर्दानं मही विप्रमुखस्य मध्ये ।
दत्त्वा फलं बन्धनमेव लब्धं नमोऽस्तु ते दैव यथेष्टकारिणे ॥१६
माता यदि भवेल्लक्ष्मीः पिता साक्षाज्जनार्दनः ।
कुबुद्धिप्रतिपत्तिश्चेत्तद्दण्डं विधृतं सदा ॥१७
येन येन यथा यद्वत्पुरा कर्म सुनिश्चितम् ।
तत्तदेवान्तरा भुङ्क्ते स्वयमाहितमात्मनः ॥१८
आत्मना विहितं दुःखमात्मना विहितं सुखम् ।
गर्भशय्यामुपादाय भुङ्क्ते वै पौर्वदेहिकम् ॥१९
न चान्तरिक्षे न समुद्रमध्ये न पर्वतानां विविधप्रदेशे ।
न मातृमूर्ध्नि प्रधृतस्तथाङ्के त्यक्तुं क्षमः कर्मकृतं नरो हि ॥
न मातृमूर्ध्नि प्रधृतस्तथाङ्के त्यक्तुं क्षमः कर्मकृतं नरो हि ॥२०
दुर्गस्त्रिकूटः परिखा समुद्रो रक्षांसि योधाः परमा च वृत्तिः ।
शास्त्रञ्च च तूशनसा प्रदिष्टं स रावणः कालवशाद्विनष्टः ॥२१

जिस महामहिम कर्म ने ब्रह्मा को भी इस ब्रह्माण्ड रूपी भाण्ड के उदर मे एक कुम्हार की भाँति नियमित कर दिया है—जिस कर्म ने साक्षात् विष्णु भगवान् को भी दश अवतार धारण करने जङ्गल में महान् सङ्कट में डाल दिया है—जिस कर्म ने महान् देव रुद्र को कपाल हाथ मे लेकर भिक्षाटन करने वाला बना दिया है और जिस कर्म की गति के वश में ही सूर्यदेव नित्य-प्रति गगन मे भ्रमण किया करते हैं उस परम प्रबल कर्म के लिये हमारा बारम्बार नमस्कार है। कर्म ही सबसे प्रधान एवं प्रमुख होता है जो बड़े-बड़ो को भी अपने अधीन करके घुमाता रहता है ॥१५॥ राजा बलि के समान महान् श्रेष्ठ दान देने वाला—साक्षात् विष्णु वामन रूप धारण करने वाले याचक—भूमि जैसा परमोत्तम दान और विप्र के मुख में फल देकर भी राजा बलि ने इसके परिणाम मे बन्धन ही प्राप्त किया था। हे दैव ! यथेष्ट फल देने वाले आपके लिये हमारा नमस्कार है। दैव की प्रबलता सबसे अधिक होती है ॥१६॥ यदि माता साक्षात् स्वयं महालक्ष्मी हो और पिता साक्षात् भगवान् जनार्दन ही हो तो भी यदि बुरी बुद्धि की प्रतिपत्ति हो तो उसको सदा दण्ड धारण करना

हो पड़ता है । बुद्धि की मूढ़ता का परम महत्त्व जीवन में होता है ॥ १७ ॥ जिस-जिस ने जैसा जो पहिले कर्म किया है यह सुनिश्चित है कि वह वैसा ही स्वयं अपने आत्म द्वारा कृत कर्म का फल अवश्य ही भोगा करता है। इन कर्मों के फल को कोई भी शक्ति मिटाने वाली नहीं है ॥१८॥ अपने ही द्वारा दुःख प्राप्त करने के कर्म किये जाते हैं और अपनी ही आत्मा से सुख भी किया जाता है अर्थात् सुख और दुःखों का प्रदान करने वाला यह प्राणी स्वयं ही होता है अन्य कोई नहीं होता। गर्भ की शय्या को प्राप्त कर यह पूर्व जन्म के किये दुःखों को भोगा करता है ॥१९। किए हुए कर्म को मनुष्य आकाश में—समुद्र के मध्य में—पर्वतों के विभिन्न प्रदेश में—माता की गोदी में तथा गोद में रहकर भी त्याग करने में समर्थ नहीं होता है। माता के मस्तक पर या उसके अङ्क में रह कर भी कृत कर्म का त्याग नहीं कर सकता है अर्थात् किये हुए कर्म का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। इससे बचाव कहीं भी नहीं हो सकता है ॥२०॥ जिसका दुर्ग त्रिकूट था और उस दुर्ग की परिखा (खाई) समुद्र जैसी अथाह एवं सुविस्तीर्ण थी— राक्षस महाबली जिसके युद्ध करने वाले योधा थे और परमा जिसकी वृत्ति था। असुर गुरु उशना के द्वारा जिसने सम्पूर्ण शास्त्रों का अध्ययन किया था वह राक्षस राज रावण भी काल के वश में आकर नष्ट हो गया था ॥२१॥

यस्मिन्वयसि यत्काले यद्दिवा यच्च वा निशि ।
यन्मुहूर्ते क्षणे वापि तत्तथा न तदन्यथा ॥२२
गच्छन्ति चान्तरिक्षे वा प्रविशन्ति महीतले ।
धारयन्ति दिशः सर्वा नादत्तमुपलभ्यते ॥२३
पुराधीता च या विद्या पुरा दत्तञ्च यद्धनम् ।
पुरा कृतानि कर्माणि ह्यग्रे धावन्ति धावतः ॥२४
कर्माण्यत्र प्रधानानि सम्यगृक्षे शुभग्रहे ।
वसिष्ठकृतलग्नेऽपि जानकी दुःखभाजनम् ॥२५
स्थूलजङ्घो यदा रामः शब्दगामी च लक्ष्मणः ।
घनकेशी यथा सीता त्रयस्ते दुःखभाजनम् ॥२६

न पिण्डकर्मणा पुत्रः पिता वा पुत्रकर्मणा ।
कर्मजन्यशरीरेषु रोगाः शारीरमानसा ॥२७
शरा इव पतन्तीह विमुक्ता दृढधन्विनः ।
अतो वं शास्त्रगर्भिण्या धिया धीरोऽर्थमीहते ॥२८

जिस अवस्था में—जिस समय में—जिस दिन में—जिस रात्रि में—जिस मुहूर्त में और जिस क्षण में जो भी जैसा होने वाला होता है वही होकर रहा करता है। इससे अन्यथा कभी नहीं होता है ॥ २२ ॥ चाहे अन्तरिक्ष में चले जावें या मही के तल में प्रवेश करें अथवा सभी दिशाओं में कहीं भी चले जावें जो नहीं दिया है वह कहीं भी नहीं मिल सकता है ॥२३॥ पहिले जन्म में जो विद्या का अध्ययन किया है और पहिले जो धन का दान किया है तथा पहिले जन्म में जो भी कर्म किये हैं वे सभी आगे दौड़ कर चला करते हैं ॥२४॥ सम्यक् अच्छे नक्षत्र और शुभ ग्रह होने पर भी इस संसार में कर्मों की ही प्रधानता होती है। महर्षि वशिष्ठ मनीषी के द्वारा लग्न का शोधन कर निश्चित करने पर भी जानकी को दुःखों का भोग करना ही पड़ा था ॥ २५ ॥ स्थूल जङ्घा वाले राम—शब्द गामी लक्ष्मण और घनकेशी सीता ये तीनों ही दुःखों के भाजन हुए थे ॥२६॥ पिंड कर्म से पुत्र और पुत्र कर्म से पिता नहीं होते हैं। शारीरिक और मानसिक रोग कर्म जन्य शरीरों में हुआ करते हैं ॥२७॥ दृढ धनुष धारी पुरुष के द्वारा छोड़े हुए शरों की भाँति यहाँ आकर ये निपतित होते हैं। इसलिये शास्त्रों के गर्भ वाली बुद्धि से धीर पुरुष अर्थ की चाह किया करता है ॥२८॥

बालो युवा च वृद्धश्च यः करोति शुभाशुभम् ।
तस्यां तस्यामवस्थायां भुङ्क्ते जन्मनि जन्मनि ॥२९
अनिच्छमानोऽपि नरो विदेशस्थोऽपि मानवः ।
स्वकर्मपोतवातेन नीयते यत्र तत् फलम् ॥३०
प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो देवोऽपि तं वारयितुं न शक्तः ।
अतो न शोचामि न विस्मयो मे ललाटलेखा न पुन. प्रयाति
(यदस्मदीयं न तु तत् परेषाम्) ॥३१॥

सर्पः कूपे गजः स्कन्धे आखुर्बिले च धावति ।
नरः शीघ्रतरादेव कर्मणः पलायति ॥३२

नाल्पायति हि सद्विद्या दीयमानापि वर्द्धते ।
कूपस्थमिव पानीयं भवत्येव बहूदकम् ॥३३

येऽर्था धर्मेण ते सत्या ये धर्मेण गता श्रियः ।
धर्मार्थी च महाँल्लोके तत्स्मृत्वा ह्यर्थकारणात् ॥३४

अन्नार्थी यानि दुःखानि करोति कृपणो जनः ।
तान्येव यदि धर्मार्थी न भूयः क्लेशभाजनम् ॥३५

बालक—युवा और वृद्ध जो भी शुभ तथा अशुभ कर्म करता है उस-उस अवस्था म उसका फल जन्म-जन्मान्तर मे भोगता है ॥ २९ ॥ इच्छा न करता हुआ भी और विदेश म स्थित होने वाला भी मानव अपने कर्म रूपी पोत के बात द्वारा उसका फल वहाँ पहुँचा दिया जाया करता है ।३०। जो प्राप्त होने के योग्य अर्थ होता है उस मनुष्य अवश्य ही प्राप्त कर लेता है। देव भी उसको रोकने म समर्थ नहीं होता है । इसलिये मैं इसके लिये कोई भी चिन्ता या शोच नहीं करता हू । मुझे विस्मय भी नही होता है क्योंकि ललाट मे लिखी हुई लेखा का कोई भी बदल नहीं सकता है अर्थात् वह अन्यथा नहीं होती है। जो हमारे भाग्य मे बदा है अर्थात् हमारे कर्मों के अनुसार जो भी हमारा प्राप्त होने वाला है वह हमको अवश्य ही मिलेगा किसी अन्य को नहीं मिल सकता है ॥३१॥ सर्प कूप म-गज स्कन्ध में और मूषा बिल मे दौड लगाता है। कौन से मनुष्य शीघ्रतर कर्म से पलायन करता है ? ॥३२॥ दूसरों को प्रदान की हुई विद्या कभी भी कम नहीं होती है प्रत्युत वह दूसरों के देने पर अधिक बढती है । कूप में रहने वाले पानी की तरह वह बहूदक होती है ॥३३॥ जो अर्थ धर्म के द्वारा होते है वे ही सत्य हुआ करते हैं और धर्म पूर्वक प्राप्त की गई है वह ही वास्तविक श्री है । इस लोक मे धर्म का ही अर्थी पुरुष महान् होता है । अतएव अर्थ के कारण से उसका ही स्मरण रखना चाहिए ॥३४॥ अन्न के चाहने वाला पुरुष अत्यन्त कृपण होता हुआ जिन दुःखों को भोगता है

उन्हीं दु:खों यदि धर्म का अर्थी करे तो फिर किसी भी क्लेश का वह पात्र ही नहीं हो सकता है ॥३५॥

सर्वेषामेव शौचानामन्नशौचं विशिष्यते ।
योऽन्नार्थैरशुचि शौचान्न मृदा वारिणा शुचि ॥३६
सत्यशौच मन शौच शौचमिन्द्रियनिग्रह ।
सर्वभूते दया शौच चलशौचञ्च पञ्चमम् ॥३७
यस्य सत्यञ्च शौचञ्च तस्य स्वर्गो न दुर्लभः ।
सत्य हि वचन यस्य सोऽश्वमेधाद्विशिष्यते ॥३८
मृत्तिकाना सहस्रेण उदकाना शतेन च ।
न शुद्धयति दुराचारो भावोपहतचेतन ॥३९
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥४०
न प्रहृष्यति सम्माने नावमानेन कुप्यति ।
न क्रुद्ध परुषं ब्रूयादेतत् साधोस्तु लक्षणम् ॥४१
दरिद्रस्य मनुष्यस्य प्राज्ञस्य मधुरस्य च ।
काले श्रुत्वा हितं वाक्य न कश्चित्परितुष्यते ॥४२

समस्त प्रकार के शौचों में अन्न की शुचिता का एक अत्यन्त विशेष स्थान होता है। जो अन्न का अर्थी अशुचि हो जावे अर्थात् अनुचित अन्न के सेवन से जो अशुचिता होती है वह जल और मिट्टी से कभी दूर नहीं हो सकती है ॥३६॥ सत्यता के पालन करने से शुचिता होती है—शुद्ध—मन के होने से भी शुचिता हुआ करती है और अपनी समस्त इन्द्रियों पर निग्रह एवं नियन्त्रण रखने से भी शौच होता है। समस्त प्राणियों पर हृदय में दया का भाव रखने से शुचिता होती है। पाँचवाँ शौच जो होता है वह अस्थिर हुआ करता है ॥३७॥ जिस मानव को सत्य और शौच होता है उसको स्वर्ग का प्राप्त करना कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है। जिसके वचन में सर्वदा सत्य विराजमान रहता है उसका पुण्य-फल अश्वमेध यज्ञ से भी अधिक होता है ॥ ३८ ॥

भावनाओं से उपहत चेतना वाला दुराचार ऐसा प्रवन होता है कि उसकी मधुविशा सहस्रों बार मृत्तिका से तथा सैकड़ों बार जल से धोने पर भी नष्ट नहीं होती है ॥३६॥ जिनके हाथ-पैर और मन सुसंयत होते हैं उसको विद्या-तप और कीर्ति की प्राप्ति होती है और वह तीर्थ के फल को प्राप्त किया करता है ॥४०॥ जो पुरुष सम्मान के पाने पर प्रसन्न नहीं होता है और अपमान हो जाने पर कभी कोप नहीं किया करता है। जो क्रोध में भरकर कभी अपने मुख से कठोर वचन नहीं बोलता है—यह एक महान् साधु पुरुष के लक्षण होते हैं ॥४१॥ दरिद्र मनुष्य के और मधुर प्राज्ञ के समय पर हित वाक्य श्रवण करके कोई परितुष्ट नहीं हुआ करता है ॥४२॥

न मन्त्रबलवीर्येण प्रज्ञया पौरुषेण च ।
अलभ्य लभ्यते मर्त्यैस्तत्र का परिवेदना ॥४३
अयाचितो मया लब्धो मत्प्रेषित पुनर्गतः ।
यत्रागतस्तत्र गतस्तत्र का परिवेदना ॥४४
एकवृक्षे सदा रात्रौ नानापक्षिसमागमः ।
प्रभातेऽन्यदिश यान्ति का तत्र परिवेदना ॥४५
एकस्वार्थप्रयातानां सर्वेपान्तत्र गामिनाम् ।
यस्त्वेकस्त्वरितो याति का तत्र परिवेदना ॥४६
अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि शौनक ।
अव्यक्तनिधनान्येव का तत्र परिवेदना ॥४७
नाप्राप्तकालो म्रियते विद्ध. शरशतैरपि ।
कुशाग्रेण तु संस्पृष्ट प्राप्तकालो न जीवति ॥४८
लब्धव्यान्येव लभते गतव्यान्येव गच्छति ।
प्राप्तव्यान्येव प्राप्नोति दुःखानि च सुखानि च ॥४९

मन्त्र-बल-वीर्य—प्रज्ञा और पौरुष से मनुष्य अलभ्य पदार्थों की प्राप्ति नहीं किया करते हैं। इसलिये इस अप्राप्ति के विषय में कुछ भी दुःख नहीं मानना चाहिए ॥४३॥ जिस को मैंने कभी याचना नहीं की थी उसे मैंने प्राप्त कर लिया था और मेरा भेजा हुआ वह फिर मुझसे चला गया है। जहाँ से वह

आया था वही पर वह चला गया है अर्थात् जिस प्रदाता ने मुझे दिया था उसी ने उसे पुन. ले लिया है तो इसके लिए दु.ख मानने की कोई आवश्यकता ही नही होनी चाहिए ॥४४॥ एक ही वृक्ष पर रात्रि के समय मे इधर–उधर से अनेक पक्षियो का समागम हो जाया करता है । प्रात.काल के होने पर वे सभी जो एक साथ रहे थे विभिन्न दिशाओ मे उडकर चले जाया करते हैं तो इसके लिये कुछ भी परिवेदना नही करनी चाहिए क्योकि यह समागम तो अस्थायी ही था और उनका वियोग भी होना ही है । तात्पर्य यह है कि यह सासारिक सयोग पिता—पुत्र और भाई–भतीजे आदि का भी ऐसा ही है अत. इस विछोह से कभी भी कोई दु ख नहीं मानना चाहिए ॥ ४५ ॥ किसी एक ही स्वार्थ के सम्पादन करने के लिये प्रमाण करने वाले सब मे जोकि गमन कर रहे हैं उनमे कोइ एक शीघ्रता से चलकर आगे निकल जाया करता है तो इसमे क्या दु.ख की बात है ? स ार में भी यही आगे—पीछे संसार त्याग करने का क्रम रहा करता है ॥४६॥ हे शौनक ! ये समस्त भूतों का आदि कारण अव्यक्त है—मध्यम मे ये सब व्यक्त स्वरूप वाले होते हैं । इन सबका निधन भी अव्यक्त ही है—इसलिए इस विषय मे दु ख के मानने की क्या बात है ॥ ४७ ॥ जिसका समय नही आया है सैकडो शरों से विद्ध होकर भी कभी नही मरा करता है और जिसकी मृत्यु का समय ही उपस्थित होगया है वह एक कुशा के अग्र भाग के स्पर्श से भी मर जाता है और किसी भी उपाय से वह जीवित नहीं रहा करता है । मृत्यु का एक नियत समय होता है शेष सब तो केवल निमित्त मात्र ही होते हैं ॥ ४८ ॥ जो प्राप्त होने वाले होते हैं उन्हीं को मानव प्राप्त किया करता है और जहाँ पर जाना सुनिश्चित होता है वही पर वह जाया करता है जिनके प्राप्त होने का योग भाग्य में बदा है उन्ही पदार्थों को मानव प्राप्त किया करता है । दु ख और सुख भी इसी प्रकार से हुआ करते हैं ॥४६॥

ततः प्राप्नोति पुरुषः किं प्रलापं करिष्यति ।
आचोद्यमानानि तथा पुष्पाणि च फलानि च ॥
स्वकाल नातिवर्त्तन्ते तथा कर्म पुराकृतम् ॥५०

शील कुल नैव न चैव विद्या ज्ञान गुणा नैव न बीजशुद्धि ।
भाग्यानि पूर्वं तपसार्जितानि काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षा॥
तत्र मृत्युर्यत्र हन्ता तत्र श्रीर्यत्र सम्पदः ।
तत्र तत्र स्वयं याति प्रेर्यमाणः स्वकर्मभिः ॥५२
भूतपूर्वं कृतं कर्म कर्त्तारमनुतिष्ठति ।
यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् ॥५३
एवं पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुतिष्ठति ।
सुकृतं भुङ्क्ष्व चात्मीयं मूढ किं परितप्यसे ॥५४
यथा पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुतिष्ठति ।
एवं पूर्वकृतं कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥५५
नीचः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति ।
आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति ॥५६

उसी भाग्य के अनुसार पुरुष प्राप्त किया करता है अतएव प्रलाप करना व्यर्थ ही होता है जैसे पूर्व से ही प्रेरित हुए फल और पुष्प स्वतः ही समय पर प्राप्त हुआ करते हैं । इसी भाँति पूर्वकृत कर्म कभी अपने समय का अतिवर्तन नहीं किया करते हैं । समय पर पूर्वकृत कर्मों का फल अवश्य ही प्राप्त होता है ॥५०॥ पूर्व जन्म में तपश्चर्या के द्वारा जो भाग्य का निर्माण किया है वह समय आ जाने पर फल दिया ही करता है जैसे अपना काल उपस्थित हो जाने पर वृक्ष फलों की उपज किया करते हैं । भाग्योदय में शील—कुल—विद्या—ज्ञान—गुण और बीज की शुद्धि कारण नहीं बनते हैं । इन सबमे रहित पुरुष भी पूर्व सुकृत के कारण महान् भाग्यशाली होता है ॥५१॥ जहाँ पर हनन करने वाला है वहा पर मृत्यु भी है और जहाँ सम्पदाएँ हैं वहाँ श्री विद्यमान रहा करती है । वहाँ–वहाँ पर वह स्वयं ही अपने कर्मों के द्वारा प्रेर्यमाण होकर पहुँच जाता है ॥५२॥ पहिले किया हुआ कर्म उसके करने वाले के साथ ही रहता है जिस तरह सहस्रों धेनुओं में बछड़ा अपनी माता के ही पास पहुँचा करता है ॥५३॥ इसी प्रकार से पूर्व में किया हुआ कर्म उसके करने वाले के समीप में पहुँचता है और वह कहता है कि हे मूढ़ ! अपने सुकृत् फल भोगले,

व्यर्थ में ही क्यो परिताप कर रहा है ।।५४।। पूर्व जन्म में किया हुआ कर्म च है वह शुभ हो या अशुभ हो सर्वदा उसके करने वाले के साथ ही रहा करता है ।।५५।। नीच पुरुष दूसरों के सरसों के बराबर छिद्रों को भी देखा करता है और अपने वेल के फल के बराबर भी अर्थात् बडे बडे दोषो को भी देखते हुए भी नही देखता है ।।५६।।

रागद्वे षादियुक्ताना न सुख कुत्रचिद् द्विज ।
विचार्य्य खलु पश्यामि तत्सुख यत्र निर्वृ ति ।।५७
यत्र स्नेहो भय तत्र स्नेहो दु खस्य भाजनम् ।
स्नेहमूलानि दु खानि तस्मिंस्त्यक्ते महत्सुखम् ।।५८
शरीरमेवायतन दु खस्य च सुखस्य च ।
जीवितञ्च शरीरञ्च जात्यैव सह जायते ।।५९
सर्वं परवश दु ख सर्वमात्मवश सुखम् ।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षण सुखदु खयो ।।६०
सुखस्यानन्तर दु ख दु खस्यानन्तर सुखम् ।
सुख दु ख मनुष्याणा चक्रवत्परिवर्त्तते ।।६१
यद्गत तदतिक्रान्त यदि स्यात्तच्च दूरतः ।
वर्त्तमानेन वर्त्तेत न स शोकेन बाध्यते ।।६२

हे द्विज ! जो पुरुष राग और द्वेष म युक्त होते हैं उनको कही भी सुख प्राप्त नहीं हुआ करता है । विचार कर मैं भली भांति देख रहा हूँ कि सुख वस्तुत वही पर होता है जहाँ निर्वृ ति होती है ।।५७।। जहाँ पर स्नेह होना है वहाँ पर भय भी रहता है क्योंकि स्नह दु ख का आधार हुआ करता है । दु खों का मूल स्नेह ही होता है अतएव उस स्नेह के त्याग कर देने पर महान् सुख हो जाता है ।। ५८ ।। यह शरीर ही दु ख और सुख का आयतन होता है । जीवित और शरीर जाति से ही साथ उत्पन्न होता है ।।५९।। पराये अधीन सभी कुछ का रहना दु ख होता है और सबका अपने अधीनता मे रहना सुख होता है । सक्षेप स्वरूप से सुख और दु ख का यही लक्षण होता है । इस ससार में मनुष्यों को सुख और दु ख एव चक्र की भांति परिवर्त्तित हुआ करते हैं अर्थात् सुख के बाद दु ख और दु ख के पश्चात् सुख आया ही करता है ।।६०।।

सुख के अनन्तर दुःख और दुःख के अनन्तर सुख आता है। चक्र का परिवर्त्तन भी इसी तरह नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे हुआ करता है ।।६१।। जो हो गया वह अति क्रान्त है। जो होने वाला है वह दूर है जो वर्तमान से बरतता है वह शोक से बाधित नहीं होता है ।।६२।।

७०—नीतिशास्त्र कथन (२)

न कश्चित्कस्यचिन्मित्रं न कश्चित्कस्यचिद्रिपुः ।।
कारणादेव जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा ।।१
शोकत्राणं भयत्राणं प्रीतिविश्रामभाजनम् ।
केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम् ।।२
सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ।।३
न मातरि न दारेषु न सोदर्ये न चात्मजे ।
विश्वासस्तादृशः पुंसां यादृङ मित्रे स्वभावजे ।।४
यदीच्छेच्छाश्वतीं प्रीतिं त्रीणि दोषाणि वर्जयेत् ।
द्यूतमर्थप्रयोगञ्च परोक्षे दारदर्शनम् ।।५
मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो वसेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति । ६
विपरीतरतिं कामः स्वायत्तेषु न विद्यते ।
यथापायो बधो दण्डस्तथैव ह्यनुवर्त्तते ।।७

श्री सूतजी ने कहा—इस संसार में कोई भी किसी का मित्र नहीं है और न कोई किसी का शत्रु ही है। यहाँ पर तो कारण के वश होकर ही मित्र तथा शत्रु बना करते हैं ।।१।। शोक से त्राण करने वाला—भय से सुरक्षा का सम्पादक तथा प्रीति एवं विश्वास का पात्र 'मित्र'—यह दो अक्षरों वाला उत्तम रत्न किसने सृजित किया है ? ।।२।। जिसने केवल एक ही बार परम प्रीति एवं भक्ति के भाव से "हरि"—यह भगवान् के दो अक्षर का पुनीत नाम का उच्चारण किया है उसने मोक्ष की प्राप्ति को गमन करने के लिये

अपने परिकर को बद्ध कर लिया है ॥३॥ स्वभाव से समुत्पन्न मित्र मे मनुष्य का जैसा परम सुदृढ विश्वास होता है वैसा विश्वास अपनी माता—पत्नी—सहोदर भाई—और पुत्र मे भी नहीं हुआ करता है ॥४॥ यदि सर्वदा बनी रहने वाली प्रीति को स्थिर रखने की इच्छा है तो वहाँ पर तीन दोषों का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए—द्यूत क्रीडा करना, धन के लेने-देने का प्रयोग और परोक्ष मे स्त्रियों को देखना या उनसे सम्भाषण करने का काम ॥५॥ अपनी माता-भगिनी-पुत्री इनके साथ विविक्त आसन पर कभी निवास नहीं करना चाहिए क्योंकि इन्द्रियों का समुदाय अत्यन्त बलवान् होता है और यह महान् विद्वान् को भी कर्षित कर लेता है अर्थात् महान् पाप कर्म करने की ओर खींच लिया करता है ॥६॥ अपने अधीन रहने वालों में विपरीत रति वाला काम नहीं होता है। जहाँ अपाय वध दण्ड है वैसा ही अनुवर्त्तन होता है ॥७॥

अपि कल्पानिलस्येव तुरगस्य महोदधेः ।
शक्यते प्रसरो बोद्धु ं नह्यरक्तस्य चेतसः ॥८
क्षणं नास्ति रहो नास्ति नास्ति प्रार्थयिता जनः ।
तेन शौनक नारीणां सतीत्वमुपजायते ॥९
एकं च सेवते नित्यमन्यं चेतसि रोचते ।
पुरुषाणामलाभेन नारी चैव पतिव्रता ॥१०
जननी यानि कुरुते रहस्य मदनातुरा ।
सुतैस्तानि न चिन्त्यानि शीलविप्रतिपत्तिभिः ॥११
परधीना निद्रा परहृदयकृत्यानुमरणं
सदा हेलाहास्य नियतमपि शोकेन रहितम् ।
पणे न्यस्तः कायः विटजनपुरैर्दारितगलो
बहुत्कण्ठावृत्तिर्जगति गणिकाया बहुमतः ॥१२
अग्निरापः स्त्रियो मूर्खाः सर्पा राजकुलानि च ।
नित्यं परोपसेव्यानि सद्यः प्राणहराणि षट् ॥१३
किं चित्रं यदि शब्दशास्त्रकुशलो विप्रो भवेत्पण्डितः

किं चित्र यदि दण्डनीतिकुशलो विप्रो भवेद्धार्मिक ।
किं चित्र यदि रूपयौवनवती योषिन्न साध्वी भवेत्
किं चित्र यदि निर्धनोऽपि पुरुषः पापं न कुर्य्यात्क्वचित् ॥१४

कल्पानिल का–तुरग का और महोदधि का प्रसर जाना जा सकता है किन्तु अरक्त चित्त का नही जान सकते हैं ॥ ८ ॥ हे शौनक ! क्षण मात्र का समय प्राप्त नही होता है–एकान्त स्थल भी कभी नही मिलता है और कभी प्रार्थना करने वाला पुरुष भी प्राप्त नही हुआ करता है ऐसे ही तीन कारण रहा करते हैं जिसके कारण से नारियो के सतीत्व रक्षा हो जाया करती है अन्यथा उक्त कारण यदि हो तो फिर नारियो के सतीत्व का वचन महान् कठिन ही होता है ॥६॥ एक पुरुष को तो वह नित्य प्रति सेवन किया करती है तो भी उसके चित्त मे अन्य पुरुष के सेवन करने की रुचि बनी रहा करती है। पुरुषो की प्राप्ति न होने से ही नारी पतिव्रता रहा करती है ॥१०॥ माता मदन से आतुर होकर जिन कर्म कलापो को रहस्य में किया करती है पुत्रो को उन पर चिन्तन नही करना चाहिए क्योकि वे शील की विप्रति पत्ति करने वाले होते हैं ॥११॥ निद्रा पराधीन होनी है—पराये हृदय के कृत्यो का अनुसरण–सदा हेला हास्य नियत शोक से भी रहित होता है। ससार मे गणिका का जीवन ऐसा होता है कि उसका शरीर पैसे के प्राप्त करने के लिये सदा निरत रहता है और विद्जनो के द्वारा उसका गला सदा विदारित रहा करता है—वह बहुतो की उत्कण्ठा को सन्तृप्त की वृत्ति वाली और बहुत से लोगो की इच्छा पूर्ण करने वाली मानी गई है ॥१२॥ अग्नि–जल–स्त्रीगण—सर्प और राजकुल ये नित्य परोपसेव्य अर्थात् दूसरो के सेवन करने के योग्य होते हैं और ये छै सद्य प्राणो के हरण करने वाले भी है ॥१३॥ इसमे कौन-सी आश्चर्य की बात है कि यदि शब्द शास्त्र मे कुशल प्रिय पण्डित होता है। यह भी कोई विचित्र बात नही है कि दण्ड नीति मे कुशल विप्र धार्मिक है। इसमे भी कुछ विचित्रता नहीं है कि रूप–लावण्य से सम्पन्न स्त्री सती–साध्वी न रहे और यह भी कुछ अद्भुत बात नही है कि कोई निधन पुरुष कही भी कोई पाप कर्म नही करता है ॥१४॥

नात्मच्छिद्र परे दद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य च ।
गूहे कूर्म इवाङ्गानि परभावञ्च लक्षयेत् ॥१५
पातालतलवासिन्य उच्चप्राकारच्छादिताः ।
यदि नो चिकुरोद्भेदः स्त्रियः केनोपलभ्यते ॥१६
समधर्मा हि मर्मज्ञस्तीक्ष्णः स्वजनकण्टक ।
न तथा बाधते शत्रु कृतवैरो बहि स्थित ॥१७
स पण्डितो यो ह्यनुरञ्जयेद् मिष्टेन बाल विनयेन शिष्टम् ।
अर्थेन नारी तपसा हि देवान्सर्वाश्च लोकाश्च सुसंग्रहेण ॥१८
छलेन मित्र कलुषेण धर्म परोपतापेन समृद्धिभावम् ।
सुखेन विद्या परुषेण नारी वाञ्छति वै ये न च पण्डितास्ते ॥१९
फलार्थी फलिन वृक्ष यश्छिन्द्याद् दुर्मतिर्नर ।
निष्फल तस्य वै कार्यं तन्मूल दोषमाप्नुयात् ॥२०
साधनो हि तपस्वी च दूरतो वै कृतश्रमः ।
मद्यपा स्त्री सतीत्येव विप्र न श्रद्धाम्यहम् ॥२१

कभी भी अपने छिद्र अर्थात् अपने आपके दोष या त्रुटि को दूसरो को नही देना चाहिए और दूसरे के छिद्र को भी न देवे । घर मे कछुए के अङ्गो की भाँति परभाव को देखना चाहिए ॥ १५ ॥ पाताल तल मे निवास करने वाली और उच्च प्रकार से छादित स्त्रियो का यदि चिकुरोद्भेद न हो तो वे किसके द्वारा प्राप्त की जाया करती है ? ॥१६॥ वैर करने वाला और बाहिर रहने वाला शत्रु उस प्रकार की बाधा नही किया करता है जैसी बाधा करने वाला समान धर्म वाला—मर्म का ज्ञाता—तीक्ष्ण अपना जन कण्टक होता है ॥१७॥ वही पुरुष वास्तव मे पण्डित है जो अपने मीठे भाषण से बालको का अनुरञ्जन किया करता है और विनय के भाव से शिष्ट पुरुषो को प्रसन्न किया करता है—धन से नारी को—तपश्चर्या से देवो को—समस्त लोगो को सुसंग्रह से अनुरञ्जन करते हैं उनको ही पण्डित कहते हैं । जो छल से मित्र को—कलुष से धर्म को—परोपताप से समृद्धि के भाव को—सुख से विद्या को और कठोरता

से नारी को जो चाहने हैं वे पण्डित पुरुष नहीं कहे जा सकते हैं ॥१८॥॥१६॥ फलो की इच्छा रखने वाला पुरुष यदि फलो से युक्त वृक्षो का छेदन करता है तो वह मनुष्य दुर्मति ही होता है। ऐसे पुरुष का कार्य निष्फल ही होता है और उसका मूल दोष को प्राप्त होता है। हे विप्र ! साधन सम्पन्न तपस्वी हो—दूर स श्रम करने वाला—मद्यपान करने वाली स्त्री सती है—यह मैं कभी भी श्रद्धा के साथ विश्वास नहीं करता हू ॥२०।२१॥

न विश्वसेदविश्वस्ते मित्रस्यापि न विश्वसेत् ।
कदाचित्कुपित मित्र सर्वं गुह्य प्रकाशयेत् ॥२२
सर्वभूतेषु विश्वास सर्वभूतेषु सात्त्विक. ।
स्वभावमात्मना गुह्यमेतत्साधोर्हि लक्षणम् ॥२३
यस्मिन्वस्मिन्कृते कार्य्ये कर्त्तारमनुवर्त्तते ।
सर्वथा वर्त्तमानोऽपि धैर्य्यबुद्धिन्तु कारयेत् ॥२४
वृद्धा स्त्रियो नव मद्य शुष्क मास त्रिमूलकम् ।
रात्रौ दधि दिवा स्वप्न विद्वान्पट् परिवर्जयेत् ॥२५
विष गोष्ठी दरिद्रस्य वृद्धस्य तरुणी विषम् ।
विष कुशिक्षिता विद्या अजीर्णे भोजन विषम् ॥२६
प्रिय दानमकुण्ठस्य नीचस्योच्छ्वासन प्रियम् ।
प्रिय दान दरिद्रस्य यूनश्च तरुणी प्रिया ॥२७
अत्यम्बुपान कठिनाशनञ्च धातुक्षयो वेगविधारणञ्च ।
दिवाशयो जागरणञ्च रात्रौ षड्भिर्नराणा निवसन्तिरागा ॥२८

जो विश्वास का पात्र नही है उसमें कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए और जो मित्र है उसको विश्वास का पात्र रहते हुए भी उसका भी पूर्णतया विश्वास नही करना चाहिए क्योकि यदि किसी समय मे वह विश्वस्त मित्र कुपित हो जाता है तो फिर सभी कुछ गोपनीय बातो को प्रकाशित कर दिया करता है ॥२२॥ समस्त प्राणियों में विश्वास रखना और सब प्राणियो मे सात्त्विक भाव का रखने वाला होना और अपने भाव को अपने ही आपके द्वारा गोपनीय रखना—ये एक साधु पुरुष का लक्षण होता है ॥ २३ ॥ जिस किसी कार्य के

करने पर कर्त्ता का अनुवर्त्तन करता है सर्वथा वर्त्तमान भी धैर्य बुद्धि को करे ॥२४॥ वृद्धा स्त्री—नवीन मद्य—शुष्क आमिष—त्रिमूलक—रात्रि में दधि और दिन में सोना ये छैं कार्य विद्वान् पुरुष को वर्जित कर देने चाहिए ॥२५॥ दरिद्र पुरुष को गोष्ठी करना विष के तुल्य है और वृद्ध पुरुष को तरुणी विष के समान होती है। कुत्सित सीखी हुई विद्या विषवत् है और पहिला किया हुआ भोजन जब तक जीर्ण न हो जावे ऐसी दशा में और भोजन का कर लेना भी विष के समान होता है ॥ २६ ॥ तृष्णा रहित को दान प्रिय होता है और नीच को उच्छ्वास लेना प्रिय होता है। दरिद्र को दान प्रिय लगता है और युवा पुरुष को तरुणी परम प्रिय प्रतीत हुआ करती है ॥२७॥ अत्यन्त अधिक जल का पान करना—कठिन वस्तुओं का खाना—धातु का क्षय होना और वेगों का रोक लेना अर्थात् मल मूत्रादि के त्याग करने के वेग को रोकना—दिन में शयन करना—रात्रि में जागरण करना—इन छै कार्यों से मनुष्यों के शरीर में रोग निवास किया करते हैं ॥२८॥

बालातपश्चाप्यतिमैथुनञ्च श्मशानधूम करतापनञ्च ।
रजस्वलावक्त्रनिरीक्षणञ्च सुदीर्घमायुस्त्वपि कर्षयेच्च ॥२६
शुष्क मांस स्त्रियो वृद्धा बालार्कस्तरुण दधि ।
प्रभाते मैथुन निद्रा सद्य प्राणहराणि षट् ॥३०
सद्यः पक्वघृत द्राक्षा बाला स्त्री क्षीरभोजनम् ।
उष्णोदक तरुच्छाया सद्य.प्राणकराणि षट् ॥३१
कूपोदक वटच्छाया नारीणाञ्च पयोधरः ।
शीतकाले भवेदुष्णमुष्णकाले च शीतलम् ॥३२
सद्योबलकरास्त्रीणि बालाभ्यङ्गसुभोजनम् ।
सद्योबलहरास्त्रीणि अध्वा च मैथुनं ज्वर. ॥३३
शुष्क मास पयो नित्य भार्य्यामित्रैः सहैव तु ।
न भोक्तव्यं नृपैः सार्द्धं वियोग कुरुते क्षणात् ॥३४
कुचैलिन दन्तमलापधारिणं बह्वाशिनं निष्ठुरवाक्यभाषिणम् ।
सूर्योदये ह्यस्तमयेऽपि शायिनं विमुञ्चति श्रीरपि चक्रपाणिनम् ॥३५

प्रात कालीन सूर्य का आतप—असमन्त मैथुन—श्मशान भूमि की धूँआ हाथो का तपाना—रजस्वला स्त्री के मुख को देखना—य कार्य सुदीर्घ आयु का भी कर्षण किया करते है ॥ २९ ॥ शुष्क मांस—वृद्धा स्त्री—बाल सूर्य—तरुण (हाल का ही जमा हुआ) दधि—प्रभात काल में मैथुन और निद्रा ये काय सद्य प्राणो के हरण करने वाले हुआ करते है ॥३०॥ ताजा पकाया हुआ घृत—बाल बाला स्त्री—क्षीर का भोजन—उष्ण जल—वृक्ष की छाया—ये छै पदार्थ तुरन्त ही प्राणा का प्रदान करने वाले होते है ॥३१॥ कुए का जल—वट वृक्ष की छाया नारियो का पयोधर—य वस्तुऐ शीतकाल मे तो उष्ण होते है और उष्णकाल मे शीतल रहा करते है ॥ ३२ ॥ तुरन्त ही बल को प्रदान करने वाली तीन वस्तुऐ हुआ करती है—बाला स्त्री—अभ्यङ्ग (तैल का मालिश और उवटन) और सुन्दर सुस्वादु भोजन तुरन्त ही बल क हरण करने वाली तीन वस्तुऐं होती है—मार्ग का चलना—मैथुन और ज्वर का शरीर मे प्रवेश करना ॥३३॥ शुष्क मांस—पय और नित्य भार्या मित्रो के साथ भोजन कभी नही करे और राजाओ के साथ भोजन करना क्षणमात्र म वियोग किया करता है ॥३४॥ बुरे अर्थात् फटे—पुराने एव मैले वस्त्र धारण करने वाले पुरुष को—दाँतो मे मैल के धारण करने वाले मानव को—बहुत अधिक भोजन करने वाल मनुष्य को—निष्ठुर वाक्य बोलने वाले नर को और सूर्य के उदय और अस्त के समय मे शयन करने वाल व्यक्ति को चाहे साक्षात् चक्रपाणि ही क्यो न हों—श्री छोड कर चली जाया करती है ॥३५॥

नित्यं छिन्नतृणाना धरणिविलिखन पादयोश्चापमार्ष्टि
दन्तानामप्यशौच मलिनवसनता रूक्षता मूर्द्धजानाम् ।
द्वे सन्ध्ये चापि निद्रा विवसनशयन ग्रासहासातिरेक
स्वाङ्गे पीठे च वाद्य निधनमुपनयेत्केशवस्यापि लक्ष्मीम् ॥३६
शिर सुधौत चरणौ सुमार्जितौ वराङ्गनासेवनमल्पभोजनम् ।
अनग्नशायित्वमपर्वमैथुन चिरप्रनष्टा श्रियमानयन्ति षट् ॥३७
यस्य तस्य तु पुष्पस्य पाण्डरस्य विशेषतः ।
शिरसा धार्य्यमाणस्य अलक्ष्मी प्रतिहन्यते ॥३८

दीपस्य पश्चिमा छाया छाया शय्यासनस्य च ।
रजकस्य तु यत्तीर्थमलक्ष्मीस्तत्र तिष्ठति ॥३६
बालातपः प्रेतधूम. स्त्री वृद्धा तरुणं दधि ।
आयुष्कामो न सेवेत तथा सम्मार्जनीरज ॥४०
गजाश्वरथधान्यानां गवाञ्चैव रज शुभम् ।
अशुभञ्च विजानीयात्खरोष्ट्राजाविकेषु च ॥४१
गवां रजो धान्यरज पुत्रस्याङ्गभव रज ।
एतद्रजो महाशस्त महापातकनाशनम् ॥४२

नित्य प्रति तिनकों का तोड़ना—भूमि पर लिखना—पादों की अपमार्ष्टि—दांतों की अशुचिता—मलिन वस्त्रों का धारण करना—केशों को रूखा रखना—दोनों सन्धि कालों के समय में निद्रा करना—बिना वस्त्र के नग्न होकर शयन करना—बड़े बड़े ग्रास लेना तथा अत्यन्त हास्य का करना—अपने अङ्ग पर और पीठ पर वाद्य का रखना—ये कार्य भगवान् केशव की भी लक्ष्मी का निधन कर दिया करते हैं ॥३६। भली भांति धोया हुआ शिर और भली विधि से धोये हुए अर्थात् स्वच्छ किये हुए पैर—वराङ्गना का सेवन—अल्प भोजन—नग्न न होकर शयन करना—पर्व दिवसों को छोड़कर मैथुन करना—ये छै कार्य ऐसे हैं जो कि चिरकाल में नष्ट हुई भी लक्ष्मी को पुन प्राप्त करा दिये करते हैं ।३७। जिस किसी के पुष्प को विशेष कर पाण्डर के पुष्प को शिर पर धारण करने वाले की अलक्ष्मी का प्रतिहनन हो जाता है ॥३८॥ दीपक की पश्चिम छाया—शय्या आसन की छाया और रजक का तीर्थ वहाँ पर सर्वदा अलक्ष्मी निवास किया करती है ॥३६॥ बालातप-प्रेत धूम—वृद्धा स्त्री—तरुण दधि और सम्मार्जनी की धूल इन वस्तुओं का सेवन आयु की कामना रखने वाले पुरुष को कभी भी नहीं करना चाहिए ॥ ४० ॥ हाथी-अश्व—रथ और धान्यों की रज तथा गौओं के पदों से उठी हुई रज शुभ होती है। गधा–ऊँट–बकरी और भेड़ों के द्वारा उत्थित रज अशुभ जाननी चाहिए ॥४१॥ गौओं की रज और पुत्र के अङ्ग से उठी हुई रज महान् प्रशस्त होती है तथा महान् पातकों का नाश करने वाली हुआ करती है ॥४२॥

अजारज खररजो यत्तु सम्मार्जनीरज ।
एतद्रजा महापाप महाकिल्बिषकारकम् ॥४३
शूर्पवाता नखाग्राम्बु स्नानवस्त्रमृजादकम् ।
मार्जनीरेणु केशाम्बु हन्ति पुण्य पुराकृतम् ॥४४
विप्रयाविप्रवह्न्योश्च दम्पत्यो स्वामिनोस्तथा ।
अन्तरेण न गन्तव्य हयस्य वृषभस्य च ॥४५
स्त्रीषु राजाग्निसर्पेषु स्वाध्याये शत्रुसेवने ।
भोगास्वादेषु विश्वास क प्राज्ञ कर्तुमर्हति ॥४६
न विश्वसेदविश्वस्त विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ।
विश्वासाद्भयमुत्पन्न मूलादपि निकृन्तति ॥४७
वैरिणा सह सन्धाय विश्वस्तो यदि तिष्ठति ।
स वृक्षाग्रे प्रसुप्तो हि पतित प्रतिबुध्यते ॥४८
नात्यन्त मृदुना भाव्य नात्यन्त क्रूरकर्मणा ।
मृदुनैव मृदु हन्ति दारुणेनैव दारुणम् ॥४९

बकरी के पैरो स उठी हुई रज—गधे के द्वारा उत्थित रज और बुहारी से उठी हुई रज—य तीनो रज महा पाप मय होती है और महान् किल्बिषो के करने वाली हुआ करती है ॥४३॥ सूप की हवा—नखो के अग्र भाग का जल—स्नान वस्त्र की मृजा का जल—मार्जनी की रेणु और केशो का जल—ये पूर्व जन्म मे किये हुए पुण्य का भी हनन कर देते है ॥४४॥ दो विप्रो के मध्य से—विप्र और वह्नि के बीच से—दम्पति के मध्य से—स्वामियो के मध्य से और हय तथा वृषभ क अन्तर से कभी नही जाना चाहिए ॥४५॥ स्त्रियो मे—राजा—अग्नि—सर्प म—स्वाध्याय म—शत्रु के सेवन म—भोगो के आस्वादो मे कौन प्राज्ञ पुरुष विश्वास करने के योग्य होता है अर्थात् कोई भी समझदार व्यक्ति इन उपर्युक्तो म विश्वास नहीं करता है ॥ ४६ ॥ जो विश्वास का पात्र व्यक्ति नहीं है उसका तो विश्वास कभी करना ही नही चाहिए किन्तु जिसे अपना विश्वस्त समझा जाता है उसमे भी अत्यन्त विश्वास नही करना चाहिए । विश्वास से जो भय उत्पन्न होता है वह मूल से भी निकृन्तन कर दिया करता है ॥४७॥ वैरी

के साथ सन्धि करके यदि विश्वस्त होकर अवस्थित रहा करता है तो निश्चय ही वह वृक्ष के अग्र भाग पर सोया हुआ होता है जो पतित होकर ही प्रति बुद्ध हुआ करता है ।।४८।। मानव को इस संसार मे अत्यन्त मृदु नहीं होना चाहिए और इस लोक मे अत्यधिक क्रूरकर्म करने वाला भी कभी नहीं होना चाहिए। जो मृदु है उसका मृदु होकर ही हनन करे और जो दारुण प्रकृति का हो उसका हनन दारुण होकर ही करे ।।४९।।

नात्यन्त सरलैर्भाव्य नात्यन्त मृदुना तथा ।
सरलास्तत्र छिद्यन्ते कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः ।।५०
नमन्ति फलिनो वृक्षा नमन्ति गुणिनो जना. ।
शुष्कवृक्षाश्च मूर्खाश्च भिद्यन्ते न नमन्ति च ।।५१
अप्रार्थितानि दुःखानि यथैवायान्ति यान्ति च ।
मार्जार इव लम्फेन तथा प्रार्थयते नरः ।।५२
पूर्वे पश्चाच्चरन्त्यार्ये सदैव बहुसम्पद ।
विपरीतमनार्ये यथेच्छसि तथा चर ।।५३
षट् कर्णो भिद्यते मन्त्रश्चतु कर्णश्च धार्य्यते ।
द्विकर्णस्य तु मन्त्रस्य ब्रह्माप्येको न बुध्यते ।।५४
तया गवा कि क्रियते या न दोग्ध्री न गर्भिणी ।
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न धार्मिक ।।५५
एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन धीमता ।
कुल पुरुषसिंहेन चन्द्रेण गगन यथा ।।५६

इस जगती तल मे अत्यन्त सरल अर्थात् सीधा भी न रहे और न बहुत अधिक कोमल स्वभाव वाला ही होकर व्यवहार करे क्योकि अति सीधे और मृदु सर्वदा हानि ही उठाया करते हैं। वन मे जाकर देखो जो सीधे वृक्ष होते हैं उनको लोग काम मे लाने के लिये काट लिया करते हैं और टेडे-मेडे वृक्ष वहाँ पर ही खडे रहते हैं क्योकि वे किसी के उपयोग के नहीं होते हैं ।।५०।। जो फलो से लदे-फदे वृक्ष होते हैं उनकी शाखाऐं नीचे को झुक जाया करती हैं अर्थात् नमन शील होती हैं। इसी प्रकार से गुणों से सम्पन्न पुरुष भी परम

विनष्ट हुआ करते हैं। जो मूर्ख हुए पुत्र होते हैं वे और महा मूर्ख न तो मरण ही किया जाते हैं और न कभी स्था ही करते हैं ॥५१॥ दुष्ट का प्रश्न करता है तो कभी कोई प्रार्थना नहीं किया करता किन्तु व बिना कुमार्ग ही बिना तरह भ्रमण करते हैं और चले जाते हैं उसी तरह प्रार्थना करने वाला मनुष्य मंजार की भाँति सम्पन्न किया करता है ॥५२॥ जो भाव अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष होते हैं उनमें सदैव मान और प्रदानता रहे मरणपर्यन्त मात्रा में विचरण किया करती है। जो अभाव हैं उनमें इनसे विपरीत होता है। अब तुमको जो भी मार्ग अच्छा लगे वही अपनाना चाहिए ॥५३॥ दूर काल में पहुँचने वाली शुभ बात विद्यमान हो जाया करती है अथवा फैल जाया करती है और उनको गोपनीयता नहीं रहती है। जो कहते केवल दो ही आदमियों में चार कानों तक रहती है उसमें गोपनीयता रहा करता है। जो केवल दो ही कानों तक अर्थात् एक ही व्यक्ति तक रहती है वह तो ऐसी ही परम गुप्त एवं गोपनीय रहा करती है कि उस मनुष्य तो क्या ब्रह्मा भी नहीं जान सकता है ॥५४॥ उस गौ से क्या लाभ है जो न तो दूध ही देती है और न कभी गर्भिणी ही होती है। इसी भाँति ऐसे पुत्र से भी क्या फल होता है जो न तो विद्वान् हो और न धार्मिक ही हो। ऐसे पुत्र का तो उत्पन्न होना बिल्कुल व्यर्थ ही होता है ॥५५॥ चाहे केवल एक ही पुत्र उत्पन्न हो किन्तु वह एक ही यदि सुपुत्र है और श्रीमान् तथा विद्या से युक्त है तो उस सिंह के समान पुरुष से समस्त कुल चन्द्रमा के द्वारा आकाश की भाँति सुशोभित हो जाता है ॥५६॥

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना।
वनं सुवासितं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा ॥५७
एको हि गुणवान्पुत्रो निर्गुणेन शतेन किम्।
चन्द्रो हन्ति तमांस्येको न च ज्योतिः सहस्रशः ॥५८
लालयेत्पञ्चवर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ॥५९
जायमानो हरेद्दारान्वर्द्धमानो हरेद्धनम्।
म्रियमाणो हरेत्प्राणान्नास्ति पुत्रसमो रिपुः ॥६०

केचिन्मृगमुखा व्याघ्रा केचिद् व्याघ्रमुखा मृगा ।
तत्स्वरूपपरिज्ञाने ह्यविश्वास पदे पदे ॥६१
एक क्षमावता दोषो द्वितीयो नोपपद्यते ।
यदेन क्षमया युक्तमशक्त मन्यते जन. ॥६२
एतदेवानुमन्येत भोगा हि क्षणभङ्गिन ।
स्निग्धेषु च विदग्धस्य मतयो वै ह्यनाकुला ॥६३

वन मे कोई एक ही वृक्ष हो जो सुगन्ध युक्त पुष्पो स परिपूर्ण हो तो उस एक सुवृक्ष से ही सम्पूर्ण वन सुवासित हो जाया करता है जैसे एक सुपुत्र से सम्पूर्ण कुल प्रख्यात हो जाया करता है ॥५७॥ गुणो से सम्पन्न एक ही पुत्र सबसे श्रेष्ठ है गुण हीन सैकडो पुत्रो से भी क्या लाभ है। एक ही चन्द्रमा पूरे व्यापक अन्धकार का नाश कर दिया करता है जिसे सहस्राधिक तारागण रहते हुए भी नष्ट करने की क्षमता नही रखते हैं ॥५८॥ पुत्र का लालन पाँच वर्ष की अवस्था तक करना चाहिए अर्थात् पाँच वर्ष तक वह कुछ अनुचित मार्ग भी अपनावे तो लाड से ही उसे वर्जित कर देवे। इसके पश्चात् जब उसे कुछ बुरे-भले का थोडा-सा ज्ञान हो जाता है तो छै वर्ष से दश वर्ष तक अर्थात् पन्द्रह की आयु तक बालक को ताडना देनी चाहिए डाट-फटकार से उसे सुमार्ग पर लावे। जब सोलहवें वर्ष मे वह पदार्पण करे तो फिर उसके साथ एक मित्र की भाँति व्यवहार करे ॥५६॥ पुत्र उत्पन्न होता हुआ ही पत्नी का हरण किया करता है अर्थात् स्त्री के यौवन की आभा का नाश कर पति-मिलन के अयोग्य बना देता है। जब वह बडा हो जाता है तो धन का हरण किया करता है अर्थात् पिता की समस्त सम्पदा का पूरा अधिकारी बनकर उसको अपने हाथ मे ले लिया करता है। यदि पुत्र पिता के सामने ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो पिता को महान् वेदना होती है मानो उसके प्राण ही निकल जाया करते हैं। ऐसा पुत्र के समान अन्य कोई भी शत्रु नही है जिसके लिये लोग अत्यन्त लालायित रहते हैं ॥६०॥ कुछ मृग अर्थात् पशु व्याघ्र के समान मुख वाले हुआ करते हैं और कुछ व्याघ्र मृग के तुल्य मुख वाले होते हैं। उनके यथार्थ स्वरूप के परिज्ञान प्राप्त करने मे पद-पद पर अविश्वास हुआ करता है ॥६१॥ क्षमा

धारण करने वाले पुरुष सब प्रकार से अच्छे माने जाते हैं किन्तु उनमें एक ही बडा भारी दोष होता है कि जो क्षमा से युक्त पुरुष होता है उसे लोग शक्ति से हीन समझने लग जाया करते हैं ॥ ६२ ॥ यही माना जाता है कि सांसारिक समस्त भोग क्षण भंगुर होते हैं तो भी स्निग्धों में विदग्ध पुरुष की बुद्धि मनाकुल होती है ॥६३॥

ज्येष्ठ पितृसमो भ्राता मृते पितरि शौनक ।
सर्वेषा स पिता हि स्यात्सर्वेषामनुपालक ॥६४
कनिष्ठेषु च सर्वेषु समत्वेनानुवर्त्तते ।
समोपभोगजीवेषु यथैव तनयेषु च ॥६५
बहूनामल्पसाराणा समुदायो हि दारुण. ।
तृणैरावेष्टिता रज्जुस्तया नागोऽपि बध्यते ॥६६
अपहृत्य परस्व हि यस्तु दान प्रयच्छति ।
स दाता नरक याति यस्यार्थस्तस्य तत्फलम् ॥६७
देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च ।
कुलान्यकुलता यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥६८
ब्रह्मघ्ने च सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा ।
निष्कृतिर्विहिता सद्भि कृतघ्ने नास्ति निष्कृति ॥६९
नाश्नन्ति पितरो देवा क्षुद्रस्य वृषलीपते ।
भार्याजितस्य नाश्नन्ति यस्याश्चोपपतिर्गृहे ॥७०

हे शौनक ! पिता के मृत हो जाने पर ज्येष्ठ भाई पिता के ही तुल्य होता है । वह सबका अनुपालन करने वाला हुआ करता है और सबका इसीलिये पिता होता है ॥६४॥ जो भी उससे छोटे होने हैं उन सबके साथ उसका व्यवहार समान होता है जिस प्रकार से तुल्य उपभोग करने वाले और जीवन बिताने वाले पुत्रों में हुआ करता है ॥६५॥ अत्यल्प शक्ति वाले भी यदि बहुत से एकत्रित होकर एक समुदाय में संघटित हो जाते हैं तो महान् दारुण शक्तिशाली हो जाया करते हैं जैसे एक-एक तिनके से बनी हुई मोटी रस्सी इतनी मजबूत

हो जाया करती है कि उसमे फिर हाथी जैसे महान् बलवान् पशु को भी बाँध लेने की शक्ति हो जाया करती है ॥६६॥ दूसरे का धन अपहरण कर जो फिर उसका दान किया करता है उसके दान करने वाला पुरुष नरक का गामी होता है और वास्तव मे उस दान का यही फल भी होता है ॥६७॥ देवोत्तर सम्पत्ति का अपहरण या विनाश करने से–ब्राह्मण का धन हरण करने से और ब्राह्मणो का अतिक्रमण करने म कुलो की अकुलता हो जाती है अर्थात् समस्त कुलो का नाश हो जाया करता है ॥६८॥ ब्राह्मण के हनन करने वाले —सुरा का पान करने वाले—चोरी करने वाले और व्रत को भग्न करने वाले पुरुष की सत्पुरुषों ने निष्कृति अर्थात् प्रायश्चित्त बताया है किन्तु जो कृतघ्न होता है । उसका कोई भी प्रायश्चित्त नही होता है । किये गये उपकार को न मानने वाला पुरुष कृतघ्न कहा जाता है ॥६९॥ शूद्र और वृषली (शूद्रा) के स्वामी के यहाँ देवगण और पितर गण भोजन नहीं किया करते हैं । जो भार्या के द्वारा जीता हुआ हो अर्थात् भार्या का ही जिस पर पूर्ण प्रभाव हो और जिसकी भार्या का कोई उपपति घर मे रहता हो उसके यहाँ भी देव–पितर असन्तुष्ट होते हुए भोजन नही किया करते हैं । ७०॥

अकृतज्ञमनार्यञ्च दीर्घरोषमनार्जवम् ।
चतुरो विद्धि चाण्डालाञ्जात्या जायेत पञ्चम. ॥७१
नोपेक्षितव्यो दुर्बुद्धि: शत्रुरल्पोऽप्यवज्ञया ।
वह्निरल्पोऽप्यसग्राह्य कुरुते भस्मसाज्जगत् ॥७२
नवे वयसि य: शान्त स शान्त इति मे मति. ।
धातुषु क्षीयमाणेषु शम: कस्य न जायते ॥७३
पन्थान इव विप्रेन्द्र सर्वसाधारणा: श्रिय ।
मदीया इति मत्वा वै न हि हर्षयुतो भव ॥७४
चित्तायत्तं धातुबद्धं शरीरं चित्ते नष्टे धातवो यान्ति नाशम् ।
तस्माच्चित्त सर्वदा रक्षणीय स्वस्थे चित्ते धातव: सम्भवन्ति ॥७५

ये चार पुरुष स्वभाव और कर्म के कारण ही चाण्डाल हुआ करते हैं

एक वह जो किये हुए उपकार को नहीं माना करता है। दूसरा वह जो यनार्य होता है अर्थात् किसम प्रार्य होने की भी इच्छा का पूर्णतया अभाव होता है। तीसरा वह जिसमें बहुत ही लम्बे समय तक रोष विद्यमान रहता है अर्थात् जिसका क्रोध हृदय में घर बना कर किसी भी प्रकार से निकलता ही नहीं है और चौथा वह है जो सरलता से रहित अर्थात् सदा कुटिल वृत्ति वाला होता है। पाँचवाँ चाण्डाल तो वही है जो उस चाण्डाल जाति से समुत्पन्न होता है ॥७१॥ दुष्ट बुद्धि वाला व्यक्ति भी शत्रु को अवज्ञा से अर्थात् इस भावना से कि यह मामूली शत्रु हमारा क्या बिगाड़ सकता है कभी भी उपेक्षा करने के योग्य नहीं होता है अग्नि का छोटा-सा कण भी सहन नहीं करने के योग्य ही होता है क्योंकि वह सम्पूर्ण जगत् को ही भस्मसात् कर दिया करता है अर्थात् उस सामान्य सी अग्नि में भी सब कुछ जला कर राख बना देने की क्षमता विद्यमान रहा करती है ॥ ७२ ॥ नई उठती हुई अवस्था में जिसमें स्वाभाविक रूप से कभी शान्ति हुआ ही नहीं करती है जो पुरुष शान्ति से युक्त रहा करता है वही वास्तव में शान्त प्रकृति वाला पुरुष होता है—ऐसा मेरा विचार है जब उम्र ढल जाती है तो सम्पूर्ण शरीर की धातुएँ क्षीण हो जाया करती हैं उस समय में तो सभी को शान्ति आ जाया करती है क्योंकि किसी भी तरह की शक्ति रहा ही नहीं करती है ॥७३॥ हे विप्रेन्द्र ! मार्गों की भाँति स्त्रियों का उपभोग सबके लिये साधारण होता है अर्थात् जिस तरह मार्गों में सभी के चलने-फिरने का अधिकार होता है वैसे ही स्त्री में भोगने का भी सबको हक हुआ करता है। यह भी मेरी ही है ऐसा मानकर कभी भी प्रसन्नता से युक्त मत होओ। ऐसा मान लेना उचित नहीं है क्योंकि स्त्री में सभी का अधिकार रहा करता है ॥७४॥ यह शरीर धातुओं के वश में रहने वाला और चित्त के अधीन ही हुआ करता है। जब चित्त ही नष्ट हो जाता है तो सम्पूर्ण धातुएँ भी नाश को प्राप्त हो जाते हैं। इसलिये चित्त की सर्वदा रक्षा करनी चाहिए। जब चित्त स्वस्थ रहता है तो धातुएँ भी शरीर में उत्पन्न होकर सबल एवं समर्थ होती हैं। शरीर में चित्त की ही प्रधानता होती है ॥७५॥

७१—नीति शास्त्र कथन (३)

कुभार्य्याश्च कुमित्रञ्च कुराजानं कुपुत्रकम् ।
कुकन्याञ्च कुदेशञ्च दूरतः परिवर्जयेत् ॥१
धर्मः प्रव्रजितस्तपः प्रचलितं सत्यञ्च दूरङ्गतं
पृथ्वी वन्ध्यफला जनाः कपटिनो लौल्ये स्थिता ब्राह्मणाः ।
मर्त्याः स्त्रीवशगाः स्त्रियश्च चपला नीचा जना उन्नता
हा कष्टं खलु जीवितं कलियुगे धन्या जना ये मृताः ॥२
धन्यास्ते ये न पश्यन्ति देशभङ्गं कुलक्षयम् ।
परचित्तगतान्दारान्पुत्रं कुव्यसने स्थितम् ॥३
कुपुत्रे निर्वृ तिर्नास्ति कुभार्य्यायां कुतो रतिः ।
कुमित्रे नास्ति विश्वासः कुराज्ये नास्ति जीवितम् ॥४
परान्नञ्च परस्वञ्च परशय्या परस्त्रियः ।
परवेश्मनि वासश्च शक्रादपि श्रियं हरेत् ॥५
आलापाद् गात्रसंस्पर्शात्संसर्गात्सह भोजनात् ।
आसनाच्छयनाद्यानात्पापं संक्रमते नृणाम् ॥६
स्त्रियो नश्यन्ति रूपेण तपः क्रोधेन नश्यति ।
गावो दूरप्रचारेण शूद्रान्नेन द्विजोत्तमः ॥७

सूतजी ने कहा—दुष्ट स्वभाव वाली भार्या और कुत्सित मित्र तथा बुरा राजा एवं कुपुत्र—बुरी कन्या और बुरे देश को दूर से ही त्याग देना चाहिए ।१। अब वर्तमान कलियुग का प्रभाव बताते हैं—यह युग ऐसा है कि इसमें धर्म तो ऐसा चला गया है कि कहीं भी नाम को भी दिखलाई नहीं देता है—तप भी इस समय में चला गया है अर्थात् तपस्या किसे कहते हैं—यह भी कोई नहीं जानता है। सत्य तो नाम मात्र का भी कलियुग में कहीं है ही नहीं—सत्यता कोई वस्तु है इसकी सत्ता एवं महिमा का कोई भी जानता ही नहीं है। समस्त भूमि का भाग ऐसा है कि इसमें जैसी उपज होनी चाहिए वह कहीं भी नहीं होती है। मनुष्य प्रायः सभी कपट का व्यवहार रखने वाले हैं और जो ब्राह्मण

लोग हैं वे बहुत अधिक बतवने होगये हैं अर्थात् चपलता से पूर्ण हैं। कलियुग मे मनुष्य स्त्रियों के वश मे रहा करते हैं। स्त्रियाँ अधिक चपल हैं। नीच जाति के मनुष्य उन्नतिशील हो गये हैं। इस कलिकाल मे जीवन बहुत ही कष्ट-मय है। वे मनुष्य परम धन्य एवं भाग्यशाली हैं जो अपनी जीवन लीला समाप्त कर चुके और मर गये हैं ॥ २ ॥ इस घोर कलियुग के समय मे उन मृत्यु को प्राप्त होने वाले मनुष्यों को इसीलिये परम धन्य कहते हैं कि वे न तो इस समय में होने वाले देश के टुकड़ो म बट जाने वाली भगता को देख रहे हैं और न कुलो के क्षय को ही देखते हैं। दूसरों मे अपने चित्त को रमाने वाली दाराओं को और बुरे व्यसनो मे दबे हुए पुत्रों को भी वे मर जाने के कारण नहीं देख रहे हैं ॥३॥ कुपुत्र मे निवृत्ति नहीं होती है और जो कुभार्या है उसमे रति भी कैसे हो सकती है। कुमित्र मे विश्वास नहीं होता है और बुरे राज्य मे जीवन कैसे रह सकता है ॥४॥ पराया धन—पराया अन्न—दूसरे की शय्या—पराई स्त्री पराये घर मे निवास ये इन्द्र की भी श्री का हरण करने वाले कार्य होते हैं ॥५॥ बात-चीत करने से—गात्र (शरीर) के स्पर्श से—सङ्गति से—साथ मे बैठ कर भोजन करने से—आसन पर स्थित होने से—याग मे दान से और साथ मे यान करने से मनुष्यो के पाप का सक्रमण हुआ करता है अर्थात् दूसरे का पाप लग जाया करता है ॥६॥ स्त्री अधिक रूप-लावण्य के होने से नष्ट हो जाया करती है—क्रोध से तपस्या का नाश होता है—दूर प्रचार से गायें और शूद्र के अन्न से श्रेष्ठ द्विज का नाश हो जाता है ॥७॥

आसनादेकशय्याया भोजनात्पङ्क्तिसङ्करात् ।
ततः संक्रमते पाप घटाद्घट इवोदकम् ॥८
लालने बहवो दोषास्ताडने बहवो गुणाः ।
तस्माच्छिष्यञ्च पुत्रञ्च ताडयेन्न तु लालयेत् ॥९
अध्वा जरा देहवता पर्वताना जल जरा ।
असभोगश्च नारीणा वस्त्राणामातपो जरा ॥१०
अधमा कलिमिच्छन्ति सन्धिमिच्छन्ति मध्यमा ।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महता धनम् ॥११

मानो हि मूलमर्थस्य माने सति धनेन किम् ।
प्रभ्रष्टमानदर्पस्य किं धनेन किमायुषा ॥१२
अधमा धनमिच्छन्ति धनमानौ हि मध्यमा ।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम् ॥१३
वनेऽपि सिंहा न नमन्ति कर्णं बुभुक्षिता नाशनिरीक्षणाश्च ।
धनैर्विहीनाः सुकुलेषु जाता न नीचकर्माणि समारभन्ति ॥१४

एक ही आसन पर स्थिति करने से—एक ही शय्या पर शयन करने से—एक साथ ही बैठ कर भोजन करने से और पंक्ति के सांकर्य होने से अर्थात् मिल जाने से घट से दूसरे घट में जल जाने की भाँति एक से दूसरे में पाप का संक्रमण हुआ करता है ॥ ८ ॥ लाड–प्यार करने में बहुत से दोष समुत्पन्न हो जाया करते हैं और ताडना करने में बहुत से गुण होते हैं। इसलिये अपने शिष्य और पुत्र को सर्वदा ताडना ही देनी चाहिए केवल लालन नहीं करे ॥९॥ देहधारियों के लिये मार्ग का गमन करना जरा अर्थात् वार्धक्य है—पर्वतों के लिये जल ही जरा है अर्थात् उनको क्षीणता पहुंचाने वाला होता है—नारियों के साथ सम्भोग न करना ही उनकी वृद्धता के करने वाली जरा है और वस्त्रों को आतप में रखना जरा है। १०॥ जो अधम श्रेणी के मानव होते हैं वे सदा कलह ही चाहा करते हैं—मध्यम श्रेणी के पुरुष सन्धि की इच्छा रखते हैं तथा उत्तम कोटि के मनुष्य मान के इच्छुक होते हैं क्योंकि महान् पुरुषों का एकमात्र धन मान ही हुआ करता है ॥११॥ मान ही अर्थ का मूल है क्योंकि मान की प्राप्ति के लिये ही अर्थ की इच्छा की जाया करती है। यदि मान है तो फिर उसके होने पर अर्थ से क्या प्रयोजन है। जिसका मान का दर्प ही भ्रष्ट होगया है उसको धन और आयु से भी क्या लाभ है अर्थात् फिर तो उसका धन और जीवन दोनों ही इस संसार में व्यर्थ हैं ॥१२॥ अधम पुरुष ही धन की इच्छा किया करते हैं—जो मध्य श्रेणी के लोग हैं वे धन और मान दोनों ही के अभिलाषी रहा करते हैं। उत्तम श्रेणी पुरुष केवल मान ही चाहते हैं क्योंकि महान् पुरुषों का धन तो मान ही हुआ करता है ॥१३॥ वन में भूखे भी सिंह कर्णों का नमन नहीं किया करते हैं और न कभी अशन का ही निरीक्षण करते

है। इसी प्रकार से धन से हीन पुरुष भी जो अच्छे कुलों में उत्पन्न हुए हैं कभी भी नीच कर्मों का आरम्भ नहीं किया करते हैं अर्थात् धन की प्राप्ति के लिये बुरे काम कभी नहीं करते हैं ॥१४॥

नाभिषेको न सम्कारः सिंहस्य क्रियते वने ।
नित्यमूर्जितसत्त्वस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता ॥१५
वणिक्प्रमादी भृतकश्च मानी भिक्षुर्विलासी ह्यधनश्च कामी ।
वराङ्गना चाप्रियवादिनी च न ते च कर्माणि समारभन्ति ॥१६
दाता दरिद्रः कृपणोऽर्थयुक्तः पुत्रोऽविधेयः कुजनस्य सेवा ।
परापकारेषु नरस्य मृत्युः प्रजायते दुश्चरितानि पञ्च ॥१७
कान्तावियोगः स्वजनापमानं ऋणस्य शेषः कुजनस्य सेवा ।
दारिद्र्यभावाद्विमुखाश्च मित्रा विनाग्निना पञ्च दहन्ति तीव्राः १८
चिन्तासहस्रेषु च तेषु मध्ये चिन्ताश्चतस्रोऽप्यसिधारतुल्याः ।
नीचापमानं क्षुधितं कलत्रं भार्या विरक्ता सहजोपरोधः ॥१९
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या अरोगिता सज्जनसङ्गतिश्च ।
इष्टा च भार्या वशवर्त्तिनी च दुःखस्य मूलोद्धरणानि पञ्च ॥२०
कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गा मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च ।
एकः प्रमाथी स कथं न घात्यो यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ॥२१

वन में सिंह का कभी किसी ने अभिषेक नहीं किया है अर्थात् उसे किसी ने वन के राज्य का राजा नहीं बनाया है और न कोई सत्कार ही ऐसा किया गया है किन्तु वह नित्य अपने ही अत्यूर्जित सत्त्व वाला होने के कारण से ही वहाँ समस्त वन के जीवों का राजा बन गया है ॥ १५ ॥ प्रमाद (लापरवाही) शील वैश्य अर्थात् व्यापार व्यवसाय करने वाला—मान रखने वाला भृतक अर्थात् सेवा वृत्ति करने वाला मानव—विलासशील भिक्षु और बिना धन वाला कामी तथा अप्रिय बोलने वाली वराङ्गना कभी अपने कर्मों का आरम्भ नहीं किया करते हैं अर्थात् ये लोग अपने कर्मों में कभी सफल नहीं हो सकते हैं ॥ १६ ॥ दान शील पुरुष का दरिद्री होना—अर्थ सम्पन्न पुरुष का कृपण होना—पुत्र आज्ञाकारी न होना—दुष्ट पुरुष की सेवा करना

श्रौर परके अपकार करने में मृत्यु का हो जाना ये पाँच दुश्चरित हुआ करते हैं ॥ १७ ॥ अपनी कान्ता से विछोह का हो जाना—अपने जनों के द्वारा या अपने ही जनों के मध्य में अपमान का होना—ऋण का शेष बना रहना—बुरे पुरुष की सेवा का करना श्रौर दारिद्र्य के होने के कारण मित्रों का विमुख हो जाना ये पाँच कार्य ऐसे हैं जो बिना ही अग्नि के बहुत तीव्र दाह किया करते हैं श्रर्थात् रात-दिन हृदय को बुरी तरह से जलाते रहते हैं ॥१८॥ यों तो मनुष्यों को सहस्रों प्रकार की चिन्ताएँ इस सांसारिक जीवन में रहा करती हैं किन्तु उन सब में चार चिन्ताएँ खड्ग की धार के समान अति दुःख-दायिनी होती हैं, वे ये हैं—नीच पुरुष के द्वारा अपमान का होना—भार्या का भूखा रहना—पत्नी का अपने विषय में विरक्त रहना श्रौर सहज उपरोध का होना ॥ १९ ॥ पुत्र का वश गत होना—अर्थोपार्जन करने वाली विद्या का अपने पास रहना—रोगों का न होना—सज्जन पुरुषों की सङ्गति का रहना—भार्या का प्यार श्रौर अपने वश में रहना ये पाँच कारण ऐसे हैं जो दुःख के मूल का उद्धरण करने वाले होते हैं ॥ २० ॥ कुरङ्ग (हरिण)—मातङ्ग (हाथी)—पतङ्ग—भृङ्ग (भौंरा) श्रौर मीन (मछली) ये पाँच पाँचों से ही हत होते हैं। हरिण श्रवणेन्द्रिय के अधीन होकर वाद्य सुनने में ऐसा खो-सा जाता है कि शिकारी उसे मार देता है—मातङ्ग मदोन्मत्तता से—पतङ्ग दीपक की लौ पर प्रेम करने से—भृङ्ग पुष्पराग के आस्वादन से श्रौर मीन गन्धाकर्षण से मृत्यु का ग्रास होता है। इन सब में एक-एक इन्द्रिय का ही आकर्षण मीन के मुँह में डाल दिया करता है तो जो मानव अपनी सभी इन्द्रियों के अर्थात् पाँचों के अधीन होता है वह क्यों नहीं घात के योग्य होवे अर्थात् अवश्य ही होना चाहिए ॥ २१ ॥

अधीरः कर्कशः स्तब्धः कुचैलः स्वयमागतः ।
पञ्च विप्रा न पूज्यन्ते बृहस्पतिसमा यदि ॥२२
आयुः कर्म चरित्रञ्च विद्या निधनमेव च ।
पञ्चैतानि विविच्यन्ते जायमानस्य देहिनः ॥२३

पर्वतारोहणे तोये गोकुले दुष्टनिग्रहे ।
पतितस्य समुत्थाने शस्ता ह्येते गुणाः स्मृता. ॥२४
अभ्रच्छाया खले प्रीति. परनारीषु सङ्गतिः ।
पञ्चैते ह्यस्थिरा भावा यौवनानि धनानि च ॥२५
अस्थिर जीवित लोके ह्यस्थिर धनयौवनम् ।
अस्थिर पुत्रदाराद्य धर्म कीर्त्तियशः स्थिरम् ॥२६
शत जीवितमत्यल्प रात्रिस्तदर्द्ध हारिणी ।
व्याधिशोकजरायासैरर्द्ध तदपि निष्फलम् ॥२७
आयुर्वर्षशत नृणा परिमित रात्रौ तदर्द्ध हृतं
तस्यार्द्ध स्थितकिञ्चिदर्द्धमधिक वालस्य काले हृतम् ।
किञ्चिद्बन्धुवियोगदु खमरणैर्भू पालसेवागत
शेष वारितरङ्गगर्भचपल मानेन किं मानिनाम् ॥२८

जो विप्र धैर्य हीन—कर्कश (कठोर)—स्तब्ध—बुरे तथा मलिन वस्त्रों वाला और अपने आप ही बिना आह्वान के आया हुआ हो—ये पाँच प्रकार के ब्राह्मण चाहे बृहस्पति के समान ही विद्वान् क्यो न हो कभी पूजा के योग्य नही हुआ करते हैं ॥ २२ ॥ आयु–कर्म–चरित्र–विद्या और मृत्यु ये पाँच बातें देहधारी के जन्म के साथ ही निश्चित हो जाया करती हैं ॥ २३ ॥ पर्वत के आरोहण मे—जल मे—गायो के कुल मे और दुष्ट पुरुषो के विग्रह मे पडे हुए मानव या प्राणी के समुत्थान करने मे जो प्रयत्न किया करते हैं उनके गुण बहुत ही प्रशसा माने गये हैं ॥ २४ ॥ मेघो की छाया—खल पुरुष में प्रीति करना—पराई नारी के साथ सङ्गति—यौवन और धन का होना—ये पाँच भाव स्थिर नही होते हैं ॥ २५ ॥ इस लोक मे जीवन का रहना अस्थिर है और धन तथा यौवन भी स्थिर नही रहने वाला होता है । पुत्र एव दारा आदि का सुख भी अस्थिर होता है । केवल इस लोक मे किया हुआ धर्म—कीर्त्ति और यश ही स्थिर होता है ॥ २६ ॥ सौ वर्ष की मानव की परमायु बताई जाती है किन्तु वह भी विचार किया जावे तो बहुत ही अल्प होती है क्योंकि उस आयु का आधा भाग तो रात्रियों मे केवल शयन करने में ही नष्ट

हो जाया करता है। बची हुई आधी आयु में व्याधि-शोक-वार्धक्य के आयास हुआ करते हैं। इन सब के होने के कारण वह भी फल रहित हो जाया करती है ॥२७॥ मानवों की परिमित सौ वर्ष की उम्र में आधी रात्रियों में समाप्त हो जाती है। उस शेष आधी का आधा भाग बालपकाल में अज्ञानावस्था में ही नष्ट हो जाया करता है। बचा हुआ चौथाई भाग रहा उसमें बन्धुवियोग का दुःख—राजा की सेवा आदि में समय नष्ट हो जाता है अब बहुत ही थोड़ा सा भाग रह जाता है जो कि जल की तरङ्ग के गर्भ के समान चञ्चल होता है। इन में भी मानी लोग मान जो किया करते हैं वह निष्फल ही होता है। अर्थात् इस बहुत ही स्वल्प जीवन में मान करने से क्या लाभ है ॥२८॥

अहोरात्रोमयो लोके जरारूपेण सञ्चरेत् ।
मृत्युर्ग्रसति भूतानि पवनं पन्नगो यथा ॥२९
गच्छतस्तिष्ठतो वापि जाग्रत. स्वपतो न चेत् ।
सर्वसत्त्वहितार्थाय पशोरिव विचेष्टितम् ॥३०
अहितहितविचारशून्यबुद्धे. श्रुतिभमये बहुभिर्वितर्कितस्य ।
उदरभरणमात्रतुष्टबुद्धे: पुरुषपशो. पशोश्च को विशेषः ॥३१॥
शौर्ये तपसि दाने च यस्य न प्रथित यशः ।
विद्यायामर्थलाभे वा मातुरुच्चार एव सः ॥३२
सञ्जीवित क्षणमपि प्रथित मनुष्यैर्विज्ञानविक्रमयशोभिरभग्नमाने ।
तन्नामजीवितमिति प्रवदन्ति तज्ज्ञा. काकोऽपि
जीवति चिरञ्च बलिञ्च भुङ्क्ते ॥३३
किं जीवितेन धनमानविवर्जितेन
मित्रेण किं भवतीति सशङ्कितेन च।
सिंहव्रतञ्चरत गच्छत मा विषाद काकोऽपि
जीवति चिरञ्च बलिञ्च भुङ्क्ते ॥३४
यो चात्मनीह न गुरौ न च भृत्यवर्गे
दीने दया न कुरुते न च मित्रकार्ये।

कि तस्य जीवितफलेन मनुष्यलोके
काकोऽपि जीवति चिरञ्च बलिञ्च भुङ्क्ते ॥३५

इस लोक मे दिन और रात्रि के स्वरूप मे समय निकल कर जरा के रूप में मानव को लाकर डाल दिया करता है अर्थात् रात दिन व्यतीत होते-होते मनुष्य को बुढापा आ जाता है और मृत्यु उपस्थित होकर सर्प के द्वारा पवन की भाँति प्राणियों को ग्रस लिया करता है ॥२६॥ यदि चलते-ठहरते, जागते-सोते हुए भी समस्त जीवो के हित के लिये कुछ भी नही किया जाता है तो फिर यो ही सम्पूर्ण जीवन का बिता देना एक पशु के ही समान हुआ करता है ॥३०॥ अपने हित और अहित के विचार से शून्य बुद्धि वाले और श्रुति के समय में बहुतो के द्वारा वितर्कित तथा केवल अपने ही उदर के भरण से युष्ट बुद्धि वाले पुरुष का जो एक पशु के ही समान होता है और पशु मे क्या अन्तर रहता है ? ॥३१॥ जिस पुरुष का शूरता—तपश्चर्या—दान—विद्या और अर्थ के लाभ करने म ससार मे यश प्रथित नही हुआ है उसका जन्म तो केवल अपनी माता के यौवन की छटा को नाश करने के लिये होता है ॥३२॥ सद् जीवन एक क्षण का भी प्रथित होता है जोकि मानव असमान विज्ञान-विक्रम और यश के द्वारा जीवित रहा करते हैं। ज्ञाता पुरुष ऐसे ही जीवन को वास्तविक जीवित कहते हैं और यो तो एक कौआ भी बलि को खाकर बहुत समय तक जीवित रहा करता है। इसी की भाँति जीवन से क्या लाभ है ॥३३॥ जो जीवन धन और मान से रहित होता है उससे क्या लाभ है और जो सर्वदा सशङ्कित रहने वाला हो ऐसे मित्र से भी क्या प्रयोजन है। हे मानव ! तू सिंह के समान व्रत मे रत रह और कभी भी विषाद मत करे। कौए की तरह बलि खाकर जीवन चिरकाल तक रखना किसी भी काम का जीवन नही होता है ॥३४॥ जो मनुष्य अपने लिये—गुरु—भृत्य वर्ग—दीन-दुखिया पर दया नहीं करता है और न कभी मित्र के ही किसी कार्य म आता है ऐसे मनुष्य के जीवन से इस मनुष्य लोक मे क्या फल है अर्थात् ऐसे मानव का जीवन सर्वथा निष्फल ही होता है। यो तो अधिक समय तक एक कौआ भी बलि खाकर अपना जीवन किया करता है जिसका जीवन किसी भी काम नही आता है ॥३५॥

यस्य त्रिवर्गशून्यानि दिनान्यायान्ति यान्ति च ।
स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥३६
स्वाधीनवृत्ते साफल्यं न पराधीनवृत्तिता ।
ये पराधीनकर्माणो जीवन्तोऽपि च ते मृताः ॥३७
स्वपूरो वै कापुरुषः स्वपूरो मूषिकाञ्जलिः ।
असन्तुष्टः कापुरुषः स्वल्पकेनापि तुष्यति ॥३८
अभ्रच्छाया तृणादग्निर्नीचसेवा पथे जलम् ।
वेश्याराग खले प्रीतिः षडेते बुद्बुदोपमाः ॥३९
वाचा विहितमार्येन लोको न च सुखायते ।
जीवितं मानमूलं हि माने म्लाने कुतः सुखम् ॥४०
अबलस्य बलं राजा बालस्य रुदितं बलम् ।
बलं मूर्खस्य मौनत्वं तस्करस्यानृतं बलम् ॥४१
यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ।
तथा तथाऽस्यमेधा स्याद्विज्ञानञ्चास्य रोचते ॥४२

जिसके त्रिवर्ग से शून्य दिवस आते हैं और यों ही चले जाया करते हैं वह मानव लुहार की धौंकनी की भाँति केवल श्वास लेता हुआ भी जीवित नहीं माना जाता है अर्थात् उसका जीवन निष्प्रयोजन ही होता है ॥३६॥ स्वाधीन वृत्ति वाले ही का जीवन सर्वदा सफल होता है। जो पराधीन वृत्ति वाला होता है और पराये अधीन कर्मों वाला होता है वह जीवित रहता हुआ भी मृत के ही समान होता है ॥३७॥ अपने पुर वाले कायर पुरुष होते हैं, अपने पुर वाली मूषिकाञ्जलि है। असन्तुष्ट कापुरुष थोड़े से ही सन्तोष प्राप्त कर लिया करता है ॥३८॥ मेघों की छाया—तृणों में अग्नि का बनाना—नीच पुरुषों की सेवा—मार्ग में जल—वेश्या का राग (स्नेह) और खल पुरुष में प्रीति—ये छै काम बुलबुले के ही तुल्य क्षण स्थायी हुआ करते हैं ॥ ३९ ॥ केवल वाणी से सार्य अर्थात् सहयोग से लोगों को सुख नहीं हुआ करता है। यह जीवन तो मान के मूल वाला होता है। जब वह मान ही म्लान हो जाता है तो फिर जीवन में सुख कैसे हो सकता है ॥४०॥ जो बलहीन कमजोर पुरुष होते हैं उनका बल

तो राजा ही होता है वे राजा के पास जाय की पुकार किया करते हैं—बालकों का जब वश नहीं चलता है तो वह रो देना होता है यही उनका बल है—मूर्ख का बल मौन हो जाना है और तस्कर आदमी का बल मिथ्या भाषण एवं भूठा व्यवहार हुआ करता है ॥४१॥ जैसे जैसे पुरुष को शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त होता है वैसे—वैसे ही इसकी मेधा की वृद्धि होती है और इसकी विज्ञान की रुचि बढ़ती जाया करती है ॥४२॥

यथा यथा हि पुरुष कल्याणे कुरुते मतिम् ।
तथा तथा हि सवत्र श्लिष्यते लोकमुप्रिय ॥४३
लाभप्रमादविश्वासै पुरुषा नश्यति त्रिभि ।
तस्माल्लाभो न कर्त्तव्य प्रमादो नो न विश्वसेत् ॥४४
तावद्भयस्य भेतव्य यावद्भयमनागतम् ।
उत्पन्ने तु भय तीव्र स्थातव्य वै ह्यभीतवत् ॥४५
ऋणशेषश्चाग्निशेष व्याधिशेष तथैव च ।
पुन पुन प्रवर्द्धन्ते तस्माच्छेष न कारयेत् ॥४६
कृत प्रतिकृत कुर्याद्धिसिते प्रतिहिंसितम् ।
न तत्र दोष पश्यामि दुष्टे दोष समाचरेत् ॥४७
परोक्षे कार्यहन्तार प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत्तादृश मित्र मायामयमरिन्तथा ॥४८
दुर्जनस्य हि सङ्ग न सुजनोऽपि विनश्यति ।
प्रसन्नमपि पानीय कर्दमै कलुषीकृतम् ॥४९

जैसे—जैसे मनुष्य कल्याण में अपनी बुद्धि किया करता है वैसे—वैसे ही वह सब जगह लोक का परम प्रिय होकर सम्बन्ध किया करता है ॥४३॥ इस जगती तल में मनुष्य लाभ—प्रमाद और विश्वास—इन तीनों से नाश को प्राप्त होता है। इसलिए लोभ नहीं करना चाहिए—प्रमाद (लापरवाही) न करे और हर एक का विश्वास भी नहीं करना चाहिए ॥ ४४ ॥ भय से तभी तक डरना चाहिए। जब तक वह भय अपने से दूर रहता है और आता नहीं है। जब भय निकट आ ही जाता है और तीव्र रूप धारण कर लेता है तो फिर

एकदम निडर होकर उमके सामने में स्थित होकर उसकी प्रतिक्रिया करनी चाहिए ॥४५॥ ऋण का बाकी रह जाना—रोग का कुछ अंश बच जाना और अग्नि का कुछ भी थोड़ा सा भाग रह जाना फिर बार-बार बढ़ कर उग्र रूप धारण कर लिया करता है। इसलिए इन तीन चीजों का तो बिल्कुल निःशेष ही करके रहना चाहिए ॥४६॥ जो जैसा भी व्यवहार बुरा भला करता है उसका जवाब भी वैसा ही व्यवहार से देना चाहिए। यदि कोई हिंसा पूर्ण व्यवहार करे तो उसके साथ प्रतिहिंसा ही करे—इसमें कोई भी दोष नहीं दिखाई देता है—दुष्ट पुरुष के साथ दाव ही करना उचित होता है ॥४७॥ जो समक्ष में तो परम प्रिय भाषण करने वाला हो और पीठ पीछे कार्य को नष्ट कर देने वाला रहा करता हो ऐसे माया से परिपूर्ण शत्रु की भांति मित्र का त्याग ही कर देवे ॥ ४८ ॥ दुर्जन पुरुष के सङ्ग से सज्जन पुरुष भी विनष्ट हो जाया करते हैं जिस तरह स्वच्छ जल को भी कीचड़ से मैला कर दिया जाया करता है ॥४९॥

सम्यग्भुङ्क्ते जन सो हि द्विजायार्थ हि यस्य वै।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन द्विज पूज्य प्रयत्नत ॥५०
तद् भुज्यते यद् द्विजभुज्यशेष स बुद्धिमान्यो न करोति पापम्।
तत्सौहृद यत्क्रियते परोक्षे दम्भैर्विना य क्रियते स धर्म ॥५१
न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
धर्म स नो यत्र न सत्यमस्ति नैतत्सत्य यच्छलेनानुविद्धम ॥५२
ब्राह्मणोऽपि मनुष्याणामादित्यश्चैव तेजसाम्।
शिरोऽपि सर्वगात्राणां व्रताना सत्यमुत्तमम् ॥५३
तन्मङ्गल यत्र मन प्रसन्न तज्जीवन यन्न परस्य सेवा।
तदर्जित यत्स्वजनेन भुक्त तद् गर्जित यत्समरे रिपूणाम् ॥५४
सा स्त्री या न मद कुर्यात्स सुखी तृष्णयोज्झित।
तन्मित्र यत्र विश्वास पुरुष स जितेन्द्रिय ॥५५
तत्र मुक्तादरस्नेहो विलुप्त यत्र सौहृदम्।
तदत्र केवल श्लाघ्य यस्यात्मा क्रियते स्तुतौ ॥५६

जिसका धन द्विजों के लिये होता है अर्थात् जिस धनी के धन से विप्र लाभान्वित हुआ करते हैं वह ही भली भाँति भोग करने का सुख प्राप्त करता है। अतएव सभी प्रकार के प्रयत्नों से सर्वदा द्विज की पूजा करनी चाहिए।५०। जो द्विजों के उपभोग से शेष रहता है वही भोग की वस्तु हुआ करती है। बुद्धिमान् वही पुरुष है जो कभी पाप कर्म नहीं करता है—सौहृद वास्तव में वही है जो पीठ पीछे किया जावे और धर्म वही है जो बिना किसी दम्भ (कपट या दिखावा) के किया जाया करता है ॥ ५१ ॥ उसे सभा या समिति नहीं कहा जा सकता है जिसमें वृद्ध अर्थात् अनुभवशील पुरुष न हों—वृद्ध भी उन्हें नहीं कहना चाहिए जो न्याय सम्मत धर्म की बातें नहीं कहते हैं। धर्म भी वही होता है जिसमें सत्यता विद्यमान है और सत्य वही है जो छल-कपट से अनुविद्ध न हो ॥५२॥ मनुष्यों में ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ माना जाता है—तेजों में सर्वाधिक सूर्यदेव हैं—शरीर के सम्पूर्ण अङ्गों में शिर सर्वोत्तम अङ्ग होता है और व्रतों में सत्य का व्रत ही सबसे उत्तम व्रत है ॥५३॥ सज्जन कार्य वही है जिसमें मानव का मन प्रसन्नता का अनुभव किया करता है। जीवन वही सार्थक एवं सफल होता है जिसमें दूसरों की सेवा का कार्य किया जावे। कमाई वही है जिसका उपभोग अपने मनुष्यों के द्वारा किया जावे और गर्जना करता वही सफल है जो संग्राम में शत्रुओं के समक्ष में की जाती है ॥ ५४ ॥ स्त्री वह ही सुख प्रदान करने वाली है जो कभी मद नहीं किया करती है। सच्चा सुखी वही मनुष्य होता है जिसे तृष्णा नहीं होती है। मित्र वही होता है जिसमें पूर्ण विश्वास किया जा सकता है और वास्तव में प्रशस्त पुरुष वह ही होता है जिसने अपनी इन्द्रियों को जीत रक्खा है ॥ ५५ ॥ जिसमें सौहृद विलुप्त हो जाता है अर्थात् सौहार्द का भाव ही नहीं रहा करता है वहाँ स्नेह और आदर भी छूट जाता है। प्रशंसा के योग्य वही है जिसकी स्तुति शत्रुओं के द्वारा की जाया करती है ॥५६॥

नदीनामग्निहोत्राणां भारतस्य कुलस्य च।
मूलान्वेषो न कर्त्तव्यो मूलाद्दोषेण हीयते ॥५७

लवणजलान्ता नद्य स्त्रीभेदान्तश्च मैथुनम् ।
पैशुन्य जनवार्तान्ति वित्त दु खकृतान्तकम् ॥५८
राज्यश्रीर्ब्रह्मशापान्ता पापान्त ब्रह्मवर्चसम् ।
आचार घोपवासान्त कुलस्यान्त स्त्रिय प्रभो ॥५९
सर्वे क्षयान्ता निलया पतनान्ता समुच्छ्रिताः ।
सयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्त हि जीवितम् ॥६०
यदीच्छेत्पुनरागन्तु नातिदूरमनुव्रजेत् ।
उदकान्तान्निवर्त्तेत स्निग्धवर्णाच्च पादपात् ॥६१
अनायके न वस्तव्य न वा च वहुनायके ।
स्त्रीनायके न वस्तव्य तथा च वालनायके ॥६२
पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने ।
पुत्रस्तु स्थविरे काले न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥६३

नदियो का—अग्निहोत्रो का और भारत के कुल का—मूल का—अन्वेषण नही करे क्योकि मूल से वे सब दोष से हीन होते है ॥५७॥ नदियो का अन्त खारी पानी म होता है अर्थात् समुद्र के पानी मे ही जाकर समस्त नदियाँ गिरा करती है । मैथुन वही है जिसम स्त्री का भेदन करक समाप्त हो जाता है । पिशुनता का अन्त वही हो जाता है जबकि लोगो तक यह बात पहुचा दी जाती है और वित्त का अन्त दुख करने वाला ही होता है ॥५८॥ ब्राह्मणों के शाप से राज्य श्री का अन्त हो जाया करता है । पाप कर्म मे ब्रह्मवर्चस का अन्त या नाश हो जाता है । गाँव मे वास करने से आचार की समाप्ति हो जाती है और स्त्री की प्रभुता जहाँ पर होती है वहाँ कुल का अन्त ही समझ लेना चाहिए ॥५९॥ जितने भी आवास गृह है उन सबका एक दिन क्षय होकर अन्त होगा । जो जितना भी ऊपर को उठा है उसका अन्त मे पतन अवश्य ही होना है । ससार मे जितने सयोग हुआ है उसका अन्त वियोग मे अवश्य ही होगा और जो यह जीवन है जिस पर मनुष्य बड़ा—बड़ा कर डाला करता है उसका अन्त मरण मे ही होगा । ६० । यदि पुन आगमन करने की इच्छा रखे तो किसी को विदाई करने के लिए अधिक दूर तक पीछे या साथ

नहीं जाना चाहिए। जहाँ भी कोई जलाशय हो वहीं से पहुँचा कर वापिस लौट आना चाहिए अथवा स्निग्ध वर्ण वाले वृक्ष से वापिस लौट आवे ॥६१॥ जिस स्थल—ग्राम या नगर—देश में कोई नायक न हो वहाँ निवास नहीं करे और जहाँ बहुत से नायक हो वहाँ पर भी निवास नहीं करना चाहिए। स्त्री जहाँ की प्रमुख नायक हो वहाँ और बालक जिसका नायक हो वहाँ पर भी निवास करना उचित नहीं है ॥६२॥ स्त्री की रक्षा एवं पोषण बचपन में पिता किया करता है—यौवन की दशा में स्त्री का पालक एवं रक्षक पति होता है। वृद्धावस्था में स्त्री की सुरक्षा पुत्र किया करता है। स्त्रियों के जीवन में स्वतन्त्र रहकर अपने निर्वाह का कभी कोई अवसर ही नहीं होता है ॥६३॥

त्यजेद्वन्ध्यामष्टमेऽब्दे नवमे तु मृतप्रजाम् ।
एकादशे स्त्रीजननीं सद्यश्चाप्रियवादिनीम् ॥६४
अनर्थित्वान्मनुष्याणां भिया परिजनस्य च ।
अर्थादपेतमर्यादास्त्रियस्तिष्ठन्ति भर्तृषु ॥६५
अश्वं श्वान्तं गजं मत्तं गावः प्रथमसूतिका ।
अनूदके च मण्डूकान्प्राज्ञो दूरेण वर्जयेत् ॥६६
अर्थातुराणां न सुहृन्न बन्धुः कामातुराणां न भयं न लज्जा ।
चिन्तातुराणां न सुखं न निद्रा क्षुधातुराणां न बलं न तेजः ॥६७
कुतो निद्रा दरिद्रस्य परप्रेष्यवरस्य च ।
परनारीप्रसक्तस्य परद्रव्यहरस्य च ॥६८
सुखं स्वपित्यनृणवान्व्याधिमुक्तश्च यो नरः ।
सावकाशस्तु वै भुङ्क्ते यस्तु दारैर्न सङ्गतः ॥६९
अम्भसः परिमाणेन उन्नतं कमलं भवेत् ।
स्वस्वामिना बलवता भृत्यो भवति गर्वितः ॥७०

जो पत्नी वन्ध्या हो उसकी प्रतीक्षा सात वर्ष तक करे और यदि उसका वन्ध्यात्व स्थिर रहता है तो आठवें वर्ष में उसका त्याग कर दूसरी पत्नी लानी चाहिए। जिसके सन्तान उत्पन्न तो होती है वन्ध्या नहीं है किन्तु उत्पन्न होकर मर जाया करती हो उस पत्नी को नवम वर्ष में त्याग देवे। सन्तति भी हो

और जीवित भी रहे किन्तु केवल कन्या ही उत्पन्न होती हो उसका त्याग ग्या-
रहवें वर्ष में कर दूसरी पत्नी लावे और जो कभी भी प्रिय भाषण न कर
सर्वदा अप्रिय बोलने वाली स्त्री हो तो उसका त्याग तुरन्त ही कर देना चाहिए
॥६४॥ स्त्रियों के पातिव्रत धर्म बने रहने के तीन कारण होते हैं जिससे वे
अपने पतियों के साथ रहा करती हैं। एक तो यह कि उनको ऐसे पुरुषों का
सम्पर्क प्राप्त नहीं होता है कि उनसे वे रमणेच्छा की प्रार्थना करें—दूसरा यह
कारण होता है कि परिजन के लोगों का भय उनके हृदय में रहा करता है कि
कोई जान या देख लेगा तो अपयश हो जायगा। तीसरा यह है कि स्त्रियाँ
अर्थ से अपेत मर्यादा वाली हुआ करती हैं अर्थात् धन में मर्यादा का त्याग कर
देने वाली होती हैं जब धन उन्हें मिलता रहता है वे मर्यादा को किसी प्रकार
से कायम बनाये रहा करती है। धर्म समझ कर पातिव्रत का पालन करने
वाली तो विरल ही होती है ॥ ६५ ॥ थके हुए अश्व को—मदोन्मत्त हाथी को
और पहिली बार ब्याई हुई गौ को तथा बिना जल के रहने वाले मण्डूकों को
मनुष्य को दूर से ही परिवर्जित कर देना चाहिए ॥ ६६ ॥ जो अर्थ के आतुर
होते हैं अर्थात् धन के लालची मनुष्य हैं उनका न तो कोई बन्धु होता है और
न कोई मित्र ही हुआ करता है क्योंकि उनके लिए धन ही परम प्रिय वस्तु
होती है। जो काम के वश भूत मनुष्य हैं उन्हें कोई भी भय और लोक-लज्जा
नहीं हुआ करते हैं वे तो एकदम अन्धे से होकर कामवासना की पूर्ति करना
ठीक समझते हैं। जो चिन्ता से आतुर होते हैं उनको कभी भी सुख और निद्रा
नहीं हुआ करते हैं और भूख से पीड़ित पुरुषों को लवण और तेज नहीं रहता
है ॥६७॥ जो बिचारा दरिद्र है उसे सुख की निद्रा कैसे हो सकती है? दूसरे
के द्वारा भेजे हुए दूत और पराई स्त्री में आसक्ति रखने वाले पुरुष तथा दूसरों
के धन को हरण करने वाले पुरुष को भी नींद नहीं आया करती है ॥६८॥
जो ऋण से मुक्त होता है और व्याधियों से रहित होता है वह मनुष्य सुखपूर्वक
निद्रा का आनन्द प्राप्त किया करता है। जो दाराओं की सङ्गति से रहित होता
है वह सावधान होता हुआ भोग करता है ॥६९॥ जल के परिमाण से कमल
उन्नत हो जाया करता है अर्थात् जल यदि बढ़ जाता है तो कमल भी उतना

हो बढ जाया करता है । अपने बलवान् स्वामी के द्वारा भृत्य गर्व से युक्त हुआ करता है ॥७०॥

स्थानस्थितस्य पद्मस्य मित्रौ वरुणभास्करौ ।
स्थानच्युतस्य तस्यैव क्लेदशोषणकारकौ ॥७१
पदे स्थितस्य मित्राणि ते तस्य रिपुतां गताः ।
भानोः पद्मे जले प्रीतिः स्थानाद्धरणशोषणम् ॥७२
स्थानस्थितानि पूज्यन्ते पूज्यन्ते च पदे स्थिताः ।
स्थानभ्रष्टा न पूज्यन्ते केशा दन्ता नखा नराः ॥७३
आचारः कुलमाख्याति वपुराख्याति भाषितम् ।
सम्भ्रमः स्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम् ॥७४
वृथा वृष्टिः समुद्रस्य तृप्तस्य भोजनं वृथा ।
वृथा दानं समृद्धस्य नीचस्य सुकृतं यथा ॥७५
दूरस्थोऽपि समीपस्थो यो यस्य हृदये स्थितः ।
हृदयादपि निष्क्रान्तः समीपस्थोऽपि दूरतः ॥७६
मुखभङ्गः स्वरो दीनो गात्रस्वेदो महद्भयम् ।
मरणे यानि चिह्नानि तानि चिह्नानि याचतः ॥७७

अपनी उत्पत्ति के स्थान पर स्थित रहने वाले कमल के वरुण और भास्कर दोनों ही मित्र होते हैं अर्थात् उसके विकास करने वाले हुआ करते हैं। जब कमल अपने स्थान से च्युत हो जाता है तो ये वरुण-भास्कर दोनों ही उसके क्लेद एवं शोषण करने वाले हो जाया करते हैं ॥७१॥ पद पर स्थित के जो मित्र होते हैं वे ही पदच्युत होने पर शत्रु का स्वरूप धारण कर लिया करते हैं। भानु की जल में रहने पर तो कमल से प्रीति होती है और स्थान पर उसका उद्धरण होते ही वही भानु उस कमल को शोषण करने वाला हो जाया करता है ॥ ७२ ॥ जो अपने समुचित स्थान पर स्थित रहा करते हैं वे पूजा के योग्य होते हैं और जो पद पर अवस्थित रहते हैं वे भी पूजे जाया करते हैं। स्थान से भ्रष्ट हो जाने पर केश—दाँत और नख कभी भी पूजित एवं शोभा सम्पन्न नहीं हुआ करते हैं ॥ ७३ ॥ आचार मानव के कुल को प्रकट

कर दिया करता कि यह कैसे कुल मे समुत्पन्न हुआ है । भाषित शरीर को प्रकट करता अर्थात् भाषण से उसके शरीर के ज्ञान का परिचय हो जाता है । सम्भ्रम स्नेह को व्यक्त कर देता है और शरीर से उसके भोजन का ज्ञान हो जाता है कि कैसा भोजन इसे मिलता है क्योंकि शारीरिक पुष्टि भोजन से ही हुआ करती है ॥ ७४ ॥ समुद्री भाग मे वृष्टि का होना निष्फल होता है और पहिले ही से तृप्त है उसको भोजन खिलाना व्यर्थ है । समृद्धि से सम्पन्न पुरुष को दान देना बेकार है जैसे नीच का सुकृत व्यर्थ होना है ॥ ७५ ॥ चाहे कोई कितने ही दूरस्थ देश मे क्यों न हो यदि हृदय मे उसके लिये स्थान है तो वह समीप मे ही रहा करता है । जो हृदय स निकल जाता है तो वह चाहे समीप मे ही क्यों न स्थित हो वह दूर ही रहता है ॥ ७६ ॥ मुख का भङ्ग करना—दीनता से भरा हुआ स्वर—शरीर मे पसीने का होना और बड़ा भारी भय का रहना—ये सब बातें याचना करने वाले पुरुष को होती हैं । ये ही मरणासन्न व्यक्ति के भी लक्षण होते हैं । तात्पर्य यह है कि याचना का काम मृत्यु के समान ही होता है ॥ ७७ ॥

कुब्जस्य कीटघातस्य वातान्निष्कासितस्य च ।
शिखरे वसतस्तस्य वर जन्म न याचितम् ॥७८
जगत्पतिर्हि याचित्वा विष्णुर्वामनताङ्गतः ।
कोऽन्योऽधिकतरस्तस्य योऽर्थी याति न लाघवम् ॥७९
माता शत्रु पिता वैरी बाला येन न पाठिता ।
सभामध्ये न शोभन्ते हंसमध्ये बका यथा ॥८०
विद्या नाम कुरूपरूपमधिक विद्यातिगुप्त धन
विद्या साधुकरी जनप्रियकरी विद्या गुरुणा गुरु ।
विद्या बन्धुजनार्तिनाशनकरी विद्या पर दैवत
विद्या राजसु पूजिता हि मनुजो विद्याविहीनः पशुः ॥८१
गृहे चाभ्यन्तरे द्रव्य लग्नञ्चैव तु दृश्यते ।
अशेप हरणीयश्च विद्या न ह्रियते परैः ॥८२
शौनकाय नीतिसार विष्णु, सर्वव्रतानि च ।

कथयामास वै पूर्वं तत्र सुश्राव शङ्करः ।।
शङ्करात्स श्रुतो व्यासो व्यासादस्माभिरेव च ।।८३

कुबड़ा–कीटपात–वात न निष्कासित और शिखर पर निवास करने वाले का जन्म याचना करने वाले के जन्म से कहीं अच्छा होता है। याचना वृत्ति बहुत ही गर्हित होती है ।।७८।। अखिल ब्रह्माण्डों के स्वामी भगवान् विष्णु को भी जब याचना करने के कर्म में प्रवृत्त हुए तो उनको भी बौना बनना पड़ा था। भगवान् से अधिक अन्य कौन हो सकता है। जो कोई भी हो जब याचना करता है तो सबको ही छोटापन धारण करना ही पड़ता है ।। ७९ ।। वह माता शत्रु है और वह पिता वैरी है जिसने अपने बालक को लिखा–पढ़ाकर सुशिक्षित नहीं बनाया है। जो अशिक्षित होते हैं वे सभा के मध्य में हंसों में बगुलों की भाँति शोभा नहीं दिया करते हैं ।।८०।। विद्या कुरूप पुरुष का भी एक विशेष रूप सौन्दर्य होती है। विद्या अत्यन्त ही गुप्त धन है। विद्या मानव को साधु बना देने वाली–समस्तजनों के प्रिय करने वाली और विद्या गुरुओं की भी गुरु होती है। विद्या एक बन्धुजन के तुल्य होती है। विद्या आर्ति (पीड़ा) के नाश करने वाली होती है। विद्या परम देवता है। विद्या की पूजा राजाओं के यहाँ होती है अर्थात् विद्या से युक्त विद्वान् मनुष्य का समादर राजा लोग भी किया करते हैं। जो ऐसे अनेक अद्भुत चमत्कारों से परिपूर्ण विद्या से हीन होता है वह मनुष्य पशु के ही समान होता है ।। ८१ ।। घर के अन्दर छिपा कर रक्खा हुआ भी धन दिखलाई द जाता है। घर का सब धन हरण करने के योग्य होता है अर्थात् लोग ले लिया करते हैं किन्तु विद्या रूपी धन हो ऐसा धन है जिसको दूसरे लोग नहीं ले सकते हैं ।। ८२ ।। भगवान् विष्णु ने शौनक के लिए यह नीति का सार और समस्त व्रत कहे थे। वहाँ पर शङ्कर ने इनका श्रवण किया था। भगवान् शङ्कर से वेद व्यास महर्षि ने सुना था और व्यास से हम लोगों ने श्रवण किया था ।।८३।।

७२—तिथियों के व्रत

व्रतानि व्यास वक्ष्यामि हरिर्यैः सर्वदो भवेत् ।
सर्वमासर्क्षतिथिषु वारेषु हरिरर्चित ।।१

एकभक्तेन नक्तेन उपवासफलादिना ।
ददाति धनधान्यादि पुत्रराज्यजयाशया ॥२
वैश्वानर प्रतिपदि कुबेर पूजितोऽर्थद ।
उपोष्य ब्रह्मा प्रतिपद्यर्चित श्रीस्तथाश्विनीम् ॥३
द्वितीयाया यमो लक्ष्मीनारायण इहार्थद ।
तृतीयाया त्रिदेवाश्च गौरीविघ्नेशशङ्करान् ॥४
चतुर्थ्याञ्च चतुर्व्यूह पञ्चम्यामर्चितो हरि ।
कार्त्तिकेया रवि षष्ठ्या सप्तम्या भास्करोऽर्थद ॥५
दुर्गाष्टम्या नवम्याञ्च मातराऽथ दिशोऽर्थदा ।
दशम्याञ्च यमश्चन्द्र एकादश्यामृषीन्यजेत् ॥६
द्वादश्याञ्च हरि काम त्रयोदश्या महेश्वर ।
चतुर्दश्या पञ्चदश्या ब्रह्मा च पितरोऽर्थदा ॥७
अमावस्या पूजनीयाश्च वारा वै भास्करादय ।
नक्षत्राणि च योगाश्च पूजिता सर्वदायका ॥८

ब्रह्माजी ने कहा—हे व्यास ! अब मैं उन व्रतो के विषय में तुम्हारे सामने वर्णन करता हूँ जिन व्रतो के द्वारा भगवान् हरि समस्त पदार्थ प्रदान करने वाले हो जाते हैं यद्यपि सभी कुछ दे दिया करते हैं । भगवान् हरि सभी मास-नक्षत्र-तिथि और वारो मे समर्चित होते है ॥ १ ॥ एक ही समय में रात्रि मे उपवास फल आदि के द्वारा पुत्र-राज्य और जय की आशा से धन-धान्यादि देता है उसको अभीष्ट की सिद्धि होती है ॥ २ ॥ वैश्वानर और कुबेर प्रतिपदा के दिन पूजित होने पर अर्थ के दाता होते हैं । उपवास करके प्रतिपदा में ब्रह्मा-श्री और अश्विनी को अर्चित करे ॥३॥ द्वितीया (दोज) तिथि में यम-लक्ष्मी और नारायण की अर्चा करे तो ये अर्थ प्रदान करते हैं । तृतीया तिथि मे गौरी-विघ्नेश्वर गणपति और शङ्कर इन तीनो देवो की अर्चा करे ॥ ४ ॥ चतुर्थी तिथि मे चतुर्व्यूह का यजन करे और पञ्चमी तिथि मे भगवान् हरि का समर्चन करना चाहिए । स्वामी कार्त्तिकेय और भास्कर देव का पूजन षष्ठी तिथि मे करे । सप्तमी तिथि मे सूर्यदेव की पूजा करने से यह अर्थ प्रदान किया

करते हैं ॥५॥ दुर्गाष्टमी और नवमी तिथि में माताओं का और दिशाओं का पूजन करने से ये अर्थ प्रदान करने वाली होती हैं। दशमी तिथि में यम तथा चन्द्रमा का एवं एकादशी तिथि में ऋषियों का यजन करना चाहिए ॥६॥ द्वादशी तिथि के दिन भगवान् हरि यजन करने से कामनाओं की पूर्ति किया करते हैं और त्रयोदशी (तेरस) तिथि में भगवान् महेश्वर का पूजन करना चाहिए। चतुर्दशी और पञ्चदशी तिथियों में ब्रह्मा का तथा पितरों का पूजन करने से ये अर्थ का प्रदान करते हैं ॥७॥ अमावस्या तिथि में वार और भास्कर आदि—नक्षत्र तथा योग पूजित होकर सब कुछ प्रदान करने वाले हैं ॥८॥

७३—अनङ्गत्रयोदशी व्रत

मार्गशीर्षे सिते पक्षे व्यासानङ्गत्रयोदशी।
मल्लिकाजं दन्तकाष्ठं धत्तूरैः पूजयेच्छिवम् ॥१
अनङ्गायेति नैवेद्यं मधु प्राश्याथ पौषके।
योगेश्वरं पूजयेच्च बिल्वपत्रैः कदम्बजम् ॥
दन्तकाष्ठश्चन्दनादि नैवेद्यं शष्कुलीं ददेत् ॥२
माघे नटेश्वरायार्च्यं कुन्दैर्मौक्तिकमालया।
प्लक्षेण दन्तकाष्ठञ्च नैवेद्यं पूरिका मुने ॥३
वीरश्वरं फाल्गुने तु पूजयेत्तु मरुवकैः।
शर्कराशाकमण्डाश्च चूतजं दन्तधावनम् ॥४
चैत्रे यजेत्सुरूपाय कर्पूरं प्राशये दति।
दन्तधावनं वटजं नैवेद्यं शष्कुलीं ददेत् ॥५
पूजा च मोदकं शम्भोर्वैशाखेऽशोकपुष्पकैः।
महारूपाय नैवेद्यं गुडभक्तं ह्यदुम्बरम् ॥६
दन्तकाष्ठं प्राशयेच्च ददेज्जातीफलं तथा।
प्रद्युम्नं पूजयेज्ज्येष्ठे चम्पकैर्बिल्वजं ददेत् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे व्यास ! मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष में अनङ्गत्रयोदशी के दिन मल्लिका के पुष्प—दन्त काष्ठ और धतूरा के पुष्पों से

भगवान् शिव का पूजन करना चाहिए ॥१॥ 'अनङ्गाय' इत्यादि मन्त्र के द्वारा नैवेद्यों से मधु का प्राशन करावे। इसके अनन्तर पौष मास मे बिल्व पत्रों के द्वारा कदम्बज से पूजन करे और दन्त काष्ठ एवं चन्दन आदि—नैवेद्य और शष्कुली (पूड़ी) समर्पित करे ॥ २ ॥ माघ के महीना म नरेश्वर के लिये कुन्द तथा मौक्तिक की माला से अभ्यर्चना करे। हे मुने! प्लक्ष से दन्तकाष्ठ—नैवेद्य एवं पूरिका समर्पित करे ॥३॥ फाल्गुन मास म वीरेश्वर का मरुवक के पुष्पों से अर्चना करे और शकरा—शाक तथा मरण्ड तक आम्र की दन्त धावन समर्पित करना चाहिए ॥ ४ ॥ चैत्र मास म सुरूप के लिये यजन करे और कर्पूर का प्राशन करावे। वड के वृक्ष की दन्तधावन—नैवेद्य तथा शष्कुली समर्पित करना चाहिए ॥५॥ वैशाख के महीना म भगवान् शम्भु का अर्चन मोदकों (लड्डुओं) के द्वारा तथा अशोक के पुष्पों स करे। महारूप के लिये नैवेद्य—गुड़—भक्त और गूलर की दन्त धावन का प्राशन करावे और जाती फल समर्पित करना चाहिए। ज्येष्ठ मास म प्रद्युम्न की पूजा करे तथा चम्पक के पुष्पों से अर्चना करे और बिल्व वृक्ष की दन्त धावन तथा लवङ्गाशन निवेदित करे ॥६।७॥

लवङ्गाशनमाषाढे उमाभर्त्रे तिलाशन।
अगुरु दन्तकाष्ठञ्च तमपामार्गकैर्यजेत् ॥८
श्रावणे करवीरञ्च शम्भवे शूलपाणये।
गन्धाशनो धूपाद्यैश्च करवीरजदोधनम् ॥९
सद्योजात भाद्रपदे बकुलैः पूपकैर्यजेत्।
गन्धर्वाणो मदनजमाश्विने च सुराधिपम् ॥१०
चम्पकैः स्वर्णवाप्यादौ यजेन्मोदकसम्प्रदः।
खादिर दन्तकाष्ठञ्च कार्तिके रुद्रमर्चयेत् ॥११
बदर्या दन्तकाष्ठञ्च दशनो दशमाशन।
क्षीरशाकप्रद पद्मै रुद्रान्ते शिवमर्चयेत् ॥१२
रतियुक्तमनङ्गञ्च स्वर्णमण्डलमस्थितम्।
गन्धाद्यैर्दशसाहस्र तिलव्रीह्यादि होमयेत् ॥१३

जागर गीतवादित्र प्रभातेऽभ्यर्च्य वेदयेत् ।
द्विजाय शय्या पात्रञ्च छत्र वस्त्रमुपानहौ ॥१४
गान्द्विज भोजयेद्भक्त्या कृतकृत्यो भवेन्नरः ।
एतदुद्यापन सर्वं व्रतेषु ध्येयमीदृशम् ।
फलञ्च श्रीयुतारोग्यसौभाग्यसर्वभाग्भवेत् ॥१५

आषाढ मास में 'उमाभद्र —इनके द्वारा शिव का अर्चन करे और मधुर अपामार्ग दन्त काष्ठ से यजन करना चाहिए ॥८॥ श्रावण मास में शूल पाणि शम्भु के लिये करवीर—गन्धासन—धूप आदि के द्वारा यजन करे तथा करवीर की दाँतुन समर्पित करे ॥९॥ भाद्रपद मास में मद्योजात का बकुल के पुष्प और पूप (पूआ) से यजन करना चाहिए। यह गन्धर्वोक्त है। महाज सुराधिप का अर्चन आश्विन में करे। स्वर्ण वायु आदि में चम्पक के पुष्पों के द्वारा मोदकों का सम्प्रदान करते हुए पूजन करे तथा खदिर की दाँतुन समर्पित करे। कार्तिक मास में रुद्र का अर्चन करे ॥१०।११॥ बदरी वृक्ष की दन्त काष्ठ देवे। दधमाधन दशन और क्षीर तथा शाक का प्रदान करने वाले को वर्ष के अन्त में पक्षों के द्वारा शिव का पूजन करना चाहिए ॥ १२ ॥ स्वर्ण मण्डल में सस्थित रत्न से युक्त आज्ञ का गन्धाक्षत आदि के द्वारा यजन करे और दश सहस्र तिल तथा व्रीहि आदि की सामग्री से होम करना चाहिए ॥१३॥ रात्रि में जागरण और गीत वादित्र करके प्रातःकाल में अभ्यर्चना करना चाहिए। ब्राह्मण के लिये शय्या—पात्र—छत्र—वस्त्र और जूते आदि समर्पित करे तथा गो द्विज का भोजन करावे तो मनुष्य सफलता की प्राप्ति किया करता है। समस्त व्रतों का यह इस प्रकार का उद्यापन होता है। इसका फल—श्री से युक्त आरोग्य—सौभाग्य और सम्पूर्ण पदार्थों का लाभ होता है ॥१४।१५॥

७४—अखण्डद्वादशी, अगस्त्यार्घ्य और रम्भा तृतीया

व्रतं कैवल्यदमनमखण्डद्वादशी वदे ।
मार्गशीर्षे सिते पक्षे गव्याशी समुपोषितः ॥१

द्वादश्यां पूजयेद्विष्णुं दद्यान्मासचतुष्टयम् ।
पञ्चव्रीहियुतं पात्रं विप्रायेदमुदाहरेत् ॥२
सप्तजन्मनि यत्किञ्चिन्मयाऽखण्डव्रतं कृतम् ।
भगवन्त्वत्प्रसादेन तदखण्डमिहास्तु मे ॥३
यथाऽखण्डं जगत्सर्वं त्वमेव पुरुषोत्तम ।
तथाखिलान्यखण्डानि व्रतानि मम सन्त्युत ॥४
सक्तुपात्राणि चैत्रादौ श्रावणादौ घृतान्वितान् ।
व्रतकृद् व्रतपूर्णन्तु स्त्रीपुत्रस्वर्गभाग्भवेत् ॥५

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अब मैं कैवल्य के शमन करने वाला अखण्ड-द्वादशी का व्रत बतलाता हूँ—मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष में गव्य का अशन करके समुपोषित रहे ॥१॥ द्वादशी के दिन में भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए। चार मास तक विप्र को पाँच व्रीहियों से युक्त पात्र देवे और यह कहे कि सात जन्मों में जो मैंने अखण्ड व्रत किया है, हे भगवन्! वह आपके प्रसाद से यहाँ अब अखण्ड हो जावे ॥२।३॥ जिस तरह से यह समस्त जगत् अखण्ड है और पुरुषों में उत्तम आप भी अखण्ड हैं वैसे ही ये सम्पूर्ण व्रत भी अखण्ड मेरे होते हैं ॥४॥ चैत्र आदि मासों में सक्तुओं से पूर्ण पात्र और श्रावण आदि महीनों में घृत से युक्त व्रत के करने वाले को देने चाहिए तभी व्रत पूर्ण होता है और वह फिर स्त्री-पुत्र और स्वर्ग के भोग प्राप्त करने वाला हो जाता है ॥५॥

अगस्त्यार्घ्यव्रतं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
अप्राप्ते भास्करे कन्यां सति भागे त्रिभिर्दिनैः ॥६
अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय मूर्तिं सम्पूज्य वै मुने ।
काशपुष्पमयीं कुम्भे प्रदोषे कृतजागरः ॥७
दध्यक्षताद्यैः सम्पूज्य उपोष्य फलपुष्पकैः ।
पञ्चवर्णसमायुक्तं हेमरौप्यसमन्वितम् ॥८
सप्तधान्ययुतं पात्रं दधिचन्दनचर्चितम् ।
अगस्त्यः खलमानेति मन्त्रेणार्घ्यं प्रदापयेत् ॥९

काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव ।
मित्रावरुणयो पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते ॥१०
शूद्रस्त्र्यादिरनेनैव त्यजेद्धान्य फल रसम् ।
दद्याद् द्विजातये कुम्भ सहिरण्य सदक्षिणम् ॥
भोजयेच्च द्विजान्सप्त वर्षाण्कृत्वा तु सर्वभाक् ॥११

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अब हम अगस्त्यार्घ्य व्रत के विषय मे बतलाते है। यह व्रत भुक्ति अर्थात् सम्पूर्ण सासारिक सुखो का उपभोग और मुक्ति अर्थात् बारम्बार ससार मे जन्म और मरण के आवागमन से छुटकारा पाना—ये दोनो ही प्रदान किया करता है। कन्या पर भास्कर के अप्राप्त होने पर तीन दिन तक अगस्त्य के लिये अर्घ्य देना चाहिए। हे मुने ! प्रदोष कृत जागरण वाला होकर कुम्भ मे काश पुष्पमयी मूर्ति का भली भाँति पूजन करके अर्थात् दधि-अक्षत आदि से पूजन कर और फल पुष्पो से उपोषित होकर पाच वर्णो से समायुक्त-हेम एव रौप्य से सप्तविन-सात धान्यो से युक्त दधि एव चन्दन से चर्चित पात्र को "अगस्त्य नमस्कार"—इत्यादि मन्त्र से अर्घ्य देवे ॥६।७।८।६॥ हे काश के पुष्प के प्रतीकाश ! हे अग्नि और मारुत से जन्म ग्रहण करने वाले ! मित्रावरुण के पुत्र ! हे कुम्भयोने ! आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥१०॥ इसके द्वारा शूद्र-स्त्री आदि का त्याग कर देना चाहिए। द्विजाति के लिये धान्य—फल-रस-दक्षिणा के सहित कुम्भ और वे हिरण्य के सहित भी हो, प्रदान करना चाहिए। ब्राह्मणो को भोजन करावे। इस प्रकार से सात वर्ष तक करने पर समस्त पदार्थो की प्राप्ति करने वाला मनुष्य होता है ॥११॥

रम्भातृतीया वक्ष्ये च सौभाग्यश्रीसुतादिदाम् ।
मार्गशीर्षे सिते पक्षे तृतीयायामुपोषित ॥१२
गौरी यजेद्बिल्वपत्रै कुशोदककरस्तत ।
कादम्बरी गिरिसुता पौषे मरुवकैर्यजेत् ॥१३
कर्पूराद कुशरदो मल्लिकादन्तकाष्ठकृत् ।
माघे सुभद्रा कह्लारैर्घृताशी मण्डकप्रद ॥१४

गीतीमय दन्तकाष्ठं फाल्गुने गोमती यजेत् ।
कुन्दं कृत्वा दन्तकाष्ठं जीवाशः शष्कुलीप्रदः ॥१५
विशालाक्षी मदनकैश्चैत्रे क्षुशारसम्प्रद ।
दधिप्राशो दन्तकाष्ठं तगर श्रीमुखी यजेत् ॥
वैशाखे कर्णिकारैश्च अशोकाशो रदप्रदः ॥१६

ब्रह्माजी बोले—अब हम रम्भा तृतीया के विषय में बतलाते हैं जो परम सौभाग्य-श्री और सुत आदि के प्रदान करने वाली है। मार्ग शीर्ष मास शुक्ल पक्ष में तृतीया में उपोषित रहे ॥ १२ ॥ कुशा और जल हाथ में लेव बिल्व के दलो के द्वारा गौरी का यजन करे। कदम्ब के दलो एव पुष्पो से गिरिसुता का यजन करना चाहिए। पौष मास में मरुकों के द्वारा अभ्यर्चना करे ॥१३॥ कर्पूर और कृशर का अशन एव दान करने वाला होवे तथा मञ्जु मल्लिका की उत्तम लता लेकर दातुन करे। माघ मास में कल्हार के पुष्पो से सुभद्रा का यजन करे। घृत का अशन करने वाला तथा मण्डको का प्रदाता होवे ॥१४॥ फाल्गुन मास में गीतीमय दन्त काष्ठ हो और गोमती का यजन करे। जीवाशी होकर शष्कुली का प्रदान करे और कुन्द से दन्त धावन करे ॥१५॥ चैत्र मास में विशालाक्षी का मदनकों से कृशार सम्पत्ति वाला होकर यजन करे और दधि का प्राशन करे तथा तगर की दन्तधावन रक्खे—इस रीति से श्रीमुखी का अर्चन करना चाहिए। वैशाख में कर्णिकारो से अशोकाशन वाला रदप्रद होकर यजन करे ॥१६॥

ज्येष्ठे नारायणीमर्घैश्चन्द्रनपत्रैश्च सण्डद ।
लवङ्गाशो भवेदेव आषाढे माधवी यजेत् ॥१७
तिलाशो बिल्वपत्रैश्च क्षीराम्रवटरप्रद. ।
औदुम्बर दन्तकाष्ठ तगर्यां श्रावणे श्रियम् ॥१८
दन्तकाष्ठं मल्लिकाया क्षीरदो ह्युत्तमा यजेत् ।
पद्मं र्यजेद्भाद्रपदे शृङ्गदाशो गुडादद. ॥१९
गन्धपुष्पैश्चाश्वयुजे जवापुष्पैश्च जीरकम् ।
प्राशयेन्निशि नैवेद्यैः कृशरैः कार्तिके यजेत् ॥२०

जातीपुष्पैः पद्मजान्तु पञ्चगव्याशनो यजेत् ॥
घृतोदनञ्च वपन्ति सपत्न कान्द्विजान्यजेत् ॥२१
उमामहेश्वर पूज्य प्रदद्याच्च गुडादिकम् ।
वस्त्रच्छत्रसुवर्णाद्यं रात्रौ च कृतजागरः ।
गीतावाद्यैर्देदत्प्रातर्गवाद्य सर्वमाप्नुयात् ॥२२

ज्येष्ठ मास मे नारायणी देवी का शत पत्रो के द्वारा खाँड का दान करते हुए लवङ्ग का प्रशन करके यजन करना चाहिए। आषाढ मास मे माधवी देवी का यजन करे ॥१७॥ तिलों का प्रशन करे—क्षीराम वटक का प्रदान करे और बिल्व पत्रो से पूजन करे—गूलर की दन्त धावन करे। श्रावण मे तगरी से श्री का यजन करना चाहिए—मल्लिका की दन्त धावन—क्षीर का दान करे और उत्तमा का पूजन करे। भाद्रपद मास मे पद्म पुष्पो के द्वारा यजन करे। शृङ्ग का प्रशन करे और गुड आदि का दान करना चाहिए ॥१८॥१९॥ आश्विन मास मे राजपुत्री का जवा के पुष्पो से यजन करे—रात्रि मे जीरको का प्रशन करे। नैवेद्य कृशर से कार्तिक मे जाती के पुष्पो के द्वारा पद्मजा का यजन करे—पञ्चगव्य का प्रशन करे। वर्षा के अन्त मे घृतोदन का सपत्नीक द्विजो को भोजन करावे। उमा महेश्वर का पूजन कर गुडादि का दान करे तथा वस्त्र—छत्र और सुवर्णादि से रात्रि मे जागरण करे—गीत वाद्यादि करे और प्रात काल के समय मे गौ आदि का दान करे तो समस्त कामनाओ की पूर्ति होती है।२०।२१।२२।

७५—चातुर्मास्य, मासोपवास व्रत

चातुर्मास्यव्रतान्यूचे एकादश्या समाचरेत् ।
आषाढ्या पौर्णमास्या वा सर्वेण हरिमर्च्य च ॥१
इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव ।
निर्विघ्नं सिद्धिमाप्नोतु प्रसन्ने त्वयि केशव ॥२
गृहीतेऽस्मिन्व्रते देव यद्यपूर्णे म्रियाम्यहम् ।
तन्मे भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥३
एवमभ्यर्च्य गृह्णीयाद्व्रतानजपादिकम् ।
सर्वापञ्च क्षय याति चिकीर्षेद्यो हरेर्व्रतम् ॥४

स्नात्वा यश्चतुरो मासानेकभक्तेन पूजयेत् ।
विष्णु स याति विष्णोर्वै लोकं मलविवर्जितम् ॥५
मद्यमांससुरात्यागी वेदविद्धरिपूजनात् ।
तैलवर्जी विष्णुलोकं विष्णुभाक्कृच्छ्रपादकृत् ॥६
एकरात्रोपवासाच्च देवो वैमानिको भवेत् ।
श्वेतद्वीपं त्रिरात्रात्तु व्रजेत्पष्ठान्नकृन्नरः ॥७
चान्द्रायणाद्धरेर्धाम लभेन्मुक्तिमयाचिताम् ।
प्राजापत्यं विष्णुलोकं पराकव्रतकृद्धरिम् ॥८
सक्तुयावकभिक्षाशी पयोदधिघृताशनः ।
गोमूत्रयावकाहारः पञ्चगव्यकृताशनः ॥
शाकमूलफलत्यागी रसवर्जी च विष्णुभाक् ॥९

श्री ब्रह्माजी ने कहा – अब मैं चातुर्मास्य व्रतों को बतलाता हूँ। इनको एकादशी में अथवा आषाढ़ी पूर्णिमा में समस्त उपचारों के द्वारा समर्चन कर करना चाहिए। भगवान् हरि से प्रार्थना करे कि हे देव ! मैंने यह व्रत आपके समक्ष में ग्रहण किया है। हे केशव ! आपके प्रसन्न होने पर मेरा यह व्रत निर्विघ्न सिद्धि को प्राप्त हो जावे ॥१।२॥ हे देव ! इस व्रत के ग्रहण करने पर यदि यह व्रत अपूर्ण रहे और मैं मर जाऊँ तो हे जनार्दन ! आपके प्रसाद से यह व्रत सम्पूर्ण हो जावे ॥३॥ इस प्रकार से प्रार्थना करते हुए भगवान् का अर्चन कर व्रत,चंन और जप आदि को ग्रहण करना चाहिए। जो इस विधि से हरि के व्रत को करने की इच्छा करे तो समस्त अघों का नाश हो जाता है ॥ ४ ॥ जो चार मास तक स्नान करके एक बार पूजन करे वह विष्णु की सान्निधि एवं विष्णुलोक की प्राप्ति करे जोकि मल से रहित होता है ॥५॥ वेदों का वेत्ता पुरुष मद्य-मांस और सुरा का त्याग करने वाला हरि का पूजन करे–तैल का त्याग कर देवे और विष्णु के पूजन में कृच्छ्र पाद करे तो वह विष्णु-लोक में विष्णु की प्राप्ति किया करता है ॥६॥ एक रात्रि के उपवास से देवों के विमान में गमन करने वाला होता है। तीन रात्रि के उपवास से षष्ठान्न कृत् मानव श्वेत द्वीप को प्राप्त करता है ॥ ७ ॥ चान्द्रायण व्रत से हरि के धाम को

प्राप्ति किया करता है और अप्रार्थित मुक्ति को प्राप्त करता है। प्राजापत्य व्रत से विष्णु लोक की प्राप्ति होती है। पराक व्रत करने वाला हरि को प्राप्त करता है ॥८॥ सत्तु (सतुआ) और यावक का भिक्षाशन करने वाला-पय, दधि तथा घृत का अशन करने वाला-गोमूत्र और यावक का आहार करने वाला तथा पञ्चगव्य का अशन करने वाला-शाक—मूल और फलों का त्याग करने वाला और रसों को वर्जित रखने वाला व्रती विष्णु के सान्निध्य को प्राप्त किया करता है ॥ ९ ॥

व्रतं मासोपवासाख्यं सर्वोत्कृष्टं वदामि ते।
वानप्रस्थो यतिर्नारी कुर्य्यान्मासोपवासकम् ॥१०
आश्विनस्य सिते पक्षे एकादश्यामुपोषित।
व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद्यावत्त्रिंशद्दिनानि तु ॥११
अद्यप्रभृत्यहं विष्णोर्यावदुत्थानकं तव।
अर्चये त्वामनश्नन्तु दिनानि त्रिंशदेव तु ॥१२
कार्त्तिकाश्विनयोर्विष्णो द्वादश्योः शुक्लयोरहम्।
म्रिये यद्यन्तराले तु व्रतभङ्गो न मे भवेत् ॥१३
हरिं यजेत्त्रिषवणस्नायी गन्धादिभिर्व्रती।
गात्राभ्यङ्गं गन्धलेपं देवतायतने त्यजेत् ॥१४
द्वादश्यामथ सपूज्य प्रदद्याद् द्विजभोजनम्।
ततश्च पारणं कुर्य्याद्धरेर्मासोपवासकृत् ॥१५
दुग्धादिप्राशनं कुर्य्याद् व्रतस्थो मूर्च्छितोऽन्तरा।
दुग्धाद्यैर्न व्रतं नश्यद्भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥१६

श्री ब्रह्माजी बोले—अब मैं समस्त व्रतों से भी परम उत्कृष्ट व्रत जिसको मासोपवास नाम से कहा जाता है तुम्हें बतलाता हूँ। इस मासोपवास नामक व्रत को वानप्रस्थ—यति और नारी का करना चाहिए ॥१०॥ आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में एकादशी के दिन उपोषित होकर इस व्रत को तीस दिन के लिये ग्रहण करना चाहिए ॥११॥ भगवान् से व्रतारम्भ करने के पूर्व प्रार्थना करे-हे भगवन्! मैं आज से लेकर जब तक आपका उत्थापन हो तब तक के लिये

इस व्रत को ग्रहण करता हूँ। बिना खाये हुए तीस दिन तक मैं आपकी अर्चना करूँगा ॥१२॥ हे विष्णो ! कार्तिक और आश्विन मासों के मध्य में शुक्ल पक्षों की द्वादशियों के अन्तराल में यदि मेरी मृत्यु हो जावे तो मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि मेरे इस व्रत का उस विघ्न से भंग नहीं होना चाहिए ॥१३॥ त्रिकाल में सन्ध्या और स्नान करने वाले व्रती को गन्धाक्षत के द्वारा भगवान् श्री हरि का यजन करना चाहिए। व्रती पुरुष को देव के आयतन में गात्रों का अभ्यङ्ग और गन्ध का लेपन नहीं करना चाहिए ॥१४॥ द्वादशी के दिन में भली भाँति पूजन करके इसके अनन्तर द्विजों को भोजन समर्पित करे। इसके पश्चात् स्वयं पारणा करे जिसने कि हरि के मास का उपवास किया है ॥१५॥ व्रत में स्थित रहने वाला पुरुष यदि व्रत के कारण अशक्त होकर मध्य में मूच्छित हो जावे तो उसको दुग्ध आदि का प्राशन कर लेना चाहिए। दुग्ध आदि कतिपय पदार्थ ऐसे हैं उनके सेवन करने पर व्रत का नाश नहीं हुआ करता है और वह दुग्धादि के सेवन करने वाला भी व्रती भुक्ति एवं मोक्ष दोनों ही के प्राप्त कर लेने का पूर्ण अधिकारी होता है ॥१६॥

७६—भीष्मपञ्चक व्रत

व्रतानि कार्तिके वक्ष्ये स्नात्वा विष्णुं प्रपूजयेत् ।
एकभक्तेन नक्तेन मास वायाचितेन वा ॥१
दुग्धशाकफलाद्यैर्वा उपवासेन वा पुनः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्तकामो हरिं व्रजेत् ॥२
सदा हरेर्व्रतं श्रेष्ठं तत स्याद्दक्षिणायने ।
चातुर्मास्ये ततस्तस्मात्कार्तिके भीष्मपञ्चकम् ॥३
ततः श्रेष्ठव्रत शुल्कस्यैकादश्या समाचरेत् ।
स्नायात्त्रिकाल पित्रादीन्यवाद्यैरर्चयेद्धरिम् ॥४
वर्जेन्मौनी घृताद्यैश्च पञ्चगव्येन वारिभिः ।
स्नापयित्वाऽथ कर्पूरमुख्यैश्च वानुलेपयेत् ॥५
गुग्गुलाक्तधूपं द्विजः पञ्चदिनं दहेत् ।
नैवेद्य परमान्नन्तु जपदष्टोत्तर शतम् ॥६

ॐ नमो वासुदेवाय घृतव्रीहितिलादिकम् ।
अष्टाक्षरेण मन्त्रेण स्वाहान्तेन तु होमयेत् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अब मैं कार्तिक मास में होने वाले व्रतों को बतलाता हूँ। सब प्रथम स्नान कर भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए। मास पर्यन्त एक समय रात्रि में अथवा अयाचित भोजन करे। अथवा दुग्ध—शाक और फलादि का सेवन कर या उपवास करे। ऐसी विधि से व्रत करने वाला पुरुष सब तरह के पापों से छुटकारा पाकर और समस्त कामनाओं की प्राप्ति कर अन्त में भगवान् हरि के सान्निध्य में पहुँच जाया करता है ॥१।२॥ हरि का यह व्रत सदा ही श्रेष्ठ होता है। दक्षिणायन में सूर्य होने पर उससे भी अधिक उत्तम होता है। चातुर्मास्य में इससे भी अधिक श्रेष्ठ होता है। और इसमें भी कार्तिक मास भीष्म पञ्चक में उत्तम होता है। इससे भी श्रेष्ठ व्रत कार्तिक शुक्ल पक्ष की एकादशी में होता है। त्रिकाल में स्नान करे और पितृगण आदि का यवादि के द्वारा यजन कर और श्री हरि की अर्चना करनी चाहिए ॥३।४॥ मौन व्रत धारण कर घृत आदि-पञ्चगव्य—जल से स्नान करावे और कपूर आदि प्रमुख सुगन्धित पदार्थों के द्वारा अनुलेपन करे ॥ ५ ॥ द्विज को घृत से युक्त गुग्गुलु का दाह करना चाहिए। पाँच दिन तक धूप का दाह करना चाहिए। परमान्न का नैवेद्य समर्पित कर और अष्टोत्तर शत जाप करे ॥ ६ ॥ जाप का समापन के पश्चात् ॐ नमो वासुदेवाय—इस आठ अक्षरों वाले मन्त्र से 'स्वाहा' यह अन्त में लगा कर घृत—व्रीहि और तिल आदि की सामग्री से होम करना चाहिए ॥७॥

प्रथमेऽह्नि हरेः पादौ यजेत्पद्मैर्द्वितीयकं ।
बिल्वपत्रैर्जानुदेशं नाभिं गन्धेन चापरे ॥८
स्कन्धौ बिल्वजपाभिश्च पञ्चमेऽह्नि शिरोऽर्चयेत् ।
मालत्या भूमिशायी स्याद् गोमयं प्राशयेत्क्रमात् ॥९
गोमूत्रं क्षीरदधि च पञ्चमं पञ्चगव्यकम् ।
नक्तं कुर्यात्पञ्चदश्यां व्रती स्याद्भुक्तिमुक्तिभाक् ॥१०

एकादशीव्रतं नित्यं तत्कुर्यात्पक्षयो र्द्वयो ।
अघौघनरकं हन्यात्सर्वदं विष्णुलोकदम् ॥११
एकादशी द्वादशी च निशान्ते च त्रयोदशी ।
नित्यमेकादशी यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ॥१२
दशम्येकादशी यत्र तत्रस्थाश्चासुरादनः ।
द्वादश्या पारणं कुर्यात्सूतके मृतके चरेत् ॥१३
चतुर्दशी प्रतिपदि पूर्वमिश्रामुपावसेत् ।
पौर्णमास्याममावास्या प्रतिपन्मिश्रिता मुने ॥१४
द्वितीया तृतीयामिश्रा तृतीयाऽन्वाप्युपावसेत् ।
चतुर्थ्या सङ्गता नित्य चतुर्थीञ्चानया युताम् ।
पञ्चमी षष्ठीसयुक्ता षष्ठया युक्ताञ्च पञ्चमीम् ॥१५

प्रथम दिन में हरि के चरणों का पद्मों के द्वारा यजन करे द्वितीय दिन में बिल्व पत्रों के द्वारा जानु भाग का यजन करे। तीसरे दिन गन्ध के द्वारा भगवान् की नाभि का समर्चन करे ॥८॥ चतुर्थ दिन में बिल्व दल और जल से स्कन्धों का यजन करे और पाँचवें दिन में मालती से सिर का अर्चन करना चाहिए। भूमि में शयन करने वाला होवे और क्रम से गोमय का प्राशन करे। गोमूत्र–क्षीर—दधि और पञ्चम में पञ्चगव्य करे। पञ्चदशी में रात्रि को करे। इस प्रकार से करने पर व्रत करने वाला भुक्ति एवं मुक्ति दोनों को प्राप्त करने वाला होता है ॥ ९।१० ॥ दोनों पक्षों में नियम से नित्य ही एकादशी का व्रत करना चाहिए अघों के समूह वाले नरक से निवृत्ति होती है। यह व्रत समस्त पदार्थों का प्रदान करने वाला और विष्णु लोक के प्रदान करने वाला होता है ॥ ११ ॥ एकादशी–द्वादशी तथा निशान्त में त्रयोदशी करे। जहाँ पर नित्य ही एकादशी होती है वहाँ पर साक्षात् भगवान् हरि सन्निहित रहा करते हैं ॥१२॥ जहाँ पर दशमी और एकादशी हो अर्थात् दशमी विद्धा एकादशी हो वहाँ पर असुर स्थित रहा करते हैं द्वादशी तिथि में पारण करना चाहिए। सूतक और मृतक में करे ॥ १३ ॥ प्रतिपदा में पूर्व मिश्रा चतुर्दशी का उपवास करे। हे मुने ! पूर्णमासी में अमावस्या में पूर्व मिश्रिता करे ॥ १४ ॥ तृतीया

मिश्रा द्वितीया का और तृतीया का उपवास करे। चतुर्थी से सङ्गता का नित्य और इसय युत चतुर्थी का उपवास करे। षष्ठी से संयुक्त पञ्चमी और षष्ठी से युक्त पञ्चमी का उपवास करे ।।१५।।

७७—शिवरात्रि व्रत

शिवरात्रिव्रतं वक्ष्ये कथाञ्च सर्वकामदम् ।
यथा च गौरी भूतेशं पृच्छति स्म परं व्रतम् ।।१
माघफाल्गुनयोर्मध्ये कृष्णा या तु चतुर्दशी ।
तस्यां जागरणाद्रुद्रः पूजितो भुक्तिमुक्तिदः ।।२
कामयुक्तो हरिः पूज्यो द्वादश्यामिव केशव ।
उपोषितः पूजितः सन्नरकात्तारयेत्तया ।।३
निषादश्चाभ्वद्राजा पापी सुन्दरसेनक. ।
स कुक्कुरैः समायुक्तो मृगान्हन्तु वनं गतः ।।४
मृगादिकमसंप्राप्य क्षुत्पिपासार्दितो गिरौ ।
रात्रौ तडागतीरेषु निकुञ्जे जाग्रदास्थितः ।।५
तत्रास्ति लिङ्गं सरक्षन्स्वशरीरञ्चाक्षिपत्तत. ।
पर्णानि चापतन्मूर्ध्नि लिङ्गस्यैव न जानत ।।६
तेन धूलिनिरोधाय क्षिप्तं नीरञ्च लिङ्गके ।
शरः प्रमादेनैकस्तु प्रच्युतः करपल्लवात् ।।७
जानुभ्यामवनीं गत्वा लिङ्गं स्पृष्ट्वा गृहीतवान् ।
एवं स्नानं स्पर्शनञ्च पूजनं जागरोऽभवत् ।।८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अब हम शिवरात्रि के व्रत के विषय में वर्णन करते हैं। उसकी कथा भी कहते हैं। यह व्रत समस्त कामों के प्रदान करने वाला है। भगवती गौरी ने इस परम व्रत के विषय में भूतेश भगवान् से पूछा था ।।१।। ईश्वर ने कहा—माघ और फाल्गुन मासों के मध्य में कृष्ण पक्ष में चतुर्दशी तिथि में होता है। उस चतुर्दशी की रात्रि में जागरण करके भगवान् की पूजा करने पर रुद्रदेव परम प्रसन्न होते हैं और भुक्ति तथा मुक्ति दोनों का

प्रदान किया करते हैं ॥२॥ काम युक्त केशव श्री हरि द्वादशी की भाँति पूजा के योग्य होते हैं। उद्योपित होकर मानवों के द्वारा पूजित हरि नरक से तारण किया करते हैं ॥३॥ अर्बुद में निषाद राजा पापी और सुन्दर सेना वाला था। वह कुत्तों से युक्त होकर मृगों का हनन करने के लिये वन में गया था ॥४॥ उसे वहाँ वन में मृग आदि का कोई भी शिकार नहीं मिला तो वह भूख और प्यास से पीड़ित होकर पर्वत में रात्रि के समय में तालाब के किनारे पर निकुञ्ज में जागरण करता हुआ ही स्थित रहा था ॥५॥ वहाँ पर एक शिव की लिंग मूर्ति थी। वहाँ पर शरीर की रक्षा करता क्षिप्त होगया था। लिंग का ज्ञान न करते हुए ही मस्तक पर पत्ते गिर गये थे ॥६॥ उसने धूलि के हटाने के लिये लिंग पर जल डाल दिया था। प्रमाद से कारण ही उसके हाथ से एक शर च्युत होगया। उसने घुटनों के बल भूमि पर स्थित होकर लिंग का स्पर्श करके उसे ग्रहण कर लिया था। इस प्रकार स स्नान-स्पर्शन-पूजन और उसका जागरण होगया ॥७।८॥

प्रातर्गृहागतो भार्यादितान्न भुक्तवान्स च।
काले मृतो यमभटैः पाशैर्बद्ध्वा तु नीयते ॥९
तदा मम गणैर्युद्धे जित्वा मुक्तीकृत स च।
कुक्कुरेण सहैवाभूद् गणो मत्पार्श्वगोऽमल ॥१०
एवमज्ञानत पुण्य ज्ञानात्पुण्यमथाक्षयम्।
त्रयोदश्या शिव पूज्य कुर्यात्तु नियम व्रती ॥११
प्रातर्देव चतुर्दश्या जागरिष्याम्यह निशि।
पूजां दान तपो होम करिष्याम्यात्मशक्तित ॥१२
चतुर्दश्या निराहारो भूत्वा शम्भो परेऽहनि।
भोक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्त्यर्थं शरण मे भवेश्वर ॥१३
पञ्चगव्यामृतै. स्नाप्य अन्तकाले गुरुं शिव।
ॐ नमो नमः शिवाय गन्धाद्यै: पूजयेद्धरम् ॥१४

जब प्रातःकाल हुआ तो वह वहाँ से घर आ गया था और भार्या के द्वारा दिया हुआ अन्न उसने खाया था। जब उसके मृत्यु का समय आया तो

यमदूतों के द्वारा पाशों से बाँध कर वह ले जाया गया था ॥९॥ तब हे पार्वति ! मेरे गणों ने मार्ग में ही यम के दूतों से युद्ध करके उन्हें परास्त कर दिया था और उस निषाद राजा को यमदूतों से मुक्त कर दिया था। वह फिर अपने कुत्तों के साथ ही सर्वदा मेरे ही पास में निवास करने वाला परम शुद्ध गण होगया था ॥ १० ॥ इस प्रकार से अज्ञान से किये हुए पुण्य का ऐसा अद्भुत पुण्य होता है और यदि ज्ञान पूर्वक इस चतुर्दशी का व्रत एवं पूजन तथा जागरण करे तो उसका तो अक्षय पुण्य होता है। त्रयोदशी के दिन भगवान् शिव का पूजन करके व्रती को नियम ग्रहण करना चाहिए ॥११॥ व्रती को भगवान् शिव से प्रार्थना करनी चाहिए—हे देव ! मैं चतुर्दशी में रात्रि के समय में जागरण करूँगा—यह प्रार्थना प्रातःकाल में चतुर्दशी के दिन करे। और यह भी निवेदन करे कि मैं अपनी शक्ति के अनुसार पूजा—दान—तप और होम भी करूँगा ॥१२॥ चतुर्दशी के दिन निराहार रहूँगा और हे शम्भो ! मैं फिर दूसरे दिन भोजन करूँगा। हे भवेश्वर ! भुक्ति और मुक्ति की प्राप्ति के लिये आप मेरे शरण (रक्षक) होवें ॥ १३ ॥ पञ्चगव्य और पञ्चामृत से स्नान कराकर अन्तकाल में गुरु का आश्रय ग्रहण करे। "ॐ नमो नमः शिवाय"—इस मन्त्र से गन्धाक्षतादि पूजोपचारों के द्वारा हर का पूजन करना चाहिए ॥१४॥

तिलतण्डुलव्रीहींश्च जुहुयात्सघृतं चरुम् ।
हुत्वा पूर्णाहुतिं दत्त्वा शृणुयाद् गीतसत्कथाम् ॥१५
अर्द्धरात्रे त्रियामे च चतुर्थे च पुनर्यजेत् ।
मूलमन्त्रं तथा जप्त्वा प्रभाते तु समापयेत् ॥१६
अविघ्नेन व्रतं देव त्वत्प्रसादान्मयार्चितम् ।
क्षमस्व जगतां नाथ त्रैलोक्याधिपते हर ॥१७
यन्मयाद्य कृतं पुण्यं यद्रुद्रस्य निवेदितम् ।
त्वत्प्रसादान्मया देव व्रतमद्य समापितम् ॥१८
प्रसन्नो भव मे श्रीमन्गृहं प्रति च गम्यताम् ।
त्वदालोकनमात्रेण पवित्रोऽस्मि न संशयः ॥
भोजयेद्ध्याननिष्ठांश्च वस्त्रच्छत्रादिकं ददेत् ॥१९

देवादिदेव भूतेश लोकानुग्रहकारक ।
यन्मया श्रद्धया दत्तं प्रीयतां तेन मे प्रभु. ॥२०
इति समाप्य च व्रती कुर्य्याद् द्वादशवार्षिकम् ।
कीर्त्तिश्रीपुत्रराज्यादि प्राप्य शैवं पुरं व्रजेत् ॥२१
द्वादशेष्वपि मासेषु प्रकुर्य्यादिह जागरम् ।
व्रती द्वादश सभोज्य दीपदः स्वर्गमाप्नुयात् ॥२२

तिल-तण्डुल—व्रीहि को घृत के सहित चरु बनाकर हवन करे और पूर्णाहुति देकर गीत तथा कथा का श्रवण करे ॥ १५ ॥ अर्धं रात्रि में—तीन प्रहर समाप्त होने पर और चतुर्थ प्रहर में फिर उस महारात्रि में पूजन करना चाहिए । मूल मन्त्र का जाप करता रहे और प्रातःकाल में उसे समाप्त करना चाहिए ॥१६॥ शिव से प्रार्थना करे— हे देव ! आपके ही प्रसाद से मैंने यह व्रत बिना किसी विघ्न बाधा के अर्चित किया है । हे समस्त जगतों के स्वामिन् ! आप तो इस त्रिलोकी के अधिपति हैं हे हर ! मेरी त्रुटियों को क्षमा कर दीजिए ॥१७॥ हे देव ! मैंने जो आज यह पुण्य कार्य किया है और जो कुछ भी मैंने भगवान् रुद्र को अर्पित किया है । यह सभी कुछ आपकी ही कृपा से मैंने साङ्ग समाप्त किया है ॥१८॥ हे श्रीमद ! आप मुझ पर प्रसन्न होइये और अब आप गृह के प्रति गमन करिए । आपके दर्शन मात्र से ही मैं परम पवित्र होगया हू—इसमें तनिक भी संशय नहीं है । इसके पश्चात् जो शिव के ध्यान में एक निष्ठ हों उनको भोजन करावे और वस्त्र एवं छत्र आदि का दान करे ॥१९॥ हे देवों के भी आदि देव ! आप भूतों के ईश हैं और लोकों के ऊपर अनुग्रह करने वाले हैं । मैंने जो कुछ भी श्रद्धा से समर्पित किया है । उससे प्रभु आप मुझ पर प्रसन्न हों ॥ २० ॥ इस प्रकार से इसे समाप्त करे और व्रती को चाहिए कि इस व्रत को बराबर निरन्तर बारह वर्ष तक करे । इसका यह फल होता है कि इस संसार में अतुल कीर्त्ति—श्री—पुत्र और राज्य-वैभव प्राप्त करके अन्त समय में शिव के पुर में वह गमन किया करता है ॥ २१ ॥ यह बारहों मासों में जागरण करे । व्रत करने वाला पुरुष बारह को भोजन कराकर दीप-दान करने वाला स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥२२॥

७८—एकादशी माहात्म्य

मान्धाता चक्रवर्त्यासीदुपोष्यैकादशी नृपः ।
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥१
दशम्येकादशीमिश्रा गान्धार्या समुपोषिता ।
तस्याः पुत्रशतं नष्टं तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥२
दशम्येकादशी यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ।
बहुवाक्यविरोधेन सन्देहो जायते यदा ॥३
द्वादशी तु तदा ग्राह्या त्रयोदश्यान्तु पारणम् ।
एकादशी कलापि स्यादुपोष्या द्वादशी तथा ॥४
एकादशी द्वादशी च विशेषेण त्रयोदशी ।
त्रिमिश्रा सा तिथिर्ग्राह्या सर्वपापहरा शुभा ॥५
एकादशीमुपोष्यैव द्वादशीमथवा द्विज ।
त्रिमिश्राञ्चैव कुर्वीत न दशम्या युता क्वचित् ॥६
रात्रौ जागरणं कुर्वन्पुराणश्रवणं नृपः ।
गदाधरं पूजयंश्च उपोष्यैकादशीद्वयम् ॥
रुक्माङ्गदो ययौ मोक्षमन्ये चैकादशीव्रतम् ॥७

पितामह ने कहा—मान्धाता नाम वाला एक चक्रवर्ती राजा था। वह एकादशी के दिन उपवास किया करता था। दोनों पक्षों की एकादशी के दिन भोजन नहीं करना चाहिए ॥ १ ॥ गान्धारी ने दशमी से मिश्रित एकादशी का उपवास किया था। इसका परिणाम यह हुआ कि उसके पुत्र नष्ट हो गये थे। इसलिये ऐसी एकादशी का वर्जन कर देना चाहिए ॥२॥ दशमी और एकादशी जहाँ पर होती है वहाँ पर हरि सन्निहित होते हैं। जब बहुत से वाक्यों के विरोध से सन्देह हो तो वहाँ पर द्वादशी का ही ग्रहण करना चाहिए अर्थात् द्वादशी के दिन ही उपवास करे और त्रयोदशी में पारण करे अर्थात् व्रत को खोले। एकादशी की एक कला भी हो तो द्वादशी का व्रत करे ॥३।४॥ एकादशी–द्वादशी और विशेष रूप से त्रयोदशी इस प्रकार से त्रिमिश्रा तिथि यदि हो तो उसका ग्रहण करना चाहिए। यह सम्पूर्ण पापों के हरण करने वाली

परम शुभ तिथि हुआ करती है ॥५॥ हे द्विज ! अथवा एकादशी का उपवास करे या द्वादशी का करे । किम्वा निमिश्रित (एकादशी–द्वादशी और त्रयोदशी) तिथि का उपवास करे किन्तु दशमी से युक्त एकादशी का उपवास कभी भी नहीं करना चाहिए ॥६॥ एकादशी के उपवास को कर रात्रि में जागरण करे और पुराणों का श्रवण करे । इस प्रकार से भगवान् गदाधर का पूजन करते हुए मास के दोनों पक्षों की एकादशी का उपवास करना चाहिए ॥७॥

७६—भुक्ति-मुक्तिकर पूजा विधि

येनार्चनेन वै लोको जगाम परमां गतिम् ।
तमर्चनं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिकरं परम् ॥१
सामान्यमण्डलं न्यस्य धातारं द्वारदेशतः ।
विधातारं तथा गङ्गां यमुनाञ्च महानदीम् ॥२
द्वारश्रियञ्च दण्डञ्च प्रचण्डं वास्तुपूरुषम् ।
मध्ये चाधारशक्तिञ्च कूर्मश्चानन्तमर्चयेत् ॥३
भूमिं धर्मं तथा ज्ञानं वैराग्यैश्वर्य्यमेव च ।
अधर्मादींश्च चतुरः कन्दनालञ्च पङ्कजम् ॥४
कर्णिकां केशरं सत्त्वं राजसन्तामसं गुणम् ।
सूर्य्यादिमण्डलान्येव विमलाद्याश्च शक्तयः ॥५
दुर्गां गणं सरस्वतीं क्षेत्रपालञ्च कोणके ।
आसनं मूर्तिमभ्यर्च्य वासुदेवं वलं स्मरम् ॥६
अनिरुद्धं महात्मानं नारायणमथार्चयेत् ।
हृदयादीनि चाङ्गानि शङ्खादीन्यायुधानि च ॥७
श्रियं पुष्टिञ्च गरुडं गुरुं परगुरुं यजेत् ।
इन्द्रादीन्दिक्ष्वधोनागमूर्ध्वं ब्रह्माणमर्चयेत् ॥८
विश्वक्सेनमथैशान्यां प्रोक्तं पूजनमागमे ।
सकृदभ्यर्चितो देवो येनैव विधिपूर्वकम् ॥९
न तस्य सम्भवो भूयः संसारेऽस्मिन्महात्मनः ।
पुण्डरीकाय सम्पूज्य ब्रह्माणञ्च गदाधरम् ॥१०

श्री ब्रह्माजी ने कहा—यह लोक जिस अर्चन के द्वारा परम गति को प्राप्त हुआ था। अब मैं उसी अर्चन के विषय में बतलाता हूं। यह अर्चन परम भुक्ति और मुक्ति के प्रदान करने वाला है ॥ १ ॥ सामान्य मण्डल का न्यास करके द्वार देश पर धाता–विधाता–गंगा और महा नदी यमुना का अर्चन करे द्वार श्री–दण्ड—प्रचण्ड–वास्तु पुरुष–मध्य में आधार शक्ति—कूर्म और अनन्त की अर्चना करे ॥ २।३ ॥ भूमि—धर्म–ज्ञान—वैराग्य—ऐश्वर्य—चार अधर्म आदि–कन्दनाल–पङ्कज—कर्णिका—केशर–सत्व—राजस एवं तामस मुद्र—सूर्यादि मण्डल—विमला आदि शक्तियाँ–दुर्गा—गण और सरस्वती का अर्चन करे। कोण में क्षेत्रपाल—आसन–मूर्ति का अभ्यर्चन करके वासुदेव–बल–स्मर–महान् आत्मा वाले गर्भ रद्ध और इसके अनन्तर नारायण का अर्चन करना चाहिए। हृष्ट आदि अंगों का तथा शङ्ख आदि आयुधों का यजन करे ॥४।५॥ ॥६।७॥ श्री–पुष्टि–गरुड—गुरु और पर गुरु की अर्चना करे। दिशाओं में इन्द्र आदि दिक्पालों का—नीचे के भाग में नाग का और ऊर्ध्व भाग में ब्रह्मा का अर्चन करे ॥ ८ ॥ ऐशानी दिशा में विश्वक्सेन का पूजन आगम में बताया गया है। जिसके द्वारा विधि पूर्वक एक बार समभ्यर्चित देव इस प्रकार से किये गये हों उस पूजा करने वाले महात्मा का जन्म इस संसार में नहीं होता है। पुण्डरीक के लिये ब्रह्मा का और गदाधार का पूजन करना चाहिए ॥९।१०॥

८०—एकादशी व्रत विधान

माघमासे शुक्लपक्षे सूर्यर्क्षेण युता पुरा।
एकादशी तथा चैका भीमेन समुपोषिता ॥१
आश्चर्यन्तु व्रतं कृत्वा पितॄणामनृणोऽभवत्।
भीमद्वादशी विख्याता प्राणिनां पुण्यवर्द्धिनी ॥२
नक्षत्रेण विनाप्येषा ब्रह्महत्यादि नाशयेत्।
विनिहन्ति महापापं कुनृपो विषयं यथा ॥३
कुपुत्रस्तु कुलं यद्वत्कुभार्या च पतिं यथा।
अधर्मश्च यथा धर्मं कुमन्त्री च यथा नृपम् ॥४

अज्ञानेन यथा ज्ञानं शौचताशौचता यथा ।
अश्रद्धया यथा श्राद्धं सत्यञ्चैवानृतैर्यथा ॥५
हिम यथोष्णमाहन्त्यादनर्थं चार्थसञ्चयः ।
यथा प्रकीर्त्तनाद्दान तपो वै विस्मयाद्यथा ॥६
अशिक्षया यथा पुत्रो गावो दूरगतैर्यथा ।
क्रोधेन च यथा शान्तिर्यथा वित्तमवर्द्धनात् ॥७
ज्ञानेनैव यथा विद्या निष्कामेन यथा फलम् ।
तथैव पापनाशाय प्रोक्तेयं द्वादशी शुभा ॥८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—माघ मास म शुक्ल पक्ष में सुय श्रुत (नक्षत्र) से सम्मि त एकादशी पहिले समय में एक भीम ने समुपोषित की थी । अर्थात् एक एकादशी का उपवास किया था ॥१॥ बड़ा ही आश्चर्य है कि इस व्रत को वह करके अपने पितृगण के ऋण से छुटकारा पा गया था । तभी से वह भीम द्वादशी-इस नाम से ससार में प्रसिद्ध हो गई है । यह प्राणियों के पुण्य की वृद्धि करने वाली है ॥२॥ नक्षत्र के बिना भी यह ब्रह्म हत्या आदि महापातकों का नाश कर दिया करती है । जैसे कोई कुत्सित राजा से देश का नाश हो जाता है वैसे ही यह महा पापों का नाश कर दिया करती है ॥३॥ कुपुत्र जिस तरह कुल का नाशक होता है और कुभार्या पति का नाश कर देने वाली होती है तथा अधर्म धर्म का और कुमन्त्री नृप का नाश कर दिया करते हैं ॥४॥ अज्ञान से जैसे ज्ञान का नाश होता है-शौचता अशुचिता को नष्ट कर देती है—अश्रद्धा से श्राद्ध का विनाश होता है और मिथ्या से सत्य नष्ट हो जाया करता है ॥५॥ हिम उष्णता का नाशक होता है—अर्थ का सञ्चय अनर्थता का नाशक है—प्रकीर्तन करने से दान का नाश हो जाता है और विस्मय से तप नष्ट हो जाया करता है ॥६॥ अशिक्षा से पुत्र का नाश होता है । दूर गमन से गौ का नाश होता है—क्रोध से शान्ति का भग हो जाता है—वृद्धि न करने से वित्त का नाश हो जाता है । ७॥ ज्ञान से जैसे विद्या और निष्काम से जैसे फल नष्ट होता है वैसे ही यह शुभ द्वादशी पापों के नाश करने के लिये कही गई है ॥८॥

न चापि नैमिष क्षेत्र कुरुक्षेत्रं प्रभासकम् ।
कालिन्दी यमुना गङ्गा न चैव न सरस्वती ॥९
न चैव सर्वतीर्थानि एकादश्या समो न हि ।
न दान न जपो होमो न चान्य सुकृत क्वचित् ॥१०
एकत पृथिवीदानमेकतो हरिवासर ।
ततोऽप्येका महापुण्या इयमेकादशी वरा ॥११
अस्मिन्वराहपुरुप कृत्वा देवन्तु हाटकम् ।
घटोपरि नवे पात्रे कृत्वा वै ताम्रभाजने ॥१२
सर्ववीजभृतोविन्वा सितवस्त्रावगुण्ठिते ।
सहिरण्यप्रदोपाद्यै कृत्वा पूजा प्रयत्नत ॥१३

नैमिषारण्य का परम पावन क्षेत्र—कुरुक्षेत्र का पवित्र धाम—प्रभास क्षेत्र—कालिन्दी—यमुना—गङ्गा और सरस्वती जैसे अत्यन्त पावन तीर्थ एवं अन्य भी समस्त महान् तीर्थ मिलकर भी इस एकादशी के समान नहीं हैं। इस एकादशी की समता रखने वाले जप—दान—तप—होम और अन्य कोई भी कहीं सुकृत् ऐसा नहीं है ॥९।१०।११॥ एक ओर तो इस सम्पूर्ण मही मण्डल के दान का पुण्य—फल और एक ओर हरिवासर है। इनसे भी महान् पुण्य वाली यह परम श्रेष्ठ एक एकादशी होती है ॥१२॥ इस घट के ऊपर नवीन ताम्र के पात्र मे वराह पुरुष देव की स्वर्ण की मूर्ति बना कर रखे ॥१३॥ समस्त बीजों के धारण करने वाले और सित वस्त्र से अवगुण्ठित करे। हिरण्य प्रदीप आदि के सहित प्रयत्न पूर्वक पूजा करे ॥१४॥

वराहाय नम पादौ क्रोडाकृति नम कटिम् ।
नाभि गभीरघोषाय उर श्रीवत्सधारिणे ॥१४
बाहु सहस्रशिरसे ग्रीवा सर्वेश्वराय च ।
मुख सर्वात्मने पूज्य ललाट प्रभवाय च ॥१५
केशा. शतमयूखाय पूज्या देवस्य चक्रिण ।
विधिना पूजयित्वा तु कृत्वा जागरण निशि । १६

श्रुत्वा पुराणं देवस्य माहात्म्यप्रतिपादकम् ।
प्रातर्विप्राय दत्त्वा च याचकाय शुभाय तत् ॥१७
कनकक्रोडसहितं सन्निवेद्य परिच्छदम् ।
पश्चात्त पारणं कुर्यान्नातितृप्तं सकृद्व्रती ॥१८
एवं कृत्वा नरो विद्वान्न भूयः स्तनपो भवेत् ।
उपोष्यैकादशीं पुण्यां मुच्यते वै ऋणत्रयात् ॥
मनोऽभिलषितावाप्तिं कृत्वा सर्वव्रतादिकम् ॥१९

"वराहाय नमः"—इससे चरणों का पूजन करे— क्रोडाकृति नमः'— इससे कटि का यजन करे— गम्भीर घोषाय नमः'—इससे नाभिका— 'श्री वत्स धारिणे नमः'—इससे उर का यजन करे ॥१४॥ 'सहस्र शिरसे नमः'—इससे बाहु को— 'सर्वेश्वराय नमः'—इस मन्त्र से ग्रीवा को— सर्वात्मने नमः'—इस मन्त्र से मुख को— प्रभवाय नमः'—इससे ललाट की पूजा करनी चाहिए ॥ १५ ॥ 'शतमयूखाय नमः'—इस मन्त्र से चक्री देव के केशों का यजन करे। इस प्रकार से विधि पूर्वक अर्चना करके रात्रि में जागरण करे ॥ १६ ॥ देव के माहात्म्य का प्रतिपादन करने वाले पुराण का श्रवण करे। प्रातःकाल के होने पर किसी याचना करने वाले परम शुभ विप्र के लिये कनक की क्रोड के सहित परिच्छद युक्त उसको सन्निवेदित कर दान करे। इसके पीछे पारण करे किन्तु सकृद् व्रत करने वाला अत्यन्त तृप्ति पूर्वक पारण नहीं करे ॥१७।१८॥ इस प्रकार से इस व्रत को साङ्ग सम्पन्न करने वाला पुरुष पुनः शरीर को धारण करने वाला नहीं होता है। इस परम पुण्यमयी एकादशी का उपवास करके मनुष्य तीनों ऋणों से छुटकारा पा जाया करता है। इस सम्पूर्ण रात्रि को करके मनुष्य समस्त अभिलषितों की प्राप्ति किया करता है ॥१९॥

८१—विविध व्रत कथन

व्रतानि व्यास वक्ष्यामि यैस्तुष्टः सर्वदो हरिः ।
शास्त्रोदितो हि नियमो व्रतं तच्च तपो मतम् ॥१
नियमास्तु विशेषाः स्युर्व्रतस्यास्य दमादयः ।
नित्यं त्रिषवणं स्नायादधःशायी जितेन्द्रियः ॥२

स्त्रीशूद्रपतितानां तु वर्जयेदभिभाषणम् ।
पवित्राणि च पञ्चैव जुहुयाच्चैव शक्तितः ॥३
कृच्छ्राण्येतानि सर्वाणि चरेत्सुकृतवान्नरः ।
केशानां रक्षणार्थन्तु द्विगुणं व्रतमाचरेत् ॥४
कांस्यं माषं मसूरञ्च चणकं कोरदूषकम् ।
शाकं मधु परान्नञ्च वर्जयेदुपवासवान् ॥५
पुष्पालङ्कारवस्त्राणि धूपगन्धानुलेपनम् ।
उपवासेन दुष्येत्तु दन्तधावनमञ्जनम् ॥६
दन्तकाष्ठं पञ्चगव्यं कृत्वा प्रातर्व्रतञ्चरेत् ।
असकृज्जलपानाच्च ताम्बूलस्य च भक्षणात् ॥
उपवासः प्रदुष्येत दिवास्वप्नाच्च मैथुनात् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे व्यास देव ! अब हम उन व्रतों के विषय में वर्णन करेंगे जिनके करने से भगवान् हरि पूर्णतया सन्तुष्ट होकर सभी कुछ प्रदान किया करते हैं। यह शास्त्रों में बताया हुआ नियम है और यह व्रत एक प्रकार का परम तप माना गया है ॥१॥ व्रत करने के पूरे वर्ष के लिये यमादि कुछ विशेष नियम होते हैं। इसमें नित्य ही तीन बार दिन में स्नान कर सन्ध्या वन्दना त्रिकाल किया करे-भूमि में शयन करे और समस्त इन्द्रियों को जीतकर अपने वश में करे ॥ २ ॥ स्त्री—शूद्र और पतित पुरुषों के साथ अभिभाषण नहीं करे। पाँचों पवित्रों को अपनी शक्ति के अनुसार हवन करे ॥३॥ सुकृती पुरुष को इन सम्पूर्ण कृच्छ्रों का समाचरण करना चाहिए। केशों की रक्षा के लिये द्विगुण व्रत करना चाहिए ॥४॥ उपवास करने वाले पुरुष को कांस्य पात्र-माष (उर्द)-मसूर-चना-कोर दूषक-शाक-मधु-पराया अन्न इन सबका त्याग कर देना चाहिए ॥५॥ पुष्प-अलङ्कार—नवीन वस्त्र-धूप—गन्ध—अनुलेपन-दन्त धावन और अञ्जन ये समस्त पदार्थ उपवास में दूषित करने वाले हैं ॥ ६ ॥ दन्तकाष्ठ और पञ्चगव्य करके प्रातःकाल में व्रत का चरण करे। बार-बार जल-पान करने से और एकबार ताम्बूल के भक्षण करने से—दिन में सोने से

और प्रश्न मैथुन से उपवास दूषित हो जाया करता है। अतः ये सभी काम नहीं करे ॥७॥

क्षमा सत्य दया दान शौचमिन्द्रियनिग्रह ।
देवपूजाग्निहवने सन्तोषास्तेयमेव च ॥८
सर्वव्रतेष्वय धर्म सामान्यो दशधा स्मृत ।
नक्षत्रदर्शनान्नक्तमनक्त निशि भोजनम् ॥९
गोमूत्रञ्च पल दद्यादर्द्धाङ्गुष्ठन्तु गोमयम् ।
क्षीर सप्तपल दद्याद्दध्नश्चैव पलत्रयम् ॥१०
घृतमेकपल दद्यात्पलमेक कुशोदकम् ।
गायत्र्या चैव गन्धेति आप्यायस्व दधिग्रह ॥
तेजोऽसीति च देवस्य ब्रह्मकृच्छ्रव्रत चरेत् ॥११
अग्न्याधान प्रतिष्ठान्तु यज्ञदानव्रतानि च ।
वेदव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखला ॥
माङ्गल्यमभिषेकञ्च मलमासे विवर्जयेत् ॥१२

क्षमा—सत्य—दया—दान—शौच—इन्द्रियों का निग्रह—देव पूजा—अग्नि में हवन—सन्तोष और अस्तेय—इन समस्त व्रतों में सामान्य धर्म दश प्रकार का होना है। नक्षत्रों के दर्शन से नक्त होना है। रात्रि में अनक्त भोजन करे ॥८।९॥ गोमूत्र एक पल देवे और आधा अँगूठा के बराबर गोमय देवे—सात पल क्षीर और तीन पल दधि देना चाहिए ॥१०॥ घृत एक पल—एक पल कुशोदक देवे। गायत्री से और 'गन्ध'—इत्यादि मन्त्र से दधि ग्रह को आप्यायित करे। 'तेजोऽसि'—इस मन्त्र से देव का ब्रह्म कृच्छ्र व्रत का चरण करना चाहिए ॥११॥ अग्न्याधान—प्रतिष्ठा—यज्ञ—दान—व्रत—वेद व्रत—वृषोत्सर्ग—चूडाकरण—मेखला—माङ्गल्य और अभिषेक ये कार्य मलमास में वर्जित कर देने चाहिए ॥१२॥

दर्शाद्दर्शस्य चान्तः स्यात्त्रिंशाहोभिस्तु सावन: ।
रविसङ्क्रमणात्सौरो नाक्षत्र. सप्तविंशति ॥१३
सौरो मासो विवाहाय यज्ञादौ सावनस्थिति: ।

८२—दष्टोद्धरण पंचमी व्रत

वक्ष्ये प्रतिपदादीनि व्रतानि व्यास शृण्वथ ।
वैश्वानरपद याति शिखिव्रतमिद स्मृतम् ॥
प्रतिपद्येकभक्ताशी समाप्ते कपिलाप्रद ॥१
चैत्रादौ कार्येच्चैत्र ब्रह्मपूजा यथाविधि ।
गन्धपुष्पार्चनैर्दानैर्माल्यादिभिर्मनोरमै. ॥
सहोमै. पूजयेद्देव सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥२
कार्तिके तु सितेऽष्टम्या पुष्पहारेण वत्सरम् ।
पुष्पादिदाता रूपेप्सु रूपभागी भवेन्नर ॥३
कृष्णपक्षे तृतीयाया श्रावणे श्रीधर श्रिया ।
व्रती सवस्त्रा शय्याञ्च फल दद्याद् द्विजातये ॥४
शय्या दत्त्वा प्रार्थयेच्च श्रीधराय नम श्रिये ।
उमा शिव हुताशञ्च तृतीयायाञ्च पूजयेत् ॥५
हविष्यमन्न नैवेद्य देय मदनक तथा ।
चैत्रादौ फलमाप्नोति उमया मे प्रभाषितम् ॥६
फाल्गुनादितृतीयाता लवण यस्तु वर्चयेत् ।
समाप्ते शयन दद्याद् गृहञ्चोपस्करान्वितम् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे व्यास देव ! अब मैं प्रतिपदा आदि के व्रतों को बतलाता हूं । तुम इनका श्रवण करो । यह शिखि व्रत इस नाम से कहा गया है । इसके करने से वैश्वानर के पद को प्राप्त होता है । प्रतिपदा तिथि में एक भक्त अशन करने वाला होवे । व्रत के समाप्त होने पर कपिला गौ का दान करे ॥१॥ चैत्र आदि मास मे विधि पूर्वक ब्रह्म पूजा करावे । गन्ध—पुष्प आदि के द्वारा अर्चना से—दान से—परम सुन्दर माल्यादि से और होम के द्वारा देव का यजन करे । इससे मनुष्य अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त किया करता है ॥२॥ कार्तिक मास में सित पक्ष मे अष्टमी तिथि के दिन पुष्पों के हार से यजन करे और वत्सर पर्यन्त पुष्प आदि का दान करने वाला पुरुष रूप—लावण्य की

इच्छा रखने वाला मनुष्य रूप को प्राप्त किया क ता है ॥ ३ ॥ कृष्ण पक्ष मे श्रावण माम की तृतीया म श्री से युक्त भगवान् श्रीधर का अर्चन करे और व्रती को वस्त्रो से समन्वित शय्या तथा फल ब्राह्मण को दान देवे ॥४॥ शय्या का दान करके प्रार्थना करे—श्रीधर श्री के लिये नमस्कार है। और तृतीया मे उमा—शिव और हुताश की पूजा करनी चाहिए ॥५॥ चैत्रादि म हविष्य अन्न नैवेद्य और मदनक का दान करना चाहिए। इसका करने वाला फल की प्राप्ति करता है। यह उमा से मेरा प्रभाषित है। ६॥ फाल्गुन से आदि लेकर तृतीया के अन्त तक जो लवण को वर्जित कर देता है और इस व्रत की समाप्ति होने पर शय्या का दान करे तथा समस्त सामान म समर्पित गृह का दान करे ।७।

सपूज्य विप्रमिथुन भवानि प्रीयतामिति ।
गौरी लाके वसन्नित्य सौभाग्यकरमुत्तमम् ॥८
गौरी काली उमा भद्रा दुर्गा कान्ति सरस्वती ।
मङ्गला वैष्णवी लक्ष्मी शिवा नारायणी क्रमात् ॥
मार्गतृतीयामारभ्य अवियोगादि चाप्नुयात् ॥९
चतुर्थ्यां सितमाघादौ निराहारो व्रतान्वित ।
दत्त्वा तिलास्तु विप्राय स्वय भुङ्क्ते तिलोदकम् ॥
वर्षद्वय समाप्तिश्च निर्विघ्नादि समाप्नुयात् ॥१०
ग स्वाहा मूलमन्त्रोऽय प्रणवेन समन्वित ।
ग्लौ ग्ला हृदये गा गी गू हु ह्रीं ह्रीं शिर शिखा ॥
गू वर्म गाश्च गौ नेत्र गाश्च आवाहनादिषु ॥११
आगच्छोल्काय गन्धोल्क पुष्पोल्कधूपकोल्कव ।
दीपोल्काय महोल्काय बलिश्चाथ विसर्जनम् ॥१२
सिद्धोल्काय च गायत्री न्यासोऽङ्गुष्ठादिरीरित ।
ॐ महाकर्णाय विद्महे वक्रतुण्डाय
धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥१३॥
पजयत्तिलहोमैश्च एते पूज्या गणास्तथा ।

गणाय गणपतये स्वाहा कूष्माण्डकाय च ॥
श्रमोघोल्कायैकदन्ताय त्रिपुरान्तकरूपिणे ॥१४

विप्र के जोड़े का भली भाँति पूजन कर प्रार्थना करे—हे भवानि ! आप प्रसन्न होइये। इससे गौरी के लोक मे नित्य ही वह निवास किया करता है और यह उत्तम सौभाग्य के करने वाला होता है ॥८॥ गौरी—काली—उमा-भद्रा—दुर्गा—कान्ति—सरस्वती—मङ्गला—वैष्णवी—लक्ष्मी—शिवा और नारायणी—इनका क्रम से अर्चन करे। मार्ग शीर्ष की तृतीया से इसका आरम्भ करे। इससे अवियोग आदि की प्राप्ति करता है ॥९॥ माघादि म सित पक्ष म चतुर्थी तिथि के दिन व्रत से युक्त होकर निराहार रहे। विप्र को तिलो का दान करके स्वय तिलोदक का भोजन करे। इस व्रत की समाप्ति दो वर्ष मे होती है। इस निर्विघ्न होकर समाप्त करे ॥१०॥ प्रणव स युक्त 'ग-स्वाहा'—यह इसका मूल मन्त्र होता है। ग्लौ—ग्ला—इसका हृदय मे न्यास करे। इसका शिर मे न्यास करे। हू—ह्रौ—ह्री—इसका शिखा मे न्यास करे। गा—गी—गू—वर्म है,गो और गी नेत्र हैं और गो—यह आवाहन आदि मे है ॥११॥ उल्कलिये गन्धोल्क पुष्पोल्क धूपकोल्क माओ, दीपोल्क महोल्क के लिये इसके अनन्तर बलि का विसर्जन करे। सिद्धोल्क लिय गायत्री तथा अगुष्ठादि ईरित न्यास है। मन्त्र यह है—ॐ महाकर्णाय विद्महे वक्र तुण्डाय धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥१२।१३॥ ये गण तिल होमो के द्वारा पूजे जाने चाहिए। 'गणाय गणपतये-कूष्माण्डकाय च स्वाहा—अमोघोल्काय, एकदन्ताय, त्रिपुरान्तकारिणे स्वाहा'—मन्त्र से होम करे ॥१४॥

ॐ श्यामदन्तविकरालास्याहवेशाय वै नमः।
पद्मदंष्ट्राय स्वाहान्तमुद्रा वै नर्त्तनं गणे ॥
हस्ततालश्च हसन सौभाग्यादिफल भवेत् ॥१५
मार्गशीर्षे तथा शुक्लचतुर्थ्यां पूजयेद् गणम्।
मर्त्यं प्राप्नोति विद्या श्रीकीर्त्यायु पुनसन्ततिम् ॥१६
सोमवारे चतुर्थ्याञ्च समुपोष्यार्चयेद् गणम्।
जपश्च स्मरन्नित्य स्वर्गं निर्विघ्नना व्रजेत् ॥१७

यजेच्छुक्लचतुर्थ्यां य खण्डलड्डुरमोदकै ।
विघ्नाचनन सर्वान्वै कामान् सौभाग्यमाप्नुयात् ॥
पुत्रादिक मदनकैर्मदनारया चतुर्थ्यपि ॥१८
ॐ गणपतय नम चतुर्थ्यन्त यजेद् गणम् ।
मासे तु यस्मिन्कस्मिंश्चिज्जुहुयाद् वा जपेत्स्मरेत् ॥
सर्वान्कामानवाप्नोति सवविघ्नविनाशनम् ॥१६
विनायक मूर्त्तिकाद्य यजेदेभिश्च नामभि ।
सोऽपि सद् गतिमाप्नोति स्वगमाक्षसुखानि च ॥२०
गणपूज्य एकदन्ती वक्रतुण्डश्च त्र्यम्बक ।
नीलग्रीवा लम्बादरो विकटा विघ्नराजक ॥
धूम्रवर्णो बालचन्द्रा दशमस्तु विनायक ॥२१
गणपतिर्हस्तिमुखो द्वादश वै यजेद् गणम् ।
पृथक्समस्त मधावी सर्वान्कमानवाप्नुयात् ॥२२

'ॐ श्याम द त विकरालास्या हवशाय वै नम '— 'पद्मदष्ट्राय स्वाहा'— इन मन्त्रो से मन्त मुद्रा कर गण में नर्तन कर । हाथो म ताली बजाकर हास्य कर तो सौभाग्य आदि क फल का भागी होता है ॥१५॥ मार्ग शीर्ष मास मे शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तिथि में गण की पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार से एक वर्ष पयन्त करे तो विद्या—श्री—कीर्त्ति—आयु और पुत्र सन्तति को मनुष्य प्राप्त किया करता है ॥ १६ ॥ सोमवार क दिन चतुर्थी तिथि म उपवास करके गण का अचन करे । जप—हवन—स्मरण नित्य करता हुआ पुरुष बिना किसी विघ्न—बाधा के स्वर्ग की प्राप्ति करता है ॥ १७ ॥ शुक्ल पक्ष की चतुर्थी के दिन यजन करना चाहिए और वह खाँड व लड्डू तथा मोदको से करे । विघ्नाचन स मनुष्य समस्त कामा को और सौभाग्य को प्राप्त करता है । मदनकों से यजन करे तो पुत्र आदि को प्राप्त करता है । अतएव इस चतुर्थी का नाम मदनारया है ॥ १८ ॥ 'ॐ गणपतय नम —इस मन्त्र से चतुर्थ्यन्त गण का यजन करे । जिस किसी भी मास म हवन करे—जप करे तथा इसका स्मरण करे । ऐसा करने से सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओ के फल प्राप्त होत हैं और सब विघ्नो का

नाश हो जाता है ॥ १९ ॥ सम्पूर्ण मूर्तियों में आद्य भगवान् विनायक या इन उक्त नामों के द्वारा यजन करना चाहिए। वह पुरुष भी सद्गति को प्राप्त करता है और स्वर्ग-निवास के समस्त सुखों का उपभोग करता है तथा मोक्ष की प्राप्ति किया करता है। २०॥ वे दश नाम ये हैं—गणों के परम पूज्य-एकदन्तो-वक्र तुण्ड-त्र्यम्बक-नील ग्रीव-लम्बोदर-विकट-विघ्न राजक-धूम्र वर्ण-भाल चन्द्र और दशवाँ नाम इनका विनायक होता है। गणपति—हस्ति मुख ये दो नाम और हैं। इनसे द्वादश गण का यजन करे। चाहे पृथक्-पृथक् इनका यजन करे या समस्तों का एक साथ ही पूजन करे तो मेधावी पुरुष समस्त अभीष्ट काम-नाओं की प्राप्ति किया करता है ॥२१।२२॥

श्रावणे चाश्विने भाद्रे पञ्चम्यां कार्त्तिके शुभे।
वासुकिस्तक्षकश्चैव कालीयो मणिभद्रकः ॥२३
ऐरावतो धृतराष्ट्रः कर्कोटकधनञ्जयौ।
घृताद्यैः स्नापिता ह्येते आयुरारोग्यस्वर्गदाः ॥२४
अनन्तं वासुकिं शङ्खं पद्मं कम्बलमेव च।
तथा कर्कोटकं नागं धृतराष्ट्रञ्च शङ्खकम् ॥२५
कालीयं तक्षकञ्चापि पिङ्गलं मासि मासि च।
यजेद्भाद्रसिते नागानष्टौ भुक्त्वा दिवं व्रजेत् ॥२६
द्वारस्योभयतो लेख्या श्रावणे तु सिते यजेत्।
पञ्चम्यां पूजयेन्नागाननन्ताद्यान्महोरगान् ॥२७
क्षीरं सर्पिश्च नैवेद्यं देयं सर्वविषापहम्।
नागा अभयहस्ताश्च दष्टोद्धरणपञ्चमी ॥२८

श्रावण मास में-आश्विन की महीने में-भादों में या शुभ कार्तिक मास में पञ्चमी तिथि के दिन वासुकि—तक्षक—कालीय-मणि भद्रक-ऐरावत धृत-राष्ट्र—कर्कोटक और धनञ्जय इनको घृत आदि से स्नापित करके यजन करे तो आयु—आरोग्य और स्वर्ग के प्रदान करने वाले हुआ करते हैं ॥२३।२४॥ अनन्त-वासुकि-शङ्ख-पद्म-कम्बल—कर्कोटक-धृतराष्ट्र-शङ्खक—कालीय-तक्षक और पिंगल नाग का भाद्रपद के सित पक्ष में और प्रत्येक मास-मास में यजन

करे तो आठ नागों का मोचन कर मनुष्य दिवलोक का गमन करता है ॥ २५॥२६ ॥ गृह के द्वार के दोनों ओर इनका आलेखन करे और श्रावण मास के शुक्ल पक्ष में यजन करे। अनन्त आदि नागों तथा महान् उरगों का पञ्चमी तिथि में पूजन करना चाहिए ॥२७॥ समस्त प्रकार के विषों के अपहरण करने वाले क्षीर—घृत और नैवेद्य का समर्पण करे। समस्त नाग अभय हस्त वाले होते हैं। यह दष्ट किये हुओं के उद्धरण करने वाली पञ्चमी होती है ॥२८॥

८३—सप्तमी आदि के व्रत

एवं भाद्रपदे मासि कार्त्तिकेयं प्रपूजयेत् ।
स्नानदानादिकं सर्वमस्यामक्षय्यमुच्यते ॥
सप्तम्यां प्राशयेच्चापि भोज्यं विप्रान् रविं यजेत् ॥१
ॐ खखोल्कायमृतत्व प्रियसङ्गमो भव सदा स्वाहा ।
अष्टम्यां पारणं कुर्यान्मरिचं प्राश्य स्वर्गभाक् ॥२
सप्तम्यां नियतः स्नात्वा पूजयित्वा दिवाकरम् ।
दद्यात्फलानि विप्रेभ्यो मार्तण्डः प्रीयतामिति ॥३
खर्जूरं नारिकेलं वा प्राशयेन्मातुलुङ्गकम् ।
सर्वे भवन्तु सफला मम कामाः समन्ततः ॥४
सम्पूज्य देवं सप्तम्यां पायसेनाथ भोजयेत् ।
विप्रांश्च दक्षिणां दत्वा स्वयञ्चाथ पयः पिबेत् ॥५
भक्ष्यं चोष्यं तथा लेह्यं ओदनेति प्रकीर्त्तितम् ।
धनपुत्रादिकामस्तु त्यजेदेतदनोदनं ॥६
वाय्वाशी विजयेच्छुश्च कुर्याद्विजयसप्तमीम् ।
अद्यादर्कञ्च कामेच्छुरुपवासेत कामदम् ॥७
गोधूममाषयववष्टिककांस्यपात्र पाषाणपिष्टमधुमैथुनमद्यमांसम् ।
अभ्यञ्जनाञ्जनतिलांश्च विवर्जयेद्यः
तस्योषितं भवति सप्तसु सप्तमीषु ॥८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसी प्रकार से भाद्र पद मास में स्वामि कार्तिकेय का पूजन करना चाहिए। स्नान-दान आदि सब इसमें अक्षय्य हो जाता है। सप्तमी में परमोत्तम भोज्य पदार्थ ब्राह्मणों को खिलावे और रवि का यजन करे ॥१॥ इसके यजन करने का मन्त्र—'ॐ खखोल्कायामृतत्व प्रियसङ्गमो भव सदा स्वाहा'—यह होता है। फिर अष्टमी के दिन पारणा करे अर्थात् उपवास के व्रत को खोले। मरिच का प्राशन करके स्वर्ग के निवास का फल प्राप्त करता है। इतिमरिच सप्तमी ॥ २ ॥ सप्तमी तिथि में नियत रूप से स्नान करके भगवान् दिवाकर का पूजन करे और इसके अनन्तर भगवान् मार्तण्ड मुझ पर प्रसन्न हो यह कहकर विप्रो को फल देवे। खजूर अथवा नारियल या मातुलुङ्ग का प्राशन करावे और यह प्रार्थना करे कि मेरे समस्त काम सभी ओर से सफल होवें ॥३।४॥ इति फल सप्तमी विधानम्। सप्तमी के दिन देव का भली-भाँति पूजन करके विप्रों को पायस (खीर) से भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा समर्पित करे। इसके पश्चात् स्वयं भी पय का पान करे ॥ ५ ॥ भक्ष्य-चोष्य और लेह्य ओदन—यह कहा गया है। धन और पुत्र आदि की कामना रखने वाला इसका त्याग कर देवे और अनोदन रहे ॥ ६ ॥ इति अनोदन सप्तमी विधानम्। जो विजय की इच्छा रखने वाला हो वह वायु का अशन करता हुआ विजय सप्तमी को करे और अर्क का अदन करे। कामेच्छु कामद का उपवास करे ॥ ७ ॥ गोधूम (गेंहू)—माष (उर्द)—यव (जौ)—षष्टिक और काँसे के पात्र—पाषाण पिष्ट मधु—मैथुन—मदिरा—माँस—अभ्यञ्जन—अञ्जन और तिल इन सबका त्याग कर देवे तो उसका उपवास सात सप्तमियों में होता है ॥८॥

८४—रोहिणी अष्टमी व्रत

ब्रह्मन् भाद्रपदे मासि शुक्लाष्टम्यामुपोषितः।
दूर्वां गौरीं गणेशञ्च फलपुष्पैः शिवं यजेत् ॥१
फलव्रीह्यादिकरणैः शम्भवे नमः शिवाय च।
त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि ह्यष्टमी सर्वकामभाक् ॥
अनग्निपक्वमश्नीयान्मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥२

कृष्णाष्टम्याञ्च रोहिण्यामर्द्धरात्रेऽर्चनं हरे ।
कार्य्या विद्धापि सप्तम्या हन्ति पापं त्रिजन्मकम् ॥३
उपोषितोऽर्चयेन्मन्त्रैस्तिथिभान्ते च पारणम् ।
योगाय योगपतये गोविन्दाय नमो नमः ॥४
स्नानमन्त्रः । यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये
यज्ञसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः ।
अर्चनमन्त्रः । विश्वाय विश्वेश्वराय
विश्वपतये गोविन्दाय नमो नमः ॥५
शयनमन्त्रः । सर्वाय सर्वेश्वराय सर्वपतये
सर्वसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः ।
स्थण्डिले पूजयेद्देवं सचन्द्रां रोहिणीन्तथा ॥६
शङ्खे तोयं समादाय सपुष्पफलचन्दनम् ।
जानुभ्यामवनीं गत्वा चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! भाद्रपद मास मे शुक्ल पक्ष की अष्टमी मे उपवास करके दूर्वा–गौरी—गणेश और शिव का फल तथा पुष्पों से यजन करे ॥१॥ फल और व्रीहि आदि उपकरणों के द्वारा शम्भु के लिये और शिव के लिये नमस्कार है । हे दूर्वे ! तुम अमृत जन्मा हो । यह अष्टमी समस्त कामनाओं के फल देने वाली है । जो अग्नि मे पक्व न हो उसका अशन करे तो ब्रह्महत्या से भी मोचन हो जाया करता है ॥ २ ॥ इति दूर्वाष्टमी विधानम् । कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में जबकि रोहिणी नक्षत्र हो, अर्ध रात्रि के समय में भगवान् हरि का अर्चन करे । सप्तमी तिथि से विद्धा अष्टमी तिथि को यजन करे तो तीन जन्मों के पापों का हनन होता है ॥ ३ ॥ उपोषित होकर तिथि तथा नक्षत्र के अन्त मे मन्त्रों से अर्चना करनी चाहिए और फिर पारणा करे । योग के लिये–योग पति के लिये और गोविन्द के लिये बारम्बार नमस्कार है ॥४॥ ।५। स्नान का मन्त्र यह है–"यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये यज्ञ सम्भवाय गोविन्दाय नमो नम." । अर्चना का मन्त्र यह है–"विश्वाय विश्वेश्वराय विश्व पतये गोविन्दाय नमो नम." । शयन का मन्त्र यह है—"सर्वाय सर्वेश्वराय सर्वपतये सर्व

सम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः"। स्थण्डिल में देव का पूजन करे तथा चन्द्र सहित रोहिणी का पूजन कर ॥६॥ शङ्ख में जल भरकर पुष्प फल और चन्दन उसमें मिलावे। घुटनों के बल भूमि पर बैठ कर चन्द्रदेव के लिये अर्घ्य निवेदित करे ॥ ७ ॥

क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव।
गृहाणार्घ्यं शशाङ्केम रोहिण्या सहितो मम ॥८
श्रियै च वसुदेवाय नन्दाय च बलाय च।
यशोदायै ततो दद्यादर्घ्यं फलसमन्वितम् ॥९
अनघं वामनं शौरिं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम्।
वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधुसूदनम् ॥१०
वराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं दैत्यसूदनम्।
दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुडध्वजम् ॥११
गोविन्दमच्युतं देवमनन्तमपराजितम्।
अधोक्षजं जगद्बीजं स्वर्गस्थित्यन्तकारणम् ॥१२
अनादिनिधनं विष्णुं त्रिलोकेशं त्रिविक्रमम्।
नारायणं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥१३
पीताम्बरधरं दिव्यं वनमालाविभूषितम्।
श्रीवत्साङ्कं जगद्धाम श्रीपतिं श्रीधरं हरिम् ॥१४
यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत्।
भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥
नामान्येतानि संकीर्त्य गत्यर्थं प्रार्थयेत्पुनः ॥१५

चन्द्र देव को अर्घ्य समर्पित करने के समय में प्रार्थना करे—हे क्षीर सागर से जन्म ग्रहण करने वाले देव! आपका समुद्भव अत्रि मुनि के नेत्रों से हुआ है। हे शश के अङ्क वाले देव! आप रोहिणी अपनी भार्या के सहित मेरे इस समर्पित अर्घ्य को ग्रहण करें ॥८॥ इसके अनन्तर श्री के लिये—वसुदेव को—नन्द को—बलराम को और यशोदा के लिए फलों से समन्वित अर्घ्य समर्पित करना चाहिए ॥९॥ अघ से रहित—वामन—शौरि—वैकुण्ठ—पुरुषोत्तम—वासुदेव—

हृषीकेश–माधव–मधुसूदन–वराह–पुण्डरीक के समान नेत्रों वाले–नृसिंह–दैत्य सूदन—दामोदर—पद्मनाभ—केशव—गरुड़ध्वज–गोविन्द–प्रद्युम्न– अनन्तदेव–अपराजित—अधोक्षज–जगत् के बीज अर्थात् कारण स्वरूप–इसलोक का सृजन स्थिति और अन्त करने वाले–आदि और निधन से रहित–तीनों लोकों के ईश–त्रिविक्रम—विष्णु—नारायण–चार बाहुओं वाले–शङ्ख–चक्र और गदा के धारण करने वाले—पीत अम्बर के धारण करने वाले–दिव्य वनमाला से विभूषित–श्री वत्स का अङ्क धारण करने वाले—जगत् के धाम–श्री के स्वामी–श्रीधर–हरि और जिस देव को देवी देवकी ने वसुदेव से समुत्पन्न किया था जो भौम ब्रह्म की गुप्ति के लिये स्थित हैं उन ब्रह्मात्मा के लिये मेरा नमस्कार है ।। १० से १५।।

त्राहि मा सर्वपापघ्न दुःखशोकार्णवात्प्रभो ।।१६
देवकीनन्दन श्रीश हरे संसारसागरात् ।
दुर्वृत्तांस्त्रायसे विष्णो ये स्मरन्ति सकृत्सकृत् ।।
सोऽहं देवातिदुर्वृत्तस्त्राहि मा शोकसागरात् ।।१७
पुष्कराक्ष निमग्नोऽहं महत्यज्ञानसागरे ।
त्राहि मा देवदेवेश त्वामृतेऽन्यो न रक्षिता ।।१८
स्वजन्मवासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ।।]
शान्तिरस्तु शिवञ्चास्तु धनविख्यातिराज्यभाक् ।।१९
त्राहि मा देवदेवेश हरे संसारसागरात् ।

इन उपर्युक्त शुभ भगवन्नामों का सकीर्तन करके फिर सुगति प्राप्त करने के लिये प्रार्थना करे—हे देवकी के नन्दन आप श्री के स्वामी हैं और समस्त सांसारिक दुःख एवं पापों के हरण करने वाले हैं। हे विष्णो! जो आपका एक-एक बार भी स्मरण करता है वह चाहे कैसा भी दूषित आचार एवं चरित्र वाला हो उसको प्रभु इस संसार रूपी सागर से तार दिया करते हैं। हे देव! मैं भी अत्यन्त दुर्वृत्त अर्थात् दुष्ट चरित्र वाला हूँ। आप मुझको शोक के सागर से सुरक्षित करें ।।१६।१७।। हे पुष्कर (कमल) के समान नेत्रों वाले! मैं इस

महान् अज्ञान के समुद्र में निमग्न हो रहा हूँ। हे देवों के भी देव स्वामिन्! मेरा त्राण करो। आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी रक्षा करने वाला नहीं है ॥१८॥ अपना जन्म धारण करके ही आप वासुदेव हुए हैं—आप सदा गौ और ब्राह्मणों के हित सम्पादन करने वाले हैं। आप इस सम्पूर्ण जगत् के हित करने वाले हैं। ऐसे गोविन्द कृष्ण आपके लिए बारम्बार प्रणाम है। सबत्र शान्ति होवे–शिव अर्थात् मङ्गल होवे और धन तथा विशेष ख्याति और राज्य की प्राप्ति करने वाला होवे ॥१९॥

८५—बुधाष्टमी व्रत

नक्ताशी त्वष्टमी यावद्वर्षान्ते चैव धेनुद ।
पौरन्दरपद याति सद् गतिश्च व्रतेऽच्युत ॥१
शुक्लाष्टम्यां पौषमासे महारुद्रं ति साधु वै ।
मत्प्रीतये व्रतकृत शतमाहृत्निक फलम् ॥२
अष्टमी बुधवारेण पक्षयोरुभयोर्यदा ।
भविष्यति तदा तस्या व्रतमेतत्कथा पुरा ॥
तस्या नियमकर्त्तारो न स्यु खण्डितसम्पद ॥३
तण्डुलस्याष्टमुष्टीना वर्जयित्वाऽङ्गुलिद्वयम् ।
भक्त सद्भक्तिश्रद्धाभ्या मुक्तिकामी हि मानव ॥४
आम्रपत्रपुटे कृत्वा यो भुक्ते कुशवेष्टिते ।
चलम्बिकाम्लिकोपेत काम्य तस्य फल भवेत् ॥५
बुध पञ्चोपचारेण पूजयित्वा जलाशये ।
शक्तितो दक्षिणा दद्यात्कर्करी तण्डुलान्विताम् ॥६
बु बुधायेति बीज स्यात्स्वाहान्त कमलादिक ।
बाणचापधर श्याम दले चाङ्गानि मध्यत ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे अच्युत! वर्ष पर्यन्त अष्टमी के दिन रात्रि में भोजन करे और वर्ष के अन्त में धेनु का दान करे तो इस व्रत से पुरन्दर (इन्द्र) के पद को प्राप्त होता है और उस व्रत करने वाले की सद्गति हो जाया करती

है ॥१॥ पौष मास मे शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि मे महा रुद्र–इन साधु व्रत को मेरी प्रीति के लिये करे तो सैकडो–सहस्रो गुना फल प्राप्त होता है ॥ २ ॥ जब दोनो पक्षों मे प्रथमी तिथि बुधवार से सयुत होगी उस समय मे इस अष्टमी मे यह व्रत होता है । यह प्राचीन कथा है । उस अष्टमी मे नियमो के करने वाले कभी भी खण्डित सम्पदा वाले नही हुआ करते हैं अर्थात् उनकी सम्पत्ति कभी नष्ट नही होती है ॥ ३ ॥ मुक्ति की कामना रखने वाले मनुष्य को आठ मुट्ठियों के चावलो का भक्त (भात) दो अँगुलियाँ छोडते हुए सद्भक्ति और श्रद्धा के साथ आम के पत्तो के पुट में (दोना) मे करके कुशा से वेष्टित आसन पर भोजन करना चाहिए। वह कलम्बिकाम्लिका से युक्त हो तो उसका काम्य फल प्राप्त होता है ॥४।५॥ जलाशय मे पाँच पूजन के प्रमुख उपचारो के द्वारा बुध का पूजन करे और अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा देवे जोकि तण्डुलो से अन्वित कर्करी हो ॥६॥ कमला जिसके आदि मे और स्वाहा जिसके अन्त में है ऐसा 'बुं बुधाय"–यह बीज होता है । मध्य मे बाण और चाप को धारण करने वाला श्याम रूप और दलो मे अङ्ग होने चाहिए ॥७॥

बुधाष्टमीकथा पुण्या श्रोतव्या कृतिभिर्ध्रुवम् ।
पुरे पाटलिपुत्राख्ये वीरो नाम द्विजोत्तमः ॥८
रम्भा भार्य्या तस्य चासीत्कौशिकः पुत्र उत्तमः ।
दुहिता विजयानाम्नी धनपालो वृषोऽभवत् ॥६
गृहीत्वा कौशिकस्तञ्च ग्रीष्मे गङ्गा गतोऽरमत् ।
गोपालकैर्वृषश्चौरै. क्रीडन्नपहृतो बलात् ॥१०
गङ्गातः स च उत्थाय वनं बभ्राम दुखितः ।
जलार्थं विजया चागाद् भ्राता सार्द्धञ्च साप्यगात् ॥११
पिपासितो मृणालार्थी ग्रागतोऽथ सरोवरम् ।
दिव्यस्त्रीणाञ्च पूजादीन्दृष्ट्वा चाप्यथ विस्मितः ॥१२
स ता गत्वा ययाचेऽन्नं सानुजोऽहं बुभुक्षित. ।
स्त्रियोऽन्न् वन्व्रत कर्त्तुं दास्यामश्च कुरु व्रतम् ॥१३

पत्यर्थं धनपालार्थं पूजयामासतुर्बुधम् ।
पुटद्वय गृहीत्वाऽन्न बुभुजाने प्रदत्तकम् ॥१४

परम पुण्य स्वरूपा बुधाष्टमी की कथा कृतिजनो को श्रवण करनी चाहिए । पाटिल पुत्र (पटना) नाम वाले नगर मे वीर नाम धारी एक द्विज था ॥८॥ उसकी पत्नी का नाम राम था और उसका कौशिक नाम वाला एक उत्तम पुत्र था । विजया नाम वाली उसकी पुत्री थी और धनपाल वृष था ॥९॥ कौशिक उस धनपाल को लेकर ग्रीष्म ऋतु मे गङ्गा नदी पर चला गया था और वहाँ क्रीडासक्त होगया था । वहाँ पर गोपालक चोरो के द्वारा वह वृष बल पूर्वक अपहरण कर लिया गया था ॥१०॥ वह कौशिक गङ्गा म जो जल क्रीडा कर रहा था वहाँ से उठकर परम दुःखित होता हुआ वन म भ्रमण करने लगा था ॥११॥ वह प्यासा और मृणालको इच्छुक वह इसके अनन्तर सरोवर पर प्राप्त जल लाने के लिये वहाँ बिजया आगई थी और भाई के साथ वह भी चली गई कर अत्यन्त विस्मय किया था । उसने उन स्त्रियो के पास म पहुँच कर कुछ गया था । वहाँ पर उसने दिव्य (देवो की) स्त्रियो की पूजार्चना आदि का दर्श-अन्न की याचना की थी और उनसे निवेदन किया था कि मैं अपनी अनुजा के साथ अत्यन्त भूखा हूँ । उन अर्चना करने वाली स्त्रियो ने उससे कहा था कि तुम भी इस व्रत को करो । हम तुमको अन्नादि देवेंगी ॥ १२।१३ ॥ कन्या ने पति की प्राप्ति के लिये और कौशिक ने धनपाल वृष को प्राप्त करने के लिये बुध की पूजा की थी । इसके उपरान्त दो पुट मे दिय हुए अन्न को उन दानो ने खाया था ॥१४॥

स्त्रियो गतौ च धनदौ धनपालमपश्ययाम् ।
चौरैर्दत्त गृहीत्वाथ प्रदोपे प्राप्तवान् गृहम् ॥१५
वीरश्च दुःखितं नत्वा रात्रौ सुप्तो यथासुखम् ।
कन्याश्च युवती दृष्ट्वा वस्मै देया सुता मया ॥१६
यमायेत्यब्रवीद् दुःखात्साचाराद् व्रतसत्फलात् ।
स्वर्गं गतौ च पितरौ व्रतं राज्याय कौशिकः ॥१७

चक्रेऽयोध्यामहाराज्य दत्त्वा च भगिनी यमे ।
यमोऽपि विजयामाह गृहस्था भव मे पुरे ॥१८
अपश्यन्मातर स्वा सा पाशयातनया स्थिताम् ।
अथाद्विग्ना च विजया ज्ञात्वा विमुक्तिद व्रतम् ॥१६
चक्र च सा ततो मुक्ता माता तस्याः कृतव्रता ।
व्रतपुण्यप्रभावेण स्वर्ग गत्वावसत्सुखम् ॥२०

इसके पश्चात् स्त्रियाँ और धनद चले गये । उन दोनो ने धनपाल को वहाँ देखा था । चोरो के द्वारा प्रदत्त धनपाल को लेकर वह प्रदोष के समय में अपने घर मे प्राप्त हो गया था ॥ १५ ॥ परम दु खित वीर को प्रणाम करके रात्रि म सुख पूर्वक सो गया था । कन्या को यौवन की अवस्था मे देखकर उसे बडो चिन्ता उत्पन्न हुई कि मैं इस कन्या को किसे समर्पित करूँ ॥१६॥ आचार से समन्वित इस व्रत के सत्फल से वह दु ख से यम से यह बोला—मेरे माता-पिता दोनो स्वर्गवासी होगये और कौशिक ने राज्य की प्राप्ति के लिये व्रत किया था । अयोध्या के महान् राज्य को देकर भगिनी को यम को दे दिया था । वह यम भी विजया से बोला—अब तुम मेरे पुर मे गृहस्थ धर्म पालन करने वाली हो जाओ ॥१७।१८॥ फिर उस पाशाया तनया ने अपनी माता को वहाँ पर अवस्थित देखा था । इसके अनन्तर उस विजया ने विमुक्ति के प्रदान करने वाले इस व्रत का ज्ञान प्राप्त करके बहुत ही उद्वेग किया था । इसके पश्चात् उसने भी इस व्रत को किया था और इससे उसकी माता मुक्त हो गई थी । इस व्रत के परम पुण्य के प्रभाव से वह स्वर्ग लोक में पहुँच कर वहाँ सुख पूर्वक निवास करने लगी थी ॥१६।२०॥

८६—महानवमी व्रत

अशोककलिका ह्यष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ ।
चैत्रे मासि सिताष्टम्या न ते शोकमवाप्नुयु ॥१
त्वामशोक हराभीष्ट मधुमाससमुद्भव ।
पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोक सदा कुरु ॥२

शुक्लाष्टम्यामश्वयुजे उत्तराषाढया युता ।
सा महानवमीत्युक्ता स्नानदानादि चाक्षयम् ॥३
नवमी केवला चापि दुर्गाञ्चैव तु पूजयेत् ।
महाव्रतं महापुण्य शङ्कराद्यै रनुष्ठितम् ॥४
अयाचितादि षष्ठयादौ राजा शत्रुजयाय च ।
जपहोमसमायुक्तः कन्या वा भोजयेत्सदा ॥५
दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा मन्त्रोऽय पूजनादिषु ।
दीर्घाकाराभिमिश्राभिर्नवदेव्यो नमोऽन्तिका ॥६
षड्भिः पदैर्नम स्वाहा वषडादि हृदादिकम् ।
अङ्गुष्ठादि कनिष्ठान्त विन्यस्य पूजयेच्छिवाम् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि मे जबकि पुनर्वसु नक्षत्र हो अशोक वृक्ष की आठ कलिकाओं का जो पुरुष उस दिन पान किया करते हैं वे कभी भी शोक की प्राप्ति नहीं करते हैं अर्थात् उन्हें कभी कोई शोक होता ही नही है ॥ १ ॥ पान करने के समय मे यह प्रार्थना करे कि हे अशोक ! आप भगवान् हर के परम अभीष्टतम हो और आपका उद्भव मधु मास मे होता है । मैं शोक से अतीव सन्तप्त होकर तुम्हारा पान करता हूँ। अतएव कृपया मुझे सदा शोक से रहित कर दो ॥२॥ इति अशोकाष्टमी विधानम् ब्रह्माजी ने कहा—आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि मे जोकि उत्तराषाढा नक्षत्र से युक्त हो। वह महा नवमी इस नाम से कही गई है। इस दिन मे जो स्नान एव दान आदि किये जाते है वे सब अक्षय हो जाते हैं ॥ ३ ॥ यदि केवल नवमी हो तो भगवती दुर्गा की उस दिन पूजार्चना करनी चाहिए। यह महा व्रत महान् पुण्य प्रद होता है। इसको शङ्कर आदि ने किया है ॥४॥ षष्ठी आदि मे अयाचित आदि का ग्रहण करे। राजा को अपने शत्रु पर जय प्राप्त करने के लिये इसे करना चाहिए। जप-होम से समायुक्त होकर सदा कन्याओं को भोजन करावे ॥५॥ पूजन आदि कर्मों मे 'दुर्गे ! दुर्गे ! रक्षिणी स्वाहा'—इस मन्त्र का प्रयोग करे। दीर्घ आकार वाली मात्राओं से नौ देवियों के मन्त्र मे नमः—इस शब्द का प्रयोग करे। छं पदो के द्वारा नम.—स्वाहा—वषट् आदि

लेकर तथा अंगुष्ठ से आदि लेकर कनिष्ठा के अन्त तक विन्यास करे और शिवा का पूजन करे ।।६ ७।।

अष्टम्यां नवगेहानि दारुजान्येकमेव वा ।
तस्मिन्देवी प्रकर्त्तव्या हैमा वा राजतापि वा ।।८
शूले खड्गे पुस्तके वा पटे वा मण्डले यजेत् ।
कपाल खेटक घण्टा दर्पण तर्जनी धनुः ।।६
ध्वज डमरुक पाश वामहस्तेषु बिभ्रती ।
शक्तिश्च मुद्गर शूल वज्र खड्ग तथाङ्कुशम् ।।१०
शर चक्र शलाकाश्च दुर्गामायुधसंयुताम् ।
शेषा पोडशहस्ता स्युरञ्जन डमरु विना ।।११
उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ।
चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपातिचण्डिका ।।१२
नवमी चोग्रचण्डा च मध्यस्थाग्निप्रभाकृति ।
रोचना अरुणा कृष्णा नीला धूम्रा च शुक्लका ।।
पीना च पाण्डरा प्रोक्ता आलीढेन हरिस्थिता. ।।१३

अष्टमी तिथि के दिन काष्ठ के विनिर्मित नौ गृह तथा एक ही गृह में एक देवी की प्रतिमा का निर्माण करावे वह चाहे सुवर्णमयी हो या चाँदी की होवे ।।८।। शूल-खड्ग-पुस्तक मे अथवा पट या मण्डल मे उसका यजन करे । वह प्रतिमा कपाल—खेटक—घण्टा—दर्पण—तर्जनी—धनु-ध्वज-डमरु-पाश अपने वाम भाग के हस्तो मे धारण करने वाली होवे । शक्ति-मुद्गर-शूल-वज्र-खड्ग तथा अंकुश-शर-चक्र—शलाका ये दक्षिण हस्तो मे धारण करने वाली समस्त अपने आयुधो से समन्वित दुर्गा का यजनार्चन करना चाहिए । शेष सोलह हस्त अञ्जन और डमरु के विना ही होने चाहिए ।।६।१०।११।। उग्र चण्डा—प्रचण्डा चण्डोग्रा-चण्डनायिका-चण्डा चण्डवती-चण्डरूपाति चण्डिका और नवमी उग्र चण्डा हो तथा मध्य मे स्थित अग्नि की प्रभा जैसी आकृति वाली होवे । रोचना-अरुणा-कृष्णा-नीला—धूम्रा-शुक्लका-पीता और पाण्डरा कही गई हैं जोकि आलीढ से हरि स्थित होती है ।।१२।१३।।

माहिषोऽथ सखड्गाग्रे प्रकचग्रहमुष्टिका ।
जप्त्वा दशाक्षरी विद्या त्रिशूलञ्च ततो यजेत् ॥१४
लिङ्गस्था पूजयेद्वापि पादुकेऽथ जलेऽपि वा ।
विचित्रा रचयेत्पूजामष्टम्यामुपवासयेत् ॥१५
पश्चाव्द माहिष शस्त रात्रिशेषञ्च घातयेत् ।
विधिवत्कालिकी नीति तदुत्थरुधिरादिकम् ॥१६
नैर्ऋत्या पूतनाञ्चैव वायव्या पापराक्षसीम् ।
चण्डिकाञ्च तथैशान्यामाग्नेय्याञ्च विदारिकाम् ॥१७

आगे में माहिष है और खड्ग के सहित उनके केश अपनी मुट्ठी में ग्रहण करने वाली है । इसकी दश अक्षर वाली विद्या (मन्त्र) का जाप करके इसके अनन्तर उसके त्रिशूल का यजन करना चाहिए ॥ १४ ॥ अथवा लिंगस्था का पूजन करे,पादुका में अथवा जल में विचित्रा का पूजन करे और अष्टमी में उपवास करना चाहिए ।१५। पांच वर्ष वाल माहिष प्रशस्त करे । रात्रि क शेष में लाकर उसका पात करावे । यह विधिपूर्वक कालिकी नीति है । उससे निकले हुए रुधिर आदि का नैर्ऋत्य में और पाप राक्षसी पूतना को वायव्य में तथा चण्डिका को आग्नेयी दिशा में और ऐशानी में विदारिका को करे ॥१६।१७॥

८७—श्रवणद्वादशी व्रत

श्रवणद्वादशी वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् ।
एकादशी द्वादशी च श्रवणेन च संयुता ॥
विजया सा तिथि: प्रोक्ता हरिपूजादि चाक्षयम् ॥१
एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ।
उपवासेन भैक्ष्येण नैवाद्वादशिको भवेत् ॥२
कांस्यं मास तथा क्षौद्रं लोभ वितथभाषणम् ।
व्यायामञ्च व्यवायञ्च दिवास्वप्नमथाञ्जनम् ॥
शिलापिष्टं मसूरञ्च द्वादश्या वर्जयेन्नरः ॥३
मासि भाद्रपदे शुक्लद्वादशी श्रवणान्विता ।

महती द्वादशी ज्ञेया उपवासे महाफला ॥
सङ्गमे सरिता स्नान बुधयुक्ता महाफला ॥४
कुम्भे सरत्ने सजले यजेत्स्वर्णं तु वामनम् ।
सितवस्त्रयुगच्छन्नं छत्रोपानद्युगान्वितम् ॥५
ॐ नमः वासुदेवाय शिर सपूजयेत्तत ।
श्रीधराय मुख तद्वत्कण्ठ कृष्णाय वै नम ॥६

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अब हम श्रावण की द्वादशी के विषय मे वर्णन करते हैं जो भुक्ति और मुक्ति दोनो का प्रदान करने वाली होती है। एकादशी हो अथवा द्वादशी तिथि हो किन्तु श्रवण नक्षत्र से सयुत होनी चाहिए। वह तिथि विजया कही गई है। इसमे हरि की पूजा अक्षय पुण्य-फल वाली होती है ॥१॥ एक वक्त अर्थात् एकबार रात्रि के भोजन से-तथा अयाचित भोजन से-उपवास से और भिक्षा द्वारा प्राप्त भोजन से अद्वादशिक नही होता है। अर्थात् द्वादशी व्रत का नाश करने वाला नही होता है ॥२॥ कासे का पात्र—मांस—क्षौद्र (मधु)—लोभ—मिथ्या भाषण—व्यायाम—व्यवाय (मैथुन)—दिन मे शयन (निद्रा) करना—अञ्जन—शिलापिष्ट (पत्थर से या पाषाण पर पिसे हुए पदार्थ) और मसूर इन सबका द्वादशी मे वर्जन कर देना चाहिए ॥३॥ भाद्रपद मास म शुक्ल पक्ष की द्वादशी जो श्रवण नक्षत्र से अन्वित हो उसे एक सबसे बडी द्वादशी समझना चाहिए। इसके उपवास का महान् फल होता है। सगम म सरिताओ का स्नान बुध से युक्त हो तो महान् फल वाली होती है ॥ ४ ॥ रत्नो से परिपूर्ण एव जल से भरे हुए कुम्भ मे स्वर्ण म वामनदेव का यजन करे जो दो श्वेत वस्त्रो से समाच्छन्न हो और छत्र और उपानत् के युग से समन्वित होवें ॥५॥ इसके अनन्तर "ॐ नमो वासुदेवाय"—इस मन्त्र का उच्चारण करके शिर का यजन करे। 'ॐ नम श्रीधराय"—इससे मुख का और "ॐ नम कृष्णाय"—इससे कण्ठ की अर्चना करनी चाहिए ॥६॥

नम श्रीपतये वक्षो भुजौ सर्वास्त्रधारिणे ।
व्यापकाय नमः कुक्षी केशवायोदर बुध ॥७
त्रैलोक्यपतये मेढ्र जङ्घे सर्वपतये नमः ।
सर्वात्मने नम. पादौ नैवेद्य घृतपायसम् ॥८

कुम्भाश्च मोदकान्दद्याज्जागर कारयेन्निशि ।
स्नात्वा पीत्वाऽर्चयित्वा तु कृतपुष्पाञ्जलिर्वदेत् ॥६
नमो नमस्ते गोविन्द बुध श्रवणसज्ञक ।
अघौघसक्षय कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ॥१०
प्रीयता देवदेवेशो विप्रेभ्य कलशान्ददेत् ।
नद्यास्तीरेऽथवा कुर्यात्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥११

"ॐ नमः श्रीपतये"—इससे वक्ष स्थलका और "ॐ नम सर्वास्त्रधारिणे"—इससे भुजाओ का यजन करे। 'ॐ नमो व्यापकाय"—यह मन्त्र कहकर कुक्षियो का और "ॐ नम केशवाय"—इससे बुध को उदर का यजनार्चन करना चाहिए ॥७॥ 'ॐ नम त्रैलोक्य पतये'—इससे मेढ्का—"ॐ नम सर्वपतये"—इससे दोनो जांघो का तथा "ओ नम सर्वात्मने"—इससे चरणो का यजन करे। इसके पश्चात् नैवेद्य घृत पायस—कुम्भो को और मोदको को समर्पित करे। रात्रि मे जागरण करे। स्नान करके—पान करके और अर्चना करके अञ्जलियो मे पुष्प लेकर प्रार्थना करे ॥ ८।६ ॥ हे श्रवण सज्ञा वाले बुध ! हे गोविन्द ! आपको बारम्बार प्रणाम है। आप मेरे अघो के समूह का क्षय करके समस्त प्रकार के सुखो के प्रदान करने वाले होवे ॥१०॥ हे देवो के देवों के भी स्वामिन् ! आप मुझ पर प्रसन्नता करे। फिर उन कलशो को विप्रो के लिये दान कर देवे। इस कार्य क्रम का अनुष्ठान किसी नदी के तट पर करे तो सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओ की प्राप्ति होती है ॥११॥

८८—मदनत्रयोदशी आदि के व्रत

कामदेवत्रयोदश्या पूजा दमनकादिभिः ।
रतिप्रीतिसमायुक्तो ह्यशोको मानभूषितः ॥१
चतुर्दश्या तथाष्टम्यां पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।
योऽब्दमेक न भुञ्जीत भुक्तिभाक् शिवपूजनात् ॥२
त्रिरात्रोपोषितो दद्यात्कार्तिक्या भवन शुभम् ।
सूर्यलोकमवाप्नोति धामव्रतमिद शुभम् ॥३

अमावस्या पितृणाञ्च दत्तं जलादि चाक्षयम् ।
नक्ताभ्यासी वारनाम्ना यजन्वारिणि सर्वभाक् ॥४
द्वादशर्क्षाणि विप्रर्षे प्रतिमासन्तु यानि वै ।
तन्नाम्ना तेऽच्युत तेषु सम्यक्सम्पूजयेन्नर ॥५
केशव मार्गशीर्षे तु इत्यादौ कृत्तिकादिका ।
घृतहोमश्चतुर्मास कृसरञ्च निवेदयेत् ॥६
आषाढादौ पायसन्तु विप्रास्तेनैव भोजयेत् ।
पञ्चगव्यजले स्नान नैवेद्यं नक्तमाचरेत् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—कामदेव त्रयोदशी के दिन दमनक आदि के द्वारा रति और प्रीति से समायुक्त होकर करे तो शोक से रहित और महा सम्मान से विभूषित हो जाता है ॥१॥ इति मदन त्रयोदशी पूजा विधानम् । शुक्ल और कृष्ण पक्षों की चतुर्दशी तिथि मे तथा अष्टमी तिथि के दिन मे जो एक वर्ष पर्यन्त भोजन न करे अर्थात् उपवास करे एवं भगवान् महेश्वर शिव का पूजन करे तो उसे समस्त भोगों की प्राप्ति हुआ करती है । इति चतुर्दश्यष्टमी व्रत विधानम् ॥२॥ कार्तिकी मे तीन रात्रि पर्यन्त उपवास करके शुभ भवन का दान करे तो वह सूर्यलोक को जाया करता है । यह परम शुभ धाम व्रत कहलाता है ॥ ३ ॥ अमावस्या तिथि के दिन पितृगणेश्वरों को दिया हुआ जल अर्थात् किया हुआ तर्पण अक्षय होता है । नक्त अर्थात् रात्रि के अभ्यास वाला वार के नाम से वारि मे (जल मे) यजन करता हुआ सभी कुछ की प्राप्ति करने का श्रेय लाभ किया करता है । इति वार व्रतानि ॥ ४ ॥ हे विप्रर्षे ! प्रतिमास मे जो बारह नक्षत्र होते हैं उनके नामो से उनमे मनुष्य को भगवान् अच्युत का भली भाँति पूजन करना चाहिए ॥५॥ मार्ग शीर्ष मे कृत्तिका आदि मे केशव का यजन करे । चार मास तक घृत को होमें और कृसर को निवेदित करे ॥६॥ आषाढादि मे पायस का होम करे, इसे ही समर्पित कर और पायस (खीर) से ही विप्रों को भोजन करावे । पञ्चगव्य के जल से स्नान करे और नैवेद्य से रात्रि में समाचरण करना चाहिए ॥७॥

अर्घाग्निविसर्जनाद् द्रव्य नैवेद्य सर्वमुच्यते ।
विसर्जिते जगन्नाथे निर्माल्य भवति क्षणात् ॥८

पञ्चरात्रविदो मुख्या नैवेद्य भुञ्जते स्वयम् ।
एवं संवत्सरस्यान्ते विशेषेण प्रपूजयेत् ॥६
नमो नमस्तेऽच्युत संक्षयोऽस्तु पापस्य वृद्धि समुपैति पुण्यम् ।
ऐश्वर्यवित्ता द सदाऽक्षय मे तथाऽस्तु मे सन्ततिरक्षयैव ॥१०
यथाच्युत त्व परत: परस्मात्स ब्रह्मभूत परत परस्मात् ।
तथाच्युत मे कुरु वाञ्छित सदा मया कृत पापहराप्रमेय ॥११
अच्युतानन्द गोविन्द प्रसीद यदभीप्सितम् ।
तदक्षयममेयात्मन् कुरुष्व पुरुषोत्तम ॥१२

विमर्जन करने के पूर्व मे सब द्रव्य नैवेद्य कहा जाया करता है। जगत्
के नाथ भगवान् के विमर्जित कर देन पर एक ही क्षण मे वह सब निर्माल्य हो
जाता है ॥८॥ पञ्चरात्र के ज्ञाता मुख्य नैवेद्य को स्वय खाते हैं। इस प्रकार से
सवत्सर के अन्त मे विशेष रूप से पूजन करना चाहिए ॥९॥ प्रार्थना इस तरह
करे—हे अच्युत ! आपको मेरा बारम्बार प्रणाम है। मेरे सम्पूर्ण पापो का
संक्षय हो जावे और मेरे पुण्य की वृद्धि होवे। मेरा ऐश्वर्य और वित्त आदि
सदा अक्षय हो जावे और इसी भाँति मेरी सन्तति भी अक्षय हो जावे ॥१०॥
हे अच्युत देव ! जिस प्रकार से आप पर से भी पर हैं और पर से पर मे अव-
स्थित आप ब्रह्म भूत हैं वैसे ही हे अच्युत ! आप सदा मेरे वाञ्छित को भी कर
देवे। हे अप्रमेय देव ! आप सदा किये हुए पापो को हरण कर देवें ॥११॥
हे अच्युतानन्द ! हे गोविन्द ! आप प्रसन्न हूजिए। हे अमेयात्मन् ! जो भी कुछ
मेरा अभीष्ट मनोरथ हो वह अक्षय हो जावे। हे पुरुषोत्तम ! आप मुझ पर
ऐसी ही कृपा कर देवे ॥१२॥

कुर्य्याद्वै सप्तवर्षाणि आयु:श्रीसद् गति नर: ।
उपोष्यैकादशीमद्वमष्टमीञ्च चतुर्दशीम् ॥१३
सप्तमी पूजयेद्विष्णु दुर्गा शम्भु रवि क्रमात् ।
तेषा लोक समाप्नोति सर्वकामाश्च निर्मल. ॥१४
एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ।
उपवासेन शाकाद्यै: पूजयन्सर्वदेवता: ॥
सर्व: सर्वासु तिथिषु भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥१५

धनदोऽग्नि प्रतिपदि नासत्यौ दस्र ग्रर्चित: ।
श्रीर्यमश्च द्वितीयाया पञ्चम्या पार्वती श्रिया ।।१६
नागाः पष्ठ्या कार्त्तिकेयः सप्तम्या भास्करोऽर्थद. ।
दुर्गाष्टम्या मातरश्च नवम्यामथ तक्षकः ।।१७
दशम्यामिन्द्रो धनद एकादश्या मुनीश्वरा. ।
द्वादश्याश्च हरिः कामस्त्रयोदश्या महेश्वर. ।।
चतुर्दश्या पञ्चदश्या ब्रह्मा च पितरोऽपरे ।।१८

इस व्रत को सात वर्ष तक जो मनुष्य करता है वह आयु—श्री और सद्गति को प्राप्त किया करता है । एकादशी–अष्टमी और चतुर्दशी का एक वर्ष तक उपवास करे ।।१३।। सप्तमी का—दुर्गा–शम्भु और क्रम से रवि का पूजन करे । इसका यह फल होता है कि वह मनुष्य मल रहित परम शुद्ध होकर उन्हीं के लोक को पहुँच जाता है और उसके सम्पूर्ण काम पूर्ण हो जाते हैं ।। १४ ।। एक वक्त भोजन से जोकि रात्रि में ही किया जावे तथा अयाचित भोजन से जो बिना माँगे ही प्राप्त हो जावे—शाक दि के द्वारा रहकर उपवास करके तब देवताओं का पूजन करने वाले सब सभी तिथियों में इस व्रत का पालन करे तो वे भोग और मोक्ष दोनों को प्राप्त किया करते हैं ।।१५।। प्रतिपदा तिथि में अग्नि का अर्चन धन प्रदान करने वाला होता है । नासत्य—दस्र—श्री और यम की अर्चना द्वितीया में करे और पञ्चमी तिथि में श्री से युक्त पार्वती एवं नागों का यजन करना चाहिए । षष्ठी तिथि में स्वामि कार्त्तिकेय का पूजन करे । सप्तमी में भगवान् भुवन भास्कर का अर्चन धन प्रदान करने वाला होता है । दुर्गाष्टमी में मातृगण का यजन करे । नवमी में तक्षक का पूजन करे । दशमी तिथि में इन्द्र की अर्चना धन देने वाली है । एकादशी में मुनीश्वरों का यजन करे । द्वादशी में हरि भगवान् का पूजन करना चाहिए । त्रयोदशी में कामदेव का और चतुर्दशी में महेश्वर का एवं पञ्चदशी में ब्रह्मा एवं दूसरे पितरों का यजन करना चाहिए ।।१६।१७।१८।।

८६—सूर्य वंश कीर्तन

राज्ञा वंशान्प्रवक्ष्यामि वंशानुचरितानि च ।
विष्णुनाभ्यब्जतो ब्रह्मा दक्षोऽङ्गुष्ठाच्च तस्य वै ।।१

ततोऽदितिर्विवस्वांश्च ततो विवस्वतः सुत ।
मनुरिक्ष्वाकु शर्यातिर्मृगो धृष्ट पृषध्रक. ॥
नरिष्यन्तश्च नाभागो दिष्ट शशक एव च ॥२
मनोरासीदिला कन्या सुद्युम्नोऽस्य सुतोऽभवत् ।
इलाया तु बुधाज्जाता रजा रुद्रपुरूरवा ।
सुतास्त्रयश्च सुद्युम्नादुत्कला विनतो गय ॥३
अभूच्छूद्रो गोवधात्तु पृषध्रस्तु मनो सुत ।
करूषात्क्षत्रिया जाता कारूषा इति विश्रुताः ॥४
दिष्टपुत्रस्तु नाभागो वैश्यतामगमत्स च ।
तस्माद्भलन्दन पुत्रो वत्सप्रीतिर्भलन्दनात् ॥५
ततः पांशु खनित्रोऽभूद् भूपस्तस्मात्तु क्षुप ।
क्षुपाद्विंशोऽभवत्पुत्रो विंशाज्जातो विविंशक ॥६
विविंशाच्च खनीनेत्रो विभूतिस्तत्सुत. स्मृत ।
करन्धमो विभूतेस्तु ततो जातोऽप्यविक्षित ॥७

श्री हरि ने कहा—अब हम राजाओं के वंशों का तथा वंशों के अनुचरितों का वर्णन करते हैं। भगवान् विष्णु की नाभि में समुत्पन्न कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई थी। उन ब्रह्मा के अंगुष्ठ से दक्ष प्रजापति ने जन्म ग्रहण किया था। इसके पश्चात् अदिति समुत्पन्न हुई और उस अदिति से विवस्वान् उत्पन्न हुए थे। विवस्वान् के पुत्र मनु हुए। इक्ष्वाकु—शर्याति—मृग—धृष्ट—पृषध्रक नरिष्यन्त—नाभाग—दिष्ट और शशक समुत्पन्न हुए थे ॥ १।२ ॥ मनु की इला नाम धारिणी कन्या हुई और सुद्युम्न नाम वाला इसका पुत्र उत्पन्न हुआ था। इला में बुध से राजा रुद्र पुरूरवा उत्पन्न हुए। सुद्युम्न से तीन पुत्र समुत्पन्न हुए थे जिनके नाम उत्कल—विनत और गय ये हुए थे ॥ ३ ॥ गोवध से शूद्र हुआ था पृषध्र मनु का पुत्र था। करूष से कारूष नाम से विख्यात होने वाले क्षत्रिय समुत्पन्न हुए थे ॥४॥ दिष्ट का पुत्र नाभाग था जो कि वैश्यता को प्राप्त होगया था। उससे अर्थात् नाभाग से भलन्दन नामक आत्मज ने जन्म ग्रहण किया था और भलन्दन का पुत्र वत्स प्रीति नाम वाला उत्पन्न हुआ था ॥५॥ इससे पांशु खनित्र भूप हुआ और इसका पुत्र क्षुप नामधारी हुआ। क्षुप का पुत्र विंश हुआ

और विश से विविशक की उत्पत्ति हुई थी ॥ ६ ॥ विविश से खनीनेत्र नामक पुत्र पैदा हुआ तथा खनीनेत्र का पुत्र विभूति नाम वाला समुत्पन्न हुआ था। विभूति का पुत्र करन्धम और करन्धम से अविक्षित नाम वाले आत्मज ने जन्म ग्रहण किया था ॥७॥

मरुत्तोऽविक्षितस्यापि नरिष्यन्तस्ततः स्मृतः ।
नरिष्यन्तात्तमो जातस्ततोऽभूद्राजवर्द्धनः ॥८
राजवर्द्धात्सुधृतिश्च नरोऽभूत्सुधृतेः सुतः ।
नराच्च केवलः पुत्रः केवलाद् धुन्धुमानपि ॥९
धुन्धुमतो वेगवांश्च बुधो वेगवतः सुतः ।
तृणबिन्दुर्बुधाज्जातः कन्या चैलविला तथा ॥१०
विशालं जनयामास तृणबिन्दोस्त्वलम्बुषा ।
विशालाद्धेमचन्द्रोऽभूद्धेमचन्द्राच्च चन्द्रकः ॥११
धूम्राश्वश्चैव चन्द्रात्तु धूम्राश्वात्सृञ्जयस्तथा ।
सृञ्जयात्सहदेवोऽभूत्कृशाश्वस्तत्सुतोऽभवत् ॥१२
कृशाश्वात्सोमदत्तस्तु ततोऽभूज्जनमेजयः ।
तत्पुत्रश्च सुमन्त्रिश्च एते वैशालका नृपाः ॥१३
शर्यातेस्तु सुकन्याऽभूत् सा भार्य्या च्यवनस्य तु ।
अनन्तो नाम शर्यातेरनन्ताद्रेवकोऽभवत् ॥
रैवतो रेवतस्यापि रेवताद्रेवती सुता ॥१४

अविक्षित का सुत मरुत् हुआ और फिर उस मरुत् से नरिष्यन्त नाम वाला पुत्र हुआ था। नरिष्यन्त से तम और तम का पुत्र राजवर्द्धन समुत्पन्न हुआ था। इस राजवर्द्धन से धृति और सुधृति का सुत नर नामधारी उत्पन्न हुआ था। नर का पुत्र केवल और इसका पुत्र धुंधुमान् हुआ था ॥८।९॥ धुंधुमान् का वेगवान् और वेगवान् का बुध तथा बुध का पुत्र तृणबिन्दु और एक ऐलविला नाम धारिणी कन्या हुई थी ॥ १० ॥ तृणबिन्दु से अलम्बुषा ने विशाल को उत्पन्न किया था। विशाल से हेमचन्द्र ने जन्म लिया था और हेमचन्द्र से चन्द्रक नाम वाला आत्मज समुत्पन्न हुआ था ॥११॥ चन्द्र से धूम्राश्व

सृजय, सृञ्जय से सहदेव और सहदेव से कृशाश्व नामक सुत ने जन्म लिया था ॥१२॥ कृशाश्व का पुत्र सोमदत्त और सोमदत्त से जनमेजय ने उत्पत्ति प्राप्त की थी। इसका पुत्र सुमति हुआ था। ये सब वैशालक नाम से विख्यात होने वाले नृप हुए थे॥ १३ ॥ शर्याति राजा के एक कन्या हुई थी जाकि च्यवन महर्षि की भार्या हुई थी। शर्याति के एक अनन्त नामक पुत्र हुआ और अनन्त का सुत रैवत उत्पन्न हुआ था। रैवत रेवत का पुत्र हुआ था और रेवत से रेवती नाम वाली एक पुत्री भी पैदा हुई थी॥१४॥

धृष्टस्य धार्ष्टकं क्षत्रं वैश्यकं तद्बभूव ह ।
नाभागपुत्रो नेदिष्टो ह्यम्बरीषोऽपि तत्सुतः ॥१५
अम्बरीषाद्विरूपोऽभूत्पृषदश्वो विरूपत ।
रथीनरश्च तत्पुत्रो वासुदेवपरायण ॥१६
इक्ष्वाकोस्तु त्रयः पुत्रा विकुक्षिनिमिदण्डका ।
इक्ष्वाकुजो विकुक्षिस्तु शशाद शशभक्षणात् ॥१७
पुरञ्जय. शशादाच्च ककुत्स्थाख्योऽभवत्सुत ।
अनेनास्तु ककुत्स्थाच्च पृथु पुत्रस्त्वनेनस ॥१८
विश्वरात. पृथो पुत्र आर्द्रोऽभूद्विश्वरातत ।
युवनाश्वोऽभवत्तार्द्रात् श्रावस्तो युवनाश्वत ॥१९
बृहदश्वस्तु श्रावस्तात्तत्पुत्र कुवलाश्वक. ।
धुन्धुमारो हि विख्यातो दृढाश्वश्च ततोऽभवत् ॥२०
चन्द्राश्व कपिलाश्वश्च हर्य्यश्वश्च दृढाश्वत ।
हर्य्यश्वाच्च निकुम्भोऽभूद्धिताश्वश्च निकुम्भत ॥२१

धृष्ट का धार्ष्टक क्षत्रिय हुआ था जाकि वैश्यक होगया था। नाभाग का पुत्र नेदिष्ट हुआ और नदिष्ट का पुत्र अम्बरीष हुआ था॥१५॥ राजा अम्बरीष से विरूप उत्पन्न हुआ और विरूप से पृषदश्व की समुत्पत्ति हुई थी। उसका पुत्र रथीनर नामक हुआ जो सर्वदा भगवान् वासुदेव की भक्ति में परायण रहा करता था॥१६॥ इक्ष्वाकु राजा के तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे जिनके नाम विकुक्षि निमि और दण्डक थे। इक्ष्वाकु से समुत्पन्न विकुक्षि शश के भक्षण करने से

श्रावाद कहलाया गया था ॥ १७ ॥ श्रावाद से पुरञ्जय उत्पन्न हुआ था और इसका पुत्र ककुत्स्थ नाम वाला हुआ था। ककुत्स्थ से अनेना और इसका पुत्र पृथु नामधारी उत्पन्न हुआ था ॥१८॥ पृथु का विश्वरात हुआ और विश्वरात से आर्द्र पुत्र की उत्पत्ति हुई थी। आर्द्र से युवनाश्व और युवनाश्व का पुत्र श्रावस्त नाम वाला था ॥ १९ ॥ श्रावस्त का पुत्र बृहदश्व और इसका पुत्र कुवलाश्वक हुआ। धुन्धुमार परम विख्यात हुआ था और इसके उपरान्त दृढाश्व से चन्द्राश्व कपिलाश्व और हर्यश्व उत्पन्न हुए थे। हर्यश्व से निकुम्भ और निकुम्भ से हिताश्व समुत्पन्न हुआ था ॥२०।२१॥

पूजाश्वश्च हिताश्वाच्च तत्पुत्रो युवनाश्वकः ।
युवनाश्वाच्च मान्धाता बिन्दुमत्यास्तनाऽभवत् ॥२२
मुचुकुन्दाम्बरीषश्च पुरुकुत्सस्त्रयः सुताः ।
पञ्चाशत्कन्यकाश्चैव भार्यास्ता सौभरेर्मुनेः ॥२३
युवनाश्वोऽम्बरीषाच्च हरितो युवनाश्वतः ।
पुरुकुत्सान्नर्मदायां त्रसदस्युरभूत्सुतः ॥२४
अनरण्यस्ततो जातो हर्यश्वोऽनरण्यतः ।
तत्पुत्रो भूद्वसुमनास्त्रिधन्वा तस्य चात्मजः ॥२५
त्रय्यारुणस्तस्य पुत्रस्तस्य सत्यव्रतः सुतः ।
यस्मिन्नभूद्वै सत्यरथा हरिश्चन्द्रोऽभवत्ततः ॥२६
हरिश्चन्द्राद्रोहिताश्वो हरितो रोहिताश्वतः ।
हरितस्य सुतश्चञ्चुश्चञ्चोश्च विजयः सुतः ॥२७
विजयाद्रुरुको जज्ञे रुरुकात् वृकः सुतः ।
वृकाद्बाहुर्बाहुसूनुः सगरः स्मृतः ॥२८

हिताश्व का पुत्र पूजाश्व और पूजाश्व का पुत्र युवनाश्वक हुआ था। युवनाश्व से मान्धाता की समुत्पत्ति हुई और मान्धाता का पुत्र बिन्दुमत्य हुआ था। इसके मुचुकुन्द—अम्बरीष और पुरुकुत्स ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे और पचास कन्यायें हुई थीं जो सौभरि मुनि की भार्यायें हुई थीं ॥२२।२३॥ अम्बरीष से युवनाश्व और युवनाश्व से हरित पुत्र हुआ था। पुरुकुत्स से नर्मदा में

असमद्रस्यु नामक आत्मज की उत्पत्ति हुई थी ।।२४।। उससे अनरण्य हुआ और अनरण्य से हर्यश्व समुत्पन्न हुआ । इसका पुत्र वसुमना पैदा हुआ और वसुमना से त्रिधन्वा पुत्र की उत्पत्ति हुई थी ।।२५।। इसके यहाँ त्रय्यारुण नामधारी पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था और इसका पुत्र सत्यरत हुआ था जोकि त्रिशंकु—इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था । इसका पुत्र हरिश्चन्द्र हुआ ।।२६।। हरिश्चन्द्र नृपति का पुत्र रोहिताश्व हुआ था और रोहिताश्व से हरित नामक सुत का जन्म हुआ था । हरित के पुत्र का नाम चञ्चु था और चञ्चु के पुत्र विजय ने जन्म धारण किया था ।।२७।। विजय से रुरुक पुत्र पैदा हुआ और रुरुक से वृक नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी । वृक से बाहुनृप अवतीर्ण हुआ और बाहु का पुत्र सगर नामक हुआ था ।।२८।।

षष्टिपुत्रसहस्राणि सुमत्या सगरोद्भव ।
केशिन्यामेक एवासौ असमञ्जससंज्ञक ।।२६
तस्यांशुमान्सुतो विद्वान्दिलीपस्तत्सुतोऽभवत् ।
भगीरथो दिलीपाच्च यो गङ्गामानयद्भुवम् ।।३०
श्रुतो भगीरथसुतो नाभागश्च श्रुतात्किल ।
नाभागादम्बरीपोऽभूत्सिन्धुद्वीपोऽम्बरीषत. ।।३१
सिन्धुद्वीपस्यायुतायु. ऋतुपर्णस्तदात्मज. ।
ऋतुपर्णात्सिवकाम सुदासोऽभूत्तदात्मज ।।३२
सुदासस्य च सौदामो नाम्ना मित्रसह. स्मृत. ।
कल्मापपादसंज्ञश्चदमयन्त्या तदात्मज ।।३३
अश्वकाख्योऽभवत्पुत्रो ह्यश्वकान्मूलकोऽभवत् ।
ततो दशरथो राजा तस्य चैलविल सुत. ।।३४
तस्य विश्वसह पुत्रः खट्वाङ्गश्च तदात्मज ।
खट्वाङ्गाद्दीर्घबाहुश्च दीर्घबाहोर्ह्य जः सुतः ।।३५

राजा सगर से सुमति नाम धारिणी भार्या मे साठ हजार पुत्र समुत्पन्न हुए थे । केशिनी नामक पत्नी मे एक ही असमञ्जस नाम वाले पुत्र की उत्पत्ति हुई थी ।।२६।। इसका अंशुमान् हुआ था । अंशुमान् का सुत परम विद्वान् दिलीप

हुआ था और इस राजा दिलीप का पुत्र भगीरथ नाम वाला समुत्पन्न हुआ था जिसने अपनी अत्य त उग्र तपस्या से गङ्गा का यहाँ भूलोक मे आगमन कराया था ॥३०॥ भगीरथ के पुत्र का नाम श्रुत हुआ और श्रुत का पुत्र नाभाग हुआ था। नाभाग का पुत्र अम्बरीष हुआ था। अम्बरीष का पुत्र सिन्धुद्वीप हुआ था ॥ ३१ ॥ सिन्धु द्वीप का सुत अयुतायु हुआ और इसका पुत्र ऋतुपर्ण नाम वाला हुआ। ऋतुपर्ण से सव काम समुत्पन्न हुआ और इसका पुत्र सुदास हुआ था ॥३२॥ सुदास का सुत सौदास समुत्पन्न हुआ जो नाम से मित्रसह कहलाता था। उसका पुत्र दमयन्ती म कल्म प पाद नाम वाला पैदा हुआ था ॥३३॥ इसका पुत्र अश्वक नामधारी था और अश्वक से मूलक समुत्पन्न हुआ इसके पुत्र का नाम राजा दशरथ था। इसका पुत्र ऐलबिल हुआ था ॥३४॥ ऐलविल का आत्मज विश्वसह हुआ और विश्वसह का पुत्र खटवाङ्ग उत्पन्न हुआ था। खटवाङ्ग स दीघ वाहु सुत की समुत्पत्ति हुई तथा दीघ वाहु से प्रज नृपति ने पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया था। ३५॥

तस्य पुत्रो दशरथश्चत्वारस्तत्सुता स्मृता ।
रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरताश्च महाबला ॥३६
रामात्कुशलवौ जातौ भरतात्ताक्षपुष्करौ ।
चित्राङ्गदश्चन्द्रकेतू लक्ष्मणात्सबभूवतु ॥३७
सुबाहुशूरसनौ च शत्रुघ्नात्सबभूवतु ।
कुशस्य चातिथि पुत्रो निपधो ह्यतिथे सुत ॥३८
निपधस्य नल पुत्रो नलस्य च नभा स्मृत ।
नभस पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा तदात्मज ॥३९
देवानीकस्तस्य पुत्रो देवानीकादहीनक ।
अहीनकाद्रुरुजज्ञे पारियात्रो रुरो सुत ॥४०
पारियात्राद्दलो जज्ञे दलपत्रस्छल स्मृत ।
छलाद्वुक्थस्ततो वुक्थाद्वज्रनाभस्ततो गण ॥४१
उपितास्वो गणाज्जज्ञ ततो विश्वसहोऽभवत् ।
हिरण्यनाभस्तत्पुत्रस्तत्पुत्र पुष्पक स्मृत ॥४२

इन्हीं महाराज अज के प्रतापी दशरथ नृप का जन्म हुआ था जिनके चार पुत्र बताये जाते हैं जिनके नाम श्रीराम—लक्ष्मण—भरत और शत्रुघ्न ये थे। ये चारों महान् बलवान् हुए थे ॥३६॥ श्रीरामचन्द्र महाराज से कुश और लव ये दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। भरत के तार्क्ष और पुष्कर—लक्ष्मण के चित्राङ्गद और चन्द्र केतु नामधारी दो-दो पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥ ३७ ॥ शत्रुघ्न के सुबाहु और शूरसेन नाम वाले दो सुतों की उत्पत्ति हुई थी। कुश के पुत्र का नाम अतिथि था और अतिथि का पुत्र निषध हुआ ॥ ३८ ॥ निषध का नल—नल का नभ नामक पुत्र हुआ। नभ से पुण्डरीक तथा इसका पुत्र क्षेमधन्वा हुआ था ॥३९॥ क्षेमधन्वा का देवानीक और इसका सुत अहीनक नाम वाला था। अहीनक से रुरु ने जन्म लिया था और रुरु का पुत्र पारियात्र नाम वाला हुआ था ॥४०॥ पारियात्र का पुत्र दल हुआ तथा दल का पुत्र छल नाम वाला समुत्पन्न हुआ था। छल से उक्थ और इसका सुत वज्र नाभ हुआ। तथा वज्र नाभ से गण नामक पुत्र ने जन्म धारण किया था ॥ ४१ ॥ गण से उषिताश्व हुआ फिर इसका पुत्र विश्वसह उत्पन्न हुआ था। इसके पुत्र का नाम हिरण्य नाभ और हिरण्य नाभ का आत्मज पुष्पक नाम वाला हुआ था ॥४२॥

ध्रुवसन्धिरभत्पुष्याद् ध्रुवसन्धेः सुदर्शनः ।
सुदर्शनादग्निवर्णः पद्मवर्णोऽग्निवर्णतः ॥४३
शीघ्रस्तु पद्मवर्णात्तु शीघ्रात्पुत्रो मरुस्त्वभूत् ।
मरोः प्रसुश्रुतः पुत्रस्तस्य चोदावसुः सुतः ॥४४
उदावसोर्नन्दिवर्द्धनः सुकेतुर्नन्दिवर्द्धनात् ।
सुकेतोर्देवरातोऽभूद् बृहदुक्थस्ततः सुतः ॥४५
बृहदुक्थान्महावीर्यः सुधृतिस्तस्य चात्मजः ।
सुधृतेर्धृष्टकेतुश्च हर्य्यश्वो धृष्टकेतुतः ॥४६
हर्य्यश्वात्तु मरुर्जातो मरोः प्रतीन्धकोऽभवत् ।
प्रतीन्धकात्कृतिरथो देवमीढस्तदात्मजः ॥४७
विबुधो देवमीढात्तु विबुधात्तु महाधृतिः ।
महाधृतेः कृतिरातो महारोमा तदात्मजः ॥४८

महारोम्ण स्वर्णरोमा ह्रस्वरोमा तदात्मज ।
सीरध्वजो ह्रस्वरोम्ण तम्य सीताभवत्सुता ।।४६

पुष्पक क पुत्र का नाम ध्रुव सन्धि और इसके पुत्र का नाम सुदर्शन हुआ था। सुदशन स अग्नि वर्ण और इससे पद्म वर्ण हुआ ।।४३।। पद्म वर्ण पुत्र शीघ्र तथा इसका सुत मरु नामधारी हुआ। मरु से प्रसश्रुत और इससे उदावसु पुत्र हुआ था ।।४४।। उदावसु क यहाँ नन्दि वर्द्धन न जन्म लिया तथा इसका पुत्र सुकेतु और सुकेतु के पुत्र का नाम देवरात एवं इसके यहाँ बृहदुक्थ उत्पन्न हुआ था ।।४५।। बृहदुक्थ के पुत्र का नाम महावीर्य्य था तथा इसका पुत्र सुधृति हुआ था। सुधृति क सुत का नाम धृष्टकेतु और इसके यहाँ हर्यश्व ने पुत्र रूप मे जन्म धारण किया था ।। ४६ ।। हर्यश्व से मरु हुआ तथा इसके पुत्र का नाम प्रतीन्धक था। प्रतीन्धक से कृति और इसके आत्मज का नाम देवमीढ था ।।४७।। दवमीढ स विबुध उत्पन्न हुआ—विबुध से महाधृति—इसके पुत्र का नाम कृतिरात तथा इसक पुत्र का नाम महारोमा हुआ था ।। ४८ ।। महारोम के स्वर्ण रोमा और इसके सुत का नाम ह्रस्वरोमा हुआ था। ह्रस्वरोमा से सीरध्वज नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी। इसी सीरध्वज की पुत्री का नाम सीता था ।।४६।।

भ्राता कुशध्वजस्तस्य सीरध्वजात्तु भानुमान् ।
शतद्युम्नो भानुमत शतद्युम्नाच्छुचि स्मृत ।।५०
ऊर्जनामा शुचे पुत्र सनद्वाजस्तदात्मज ।
सनद्वाजात्कुलिर्जातोऽनञ्जनस्तु कुले सुत ।।५१
अनञ्जनात्तु कुलजित्तस्यापि चाधिनेमिक ।
श्रुतायुस्तस्य पुत्रोऽभूत्सुपार्श्वश्च तदात्मज ।।५२
सुपार्श्वात्सृञ्जयो जात क्षेमारि सृञ्जयात्स्मृत ।
क्षेमारितस्त्वनेनाश्च तस्य रामरथ स्मृत ।।५३
सत्यरथो रामरथात्तस्मादुपगुरु स्मृत ।
उपगुरोरुपगुप्त स्वागतश्चोपगुप्तत ।।५४
स्वनर स्वागताज्जज्ञे सुवर्चास्तस्य चात्मज ।
सुवर्चस सुपार्श्वस्तु सुश्रुतश्च सुपार्श्वत ।।५५

जयस्तु सुश्रुताज्जज्ञे जयात्तु विजयोऽभवत् ।
विजयस्य ऋत पुत्र ऋतस्य सुनय सुत ॥५६
सुनयाद्वीतहव्यस्तु वीतहव्याद्धृति स्मृत ।
वहुलाश्वो धृते पुत्रो वहुलाश्वात्कृति स्मृत ॥५७
जनकस्य द्वय वश उक्तो योगसमाश्रय ॥५८

सीता के भाई का शुभ नाम कुशध्वज था । सीरध्वज से भानुमान् हुआ भानुमान् क पुत्र का नाम शतद्युम्न था । शतद्युम्न म शुचि की उत्पत्ति हुई थी ॥५०॥ शुचिका पुत्र मज नाम था और इसके पुत्र सनद्वाज था । सनद्वाज स कुलि उत्पन्न हुआ इसक अनञ्जन पुत्र हुआ था ॥ ५१ ॥ अनञ्जन से कुलजित् उत्पन्न हुआ तथा इसक पुत्र का नाम अधिनेमिक था । इसके श्रुतायु हुआ और श्रुतायु का पुत्र सुपार्श्व नामधारी पैदा हुआ थ ॥५२। सुपार्श्व म सृञ्जय हुआ सृञ्जय से क्षेमारि पुत्र हुआ । क्षेमारि क पुत्र का नाम अनेना था तथा इसके रामरथ नामक सुत न जन्म लिया था ॥५३॥ रामरथ क पुत्र का नाम सत्यरथ था और इसके सुत उपगुरु नाम वाला हुआ थ । उपगुरु क उपगुप्त हुआ तथा उपगुप्त के स्वागत नामधारी पुत्र हुआ था ॥५४॥ स्वागत से स्वनर हुआ तथा इस स्वनर से सुवर्चा का जन्म हुआ सुवर्चा के सुपार्श्व हुआ इससे पुत्र का नाम सुश्रुत हुआ था ॥५५॥ सुश्रुत से जय नामक सुत न जन्म लिया—जय स विजय क पुत्र का नाम ऋत था—ऋत का पुत्र सुनय था ॥ ५६ ॥ सुनय से वीतहव्य पुत्र न जन्म ग्रहण किया था । वीतहव्य से धृति हुआ । धृति का पुत्र वहुलाश्व था । वहुलाश्व स कृति ने जन्म धारण किया था ॥५७॥ यह जनक का वश योग समाश्रय कहा गया है ॥५८॥

६०—चन्द्रवंश कीर्तन (१)

सूर्य्यस्य कथितो वश सोमवश शृणुष्व मे ।
नारायणसुतो ब्रह्मा ब्रह्मणोऽत्रे समुद्भव ॥
अत्रेः सोमस्तस्य भार्या तारा सुरगुरो प्रिया ॥१
सोमात्तारा वुध जज्ञे वुधपुत्र पुरूरवा ।
वुधपुत्रादथोर्वश्या षट् पुत्रास्तु श्रुतात्मक ॥
विश्वावसु शतायुश्च आयुर्धीमानमावसु ॥२

अमावसोर्भीमनामा भीमपुत्रश्च काञ्चनः ।
काञ्चनस्य सुहोत्रोऽभूज्जह्नुश्चाभूत्सुहोत्रत ॥३
जह्नो सुमन्तुरभवत्सुमन्तारपजापकः ।
बलाकाश्वस्तस्य पुत्रो बलाकाश्वात्कुश स्मृत ॥४
कुशाश्व कुशनाभश्चामूर्त्तरयो वसु कुशात् ।
गाधि कुशाश्वात्सजज्ञे विश्वामित्रस्तदात्मज ॥५
कन्या सत्यवती दत्ता ऋचीकाय द्विजाय सा ।
ऋचीकाज्जमदग्निश्च रामस्तस्याभवत्सुत ॥६
विश्वामित्राद्देवरातमधुच्छन्दादयः सुताः ।
आयुषो नहुषस्तस्मादनेना रजिरम्भकौ ॥७

श्री हरि भगवान् ने कहा—आपने कहे हुए सूर्य वंश का तो भली भाँति श्रवण कर लिया है अब मुझसे सोम वंश का श्रवण करो । भगवान् आदि पुरुष नारायण का पुत्र ब्रह्मा हुए थे और फिर उन परमपितामह ब्रह्माजी से अत्रि का समुद्भव हुआ था । अत्रि से सोम की उत्पत्ति हुई । उसकी भार्या तारा हुई थी जोकि सुरो के गुरु की प्रिया थी ॥ १ ॥ सोम से तारा ने बुध को समुत्पन्न किया था । इस बुध के पुत्र का नाम पुरूवा था । इस बुध के पुत्र से उर्वशी मे छैः पुत्र हुए थे । उनके नाम—श्रुतात्मक–विश्वावसु–शतायु–आयु–धीमान् और अमावसु य थे ॥ २ ॥ अमावसु से भीम नाम वाला पुत्र हुआ था । भीम से काञ्चन—काञ्चन से सुहोत्र और सुहोत्र से जह्नु की उत्पत्ति हुई थी ॥ ३ ॥ इसका पुत्र सुमन्तु और सुमन्तु का सुत अजापक हुआ । इसका पुत्र बलाकाश्व और बलाकाश्व से कुश पैदा हुआ था ॥४॥ कुश से कुशाश्व–कुशनाभ–अमूर्तरय और वसु हुए थे । कुशाश्व से गाधि की उत्पत्ति हुई । गाधि नृप के पुत्र विश्वामित्र हुए ॥ ५ ॥ एक कन्या सत्यवती नाम वाली थी जिसको ऋचीक द्विज के लिये दे दिया था । ऋचीक से जमदग्नि उत्पन्न हुए और जमदग्नि से परशुराम का जन्म हुआ था ॥ ६ ॥ विश्वामित्र से देवरात मधुच्छन्द आदि पुत्र समुत्पन्न हुए थे । आयु का पुत्र नहुष राजा हुआ । इसके पुत्रों का नाम अनेना और रजिरम्भक थे ॥७॥

क्षत्रवृद्ध: क्षत्रवृद्धात्सुहोत्रश्चाभवन्नृप. ।
काश्यकाशगृत्समदा सुहोत्रादभवत्त्रय: ॥८
गृत्समदाच्छौनकोऽभूत्काश्याद्दीर्घतमास्तथा ।
वैद्यो धन्वन्तरिस्तस्मात्केतुमाश्च तदात्मज ॥९
भीमरथ केतुमतो दिवोदासस्तदात्मज ।
दिवोदासात्प्रतर्दन शत्रुजित्सोऽत्र विश्रुत ॥१०
ऋतध्वजस्तस्य पुत्रो ह्यलर्कश्च ऋतध्वजात् ।
अलर्कात्सन्नतिर्जज्ञे सुनीत सन्नते सुत ॥११
सत्यकेतु सुनीतस्य सत्यकेतोर्विभु सुत ।
विभोस्तु सविभु पुत्र सुविभो सुकुमारक ॥१२
सुकुमाराद्धृष्टकेतुर्वीतिहोत्रस्तदात्मज ।
वीतिहोत्रस्य भर्गोऽभूद्भर्गभूमिस्तदात्मज ॥१३
वैष्णवा स्युर्महात्मान इत्येते काशयो नृपा ।
पञ्चपुत्रशतान्यासन्रजे शक्रेण सहृता ॥१४

क्षत्र वृद्ध से सुहोत्र नृप हुआ । सुहोत्र के काश्य—काशगृत्स और समद ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥८॥ गृत्समद से शौनक हुआ—काश्य से दीर्घतमा हुआ । उससे वैद्य धन्वन्तरि हुआ और इसका पुत्र केतुमान् हुआ था ॥ ९ ॥ केतुमान् का पुत्र भीमरथ हुआ और इसका पुत्र दिवोदास नाम वाला हुआ था । दिवोदास से प्रतर्दन हुआ जो कि इस मही मण्डल मे शत्रुजित्—इस नाम से प्रसिद्ध था ॥१०॥ इसका पुत्र ऋतध्वज हुआ और इसका आत्मज अलर्क हुआ था । अलर्क से सन्नति ने जन्म प्राप्त किया और सन्नति का सुत सुनीत नामधारी हुआ था ॥११॥ सुनीत का पुत्र सत्यकेतु हुआ और इसका पुत्र विभु नामधारी हुआ था । विभु के सुविभु और सुविभु का सुत सुकुमारक हुआ था ॥ १२ ॥ सुकुमार से धृष्टकेतु तथा धृष्टकेतु का पुत्र वीतिहोत्र उत्पन्न हुआ । वीतिहोत्र का पुत्र भर्ग और इसके भर्गभूमि ने जन्म लिया था ॥ १३ ॥ ये काशय समस्त नृप वैष्णव हुए थे और महान् आत्मा वाले थे । रजि के पाँच सौ पुत्र थे जोकि इन्द्र के द्वारा संहृत किये गये थे ॥१४॥

प्रतिक्षत्र क्षत्रवृद्धात्सञ्जयश्च तदात्मज ।
विजय सञ्जयस्यापि विजयस्य कृत सुत ॥१५
कृताद् वृषधनश्चाभूत्सहदेवस्तदात्मज ।
सहदेवाददीनोऽभूज्जयत्सेनाऽप्यदीनत ॥१६
जयत्सेनात्सकृतिश्च क्षत्रधर्मा च सकृत ।
यतिर्ययाति सयातिग्यातिर्वै कृति क्रमात् ॥
नहुषस्य सुता ख्याता ययातनृ पतेस्तथा ॥१७
यदुश्च तुवसुश्चैव देवयानी व्यजायत ।
द्रुह्यश्चानुश्च पूरश्च शर्मिष्ठा वार्षपार्वणी ॥१८
सहस्रजित्क्रोष्टुमना रघुश्चैव यदो सुत ।
सहस्रजित शतजित्तस्माद् वै हयहैहयौ ॥१९
अनरण्या हयात्पुत्रो धर्मो हैहयताऽभवत् ।
धमस्य धमनेत्राऽभूत्कुन्तिर्नौ धमनेत्रतः ॥२०
कुन्तवभूत साहञ्जिमहिष्माश्च तदात्मज ।
भद्रश्रेण्यस्तम्य पुत्रो भद्रश्रेण्यस्य दुर्दम ॥२१

क्षत्र वृद्ध स प्रतिक्षत्र उत्पन्न हुआ था और इसका पुत्र सजय उत्पन्न हुआ। सजय का पुत्र विजय हुआ और विजय का कृत नामक सुत समुत्पन्न हुआ था ॥१५॥ कृत से वृषधन हुआ और इसका पुत्र सहदेव नाम वाला उत्पन्न हुआ था। सहदेव से अदीन की उत्पत्ति हुई और अदीन से जयत्सेन नामक पुत्र हुआ था ॥१६॥ जयत्सेन स सकृति नाम वाले सुत की उत्पत्ति हुई और इसका पुत्र क्षत्रधर्मा नमधारी समुत्पन्न हुआ था। कृति के क्रम से यति-ययाति—सयाति और ययाति उत्पन्न हुए थे। राजा नहुष के पुत्र तथा ययाति नृप के पुत्र परम प्रसिद्ध हुए थे॥ १७ ॥ देवयानी ने यदु और तुवसु को जन्म दिया था। वार्षपार्वणी शर्मिष्ठा न द्रुह्यु—अनु और पुरु को जन्म ग्रहण कराया था ॥ १८ ॥ यदु के सहस्रजित्—क्रोष्टुमना और रघु ये पुत्र उत्पन्न हुए थे। सहस्रजित् के शतजित् पैदा हुआ और शतजित् के हय तथा हैहय नामक दो पुत्र पैदा हुए थे ॥१९॥ हय स अनरण्य हुआ और हैहय स धर्म नाम वाला सुत हुआ। धम का पुत्र धमनेत्र और इसका सुत कुन्ति नाम वाला पैदा हुआ था ॥ २० ॥ कुन्ति

का साहञ्जि हुआ और साहञ्जि का पुत्र महिष्मान् हुआ था। इसके पुत्र का नाम भद्रश्रेण्य था और भद्रश्रेण्य के—दुर्दम हुआ ॥२१॥

धनको दुर्दमाच्चैव कृतवीर्यश्च धानकि ।
कृताग्नि कृतकर्मा च कृतौग सुमहाबला ॥२२
कृतवीर्यादर्जुनोऽभूदर्जुनात्कृतसेनक ।
जयध्वजो मधु शूरा वृषण पञ्च सुव्रता ॥२३
जयध्वजात्तालजङ्घो भरतस्तालजङ्घत ।
वृषणस्य मधु पुत्रो मधोर्वृष्ण्यादिवंशक ॥२४
क्रोष्टोर्विजनिवान्पुत्र आहिस्तस्य महात्मन ।
आहेरुशङ्कु सजज्ञे तस्य चित्ररथ सुत ॥२५
शशबिन्दुश्चित्ररथात्पत्न्योर्लक्षञ्च तस्य ह ।
दशलक्षञ्च पुत्राणा पृथुकीत्यादयो वरा ॥२६
पृथुकीर्त्ति पृथुजय पृथुदान पृथुश्रवा ।
पृथुश्रवसोऽभूत्तम उशनास्तमसोऽभवद् ॥२७
तत्पुत्र शितगुर्नाम श्रीरुक्मकवचस्तत ।
रुक्मश्च पृथुरुक्मश्च ज्यामघ पालितो हरि ॥२८

दुर्दम के धनक—कृतवीर्य—धानकि—कृताग्नि—कृतकर्मा और कृतौग ये महान् बलवान् पुत्र हुए थे ॥ २२ ॥ कृतवीर्य से अर्जुन हुआ और अर्जुन से शूर से नक पुत्र हुआ तथा अन्य जयध्वज–मधु–शूर–वृषण ये चार भी हुए थे। ये पाँचो पुत्र बड़े सुन्दर व्रत वाले थे ॥२३॥ जयध्वज से तालजंघ और तालजंघ से भरत की उत्पत्ति हुई। वृषण के पुत्र का नाम मधु था और मधु से वृष्णि आदि वंश करने वाला हुआ ॥ २४ ॥ क्रोष्टु का विजनिवान् पुत्र हुआ और इस महान् आत्मा वाले के पुत्र का नाम आहि था। आहि का सुत उशङ्कु था और उशङ्कु का सुत चित्ररथ हुआ था ॥ २५ ॥ चित्ररथ से शशबिन्दु ने जन्म धारण किया था। इसके लक्ष पत्नियाँ थी तथा दश लाख पुत्र हुए थे जोकि पृथुकीर्ति आदि परम श्रेष्ठ हुए थे ॥२६॥ उनमें पृथुकीर्ति–पृथुजय–पृथुदान और पृथुश्रवा ये मुख्यतम एवं उत्तम थे। पृथुश्रवा के तम नामक सुत ने जन्म लिया था और

तम से उशना उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥ उशना का पुत्र शितगु और इससे फिर श्री रुक्म कवच पैदा हुआ था । श्रीरुक्म कवच के रुक्म—पृथुरुक्म—ज्यामघ—पालित और हरि हुए ॥२८॥

श्रीरुक्मकवचस्यैते विदर्भो ज्यामघात्तथा ।
भार्य्यायाश्चैव शव्याया विदर्भात्क्रथकौशिकौ ॥२९
रोमपादो रोमपादाद्बभ्रुर्बभ्रोर्धृतिस्तथा ।
कौशिकस्य ऋचि पुत्र ततश्चैद्यो नृप किल ॥३०
कुन्ति किलास्य पुत्रोऽभूत्कुन्तेर्वृष्णि सुत स्मृत ।
वृष्णेश्च निवृति पुत्रो दशार्हो निवृतेस्तथा ॥३१
दशार्हस्य सुतो व्योमा जीमूतश्च तदात्मज ।
जीमूताद्विकृतिर्जज्ञे ततो भीमरथोऽभवत् ॥३२
ततो मधुरथो जज्ञे शकुनिस्तस्य चात्मज ।
करम्भिक शकुन पुत्रस्तस्य देवमत स्मृत ॥३३
देवक्षत्रो देवमतो देवक्षत्रान्मधु स्मृत ।
कुरुवशो मधो पुत्रो ह्यनुश्च कुरुवशत ॥३४
पुरुहोत्रो ह्यनो पुत्रो ह्यशुश्च पुरुहोत्रत ।
सत्वश्रुत सुतश्चाशोस्ततो वै सात्वतो नृप ॥३५

ये उपर्युक्त सभी पुत्र रुक्म कवच के हुए थे । ज्यामघ का पुत्र विदर्भ हुआ और विदर्भ से शैव्या नाम वाली भार्या मे क्रथ और कौशिक दो पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥ २९ ॥ रोमपाद बभ्रु हुआ और बभ्रु से धृति उत्पन्न हुआ । कौशिक के पुत्र का नाम ऋचि था और इसके बाद चैद्य नृपति हुआ था ॥३०॥ इसके पुत्र का नाम कुन्ति था तथा कुन्ति के वृष्णि नामक पुत्र ने जन्म लिया था । वृष्णि से निवृति की उत्पत्ति हुई तथा निवृति के पुत्र का नाम दशार्ह हुआ था ॥३१॥ दशार्ह के व्योमा नामधारी सुत ने जन्म लिया था और व्योमा का आत्मज जीमूत पैदा हुआ था । जीमूत से विकृति ने जन्म ग्रहण किया था और इसके भीमरथ सुत समुत्पन्न हुआ ॥३२॥ इसके पश्चात् मधुरथ पैदा हुआ और मधुरथ का पुत्र शकुनि हुआ । शकुनि का सुत करम्भि था और इसका पुत्र

देवमत कहा गया है ॥ ३३ ॥ देवमत से देवक्षत्र और देवक्षत्र से मधु उत्पन्न हुआ। कुरुवश मधु का पुत्र था और कुरुवश से अनु की उत्पत्ति हुई थी ॥३४॥ अनु का पुत्र पुरुहोत्र था और पुरुहोत्र से अंशु पैदा हुआ था। अंशु का सुत सत्वश्रुत नाम वाला हुआ और उस सत्वश्रुत से सात्वत नृप की उत्पत्ति हुई थी ॥३५॥

भजिनो भजमानश्च सात्वतादन्धक सुत ।
महाभोजो वृष्णिर्दिव्यावन्यो देवावृधोऽभवत् ॥३६
निमिवृष्णी भजमानादयुताजित्तथैव च ।
शतजिच्च सहस्राजिद्बभ्रुर्देवो बृहस्पति ॥३७
महाभोजात्तु भोजोऽभूद्वृष्णेश्चैव सुमित्रक ।
स्वधाजित्सञ्ज्ञकस्तस्मादनमित्रशिनी तथा ॥३८
अनमित्रस्य निघ्नोऽभून्निघ्नाच्छत्राजितोऽभवत् ।
प्रसेनश्चापर ख्यातो ह्यनमित्राच्छिविस्तथा ॥३९
शिनेस्तु सत्यक पुत्र सत्यकात्सात्यकिस्तथा ।
सात्यके सञ्जय पुत्र कुलिश्चैव तदात्मज ॥
कुलेर्युगन्धर पुत्रस्ते शैवेया: प्रकीर्तिता ॥४०
अनमित्रान्वये वृष्णि श्वफल्कश्चित्रक सुत ।
श्वफल्काच्चैव गान्दिन्यामक्रूरो वैष्णवोऽभवत् ॥४१
उपमद्गुरथाक्रूराद्देवद्योतस्तत सुत ।
देववानुपदेवश्च अक्रूरस्य सुतौ स्मृतौ ॥४२

सात्वत नृपति के भजिन—भजमान और अन्धक ये पुत्र हुए थे। इसके अतिरिक्त महाभोज—वृष्णि—दिव्य और अन्य देवावृध, भजमान के निमि—वृष्णि—अयुताजित्—शतजित—सहस्राजित—बभ्रु—देव और बृहस्पति हुए थे ॥ ३६।३७ ॥ महाभोज नाम वाले से भोज, वृष्णि से सुमित्रक, फिर इससे स्वधाजित् नाम वाला और अनमित्र शिनी पैदा हुआ था ॥३८॥ अनमित्र का पुत्र निघ्न हुआ और निघ्न से शत्राजित्। दूसरा प्रसेन—इस नाम से ख्यात था। अनमित्र से शिवि का उत्पत्ति हुई थी। शिवि का पुत्र सत्यक—सत्यक से सात्यकि

उससे सञ्जय और सञ्जय के पुत्र का नाम कुनि था। कुलिका सुत युगन्तर नाम वाला था। ये सब शैवेय नाम से कहे गये थे।३६।४०। मनमित्र के वश मे वृष्णि-श्वफल्क और चित्रक सुत थे। श्वफल्क से उसकी भार्या गान्दिनी मे अक्रूर ने जन्म धारण किया था जोकि परम विष्णु के भक्त थे ॥ ४१ ॥ अक्रूर के पुत्र का नाम उपमद्गु था और उपमद्गु के पुत्र का नाम देवद्योत था। अक्रूर के देववान् और उपदेव दो पुत्र कहे गये है ॥४२॥

पृथुविपृथुश्चित्रस्य अन्तकस्य शुचि स्मृत ।
कुकुरो भजमानस्य तथा कम्बलबर्हिष ॥४३
धृष्टस्तु कुकुराज्जज्ञे तस्मात्कापोतरोमकः ।
तदात्मजो विलोमा च विलोम्नस्तुम्बुरुः सुत. ॥४४
तस्माच्च दुन्दुभिर्जज्ञे पुनर्वसुरत स्मृत ।
तस्याहुकश्चाहुकी च कन्या चैवाहुकस्य तु ॥४५
देवकश्चोग्रसेनश्च देवकाद्देवकी त्वभूत् ।
वृकदेवोपदेवा च सहदेवा सुरक्षिता ॥४६
श्रीदेवी शान्तिदेवी च वसुदेव उवाह ता ।
देवश्चानुपदेवश्च सहदेवासुतौ स्मृतौ ॥४७
उग्रसेनस्य कसाऽभूत्सुनामा च वटादय ।
विदूरथो भजमानाच्छूरश्चाभूद्विदूरथात् ॥४८
विदूरथसुतस्याथ शूरस्यापि समी सुत ।
प्रतिक्षत्रश्च समिन स्वयम्भोजस्तदात्मज ॥४६

चित्र के पृथु और विपृथु दो पुत्र थे। अन्तक क पुत्र का नाम शुचि बताया गया है। भजमान के पुत्र का नाम कुकुर था और कम्बल बर्हिष था।४३। कुकुर से धृष्ट का और धृष्ट से कापोत रोमक था। इस कापोत रोमक के पुत्र का नाम विलोमा और विलोमा से तुम्बरु नाम वाले सुत ने जन्म लिया था ॥४४॥ इससे फिर दुन्दुभि जो पुनर्वसु मे रति करने वाला कहा गया है। इसके आहुक पुत्र और आहुकी नाम वाली कन्या थी। आहुक के देवक पुत्र हुआ और दूसरा पुत्र उग्रसेन था। देवक से देवकी की उत्पत्ति हुई वसुदेवने वृकदेवा—उपदेवा—

सहदेवा—सुरक्षिता—श्रीदेवी—शान्ति देवी इन सभी के साथ विवाह कर लिया था। सहदेवा के देव और अनुपदेव ये दो पुत्र थे ॥४५।४६।४७॥ उग्रसेन नृप के पुत्र का नाम कस था और भी सुनाम तथा वटादि थे। भजमान से विदूरथ और विदूरथ से शूर हुआ ॥४८॥ विदूरथ क पुत्र शूर के समी नामक सुत था। समी के पुत्र का नाम प्रतिक्षत्र था और प्रतिक्षत्र का पुत्र स्वयम्भोज था ॥४९॥

हृदिकश्च स्वयम्भोजात्कृतवर्मा तदात्मज ।
देव शतधनुश्चैव शूराद्वै देवमीढुष ॥५०
दश पुत्रा मारिषाया वसुदेवादयोऽभवन् ।
पृथा च श्रुतदेवी च श्रुतकीर्ति श्रुतश्रवा ॥५१
राजाधिदेवी शूराच्च पृथा कुन्ते सुतामदात् ।
सा दत्ता कुन्तिना पाण्डोस्तस्या धर्मानिलेन्द्रकै ॥५२
युधिष्ठिरो भीमपार्थौ नकुल सहदेवक ।
माद्र्या नासत्यदस्राभ्या कुन्त्या कर्ण पुराऽभवत् ॥५३
श्रुतदेव्या दन्तवक्रो जज्ञे वै युद्धदुर्मद ।
अन्तर्द्धानादय पञ्च श्रुतकीर्त्याश्च कैकयात् ॥५४
राजाधिदेव्या विन्दश्च अनुविन्दश्च जज्ञिरे ।
श्रुतश्रवा दमघोषात्प्रजज्ञे शिशुपालकम् ॥५५
पौरवी रोहिणी भार्य्या मदिरानकदुन्दुभे ।
देवकीप्रमुखा भद्रा रोहिण्या बलभद्रक ॥५६
सारणाद्या शठश्चैव रेवत्या बलभद्रत ।
निशठश्चोल्मुको जातो देवक्या षट् च जज्ञिरे ॥५७

स्वयम्भोज से हृदिक और फिर हृदिक का पुत्र कृतवर्मा समुत्पन्न हुआ था। शूर से देव–शतधनु और देवमीढुष हुए थे ॥५०॥ मरिषा मे वसुदेव प्रभृति दश पुत्र थे। पृथा—श्रुतदेवी—श्रुतकीर्ति—श्रुतश्रवा क राजाधि देवी शूर से और कुन्ति की पुत्री पृथा को दिया था। कुन्ति के द्वारा दी हुई उसमे पाण्डु से धर्म—वायु और इन्द्र के द्वारा युधिष्ठिर–भीम और अर्जुन तथा नकुल एव सहदेवक माद्री मे नासत्य और दस्र से उत्पन्न थे। पहिले कुन्ती मे कर्ण उत्पन्न

हो चुका था ॥५१॥५२ ५३॥ श्रुत देवी में दन्तवक्र ने जन्म लिया था जोकि युद्ध में दुर्मद था । सन्तर्धान प्रभृति पाँच कैकय से श्रुति कीर्ति में थे ॥५४। राजाधि देवी से विन्द और अनुविन्द ने जन्म ग्रहण किया था । श्रुत श्रवा ने दमघोष से शिशुपाल को जन्म दिया था । ५५॥ आनक दुन्दुभि की पौरवी और रोहिणी तथा मदिरा भार्या थी । देवकी जिनमें प्रमुख थी जोकि भद्रा थी । रोहिणी में बलभद्र हुए ॥५६॥ बलभद्र से रेवती नाम वाली पत्नी में सारण प्रभृति और शठ उत्पन्न हुए । निशठ और उन्मुक आदि छं देवकी से थे ॥५७॥

कीर्तिमाश्च सुषेणश्च उदार्यो भद्रसेनकः ।
ऋजुदासो भद्रदेव कस एवावधीच्च तान् ॥५८
सकर्षण सप्तमोऽभूदष्टम कृष्ण एव च ।
षोडशस्त्रीसहस्राणि भार्य्याणाञ्चाभवन्हरे ॥५६
रुक्मिणी सत्यभामा च लक्ष्मणा चारुहासिनी ।
श्रेष्ठा जाम्बवती चाष्टौ जज्ञिरे ता सुतान्वहून् ॥६०
प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च प्रधाना साम्ब एव च ।
प्रद्युम्नादनिरुद्धोऽभूत्ककुद्मिन्या महाबल ॥६१
अनिरुद्धात्सुभद्रायां वज्रो नाम नृपोऽभवद् ।
प्रतिबाहुर्वज्रसुनश्चारुस्तस्य सुतोऽभवत् ॥६२
वह्निस्तु तुर्वसोर्वंशे वह्नेर्भार्गोऽभवत्सुत ।
भार्गाद्भानुरभूत्पुत्रो भानो पुत्र करन्धम ॥६३

देवकी के प्रथम पुत्र का नाम कीर्तिमान् था और फिर सुषेण—उदार्य—भद्र सेनक—ऋजुदास—भद्रदेव थे । इन सबको राजा कस ने मार दिया था ॥ ५८ ॥ सातवाँ पुत्र देवकी के सकर्षण और आठवें पुत्र साक्षात् श्रीकृष्ण ने अवतीर्ण होकर जन्म धारण किया था । हरि के सोलह हजार भार्याएँ थी । रुक्मिणी—सत्यभामा—लक्ष्मणा—चारु हासिनी श्रेष्ठा जाम्बवती इस तरह ये आठ पटरानियाँ थी । इन आठों प्रमुख भार्याओं ने बहुत-से पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था ॥५६।६०॥ उनमें प्रद्युम्न—चारुदेष्ण और साम्ब ये प्रधान पुत्र थे । प्रद्युम्न से अनिरुद्ध महान् बलशाली की उत्पत्ति थी जोकि अनिरुद्ध ने सुभद्रा

से वज्र नाम नामक सुत को समुत्पन्न किया था। व्रज का पुत्र प्रतिबाहु हुआ था और इसका सुतबाहु नाम वाला हुआ था ॥ ६१।६२ ॥ तुर्वसु के वंश में वह्नि और वह्नि का सुत भार्ग हुआ था। भार्ग से भानु की उत्पत्ति तथा भानु के पुत्र के रूप में करन्धम ने जन्म प्राप्त किया था ॥६३॥

> करन्धमस्य मरुतो द्रुह्योर्वंश निबोध मे ।
> द्रुह्योस्तु तनय सेतुरारद्धश्च तदात्मज ॥
> आरद्धस्यैव गान्धारो धर्मो गान्धारतोऽभवत् ॥६४
> धृतस्तु धर्मपुत्रोऽभूद् दुर्गमश्च धृतस्य तु ।
> प्रचेता दुर्गमस्यैव अनोर्वंश शृणुष्व मे ॥६५
> अनो. स्वभानर पुत्रस्तस्मात्कालञ्जयोऽभवत् ।
> कालञ्जयात्सृञ्जयोऽभूत्सृञ्जयात्तु पुरञ्जयः ॥६६
> जनमेजयस्तु तत्पुत्रो महाशालस्तदात्मज ।
> महामना महाशालादुशीनर इति स्मृत ॥६७
> उशीनराच्छिबिर्जज्ञे वृषदर्भ शिबे सुत ।
> महामनोजास्तितिक्षो पुत्रोऽभूच्च रुषद्रथ ॥६८
> हेमो रुषद्रथाज्जज्ञे सुतपा हेमतोऽभवत् ।
> बलिः सुतपसो जज्ञे अङ्गवङ्गकलिङ्गकाः ॥६९
> अन्ध्रः पौण्ड्रश्च बालेया अनपालस्तथाङ्गतः ।
> अनपालाद्दिविरथस्ततो धर्मरथोऽभवत् ॥७०

करन्धम का पुत्र मरुत हुआ था। अब मुझसे तुम द्रुह्यु के वंश का परिचय प्राप्त करो। द्रुह्यु का सुतसेतु था और इसका पुत्र आरद्ध हुआ। आरद्ध के तनय का नाम गान्धार था और गान्धार से धर्म नामक आत्मज ने जन्म ग्रहण किया था ॥६४॥ धर्म का पुत्र धृत और धृत का सुत दुर्गम एवं दुर्गम का तनय प्रचेता था। अब अनु के वंश का श्रवण मुझसे करो ॥६५॥ अनु का पुत्र स्वभानर—स्वभानर का सुत कालञ्जय और कालञ्जय से सृञ्जय एवं सृञ्जय से पुरञ्जय पुत्र था ॥६६॥ इस पुरञ्जय का सुत जनमेजय था और जनमेजय का तनय महाशाल था। महाशाल से महामना हुआ था जो उशीनर इस नाम

से कहा गया था ॥६७॥ उशीनर से शिवि—शिवि से वृषदर्भ—तितिक्षु महामनोज से रुषद्रथ पुत्र की उत्पत्ति हुई थी ॥ ६८ ॥ रुषद्रथ से हेम जन्मा और हेम से सुतपा हुआ था। सुतपा से बलि था। अङ्ग–वङ्ग और कलिङ्ग वा उत्पन्न हुए। अङ्ग से अन्ध्र—पौण्ड्र—बालेया और अनपाल हुए थे। अनपाल से दिविरथ और इससे धर्मरत सुत पैदा हुआ था ॥६६।७०॥

रोमपादो धर्मरथाच्चतुरङ्गस्तदात्मजः।
पृथुलाक्षस्तस्य पुत्रश्चम्पोऽभूत्पृथुलाक्षतः ॥७१
चपम्पुत्रश्च हर्यङ्गस्तस्य भद्ररथः सुतः।
वृहत्कर्मा सुतस्तस्य वृहद्भानुस्ततोऽभवत् ॥७२
वृहन्मना वृहद्भानोस्तस्य पुत्रो जयद्रथः।
जयद्रथस्य विजयो विजयस्य धृतिः सुतः ॥७३
धृतेर्धृतव्रतः पुत्रः सत्यधर्मा धृतव्रताद्।
तस्य पुत्रस्त्वधिरथः कर्णस्तस्य सुतोऽभवत् ॥
वृषसेनस्तु कर्णस्य पुरुवंशान् शृणुष्व मे ॥७४

धर्मरत से रोमपाद नामधारी पुत्र ने जन्म प्राप्त किया था तथा रोमपाद के पुत्र का नाम चतुरङ्ग था। इसका पुत्र पृथुलाक्ष हुआ और पृथुलाक्ष से चम्प ने जन्म धारण किया था ॥७१॥ चम्प के तनय का नाम हर्यङ्ग था और इसका पुत्र भद्ररथ हुआ था। भद्ररथ के पुत्र का नाम वृहत्कर्मा था फिर इसके वृहद्भानु नामक पुत्र ने जन्म लिया था ॥ ७२ ॥ वृहद्भानु के वृहन्मना तथा फिर इसका पुत्र जयद्रथ हुआ था। जयद्रथ के सुत विजय नामधारी था और विजय के यहाँ धृति नाम वाले पुत्र ने जन्म लिया था ॥७३॥ धृति से धृतव्रत ने जन्म ग्रहण किया और इसके सत्यधर्मा था। सत्यधर्मा का पुत्र अधिरथ और इसके कर्ण नामक पुत्र था। कर्ण के वृषसेन हुआ अब तुम मुझसे पुरु के वंश का श्रवण करो ॥७४॥

६१—चन्द्रवंश कीर्तन (२)

जनमेजय पुरोश्चाभून्मनस्युर्जनमेजयात्।
तस्य पुत्रश्चाभयदः सम्वुश्चाभयदादभूत् ॥१

सम्बोर्वहुगति पुत्र सजातिस्तस्य चात्मज ।
वत्सजातिश्च सजातेः रौद्राश्वश्च तदात्मज ॥२
ऋतेयु स्थण्डिलेयुश्च कक्षेयुश्च कृतेयुकः ।
जलेयु सन्ततेयुश्च रौद्राश्वस्य सुता वराः ॥३
रतिनार ऋतेयोश्च तस्य प्रतिरथ सुतः ।
तस्य मेधातिथि पुत्रस्तत्पुत्रश्चैनिल स्मृत ॥४
ऐनिलस्य तु दुष्यन्तो भरतस्तस्य चात्मज. ।
शकुन्तलाया सञ्जज्ञे वितथो भरतादभूत् ॥५
वितथस्य पुत्रो मन्युर्मन्योश्चैव नरः स्मृत ।
नरस्य सस्कृति पुत्रो गर्गो हि सकृते सुत ॥६
गर्गादिमन्यु पुत्रा वै शिनि पुत्रा व्यजायत ।
मन्युपुत्रान्महावीर्यादुरुक्षय सुताऽभवत् ॥७

श्री हरि भगवान् ने कहा—पूरु का पुत्र जनमजय था । और जनमेजय से मनस्यु नाम वाला सुत था । इसका पुत्र अभयद और अभयद से सम्यु का जन्म हुआ था ॥१॥ सम्यु का पुत्र बहुगति—बहुगति का तनय सञ्जाति—सजाति का सुत वत्सजाति और इसका पुत्र रौद्राश्व हुआ था ॥२॥ रौद्राश्व के कई पुत्र हुए थे । उनके नाम ऋतयु—स्थण्डिलयु—कक्षयु—कृतयुक—जलेयु—सन्नतेयु ये हैं। ये सब बहुत श्रेष्ठ थे ॥३॥ ऋतयु के पुत्र रतिनार हुआ और इसका पुत्र प्रतिरथ हुआ था । प्रतिरथ का पुत्र मेधातिथि और इसका पुत्र ऐनिल कहा गया था ॥४॥ ऐनिल के पुत्र का नाम दुष्यन्त और दुष्यन्त का सुत भरत था । राजा भरत से शकुन्तला में वितथ का जन्म हुआ था ॥५॥ वितथ का सुत मन्यु—मन्यु का नर—नर का सङ्कृति और सङ्कृति का तनय गर्ग था ॥६॥ गर्ग से अमन्यु अमन्यु से शिनि—मन्यु के पुत्र शिनि से जोकि महान् वीर्य—पराक्रम वाला था उरुक्षय नामधारी तनय हुआ था ॥७॥

उरुक्षयात्त्रय्यारुणिव्यूँ हक्षत्राच्च मन्युजात् ।
सुहोत्रस्तस्य हस्ती च अजमीढद्विमीढकौ ॥८
हस्तिन पुरुमीढश्च कण्वोऽभूदजमीढत ।
कण्वान्मेधातिथिर्जज्ञे यत काण्वायना द्विजा ॥९

अजमीढाद् बृहदिषुस्तत्पुत्रश्च बृहद्धनु ।
बृहत्कर्मा तस्य पुत्रस्तस्य पुत्रो जयद्रथ ॥१०
जयद्रथाद्विश्वजिच्च सेनजिच्च तदात्मज ।
रुचिराश्व सेनजित पृथुसेनस्तदात्मज ॥११
पारस्तु पृथुसेनस्य पाराद् द्वीपाच्चवन्नृप ।
नृपस्य समर पुत्र सुकृतिश्च पृथो सुत ॥१२
विभ्राज सुकृत पुत्राविभ्राजादश्वहाऽभवत् ।
कृत्या तस्माद् ब्रह्मदत्तो विष्वक्सेनस्तदात्मज ॥१३
यवीनरो द्विमीढस्य धृतिमांश्च यवीनरात् ।
धृतिमत सत्यधृतिदृढनेमिस्तदात्मज ॥१४

वक्षमाण स नम्मार्हणा तथ, मन्यु के पुत्र बृहत्क्षत्र से सुहोत्र हुआ—सुहोत्र का हस्ती और अजमीढ—द्विमीढ पुत्र हुए थे ॥८॥ हस्ती का पुत्र पुरुमीढ और अजमीढ का सुत कण्व हुआ था। कण्व से मेधातिथि ने जन्म लिया था। इस कारण से ये काण्वायन द्विज कहे गये थे ॥९॥ अजमीढ से बृहदिषु और इसका पुत्र बृहद्धनु हुआ। बृहद्धनु का पुत्र बृहत्कर्मा और इसका सुत जयद्रथ था ॥१०॥ जयद्रथ से विश्वजित् और सेनजित् पुत्र थे। सेनजित् का आत्मज रुचिराश्व और रुचिराश्व का पुत्र पृथुसेन था ॥ ११ ॥ पृथुसेन से पार—पार से द्वीप—द्वीप से नृप और नृप से समर था। पृथु का पुत्र सुकृति था ॥ १२ ॥ सुकृति वीर से विभ्राज ने शरीर धारण किया। विभ्राज से अश्वह था। इसमें कृत्या में ब्रह्मदत्त हुआ और इसका आत्मज विष्वक्सेन था ॥ १३ ॥ द्विमीढ का सुत यवीनर और यवीनर से धृतिमान् ने जन्म लिया था। धृतिमान् का पुत्र सत्यधृति और इसका पुत्र दृढनेमि नामधारी हुआ था ॥१४॥

दृढनेम सुपार्श्वोऽभूत्सुपार्श्वात्सन्नतिस्तथा ।
कृतस्तु सन्नत पुत्र कृतादुग्रायुधोऽभवत् ॥१५
उग्रायुधाच्च क्षेम्याऽभूत्सुधीरस्तु तदात्मज ।
पुरञ्जय सुधीराच्च तस्य पुत्रो विदूरथ ॥१६
अजमीढान्नलिन्या च नीलो नाम नृपोऽभवत् ।
नीलाच्छान्तिरभूत्पुत्र सुशान्तिस्तस्य चात्मज ॥१७

सुशान्तेश्च पुरुजातो ह्यर्कस्तस्य सुतोऽभवत् ॥
अर्कस्य चैव हर्यश्वो हर्यश्वान्मुकुलोऽभवत् ॥१८
यवीनरो बृहद्भानु कम्पिल्ल सृञ्जयस्तथा ।
पाञ्चालान्मुकुलाज्जज्ञे शरद्वान् वैष्णवो महान् ॥१६
दिवोदासो द्वितीयोऽस्य अहल्याया शरद्वत ।
शतानन्दोऽभवत्पुनस्तस्य सत्यधृनि सुत ॥२०
कृप. कृपी सत्यधृतेरुर्वश्या वीर्यहानित ।
द्रोणपत्नी कृपी जज्ञे अश्वत्थामानमुत्तमम् ॥२१

इदनेमि का पुत्र सुपार्श्व था । सुपार्श्व न सन्नति ने जन्म प्राप्त किया था । सम्नति का पुत्र कृत हुआ और कृत स उग्र युद्ध न जन्म ग्रहण किया था ॥१५॥ उग्रायुध से क्षेम्य का जन्म हुआ और इसस फिर सुधीर की उत्पत्ति हुई थी । सुधीर से पुरञ्जय ने जन्म लिया और इसका सुत विदूरथ था ॥ १६ ॥ अजमीढ से नलिनी नाम धारिणी भार्या म नील नाम वाले नृप न जन्म धारण किया था । नील से शान्ति नामक पुत्र हुआ और इसका पुत्र सुशान्ति नाम वाला था ॥१७॥ सुशान्ति स पुरु—पुरु स अर्क—अर्क स हर्यश्व और हर्यश्व स मुकुल की उत्पत्ति हुई थी ॥ १८ ॥ पाञ्चाल से यवीनर—बृहद्भानु—कम्पिल्ल तथा सृञ्जय हुए थे । मुकुल स महान् विष्णु का भक्त शरद्वान् था ॥१६॥ इस शरद्वान् के द्वितीय दिवोदास ने अहल्या म जन्म लिया था । इसका पुत्र शतानन्द और शतानन्द का पुत्र सत्यधृ त था ॥२०॥ सत्यधृति के कृप और कृपी उर्वशी के द्वारा वीर्य का हानि से हुए थे । द्रोण की पत्नी कृपी से अश्वत्थामा ने जन्म ग्रहण किया था जोकि परम उत्तम था ॥२१॥

दिवोदासान्मित्रयुश्च मित्रयोश्चयवनोऽभवत् ।
सुदासश्च्यवनाज्जज्ञे सौदासस्तस्य चात्मजः ॥२२
सहदेवस्तस्य पुत्रः सहदेवात्तु सोमक ।
जन्तुस्तु सोमकाज्जज्ञे पृषतश्चापरो महान् ॥२३
पृषताद् द्रुपदो जज्ञे धृष्टद्युम्नस्ततोऽभवत् ।
धृष्टद्युम्नाद् धृष्टकेतुरृक्षोऽभूदजमीढत ॥२४

ऋक्षात् संवरणो जज्ञे कुरु संवरणादभूत् ।
सुधनुश्च परीक्षिच्च जह्नुश्चैव कुरोः सुताः ॥२५
सुधनुष सुहोत्रोऽभूच्च्यवनो गृत्सुहोत्रतः ।
च्यवनात्कृतको जज्ञे यथापरिचरो वसुः ॥२६
वृहद्रथश्च प्रत्यग्रः सत्याद्याश्च वसोः सुताः ।
वृहद्रथात्कुशाग्रश्च कुशाग्रादृषभोऽभवत् ॥२७
ऋषभात्पुष्पवान्तस्माज्जज्ञे सत्यहिता नृपः ।
सत्यहितात्सुधन्वाऽभूज्जह्नुश्चैव सुधन्वतः ॥२८

दिवोदास का पुत्र मित्रयु था और मित्रयु का सुत च्यवन पैदा हुआ। च्यवन से सुदास ने जन्म लिया था और इसके पुत्र सौदास था ॥२२॥ सौदास का पुत्र सहदेव—सहदेव का पुत्र सोमक—सोमक का जन्तु और दूसरा महान् पृषत पुत्र था ॥२३॥ पृषत से द्रुपद ने जन्म लिया था फिर द्रुपद का पुत्र धृष्टद्युम्न था। धृष्टद्युम्नसे धृष्टकेतु और अजामीढ से ऋक्ष ने जन्म लिया था ॥२४॥ ऋक्ष से संवरण—संवरण से कुरु और कुरु के सुधनु और परीक्षित दो पुत्र हुए थे तीसरा जह्नु भी पुत्र था ॥२५॥ सुधनु का सुहोत्र और सुहोत्र से च्यवन की उत्पत्ति हुई। च्यवन का पुत्र कृतक और इसके अनन्तर उपरिचर वसु था। वसु के वृहद्रथ-प्रत्यग्र और सत्य आदि वसु के पुत्र थे। वृहद्रथ से कुशाग्र हुआ और कुशाग्र से ऋषभ था ॥२६।२७॥ ऋषभ से पुष्पवान् पैदा हुआ और इससे सत्यहित नृप की उत्पत्ति हुई। सत्यहित का पुत्र सुधन्वा हुआ और सुधन्वा से जह्नु ने जन्म ग्रहण किया था ॥२८॥

वृहद्रथाज्जरासन्धः सहदेवस्तदात्मजः ।
सहदेवाच्च सामापिः सामापेः श्रुतवान् ततः ॥२९
भीमसेनोग्रसेनौ च श्रुतसेनोऽपराजितः ।
जनमेजयश्चान्योऽभूज्जह्नोस्तु सुरथोऽभवत् ॥३०
विदूरथस्तु सुरथात्सार्वभौमो विदूरथात् ।
जयसेनः सार्वभौमादाराधीनस्तदात्मजः ॥३१
अयुतायुस्तस्य पुत्रस्तस्य चाक्रोधनः सुतः ।
अक्रोधनस्यातिथिश्च ऋक्षोऽभूदतिथेः सुतः ॥३२

बृहद्रथ से जरासन्ध और जरासन्ध से सहदेव का जन्म हुआ। सहदेव का पुत्र सोमापि था और इसके पुत्र का नाम श्रुतवान् था ॥२९॥ फिर भीमसेन–उग्रसेन–श्रुतसेन–अपराजित और जनमेजय पुत्र था। जह्नु का पुत्र सुरथ था ॥३०॥ सुरथ से विदूरथ–विदूरथ से सार्वभौम–सार्वभौम से जयसेन और जयसेन से आराधीत तनय था ॥३१॥ इस आराधीत का पुत्र अयुतायु था और इसका पुत्र अक्रोधन था। अक्रोधन का अतिथि और अतिथि का पुत्र ऋक्ष नाम वाला हुआ था ॥३२॥

ऋक्षाच्च भीमसेनोऽभूद्दिलीपो भीमसेनत ।
प्रतीपाऽभूद्दिलीपाच्च देवापिस्तु प्रतीपत ॥३३
शन्तनुश्चैव वाह्लीकस्त्रयस्त भ्रातरो नृपा ।
वाह्लीकात्सोमदत्तोऽभूद् भूरिर्भूरिश्रवास्तत ॥३४
शालश्च शन्तनोर्भीष्मो गङ्गाया धार्मिको महान् ।
चित्राङ्गदविचित्रौ तु सत्यवत्यान्तु शन्तनोः ॥३५
विचित्रवीर्यस्त्र भार्ये तु अम्बिकाम्बालिके तयो ।
धृतराष्ट्रन्तु पाण्डुञ्च तद्दास्या विदुर तथा ॥३६
व्यास उत्पादयामास गान्धारी धृतराष्ट्रत ।
शत दुर्योधनाद्य च पाण्डो पञ्च प्रजज्ञिरे ॥३७
प्रतिविन्ध्य श्रुतसाम श्रुतकीर्त्तिश्च चार्जुनात् ।
शतानीक श्रुतकर्मा द्रौपद्या पञ्च वै क्रमात् ॥३८
यौधेयो च हिडिम्बा च कैशी चैव सुभद्रिका ।
विजयी वै रेणुमती पञ्चस्यन्तु सुताः क्रमात् ॥३९
देवको घटोत्कचश्च अभिमन्युश्च सर्वग ।
सुहोत्रो निरमित्रश्च परीक्षिदभिमन्युजः ॥
जनमेजयोऽस्य ततो भविष्याश्च नृपान् शृणु ॥४०

ऋक्ष से भीमसेन का जन्म और भीमसेन से दिलीप की उत्पत्ति हुई। दिलीप के पुत्र का नाम प्रतीप था और प्रतीप से देवापि ने जन्म लिया था ॥३३॥ शन्तनु और वाह्लीक इन दोनो के सहित ये तीन भाई नृप थे। वाह्लीक से सोमदत्त और भूरि तथा भूरिश्रवा एव शाल उत्पन्न हुए थे। शन्तनु नृप से गङ्गा

म महान् धार्मिक भीष्म नृपति, गङ्गा मे हुए थे। इसी शान्तनु नृपति से सत्ताह की पुत्री सत्यवती मे चित्राङ्गद और विचित्र नाम वाले दो पुत्र थे। विचित्र वीर्य की अम्बा और अम्बालिका दो भार्याए थी जोकि देवव्रत (भीष्म) लाये थे। उन दोनो भार्याओं से धृतराष्ट्र और पाण्डु इन दो पुत्रो की उत्पत्ति हुई थी उनकी एक दासी ने विदुर का जन्म था ॥ ३४।३५।३६ ॥ महर्षि व्यासदेव ने नियोग से जोकि केवल दर्शन मात्र के स्वरूप वाला था, गान्धारी स धृतराष्ट्र उत्पन्न था। धृतराष्ट्र मे दुर्योधनादि सौ पुत्र (कौरव) हुए और पाण्डु से कुन्ती म केवल पाँच पुत्र (पाण्डव नामधारी) थे ॥३७॥ उन पाण्डवो म अर्जुन से प्रतिविन्ध्य—श्रुत सोम और श्रुतकीर्त्ति पुत्र द्रौपदी में शतानीक तथा श्रुतकर्मा क्रम से पाँच थे ॥३८॥ दवक—घटो कच और सर्वग अभिमन्यु—सुहोत्र और निरमित्र थे। अभिमन्यु से परीक्षित ने जन्म ग्रहण किया था ॥३९॥ इन परीक्षित के जनमेजय पैदा हुआ। इसके आगे जो भावी पुत्र हुए उनका अब श्रवण करो ॥४०॥

९२ – हरि अवतार कथन

वशादीन्पालयामास अवतीर्णो हरि. प्रभु ।
दैत्यधर्मस्य नाशार्थं वेदधर्मादिगुप्तये ॥१
मत्स्यादिकस्वरूपेण अवतार करोत्यज ।
मत्स्यो भूत्वा हयग्रीव दैत्य हत्वाजिकण्टकम् ॥२
वेदानानीय मन्वादीन्पालयामास केशव ।
मन्दर धारयामास कूर्मो भूत्वा हिताय च ॥३
क्षीरोदमथने वैद्यो देवा धन्वन्तरिर्ह्यभूत् ।
बिभ्रत्कमण्डलु पूर्णममृतेन समुत्थित ॥४
आयुर्वेदमथाष्टाङ्ग सुश्रुताय स उक्तवान् ।
अमृत पाययामास स्त्रीरूपी च सुरान् हरि ॥५
अवतीर्णो वराहाख्य हिरण्याक्ष जघान ह ।
पृथिवीं धारयामास पालयामास देवता ॥६
नरसिंहोऽवतीर्णोऽथ हिरण्यकशिपु रिपुम् ।
दैत्यान्निहतवान्वेदधर्मादीनभ्यपालयत् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इन उपर्युक्त नृपादि के वंशों का पालन भगवान् ने अवतीर्ण होकर किया था। इनमें जो आसुरी वृत्ति वाले दैत्य गण थे उनके किये हुए अधर्म का नाश किया था और वेदों के द्वारा प्रतिपादित धर्म की रक्षा के लिये ही भगवान् ने समय-समय पर अवतार ग्रहण किया था ॥ १ ॥ उस अजन्मा प्रभु ने मत्स्य आदि के स्वरूप में अवतार लिया था। भगवान् ने मत्स्य होकर अर्थात् मत्स्यावतार ग्रहण करके धर्म के कण्टक रूपी हयग्रीव दैत्य का हनन किया था और वेदों तथा मनु आदि को यहाँ लाकर केशव भगवान् ने पालन किया था। कूर्म का अवतार लेकर प्रभुने जगत् के हित-सम्पादन करने के लिये मन्दराचल को अपने ऊपर धारण किया था ॥२॥३॥ क्षीरोदधि के मन्थन के अवसर पर देव धन्वन्तरि वैद्य हो गये थे अर्थात् धन्वन्तरि का का अवतार धारण किया। जिस समय समुद्र से उत्थित हुए थे उस समय उनके के हाथ मे अमृत से परिपूर्ण एक कमण्डलु था ॥ ४ ॥ उन भगवान् धन्वन्तरि ने आठो अङ्गो से पूर्ण आयुर्वेद शास्त्र को सुश्रुत को बताया था। मोहिनी एक परम सुन्दरी ललना का स्वरूप धारण कर हरि भगवान् ने वह अमृत देवगणों को पिला दिया था ॥ ५ ॥ एक वराह का अवतार ग्रहण किया था और वराह रूप में अवतीर्ण होकर महान् बली दुष्ट दैत्य हिरण्याक्ष का वध किया था। इस भूमि को धारण किया था और देवों की सुरक्षा की थी ॥६॥ इसके अनन्तर फिर नरसिंह अवतार हुआ था और हिरण्यकशिपु शत्रु का विदारण किया था। समस्त दैत्यों का वध किया था और वेदोक्त धर्म आदि का अभिपालन किया था ॥७॥

तत्त परशुरामोऽभूज्जमदग्नेर्जगत्प्रभु ।
निःक्षत्त्रा पृथिवी चक्रे त्रिःसप्तकृत्व हरि ॥८
कार्त्तवीर्य्यं जघानाजौ कश्यपाय मही ददौ ।
याग कृत्वा महाबाहुर्महेन्द्रे पर्वते स्थित ॥९
ततो रामो भविष्णुश्च चतुर्धा दुष्टमर्दन ।
पुत्रो दशरथाज्जज्ञे रामश्च भरतोऽनुज. ॥१०
लक्ष्मणश्चाथ शत्रुघ्नो रामभार्य्या च जानकी ॥११

रामश्च पितृसत्यार्थं मातृभ्यो हितमाचरन् ।
शृङ्गवेर चित्रकूट दण्डकारण्यमागत ॥१२
नासा शूर्पणखायाश्च छित्त्वाथ खरदूषणम् ।
हत्वा स राक्षस सीतापहारिरजनीचरम् ॥१३
रावण चानुज तस्य लङ्कापुर्यां विभीषणम् ।
रक्षोराज्ये च सस्थाप्य सुग्रीवहनुमन्मुखै. ॥१४
आरुह्य पुष्पक सार्द्धं सीतया पतिभक्तया ।
सुमहापतिव्रतया सोऽयोध्या स्वपुरी गत ॥१५

इसके अनन्तर जगत् के प्रभु ने जमदग्नि से परशुराम का अवतार धारण किया था और हरि ने इस भूमि को इक्कीस बार क्षत्रियों से रहित कर दिया था अर्थात् क्षत्रियों का सहार किया था । ८॥ युद्ध मे कार्त्तवीर्य का हनन किया था और भूमि को कश्यप ऋषि को दान किया था । महेन्द्र पर्वत पर स्थित होकर महाबाहु ने याग किया था ॥९॥ इसके पश्चात् दुष्टो के मर्दन करने वाले भविष्णु राम ने चार रूपो म दशरथ स पुत्र रूप मे जन्म ग्रहण किया था । उन चारो क नाम राम—छोटे भाई भरत-लक्ष्मण और शत्रुघ्न थे । श्रीराम की भार्या का नाम जानकी था ॥१०।११॥ श्रीराम ने पिता के सत्य वचन की रक्षा करने के लिए और माताओ क हित का आचरण करते हुए वे दण्डकारण्य मे चित्रकूट पवत पर शृङ्गवेर पुर म आगये थे ॥ १२ ॥ वहाँ वन मे रावण की बहिन शूर्पणखा क नासिका का छेदन कराकर खरदूषण तथा सीता के अपहरण करन वाले राक्षसराज रावण का वध किया था । उसके राज्यासन पर रावण के छोटे भाई विभीषण को लङ्कापुरी मे राज्य देकर सुग्रीव और हनुमान आदि प्रमुख बन्दरो तथा पतिभक्त सीता के साथ पुष्पक विमान पर समारूढ होकर श्रीराम अपनी महा पतिव्रता पत्नी के सहित पुन अयोध्यापुरी मे आगये थे ॥१३।१४।१५॥

राज्यञ्चकार देवादीन्पाल्यामास स प्रजा ।
धर्मसंरक्षण चक्रे अश्वमेधादिका न्क्रतून् ॥१६
सुमहापतिव्रतया रेमे रामा यथासुखम् ।
रावणस्य गृहे सीता स्थित्वापि न हि रावणम् ॥१७

कर्मणा मनसा वाचा सा गता राघव विना ।
पतिव्रता तु सा सीता अनसूया यथैव तु ॥१८
पतिव्रतायाः सीताया माहात्म्य कथयाम्यहम् ।
कौशिको ब्राह्मणः कुष्ठी प्रतिष्ठानेऽभवत्पुरा ॥१६
त तथा व्याधित भार्य्या पति देवमिवार्चयत् ।
निर्भर्त्सितापि भर्त्तार तममन्यत दैवतम् ॥२०
भर्त्रोक्ता सानयद्वेश्या शुल्कमादाय चाधिकम् ।
पथि शूले तदा प्रोतमचोर चौरशङ्कया ॥२१
माण्डव्यमतिदुःखार्त्तमन्धकारेऽथ स द्विजः ।
पत्नीस्कन्धसमारूढश्चालयामास कौशिकः ॥२२

फिर अयोध्यापुरी में राज्यासन पर समभिषिक्त होकर उन्होंने राज्य का शासन किया था और उन श्रीराम ने देव आदि का तथा अपनी प्रजा का पालन किया था। श्रीराम ने धर्म का पूरी तरह से सरक्षण किया था और अश्वमेध आदि यज्ञों को सविधि किया था ॥१६॥ परम सुन्दरी एव महा पतिव्रता पत्नी जानकी के साथ राम ने सुख पूर्वक रमण किया था। रावण के घर में रहकर भी जानकी ने रावण को कर्म-मन और वाणी से भी राघव के बिना स्वीकार नहीं किया था। सीता तो अनुसूया की भाँति ही अत्यन्त उत्तम कोटि की महान् पतिव्रत के पालन करने वाली थी ॥१७।१८॥ पतिव्रता सीता का माहात्म्य मैं बतलाता हूँ—पुराने समय मे प्रतिष्ठान मे कौशिक ब्राह्मण कुष्ठी था ॥१६॥ उस व्याधि से युक्त पति की सेवा उसकी भार्या ने देवता की भाँति की थी। अपने स्वामी के द्वारा फटकारे जाने पर भी उस स्वामी को वह देवता ही मानती थी ॥२०॥ स्वामी के द्वारा कहे जाने पर उसने अधिक शुल्क देकर वेश्या को समीप में लाने का काम किया था। उस समय मे मार्ग में शूल मे प्रोत अचौर को चौर की शङ्का से अत्यन्त दुःखित माण्डव्य अन्धकार में था। उस कौशिक द्विज ने अपनी पत्नी के कन्धे पर स्थित होते हुए चालित किया था ॥२१।२२॥

पादावमर्षणात्क्रुद्धो माण्डव्यस्तमुवाच ह ।
सूर्य्योदये मृतिस्तस्य येनाहं चालितः पदा ॥२३

तच्छ्रुत्वा प्राह तद्भार्य्या सूर्य्यो नोदयमेष्यति ।
ततः सूर्य्योदयाभावादभवत्सततं निशा ॥२४
बहून्यब्दप्रमाणानि ततो देवा भयं ययुः ।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुस्तामूचे पद्मसम्भवः ॥२५
प्रशाम्यते तेजसैव तपस्तेजस्त्वनेन वै ।
पतिव्रताया माहात्म्यान्नोद्गच्छति दिवाकरः ॥२६
तस्य चानुदयाद्धानिर्मर्त्यानां भवतां तथा ।
तस्मात्पतिव्रतामत्रेरनसूयां तपस्विनीम् ॥२७
प्रसादयत वै पत्नीं भानोरुदयकाम्यया ।
तैः सा प्रसादिता गत्वा ह्यनसूया पतिव्रता ॥२८
कृत्वादित्योदयं सा च तं भर्त्तारमजीवयत् ।
पतिव्रतानसूयायाः सीताभूदधिका किल ॥२९

पद के अवमपरण से अत्यन्त क्रुद्ध माण्डव्य ने उस द्विज से कहा था कि जिसने पैर से मुझे चालित किया था वह सूर्योदय होने पर मृत हो जायगा ।२३। यह श्रवण करके उसकी भार्या ने कहा—सूर्य उदित ही नहीं होगा । इससे सूर्योदय के अभाव होने के कारण निरन्तर रात्रि होगई थी ॥२४॥ इस प्रकार से बहुत से वर्ष व्यतीत हो गये थे । तब तो समस्त देवों को बहुत भय होगया था और सब मिलकर ब्रह्माजी की शरण में पहुँच गये थे । उन देवताओं से ब्रह्माजी ने कहा ॥ २५ ॥ तप का तेज इस तेज के द्वारा ही प्रशान्त किया जा रहा है । यह पतिव्रता का माहात्म्य है कि भगवान् भुवन भास्कर देव उदित नहीं हो रहे हैं ॥२६॥ सूर्य के उदय न होने से मनुष्यों को बहुत हानि हो रही है और आप लोगों का भी बड़ा नुकसान होना है । इसलिये परम पतिव्रता अत्रि महर्षि की पत्नी अनसूया तपस्विनी को प्रसन्न करो । भानुदेव के उदय होने की कामना तभी पूर्ण हो सकती है । वे सब देवगण पतिव्रता अनसूया के पास पहुँचे और उसे प्रसन्न किया था ॥२७।२८॥ उसने आदित्य का उदय करा दिया और द्विज की मृत्यु होने पर उसे भी जीवित कर दिया था । उस पतिव्रता अनसूया से भी अधिक पतिव्रता सीता हुई थी ॥२९॥

॥ इति प्रथमखण्डसमाप्तम् ॥